

प्रो० वेद प्रकाश शास्त्री,
पूर्व उपकुलपति
गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०, हरिद्वार

प्रो० एच०पी० शुक्ल,
निदेशक, मानविकी
विद्याशाखा उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

प्रो०पुष्पा अवस्थी, संस्कृत विभाग एस०एस
०जे०परिसर, कुमौऊ विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा

डॉ० देवेश कुमार मिश्र
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

डॉ० ब्रजेश पाण्डेय, एस० ० प्रो०
महिला डिग्री कालेज, हल्द्वानी

डॉ० संगीता बाजपेयी,
अका०एस०सिएट संस्कृत विभाग
उ०मु०वि०वि०, हल्द्वानी

डॉ० गोपाल दत्त त्रिपाठी,
संस्कृत महाविद्यालय हल्द्वानी

पाठ्यक्रम सम्पादन

मुख्य सम्पादक,
डॉ० बिन्देश्वर मिश्र,
सरदार पटेल महाविद्यालय, हरैया बुजुर्ग, कुशीनगर

सह सम्पादक,
डॉ० देवेश कुमार मिश्र
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
उ० मु० वि० वि०, हल्द्वानी

इकाई लेखन

खण्ड

इकाई संख्या

डॉ० चन्द्रकान्त दीक्षित,
सरदार पटेल, महाविद्यालय,
कुशीनगर

खण्ड 1 (इकाई सं० 1 से 5)

उमेश कुमार शुक्ल
प्रवक्ता व्याकरण,
श्री मती लाडदेवी शर्मा पंचोली संस्कृत महाविद्यालय, बरून्दनी,
माण्डलगढ - भीलवाड़ा, राजस्थान

खण्ड 2 (इकाई 1 से 5)

डॉ० योगेन्द्र कुमार
प्रवक्ता, नेशनल पी०जी० कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर

खण्ड 3 (इकाई 1 से 5)

उमेश कुमर शुक्ल

खण्ड 4

(इकाई 1 से 6)

प्रवक्ता व्याकरण ,

श्री मती लाडदेवी शर्मा पंचोली संस्कृत महाविद्यालय , बरून्दनी ,

माण्डलगढ - भीलवाड़ा , राजस्थान

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2015

प्रकाशक: उ०मु०वि०हल्द्वानी -263139

मुद्रक: उत्तरायण प्रकाशन हल्द्वानी

ISBN. 978-93-84632- 32- 8

इस पुस्तक में लिखित इकाइयों से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की आपत्ति के निस्तारण का उत्तरदायित्व इकाई लेखक का होगा ।

अनुक्रम

खण्ड एक - पद्य काव्य, किरातार्जुनीयम् - प्रथम सर्ग	पृष्ठ संख्या 01
इकाई 1 . भारवि - परिचय, समय, महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम् का मूल्यांकन	2 - 17
इकाई 2 . किरातार्जुनीयम् , श्लोक संख्या 1 से 15 तक	18- 32
इकाई 3 . किरातार्जुनीयम् , श्लोक संख्या 16 से 30 तक	33 - 49
इकाई 4 .श्लोक संख्या 31 से 46 तक	50 - 66
इकाई 5 .प्रथम सर्ग की महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या	67 - 85
खण्ड दो - पद्य काव्य ,कुमारसम्भवम् - प्रथम सर्ग	पृष्ठ संख्या 86
इकाई 1 .कालिदास का परिचय, समय एवं महाकाव्य के रूप में कुमारसम्भवम् का मूल्यांकन	87- 103
इकाई 2 . श्लोक संख्या 1 से 15 तक (मूल ,अन्वय, अर्थ - व्याख्या)	104-118
इकाई 3 . श्लोक संख्या 16 से 30 तक (मूल ,अन्वय, अर्थ - व्याख्या)	119 -132
इकाई 4 . श्लोक संख्या 31 से 45 तक (मूल ,अन्वय, अर्थ - व्याख्या)	133 - 146
इकाई 5. श्लोक संख्या 46 से 60 तक (मूल ,अन्वय, अर्थ - व्याख्या)	147 -160
खण्ड तीन - कादम्बरी (शुकनासोपदेश मात्र)	पृष्ठ संख्या 161
इकाई 1 .गद्य काव्य परम्परा , बाण की कादम्बरी का विहंगावलोकन, शुकनासोपदेश का परिचय	162 -178
इकाई 2 . गद्य भाग – एवं समतिक्रामत्सु	
179 -192 मेदादोषं गुरूकरणम् तक व्याख्या	
इकाई 3 .असुवर्णविरचनमग्राम्यं से चिन्तितापि वञ्चयति तक (व्याख्या)	193 - 209
इकाई 4 . एवंविधयापि सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति तक (व्याख्या)	210- 224
इकाई 5. आत्मविडम्बनां स्वभवनं आजगाम तक (व्याख्या)	225- 237
खण्ड चार - लघुसिद्धान्तकौमुदी (संज्ञा प्रकरण , अच् सन्धि)	पृष्ठ संख्या 238

इकाई 1 . लघुसिद्धान्तकौमुदी संज्ञा प्रकरण , प्रारम्भ से मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः तक की व्याख्या	239 - 253
इकाई 2 . तुलयास्यप्रयत्नसवर्णम् से सुप्तिङन्तं पदम् तक	254 - 266
इकाई 3 .इकोयणचि से अलोऽन्त्यस्य तक	267 - 282
इकाई 4 . एचोऽयवायावः से पूर्वत्राऽसिद्धम् सूत्रतक	283 - 297
इकाई 5 . वृद्धिरादैच् से एङःपदान्तादति तक	298 -317
इकाई 6 . सर्वत्र विभाषा गोः से ऋत्यकः सूत्र तक	318 - 335

खण्ड 1 - पद्यकाव्य किरातार्जुनीयम् - प्रथम सर्ग

इकाई 1. भारवि - परिचय एवं समय, महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम् का मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 भारवि - परिचय एवं समय
 - 1.3.1 भारवि का जीवन वृत्त
 - 1.3.2 भारवि का समय
 - 1.3.3 भारवि का ग्रन्थ
 - 1.3.4 भारवि का साहित्यिक वैशिष्ट्य
- 1.4 महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम्
 - 1.4.1 महाकाव्य का लक्षण
 - 1.4.2 किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व
- 1.5 सारांश
- 1.6 शब्दावली
- 1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.9 उपयोगी पुस्तकें
- 1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

कवि कालिदास अपने युग में श्रेष्ठतम ;साहित्य को जन्म दे चुके थे । कवि और नाटककार के रूप में उन्होंने साहित्यिक रचनाओं के उच्चतम मानदण्ड स्थापित कर दिये थे । उनके बाद के कवि लाख प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी उन मानदण्डों का स्पर्श न कर सके, परिणामस्वरूप अपने अस्तित्व के प्रदर्शन के लिए कवियों ने चमत्कार और विद्वता का सहारा लेकर अलंकरण की प्रवृत्ति को जन्म दिया । समय की गति के साथ परिष्कृत संस्कृत शैली, अत्यन्त गूढ़ उपमाओं तथा जटिल वाक्य रचनाओं के कारण भाराक्रान्त हो उठी तथा कविता की आत्मा इस नगर के नीचे कुचल कर रह गई। परवर्ती युग के कवियों ने पाण्डित्य प्रदर्शन, वाक् चातुर्य और अनुकरण का पथ अपना लिया। इन कवियों में भारवि माघ, श्रीहर्ष आदि कवियों का नाम लिया जा सकता है । इन कवियों में भारवि निःसन्देह एक उच्चकोटि के कवि है । उनका एकमात्र महाकाव्य किरातार्जुनीयम् संस्कृत साहित्य के वृहद्त्रयी के अन्तर्गत अग्रणी रूप में रखा जाता है ।

इस इकाई के माध्यम से आप सर्वशास्त्रमय कवि कुल भूषण भारवि का सम्पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । इस इकाई के अन्तर्गत भारवि के जीवन-परिचय ,उनके कृतित्व एवं महाकाव्य के रूप में उनके द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् का स्वरूप समझ सकेंगे ।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई की सहायता से आप -

- भारवि के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेंगे ।
- इसके माध्यम से आप किरातार्जुनीयम् नामक महाकाव्य से परिचित हो सकेंगे ।
- इसके अध्ययन से आप महाकाव्य के लक्षणों को बता सकेंगे ।
- इसकी सहायता से आप भारवि विषयक प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे ।

1.3 भारवि - परिचय एवं समय

‘किरातार्जुनीयम्’ महाकाव्य के रचयिता के रूप में तथा संस्कृत महाकाव्यों के इतिहास में कालिदास के बाद भारवि का नाम विख्यात है । इन्होंने महाकाव्य के विचित्र मार्ग का प्रवर्तन किया जिसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर ही अधिक बल रहता है । पाण्डित्य-प्रकर्ष की अभिव्यक्ति और मूल विषय का त्याग करके लम्बे वर्णनों में उलझ जाना इस मार्ग की विशिष्टता है । पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति अश्वघोष में भी थी किन्तु वे विषय का त्याग नहीं करते थे । भारवि के बाद के कवियों ने दोनों को अपनाया । इसलिए भारवि का एक विशिष्ट स्थान है ।

1.3.1 भारवि का जीवन वृत्त

संस्कृत के अन्य महान् कवियों के समान भारवि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में भी अनेक किंवदन्तियों और अप्रामाणिक सूचनाओं का समुदाय प्राप्त होता है दण्डी के द्वारा रचित ‘अवन्तिसुन्दरीकथा’ नामक ग्रन्थ का कुछ अंश प्राप्त हुआ है, जिसका एक नाम अवन्तिसुन्दरी

कथासार भी है। उसमें भारवि के विषय में कुछ महत्वपूर्ण सूचना दी गयी है। कहा गया है कि भारवि दण्डी के प्रपितामह थे और उनका वास्तविक नाम 'दामोदर' था। भारवि के पिता का नाम नारायणस्वामी था। कुछ विद्वानों का कथन है कि उक्त दामोदर भारवि के अनुज थे और दण्डी इन्हीं दामोदर के प्रपौत्र थे। दामोदर ने भारवि को माध्यम बनाकर राजा विष्णुवर्धन से सम्पर्क किया था। भारवि को वहाँ 'महाशैव' कहा गया है। किरातार्जुनीय में भारवि ने शिव की महिमा का वर्णन भी किया है भारवि के मित्र विष्णुवर्धन की पहचान विद्वानों ने सत्याश्रय (चालुक्यनरेश पुलिकेशन् द्वितीय) के अनुज के रूप में की है (615ई० के लगभग)।

'किरातार्जुनीयम्' के द्वितीय सर्ग के श्लोक 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' (30) को लेकर कई कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें भारवि का योगदान कहा गया है। भारवि को सभी विद्वान् दाक्षिणात्य मानते हैं। सदारुज्जन राय ने भारवि द्वारा समुद्र में सूर्यास्त-वर्णन करने के कारण भारवि को पश्चिम समुद्र (अरब सागर) के तट का निवासी सिद्ध किया है।

1.3.2 भारवि का समय

भारवि का समय मुख्यतः बाह्य प्रमाणों पर ही आश्रित है। अपनी एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीयम्' में ऐसा कोई संकेत इन्होंने नहीं दिया है जिससे इनके काल का निश्चय हो सके। बाह्य प्रमाणों में सबसे महत्वपूर्ण 'ऐहोल का शिलालेख' है जो कर्नाटक राज्य के बादामी जिले में मेगुती नामक ग्राम के निकट एक पहाड़ी पर बने जैन मन्दिर की बाहरी दीवार पर अंकित है। इसका समय 634 ई० ('शकसंवत् 556) है रविकीर्ति नामक कवि ने इस मन्दिर (जिनवेश्म) का निर्माण करके कुछ ऐतिहासिक महत्व के श्लोक की रचना कर इसमें उत्कीर्ण कराये थे। उनमें अन्तिम (37 वाँ) पद्य इस प्रकार है-

येनायोजि नवेऽष्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।

स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥

यहाँ रविकीर्ति ने अपने आपको काव्य के क्षेत्र में कालिदास और भारवि की कीर्ति का आश्रय लेने वाला कहा है। स्पष्टतः भारवि 634ई० तक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। इस प्रसिद्धि की अवधि के विषय में विद्वानों ने अनुमान किये हैं। कीथ का मत है कि उन्हें 550 ई० के आसपास माना जा सकता है। सरदारुज्जन राय ने उक्त संकेत से 150-200 वर्ष पूर्व अर्थात् पाँचवीं शताब्दी ई० में भारवि को मानने का सुझाव दिया है। किन्तु अन्य स्रोतों से इस विषय पर अधिक स्पष्टता प्राप्त होती है। दण्डि-कृत 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के एक अंश का उद्धरण जो, हरिहरशास्त्री ने निम्नांकित रूप में किया है, जिसमें दामोदर द्वारा भारवि के माध्यम से विष्णुवर्धन नामक राजा की कृपा प्राप्त करने का निर्देश है - यतः कौशिककुमारो (दामोदरो) महाशैवं महाप्रभाव प्रदीप्तभांस भारवि रविमिवेन्दुरनुरुध्य दर्श इव पुण्यकर्माणि विष्णुवर्धनाख्ये राजसूनौ प्रणयमन्वबध्नात् । विष्णुवर्धन चालुक्य-नरेश सत्याश्रय (पुलिकेशिन्-द्वितीय) का अनुज था, उसने सेनापति के रूप में नर्मदा - तट पर हर्षवर्धन को पराजित किया था। उसी ने गोदावरी जिले में पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्य - वंश की स्थापना 615 में की थी। भारवि से

मित्रता के कारण विष्णुवर्धन ने उन्हें अपना सभा-पण्डित बनाया था। इस प्रकार 615ई० के आस पास भारवि का भी समय माना जा सकता है। 634ई० में उनकी पर्याप्त प्रसिद्धि के कारण रविकीर्ति ने उनका उल्लेख किया भारवि के समय के निर्धारण का एक अन्य सूत्र भी उक्त 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होता है। काञ्ची के पल्लव-नरेश सिंहविष्णु (शासनकाल 575-600ई०) ने भी भारवि को आश्रय दिया था। बाद में सिंहविष्णु के पुत्र महेन्द्रविक्रम ('मत्तविलासप्रहसन' का लेखक) के आश्रय में भी भारवि रहे। भारवि को मनोरथ नामक पुत्र था। यही मनोरथ दण्डी के पितामह थे। यह सूचना 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होती है। एक दानपत्र से भी भारवि के काव्य का सम्बन्ध प्राप्त होता है। कोंकण के गंग - नरेश अविनीत का पुत्र दुर्विनीत (समय 580ई०) था जिसने 'बृहत्कथा' (गुणाढ्य-कृत पैशाची भाषा में निबद्ध लोककथा - संग्रह) का संस्कृत रूपान्तर 'शब्दावतार' के नाम से किया था तथा किरातार्जुनीयम् के 15 वें सर्ग (चित्रकाव्य से पूर्ण सर्ग) पर टीका भी लिखी थी। यह दानपत्र 'मैसूर आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट (1916) में पृष्ठ 36 पर मुद्रित है - "श्रीमत्कोंकणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारती निबद्ध - बृहत्कथेन किरातार्जुनीयपञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन"। इन सूत्रों से यह अनुमान हो सकता है कि भारवि का समय 550 ई० से 620 ई० के बीच होगा। अष्टाध्यायी की वृत्ति 'काशिका' (660ई०) में जयादित्य ने किरातार्जुनीय के एक पद्यखण्ड (3/14) ' संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः का उद्धरण दिया है। महाकवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' की रचना स्पष्टतः भारवि के महाकाव्य की ख्याति से प्रेरित होकर प्रतिस्पर्धा में ही की थी। माघ का समय 675 ई० के आसपास माना जाता है। अतः भारवि को इन रचनाओं के कुछ पूर्व उक्त कालावधि में रखा जा सकता है। बाण द्वारा अपने हर्षचरित के प्रस्तावना में भारवि का उल्लेख न होना कुछ विद्वानों को खटकता है किन्तु इसे दो कारणों से स्पष्ट किया जा सकता है। पहली बात यह है कि बाण के समय (7वीं शताब्दी का पूर्वार्ध) में उत्तरभारत में भारवि अधिक विख्यात नहीं हुए होंगे। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि बाण के आश्रयदाता महाराज हर्षवर्धन के शत्रु पुलिकेशिन के अनुज की राजसभा में भारवि थे। अतः बाण ने उनका उल्लेख नहीं किया।

1.3.3 भारवि का ग्रन्थ

किरातार्जुनीयम् , यह भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। विचित्र मार्ग या कलावाद का प्रवर्तन करने वाले इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के वनपर्व के कुछ अध्यायों पर आश्रित है। वनवास-काल में अर्जुन द्वारा कौरवों पर विजय-प्राप्ति के लिए इन्द्रकील पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरात-वेश में आये हुए शिव से युद्ध करने एवं प्रसन्न हुए शिव से पशुपत अस्त्र की प्राप्ति की मुख्य कथा इसमें निरूपित है। इसीलिए इसका शीर्षक है- किरातार्जुनीयम्। किरातः (किरातवेशधारी शिवः) च अर्जुनश्च-किरातार्जुनौ (द्वन्द्वसमास) तावधिकृत्य कृतं काव्यं किरातार्जुनीयम् (द्वन्द्वच्छः से छ अर्थात् ईय प्रत्यय)। इसके कई सर्ग मुख्य कथा को छोड़कर कलात्मक वर्णनों में लगाये गये हैं। 15 वें सर्ग में युद्ध के क्रम में

चित्रकाव्य की छटा दिखायी गयी है। इस महाकाव्य में सर्गों की कथा इस प्रकार है-द्वैतवन में वनेचर का आकर युधिष्ठिर को दुर्योधन की प्रजा-पालन-नीति का वर्णन सुनाना, द्रौपदी का उत्तेजनापूर्ण भाषण (सर्ग-1) युधिष्ठिर और भीम का वार्तालाप, भीम द्वारा द्रौपदी का समर्थन करते हुए पराक्रम की महत्ता दिखाना, युधिष्ठिर का प्रतिवाद (सहसा विदधीत न क्रियाम्), व्यास का आगमन (सर्ग-2); व्यास द्वारा अर्जुन को शिव की आराधना करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने का उपदेश, योग-विधि का निरूपण करके व्यास का अन्तर्धान होना, व्यास द्वारा प्रेषित यक्ष के साथ अर्जुन का प्रस्थान (सर्ग-3) इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का पहुँचना, शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन (सर्ग-4); हिमालय का वर्णन तथा यक्ष का अर्जुन को इन्दिय-संयम का उपदेश (5); अर्जुन की तपस्या, विघ्न डालने के लिए इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराओं का आगमन (6); गन्धर्वों तथा अप्सराओं के विलासों का वर्णन, वन-विहार, पुष्पचयन (7); गन्धर्वों और अप्सराओं की उद्यान क्रीड़ा तथा जल-क्रीड़ा का मोहक वर्णन (8); सायंकाल, चन्द्रोदय, मान मानभश्, दूती-प्रेषण, सुरति तथा प्रभात का वर्णन (9); अप्सराओं की चेष्टाएँ, उनकी विफलता (सर्ग-10); मुनि-रूप में इन्द्र का आगमन, इन्द्रार्जुन-संवाद, इन्द्र का अर्जुन को शिवाराधना का उपदेश (11); अर्जुन की तपस्या, तपस्वियों का शिव को प्रेरित करना, अर्जुन को देवताओं का कार्यसाधक जानकर 'मूक' नामक दानव का शूकर रूप में अर्जुन वध के लिए आगमन, किरातवेशधारी शिव का आगमन (12); शूकर (मूक दानव) पर शिव और अर्जुन दोनों का बाण-प्रहार, दानव की मृत्यु, बाण के विषय में शिव के भेजे गये वनेचर की अर्जुन के प्रति उलाहना पूर्ण कथन (13) वनेचर के लिए अर्जुन की उक्ति तथा किरातवेशधारी शिव का युद्ध हेतु आना (14); युद्ध का चित्रकाव्य के रूप में वर्णन (15) शिव और अर्जुन का अस्त्रयुद्ध, मल्लयुद्ध (16); शिव और उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध (17) बाहुयुद्ध के बाद शिव का अपने मूल रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति, इन्द्रादि द्वारा भी अर्जुन को विविध अस्त्रों का प्रदान, अर्जुन का युधिष्ठिर के पास आगमन (सर्ग-18)।

स्पष्टतः इस महाकाव्य में प्रकृति-वर्णन, क्रीड़ादि-वर्णन एवं युद्ध-वर्णन के द्वारा मुख्य कथानक का विस्तार किया गया है। इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्रियः' शब्द से होता है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में 'लक्ष्मी' शब्द भी प्रयुक्त है। इस प्रकार मांगलिक शब्द का आदिमध्यावसान में प्रयोग करके महाकाव्य को मांगलिक बनाया गया है। कलावादी भारवि ने सुन्दर हृदयावर्जक संवादों, काल्पनिक चित्रों तथा रमणीय वर्णनों से इसे भरकर नवीन दिशा का प्रवर्तन किया है। श्रंगार चेष्टाओं के वर्णन में मुक्तक काव्य की चित्रात्मकता इसमें उन्होंने भरी है। चतुर्थ से एकादश सर्ग तक के अन्तराल को ऐसे ही वर्णनों से भरा गया है। युद्ध का लम्बा वर्णन भी महाकाव्य की विशालता को भले ही रेखांकित करे, फिर भी उसमें कविता की आत्मा तिरोहित हो गयी है।

इस महाकाव्य के नायक अर्जुन धीरोदात्त कोटि के हैं। वीर रस प्रमुख है, श्रंगार रस अंश के रूप में है। इस महाकाव्य पर मल्लिनाथ ने टीका लिखी है, 15 वें सर्ग पर दुर्विनीत ने भारवि के काल में ही टीका लिखी थी। माघ ने इस काव्य की सभी विशिष्टताओं का अनुकरण करके

‘शिशुपालवध’ की रचना की। इस महाकाव्य के प्रथम तीन सर्ग बहुत लोकप्रिय हैं। इसमें मुख्य रूप से भारवि का राजनीति-ज्ञान प्रकट हुआ है।

1.3.4 भारवि का साहित्यिक वैशिष्ट्य

भारवि मुख्य रूप से कलावादी कवि हैं जिनका ध्यान काव्य के बहिरशः पर अधिक रहा है। अर्थपक्ष में गम्भीरता तथा सार्वजनीनता का निवेश भी उन्होंने किया है। चित्रकाव्य का प्रयोग करने वाले वे प्रथम संस्कृत कवि हैं। कृत्रिम भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होंने यह प्रकट किया है कि संस्कृत काव्य कितना दुरूह हो सकता है। किन्तु ऐसी शब्द-क्रीड़ा उनके काव्य में सीमित है, केवल 15वें सर्ग में चित्रकाव्य है और 5वें सर्ग में यमक का प्रयोग है। सामान्यतः भारवि वैदर्भी रीति के कवि हैं जिसमें अल्पसमासों का प्रयोग होता है। व्याकरणशास्त्र के दुरूह नियमों के प्रति कवि की अभिरुचि अवश्य है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी भारवि में बहुत अधिक है। किन्तु इस समस्त कृत्रिमता के मध्य उनमें भावों को अभिव्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है जो सामान्य स्थलों में विपुल रूप से प्राप्त होती है भावों के अनुसार ही इन्होंने काव्य-कला का प्रयोग किया है, अर्थगौरव से पूर्ण सामान्य उक्तियों में प्रसादगुण है तो चित्रात्मक वर्णनों में ओजगुण के प्रयोग में भी कवि को संकोच नहीं है। अनेक अलंकारों और छन्दों का निवेश भी कवि ने भावों की आवश्यकता के अनुरूप ही किया है। इनकी शैली के विषय में जितना अन्य विद्वानों ने कहा है, उससे न्यूनतर स्वयं भारवि ने नहीं कहा। इससे प्रकट होता है कि कवि अपनी भाषा-शैली के प्रति पूर्ण जागरूक है।

भारवि के विषय में कुछ उक्तियाँ प्रचलित हैं जैसे-भारवेरर्थगौरवम्, भारवेरिव भारवेः, प्रकृतिमधुरा भारविगिरः (अभिनन्द), नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः (मल्लिनाथ) इत्यादि इनमें भारवि की शैली की स्वाभाविक मधुरता के अतिरिक्त बाह्य-रूक्षता तथा अन्तः सरसता एवं अर्थगौरव की प्रशंसा की गयी है। इन पर विचार किया जायेगा। स्वयं भारवि ने अपने काव्य के विविध पक्षों में वचोविन्यास के विशिष्ट गुणों का निर्देश किया है जैसे-

(1) स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं

विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ॥ (किरातार्जुनीय 1/3)

वनेचर शब्द-सौष्ठव तथा औदार्य (अर्थसम्पत्ति) से शोभा पाने वाली निश्चित अर्थ से युक्त वाणी का प्रयोग कर रहा था। वाणी में शब्द की सामर्थ्य तथा अर्थ की समग्रता तो हो ही, साथ ही साथ विषय-वस्तु प्रमाण-सिद्ध हो अर्थात् असत्य न हो।

(2) स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।

रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥ (किरात. 2/27)

यहाँ भीम की वाणी की प्रशंसा में युधिष्ठिर कहते हैं। कि तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन है (प्रसभं वक्तुमुपक्रमेत कः, 2/28) जिसके शब्दों में स्फुटता (स्पष्टता) हो, अर्थ-गौरव (अर्थ का प्राचुर्य) विद्यमान हो, बातों में पृथगर्थता (पुनरुक्ति का अभाव या परस्पर विरोध का अभाव) हो और शब्दों की परस्पर आकांक्षा (सामर्थ्य) भी उपस्थित हो। भाषा के इन गुणों का भारवि ने उपदेश

ही नहीं दिया है, अपितु पालन भी किया है।

(3) विविक्तवर्णाभरण सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती

प्रवर्तनं नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ॥ (किरात० 14/3)

यहाँ अर्जुन किरातवेशधारी शिव से कहते हैं कि परस्पर असंकीर्ण वर्णों के आभूषण से युक्त, सुनने में सुखद (श्रुतिकटु-दोष से रहित), शत्रुओं के मन को भी प्रसन्न करने वाली तथा प्रसाद-गुण एवं अर्थगाम्भीर्य से युक्त वाणी पुण्यकर्म के बिना प्रवृत्त नहीं होती। काव्य में भी ऐसी भाषा-शैली वाञ्छनीय है। इसी क्रम में अर्जुन आगे भी कहते हैं -

(4) स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पदं विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः।

इति स्थितायां प्रतिपुरुषं रुचौ सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः॥ (किरात० 14/5)

अर्थात् कुछ लोग वाणी की वाच्यार्थ-सम्पत्ति की प्रशंसा करते हैं, तो दूसरे विद्वान् केवल उक्ति (अर्थात् शब्द-सामर्थ्य) की प्रशंसा करते हैं इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के पृथक्-पृथक् विचारों की स्थिति में सभी लोगों को प्रसन्न करने वाली (शब्दार्थसमन्वित वाणी) अत्यन्त दुर्लभ होती है भारवि ने ऐसी ही वाणी की काव्य का उत्कर्ष समझा है।

कहीं-कहीं भारवि ने शास्त्रीय वैदुष्य का प्रदर्शन करते हुए सामान्य विषयों को भी गम्भीर रूप दे दिया है। किरातार्जुनीयम् के सत्रहवें सर्ग में वाणों के आधार पर अर्जुन की विजय-कामना की तुलना वैयाकरणों की शब्दाश्रित अर्थस्फुरण-कामना से की गयी है यह पद्य भारवि की अर्थगम्भीरता का उत्कर्ष प्रस्तुत करता है-

संस्कारवत्त्वद् रमयत्सु चेतः प्रयोग-शिक्षागुण-भूषणेषु ।

जयं यथार्थेषु परेशु पार्थः शब्देषु भावार्थमिवाशंषसे ॥ (किरात० 17/6)

भारवि की काव्यशैली सामान्यतः वैदर्भी है, जिसमें समाससाहित्य या अल्पसमासता रहती है किन्तु कालिदास की शैली के समान कोमलता, पदलालित्य और परिष्कार का इसमें अभाव है। पाण्डित्य और कवित्व दोनों के प्रति समान आकर्षण के कारण भारवि भावों के सौन्दर्य पर तो ध्यान रखते हैं किन्तु शब्दों की मधुरता का बलिदान इनके पाण्डित्य के निकशोपल पर हो जाता है राजनीति-जैसे शुष्क विषय हो या शरद्-वर्णन-जैसा सरस विषय आये, भारवि की भाषा-शैली रूक्षता नहीं छोड़ती। यही कारण है कि मल्लिनाथ ने इनकी वाणी को 'नारिकेलफलसम्मित' कहा है। नारियल ऊपर से रूक्ष ही नहीं, परस्पर रेशों के संघटन के कारण अभेद्य भी होता है, उसकी अन्तः सरसता ऊपर से नहीं जानी जा सकती। वही बात भारवि के काव्य के बहिरश् में (भाषा-शैली में) निहित है। किन्तु ऊपरी रेशों को दूर हटाकर जब भावों के सौन्दर्य का साक्षात्कार किया जाता है तो चित्त प्रसन्न हो जाता है। एक ओर बहिरश् प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ है, तो दूसरी ओर अन्तरश् चित्त को द्रवित करता है। द्रौपदी के उत्तेजक भाषण में कवि ने दोनों क्षमताएँ दिखायी हैं जैसे-

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती कचाचितौ विश्वगिवागजौ गजौ ।

कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ विलोकयुन्नुत्सहसे न बाधितुम् ॥ (किरात. 1/36)

शब्दों में यमक का प्रयोग और भावों में युधिष्ठिर को उपालम्भ-ये दोनों समान रूप से निविष्ट हैं। आप इन दोनों भाइयों (नकुल-सहदेव) की वर्तमान दुर्दशा देखकर भी अपने धैर्य और संयम को छोड़ नहीं पाते-आश्चर्य की बात है। इस उपालम्भ की पराकाष्ठा तब होती है जब द्रौपदी युधिष्ठिर को धनुष छोड़कर हवन-कार्य में जीवन बिताने का व्यङ्ग्य करती है (विहाय लक्ष्मीपल्लव कार्मुकं जटाधरः सऋजुहुधीह पावकम् 1/44)। पात्रों के अनुरूप ओजस्विता और शमन का आधान करने में भारवि की प्रवीणता अनुपम है, द्रौपदी तथा भीम के ओज-पूर्ण वचन पाठक को उत्तेजित करते हैं तो युधिष्ठिर और व्यास के वचनों में शान्ति का निवेश है। इनमें कवि की नीतिकुशलता सर्वत्र प्रकट हुई है। राजा का आदर्श युधिष्ठिर की दृष्टि में मृदुता और उग्रता का यथावसर प्रयोग ही है-

समवृत्तिरूपैति मार्दवं, समये यश्च तनोति तिग्मताम् ।

अधितिष्ठति लोकमोजसा, स विवस्वानिव मेदिनीपतिः॥ (किरात० 2/38)

‘किरातार्जुनीय’ के चतुर्थ सर्ग में शरद्-ऋतु का भव्य वर्णन करते हुए इसी शैली में कवि ने कतिपय सुन्दर शब्दचित्र अंकित किये हैं। वर्षा के कारण जो मार्ग पहले टेढ़े-मेढ़े थे, अब शरद् में खेतों का जल सूख जाने से सीधे हो गये हैं; उन मार्गों पर समीपवर्ती (अगल-बगल) पौधों को बैल खा गये; गाड़ियों के पहियों के चिह्न (लीक) बन जाने से कहीं-कहीं उन मार्गों पर कीचड़ घनी हो गयी है और लोगों के निरन्तर आने-जाने से अब वे मार्ग स्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं-

पपात पूर्वा जहतो विजिहतां, वृशोपभुक्तान्तिकसस्यसम्पदः।

रथाशमीमन्तित-सान्द्रकर्दमान्, प्रसक्तसम्पात-पृथक्कृतान्पथः॥ (किरात० 4/18)

इसी प्रकार हरे-हरे सुगों के अपनी लाल चोंचों से धान की पीली बालियां को लेकर उड़ने में कवि ने उस इन्द्रधनुष के सौन्दर्य की उपमा दी है-

मुखैरसौ विद्रुमश्लोहितैः शिक्षाः पिषशी कलमस्य बिभ्रती ।

शुकावलिर्व्यक्तशिरीषकोमला, धनुःश्रियंगोत्रभिदोऽनुगच्छति॥(किराता० 4/36)

इस महाकाव्य के पंचम सर्ग में द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग करते हुए कवि ने ‘यमक’ अलंकार का ऐसा प्रयोग किया है कि माघ इसके अनुकरण के लिए उत्सुक हो उठे। हिमालय का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं -

पृथुकदम्ब-कदम्बक-राजितं ग्रथित-माल-तमाल-वनाकुलम् ॥

लघु-तुषार-तुषारजलश्च्युतं धृत-सदान-सदानन-दन्तिनम् ॥

अर्थात् यह हिमालय बड़े-बड़े कदम्ब पुष्पों के समूह से शोभित है, पंक्तियों में निबद्ध तमालवनों से भरा है, यहाँ बूँद-बूँद करके हिमजल चूरहा है और सुन्दर मुखवाले (सदानन) मतवाले (सदानन) हाथियों को यह धारण करता है। इस प्रशंसा में एक पद्य पाद-यपक के रूप में है- सकलहंसगणं शुचि मानसम् (सभी हंस-गणों से युक्त पवित्र मानसरोवर) तथा सकलहंस गणं शुचिमानसम् (अपनी पत्नी पार्वती से विवाद किये हुए, प्रथम आदि गुणों के साथ, पवित्र मनवाले भगवान् शिव को)। इन दोनों को हिमालय धारण करता है। (5/13)

इसी सर्ग में एक प्रसिद्ध उपमा प्रयुक्त है जिसमें यक्ष अर्जुन को समझाता है कि यहाँ स्थल-कमल

के पराग आँधी (वात्या, चक्रवात) के द्वारा इस प्रकार उड़ाये जाते हैं कि आकाश मण्डलाकार बन जाता है । और स्वर्ण से निर्मित छत्र का रूप धारण कर लेता है -

उत्फुल्ल-स्थल-नलिनी-वनादमुष्म

दुद्भूतः सरसिज-सम्मभवः परागः।

वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्ता

दाधत्ते कनकमयातपत्र-लक्ष्मीम्॥ (किरात० 4/39)

इस उपमान के कारण कवि को 'आतपत्र-भारवि' भी कहा गया है । पंचम सर्ग में कवि ने अनेक छन्दों के प्रयोग की क्षमता भी दिखायी है । जैसे-द्रुतविलम्बित (1-16), औपच्छन्दसिक (17), क्षमा (18), प्रमिताक्षरा (20), प्रभा (21), रथोद्धता (22), जलधरमाला (23), प्रहर्षिणी (26), जलोद्धतगति (27) वसन्ततिलका (28-30), पुष्पिताग्रा (32), शालिनी (36), वंशपत्रपतित (43), मालिनी (52),¹ भारवि के द्वारा प्रयुक्त वंशस्थ छन्द की प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' में की है। इस छन्द का उपयोग कवि ने प्रथम, चतुर्थ, अष्टम, चतुर्दश -इन सर्गों में मुख्य छन्द के रूप में किया है मुख्य छन्द के रूप में इन्होंने वियोगिनी (सर्ग-2), उपजाति (सर्ग-3,16,17), प्रमिताक्षरा (सर्ग-6), प्रहर्षिणी (सर्ग-7), स्वागता (सर्ग-9), पुष्पिताग्रा (सर्ग-10), अनुष्टप (सर्ग-11 तथा 15,) उद्धता (सर्ग-12), औपच्छन्दसिक (सर्ग-13 में 34वें पद्य तक, 35 से 70 तथा रथोद्धता) का प्रयोग किया है, सर्गान्त में छन्द के परिवर्तन की पद्धति भी रखी है । अठारहवें सर्ग में भी पंचम सर्ग के समान अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के वैविध्य का प्रदर्शन संस्कृत कवियों में सर्वप्रथम भारवि ने ही में किया है यह उनके पाण्डित्य और विचित्र मार्ग के प्रवर्तन का परिचायक है ।

अलंकारों का स्वाभाविक वर्णन ऊपर दिये गये है। हिमालय-वर्णन के प्रसंग में 'रूपक' का निम्नांकित पद्य में बहुत सुन्दर प्रयोग है-

श्रीमल्लताभवनमोषधयः प्रदीपाः

शय्या नवानि हरिचन्दन-पल्लवानि।

अस्मिन् रतिश्रमनुदश्च सरोजवाताः

स्मर्तुं दिशन्ति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः॥ (किरात० 4/28)

अर्थात् यहाँ शोभासम्पन्न लताकुंज ही भवन हैं, ओषधियाँ (जड़ी-बूटियाँ) दीपक हैं, हरिचन्दन (कल्पवृक्ष) के नये-नये पल्लव शय्या हैं; रति के श्रम को दूर करने वाले कम वन-जन्य समीरण सुरसुन्दरियों को स्वर्ग का स्मरण करने ही नहीं दे रहे हैं । भाव यह है कि हिमालय में प्राप्त भोग-सामग्री स्वर्ग से भी बढ़कर है ।

प्रयत्न-साध्य अलंकारों में अर्थालंकार नहीं, शब्दालंकार ही हैं जो 'चित्रकाव्य' के रूप में प्रयुक्त हैं। इस दृष्टि से शिव और अर्जुन विचित्र युद्ध का वर्णन करने के लिए पंचदश सर्ग नियुक्त किया गया है। इस सर्ग में कहीं एकाक्षर पद्य हैं (श्लोक-14), कहीं दो अक्षरों का पद्य है (5,38); कहीं पादादि-यमक है (10), तो कहीं पाद के आदि-अन्त में यमक है (8, माविह्वसिष्ट समरं समरन्तव्यसंयतः) कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है (12) तो कहीं सर्वतोभद्र है (25); कहीं पूर्वार्ध

और उत्तरार्ध एक ही है (16 तथा 50); कहीं एक ही श्लोक सीधा-उलटा एक समान है (18 तथा 20) कहीं चारों पादों की एकरूपता से महायमक है (52 विकाशमीयुर्जगतीषमार्गणाः-चारों पादों में यही है); कहीं दो अर्थों वाले (16,50), कहीं तीन अर्थों वाले (42) और कहीं चार अर्थों वाले पद्य भी हैं (52)। इस प्रकार भारवि ने प्रयत्नसाध्य चित्रालंकार का व्यापक रूप से इस सर्ग में प्रयोग किया है।

यहाँ एकाक्षर (केवल एक व्यंजन 'न') प्रयोग वाले पद्य का उदाहरण दिया जाता है-

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।

नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनों नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥ (किरात० 14/14)

अर्थ इस प्रकार है- (नानाननाः) हे अनेक मुखवाले शिवसैनिको, (ऊननुन्नः) निकृष्ट व्यक्ति के द्वारा आहत पुरुष (ना न) वस्तुतः पुरुष नहीं है। (नुन्नोनः) जिसने न्यूनता को नष्ट कर दिया है ऐसा (ना ननु अना) पुरुष वस्तुतः पुरुष से भिन्न अर्थात् देवता हैं। (न-नुन्नेनः) जिसका स्वामी अनाहत या अक्षत है वह (नुन्नः अनुन्नः) आहत होने पर भी आहत नहीं है। (नुन्ननुन्ननुत्) अत्यधिक आहत व्यक्ति को क्षति पहुँचाने वाला (न अनेनाः) अपराध-मुक्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार पूर्वार्ध की आवृत्ति उत्तरार्ध के रूप में होने से दो-दो अर्थ निकलते हैं-

घनं विदार्यार्जुनबाणपूर्गं ससारवणोऽयुगलोचनस्य ।

घनं विदार्यार्जुनबाणपूर्गं ससार बाणो युगलोचनस्य ॥ (किरात० 15/50)

‘इधर त्रिलोचन शिव का शक्ति - सम्पन्न (संसार) और ध्वनियुक्त बाण अर्जुन के घने बाण-समूह को छिन्न-भिन्न करके व्याप्त हुआ और उधर द्विलोचन अर्जुन का बाण घने अर्जुन वृक्ष, बाणवृक्ष और सुपारी (पूग) के वनों को चीर कर व्याप्त हुआ। एक पद्य में जो चारों चरण समान हैं वहाँ विकासमीयुर्जगतीशमार्गणाः (पद्य-52)-के चार अर्थ इस प्रकार हैं - (1) जगतीश - मार्गणाः विकासम् ईयुः = पृथ्वीपति अर्जुन के बाण विस्तार का प्राप्त हुए। (2) जगति ईशमार्गणाः विकासम् ईयुः-संसार में शिव के बाण वि-कास (विषम गति) को प्राप्त हुए अर्थात् बिखर गये, टूट गये। (3) जगती-स-मर-गणाः विकासम् ईयुः = संसार को दुःख देने वाले (जगतीं प्यन्ति तनूकुर्वन्ति इति) दानवों को मार डालने वाले शिवगण प्रसन्न हुए। (4) जगतीश-मार्गणाः वि-कासम् ईयुः-जगती के स्वामी शिव को ढूँढ़ने वाले (मार्गणाः) देवादि-समूह पक्षियों के स्थान पर (वि = पक्षी, काश = स्थान) अर्थात् आकाश में आ गये।

इस प्रकार भारवि ने बौद्धिक व्यायाम के रूप में चित्रालंकार का प्रयोग करके संस्कृत भाषा की उस क्षमता का प्रकर्ष दिखाया है जो संसार के अन्य किसी भाषा में नहीं है। शब्द-विश्लेषण-शास्त्र (व्याकरण) का इसमें प्रभूत योगदान है। भारवि की शास्त्रगत व्युत्पत्ति के अतिरिक्त लोकनुभव का प्रकृष्ट परिचय उनकी सूक्तियों में प्राप्त होता है। उनके सुभाषित शास्त्रों के पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित हैं। उनमें नीति, राजनीति तथा सामान्य जीवन से सम्बद्ध सूक्तियों का भाण्डार है। इन सभी में ‘अर्थान्तरन्यास’ अलंकार निहित है। यहाँ कुछ सामान्य सूक्तियों के उद्धरण दिये जाते हैं -

(1) **हितं मनोहरि च दुर्लभं वचः (1/4)** - ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हित कर होने के साथ मन

के अनुकूल भी हो ।

(2) समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि सम महात्मभिः (1/5) - नीचों की संगति की अपेक्षा बड़े लोगों से विरोध कहीं अच्छा है क्योंकि उससे ऐश्वर्य की सिद्धि होती है ।

(3) अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (1/23)- बलवान् व्यक्तियों से विरोध करने पर अंत तो कष्टकर होगा ही ।

(4) वसन्ति हि प्रेमिण गुणा न वस्तुनि (8/39) प्रेम में गुण बसते हैं, किसी भौतिक पदार्थ में नहीं ।

(5) आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (11/12)-इन्द्रियों के विषय तो अपनी प्राप्ति के ही समय अच्छे लगते हैं, अन्तिमावस्था में वे सन्ताप ही देते हैं ।

(6) सुलभा रम्याता लोको दुर्लभं हि गुणार्जनम् (11/11)- संसार में सौन्दर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है, किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है ।

(7) सहसा विधदीत न क्रियाम् (2/30) - बिना विचारे अर्थात् अकस्मात् कोई काम नहीं करना चाहिए ।

(8) अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात्प्रह्लादते मनः (11/8) अपने बान्धव को कोई न भी पहचान पाये, तथापि उसे देखकरा मन में प्रबल हर्षोद्रेक होता ही है ।

(9) दुरधिगमा हि गतिः प्रयोजनानाम् (10/40) किसी उद्देश्य का अंतिम परिणाम क्या होगा, यह जानना कठिन है ।

(10) आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः (9/64-) सभी लोग अपने वर्ग का हित चाहते हैं ।

(11) यथोलारेच्छा कि गुणेषु कामिनः (8/4)-कामी जन सर्वदा गुणों की क्रमशः अधिकता की खोज करते रहते हैं। (उपस्थित गुणों से संतुष्ट नहीं होते) ।

(12) मात्सर्यरागोपहतामनां हि स्वलन्ति साधुश्चपि मानसानि । (3/53)-ईर्ष्याग्रस्त व्यक्तियों के चित्त सज्जनों के प्रति भी द्वेष-युक्त ही रहते हैं ।

(13) वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः (9/16) सभी लोग निरापद स्थान पर चाहते हैं भारवि राजनीति के विशिष्ट ज्ञाता हैं। इसलिए तद्विषयक सूक्तियाँ भी उन्होंने अनेकानेक दी हैं । जैसे- प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः (3/17 युद्ध में विजय की प्राप्ति पराक्रम पर ही आश्रित होती है), तेजोविहीनं विजहाति दर्पः (17/16 निस्तेज के पास स्वाभाविकता कहाँ से होगी ?), अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः (1/33 क्रोध-शून्य व्यक्ति का न मित्र ही आदर करता है और न शत्रु ही उससे डरता है), ब्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः (1/30 वे मूर्ख अवश्य ही पराजय पाते हैं जो मायावियों के प्रति माया का प्रयोग नहीं करते), प्रकृतिः खुल सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया 2/21 बड़े लोगों का यह स्वभाव है जिसके कारण वे दूसरों के अभ्युदय को सह नहीं पाते) ।

किरातार्जुनीयम् के द्वितीय सर्ग में नीति से पूर्ण अनेक पद्य हैं जैसे-ननु वक्तृविशेषनिः स्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः (2/5) अर्थात् विद्वान् लोग किसी की वाणी के गुणों का ग्रहण करते हैं, वे यह नहीं देखते कि यह किस वक्ता की वाणी है (स्त्री की बात है या पुरुष की)। अर्थगौरव से सम्पन्न यह पद्य बहुधा उद्धृत किया जाता है -

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।

स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः। (किरात० 2/3)

नीतिशास्त्र बहुत दुर्गम है, फिर भी इसमें लोग प्रवेश करते ही हैं क्योंकि इसमें प्रवेश करने के लिए गुरुओं ने मार्ग बनाये हैं जलाशय में प्रवेश करने के लिए सोपान बना दिये जाने पर सभी लोगों का अवगाहन सरल हो जाता है जैसे ही भयावह नीतिशास्त्र की स्थिति है किन्तु वह व्यक्ति दुर्लभ होता है जो कृत्य (नीतिशास्त्र पक्ष में-करने योग्य कार्य, जलाशय पक्ष में-स्नानादि) के लिए उचित मार्ग बताये। नीतिक्षेत्र में उस व्यक्ति का महत्व है जो समय पर कर्तव्य के विषय में सही परामर्श दे। जलाशय के पक्ष में वह व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है जो जलाशय में सोपान बना दे, स्नान करने वाले तो अनेक होंगे।

बोध प्रश्न -

1. भारवि का समय मुख्यतः प्रमाणों पर आधारित है -

क. अन्तरंग ख. बहिरंग ग. अन्तरंग व बहिरंग घ . साक्ष्य

2. अवंतिसुन्दरी कथा के रचनाका हैं -

क. दण्डी ख. भारवि ग. बाण घ . माघ

3. रिक्तस्थान की पूर्ति कीजिए -

अ. भारवि का समय के बीच माना गया है।

ब. किरातार्जुनीयम् विभक्त है।

4. सही या गलत का निशान लगायें -

अ. दण्डी भारवि के पुत्र थे ()

ब . भारवि का एक नाम दामोदर था ()

1.4 महाकाव्य के रूप में किरातार्जुनीयम्

भारवी का केवल एकमात्र 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य ही उपलब्ध है और कुछ विचारकों का तो कहना है कि संस्कृत के महाकाव्यों में किरातार्जुनीयम् सर्वप्रथम है, जो तत्कालीन महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा की कसौटी पर अधिक से अधिक खरा उतरा है। इसी कारण महाकाव्यों की श्रेणी में यह महाकाव्य सर्वोपरि प्रतिष्ठित है। हम 'किरातार्जुनीयम्' को एकदम यह स्थान प्रदान करें या न करें, पर इतना तो अवश्य है कि इस महाकाव्य ने अपनी प्रशंसित गुणों के कारण संस्कृतसाहित्य में विशिष्टस्थान प्राप्त किया है। और संस्कृतमहाकाव्य की वृहत्त्रयी (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम्) में इसका प्रमुख स्थान है तथा समस्त संस्कृत साहित्य में किरातार्जुनीयम् के समान दूसरा कोई ऐसा ओजपूर्ण तथा उग्र काव्य नहीं मिल सकेगा। आगे इसके महाकाव्यत्व के रूप को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।

1.4.1 महाकाव्य का लक्षण

काव्य शास्त्र में रस सम्प्रदाय के आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्य दर्पण में महाकाव्य के स्वरूप तथा गुण-दोषों का शुद्ध वर्णन किया गया है जिसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं:-

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
 सद्वंशः क्षत्रियों वाऽपिधीरोदात्तगुणान्वितः ॥
 एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा ।
 श्रृंगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इश्यते ॥
 अङ्गानि, सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः ।
 इतिासोद्धवं वृत्तमन्यद्वा सदाश्रयम् ॥
 चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फल भवेत् ।
 आदौ नामस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
 क्वचिद् निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
 एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ॥
 नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
 नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥
 सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायां सूचनं भवेत् ।
 सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः
 प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः ।
 सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वराः ॥
 रणप्रयाणो पयममन्त्र पुत्रोदयादयः ।
 वर्णननीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ॥
 कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्ये तरस्य वा ।
 नामास्य सर्गो पादेयकथया सर्गनाम तु ॥

अब इसका हिन्दी रूपान्तरण देखिए । सर्वप्रथम महाकाव्य सर्गों में विभक्त होता है । नायक कोई देवता होता है या उच्च वंशोत्पन्न क्षत्रिय होता है । वह धीरोदात्त प्रकृति का नायक होता है । एक वंश के कई राजा भी किसी एक महाकाव्य के नायक हो सकते हैं । प्रधान रस श्रृंगार वीर या शान्त होता है और अन्य रस उसके सहायक होते हैं । कथावस्तु नाटक के समान होती है । वह ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन के सत्कर्म से सम्बन्धित हो सकती है । नाटक में वर्णित सभी संधियों भी महाकाव्य में होती हैं । पुरुषार्थ - चतुष्टय का वर्णन महान काव्यों में किया जाता है और उन चारों पुरुषार्थों में किसी एक पुरुषार्थ की प्राप्ति का लक्ष्य होता है । उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन प्रधान होता है । महाकाव्य के आरम्भ में त्रिविध मंगलाचरणों में से एक होना चाहिए । वर्ण्य विषय में कहीं दुर्जनों की निन्दा तो कहीं सज्जनों के गुणों की प्रशंसा । सन्ध्या ,सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, गोधूलि, दिन, अन्धकार, प्रेमियों का मिलन और वियोग, आखेट, ऋषि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, आक्रमण, विवाह, उपदेश, पुत्रजन्म आदि सभी प्रकार के वर्णन महाकाव्य में होते हैं । छन्द एक सर्ग में एक ही होता है । सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया जाता है । कभी 7 कभी एक ही सर्ग में अनेक छन्द भी द्रष्टव्य होते हैं । महाकाव्य में सर्गों की संख्या आठ से अधिक अथवा कम से कम आठ होनी चाहिए । ये सर्ग न तो बहुत छोटे हो और नहीं

बहुत बड़े सर्ग के अन्त में आगे आने वाली कथा की सूचना होती है। महाकाव्य का नामकरण कवि वर्ण्य विषय नायक या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर होता है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसके अन्तर्गत वर्णित विषय के आधार पर होता है।

1.4.2 किरातार्जुनीयम् का महाकाव्यत्व

महाकाव्य के पूर्वोक्त सभी लक्षण भारवि की रचना किरातार्जुनीयम् में मिलते हैं। नायक उच्च क्षत्रिय कुल में उत्पन्न अर्जुन है। अर्जुन धीरोदात्त नायक की कोटि में आते हैं। जैसा की दशरूपककार धीरोदात्त नायक का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि-

महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावान विकथनः।

स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥

अर्जुन शोक-क्रोध आदि से अभिभूत नहीं होते अति गम्भीर है, अनात्मश्लाघी है, स्थिर है, उनका अहंकार नियम से आच्छन्न है। तथा वे प्रतिभा से परिपूर्ण नायक है तथा अपने व्रत और वचन पर दृढ़ रहते हैं। इस महाकाव्य में प्रमुख रस वीर रस है तथा अपने कौशल से भारवि ने शृंगारादि रसों को बड़ी ही कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है कथानक इतिहास अर्थात् महाभारत से लिया गया है। धर्म अर्थ काम और मोक्ष सभी पुरुषार्थों का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। किन्तु उनमें एक पुरुषार्थ अर्थ अर्जुन द्वारा शस्त्र प्राप्ति प्रमुख है। महाकाव्य के आरम्भ में 'श्री' शब्द का प्रयोग करके मंगल भी किया गया है और कथानक का निर्देश भी किया है।

श्रियः कुरुणामधिपस्य पालनीम्

प्रजासु वृत्तिं यमयुक्त वेदितुम्।

स वर्णिलिङ्गी विहीतः समाययौ

युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः॥

वनेचर के उल्लेख से आगे किरातरूप में उपस्थित होने वाले शिव का भी संकेत कर दिया गया है। स्थान-स्थान पर दुष्टों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा की गई है। जैसे प्रथम सर्ग में ही दुर्योधन के उत्तम नीतिका वर्णन करने के बावजूद खल के रूप में उसकी निन्दा भी की गई है। - विसृजमानो दुरोदरक्षचमधितां तथापि जिह्वा। कथाप्रसंगेन तथासु कर्तुं, भवन्ति माया विषु येन मायिनः॥ आदि में उसकी कुशलता का वर्णन भी किया गया है। तथा एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। जैसे प्रथम सर्ग में वंशस्थ छन्द किन्तु महाकाव्य के लक्षण का पालन करते हुए अन्त में छन्द बदल गया है। प्रथम सर्ग के अन्तिम दो छन्द मालिनी और पुष्पिताग्रा छन्द हैं।

विधि समय नियोगादीप्ति संहार जिह्वम्

शिथिल वसुमगाधे मग्न मापत्ययोधौ।

रिपु तिमिर मुदस्यो दियमानं दिनादौ

दिनकृत मिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः।

सर्गों की लम्बाई न बहुत छोटी है और न बहुत लम्बी इस महाकाव्य में सबसे छोटा सर्ग चौथा सर्ग जो अड़तीस श्लोको का तथा सबसे लम्बा सर्ग एकादश-एक्यासी श्लोकों का है यह भी महाकाव्य के लक्षण के अनुरूप ही है। सर्गों की संख्या अठारह है जबकि महाकाव्य में आठ

से अधिक माना गया है। सर्गों के अन्त में आगे में आने वाले सर्ग की कथावस्तु का भी संकेत किया गया है। लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः से आगे की घटना का संकेत है। जहाँ तक वर्ण्य विषय का प्रश्न है सभी प्रकार का वर्णन जो महाकाव्य में होने चाहिए किरातार्जुनीय में पूरी तरह से वर्णित है। चौथे सर्ग में हिमालय का तथा ऋतुओं का पूरी तरिके से वर्णन मिलता है यह वर्णन पाचवे और छठवें सर्ग में इन्द्र और स्वर्ग का वर्णन है। नवें सर्ग में संध्या रात्री चन्द्रोदय और प्रभात का भी मनोहारी और विस्तृत चित्रण है। सातवे से लेकर दसवें सर्ग तक अप्सराओं का और उनकी काम चेष्टओं एवं संभोग श्रृंगार का वर्णन है। अर्जुन और किरातवेशधारी शिव के युद्ध का वर्णन पन्द्रहवें से अन्तिम सर्ग तक किया गया है। पन्द्रहवें सर्ग में शूकर का वर्णन मिलता है। मुनियों का भी वर्णन है तथा युद्ध के लिये शिव के सेना सहित रण-प्रयाण का वर्णन बड़ी विस्तार किया गया है। इस प्रकार वर्ण्य-विषय की दृष्टि से भी किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के सभी लक्षणों का पूरी तरह चरितार्थ करता है।

काव्य का नामकरण इसके नायक अर्जुन तथा किरातवेश धारी शिव के युद्ध की घटना के आधार पर किया गया है। प्रथम पद्य में ही किरात का उल्लेख है और अन्तिम पद्य में भी शिव किरात के रूपमें दिखाई देते हैं। इस प्रकार महाकाव्य का नामकरण भी उचित है। सच तो यह है कि इस महाकाव्य को आदर्श मानकर ही बाद के कवियों अपने महाकाव्यों की रचना की है तथा माघ ने शिशुपालवध की और श्री हर्ष ने 'नैषधीयचरितम्' की रचना की।

बोध प्रश्न 2 -

अ . किरातवेशधारी हैं -

क. अर्जुन ख . शिव ग. युधिष्ठिर घ. कृष्ण

ब. महाकाव्य किसमें निबद्ध होता है -

क. सर्गों में ख . निःश्वासों में ग. उल्लासों में घ. अंकों में

रिक्त स्थानों को भरिए -

स. अंगानि सर्वे नाटक सन्धयः ।

द . एकवृत्तमयैः अन्यवृत्तकैः ।

सही गलत का निशान लगाएं -

य . अर्जुन धीरोदात्त कोटि के नायक हैं ()

व. किरातार्जुनीयम् वृहत्रयी की कोटि में आता है ()

1.5 सारांश

कालिदास द्वारा रचित रघुवंश महाकाव्य के रचना के उपरान्त किसी कवि में यह भाव शायद उत्पन्न भी नहीं हो रहा कि काव्य सृजन करें। परन्तु मध्यकाल में पुनः महाकवि भारवि ने जिस रूप में किरातार्जुनीयम् की रचना की वह अप्रतिम है। जिसमें पाण्डित्य-प्रदर्शन और कृतिम अलंकार-सन्निवेश प्रधान हो गया और प्रतिमा-समस्त काव्य की स्वाभाविक गौड़ हों गयी। उनके द्वारा उस पाण्डित्यपूर्ण शैली का प्रवर्तन किया गया जिसकी छटा कहीं न कहीं बाद के कवियों में यत्र-तत्र दृष्टव्य हो ही जाते हैं। इस इकाई के माध्यम से महाकवि भारवि के जीवन

तथा उनके कृतित्व - किरातार्जुनीयम् पर यथासम्भव प्रकाश डाला गया है जिसकी सहायता से आप कवि तथा कविकीर्ति का पूर्ण अध्ययन बड़ी ही सुगमता पूर्वक कर सकेंगे, तथा कवि विषयक अनेक समस्याओं का समाधान कर सकेंगे।

1.6 शब्दावली

भारक्रान्त -	भार से आक्रान्त
उच्चवंशोत्पन्न -	उच्चवंश में उत्पन्न
अनात्मश्लाघी -	आत्मश्लाघा से परे
आदिमध्यावसान -	पूर्व मध्य तथा अन्त
अल्पसमासता -	समास का कम प्रयोग
वैदूष्य -	विद्वता
वैविध्य -	विविधता

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

- 1 (अ) घ (ब) क (स) 550 से 620 ई0 द. सर्गों में य. (गलत)
व. (सही)
- 2 . अ . ख ब. क स. सर्वेपि रसाः द. पद्यैरवसाने
य.सही व . सही

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- | | |
|----------------------------|---------------------------|
| 1. डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' | संस्कृत साहित्य का इतिहास |
| 2. आचार्य बलदेव उपाध्याय | संस्कृत साहित्य का इतिहास |
| 3. आचार्य विश्वनाथ | साहित्य दर्पण |

1.9 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

- | | |
|-------------------------|---------------------------------------|
| 1. आचार्य धनंजय | दशरूपक |
| 2. महाकवि भारवि | किरातार्जुनीयम् |
| 3. डा० कपिलदेव द्विवेदी | संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास |

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महाकवि भारवि का काल निर्धारण करते हुए उनके जीवन पर प्रकाश डालिए।
2. सिद्ध कीजिए की-किरातार्जुनीयम् एक महाकाव्य है।

इकाई 2. किरातार्जुनीयम् - श्लोक संख्या 1 से 15 तक

इकाई की रूपरेखा

- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 उद्देश्य
- 2.3 किरातार्जुनीयम् श्लोक संख्या 1 से 15 तक
 - 2.3.1 काव्य एवं वनेचर के कथन का उपक्रम
 - 2.3.2 वनेचर की उक्ति
 - 2.3.3 दुर्योधन की नीति का वर्णन
 - 2.3.4 सेवकादि के प्रति व्यवहार
 - 2.3.5 त्रिवर्ण का वर्णन
 - 2.3.6 उपाय चतुष्टय का वर्णन
- 2.4 सारांश
- 2.5 शब्दावली
- 2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 2.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें
- 2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

वेद व्यास द्वारा रचित महाकाव्य महाभारत से सम्बन्धित एक कथा को एक महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करना और वो भी संस्कृत साहित्य के वृहद्त्रयी के अन्तर्गत स्थान पाना उनमें भी सर्वश्रेष्ठ स्थान, महाकवि भारवि की ज्ञान - गरिमा को एक प्रतिष्ठित स्थान देता है। भारवि द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् महाभारत के वनपर्व के अर्जुनाभिगमन नामक खण्ड और उसी पर्व के कैरात पर्व से ली गई है। यद्यपि महाभारत की कथा का वर्णन ही यह महाकाव्य करता है। परन्तु कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा से बहुत कुछ परिवर्तन एक बहुत सी सामग्रीयों को जोड़ने का सफल प्रयास किया है और मूल कथा से कहीं भी अलग न हटते हुए अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन किया है। इस इकाई में कवि ने वनेचर के द्वारा अपने कार्य सम्पादन में लगे हुए गुप्तचर के गुण दोषों तथा कार्य में लगाये गये वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त कर राजा को अक्षरशः बताने का वर्णन किया गया है।

इस इकाई के माध्यम से प्रथम सर्ग के अन्तर्गत वनेचर के आगमन का एक कुशल राजा द्वारा अपने गुप्तचर की वार्ता को सुनने के लिए प्रेरित करना तदुपरान्त वनेचर द्वारा दुर्योधन के राज्य कौशल सम्बन्धी विभिन्न स्वरूपों का निर्धारण किया गया है। भारवि ने एक राज्य में अपने राजस्व को स्थापित करने के लिये दुर्योधन द्वारा किये गये समस्त उपायों को बड़ी ही गम्भीरता और सावधानी के साथ वनेचर के द्वारा प्रस्तुत कराया है जिसके मूल स्वरूप का आप अपने ज्ञान चक्षु के द्वारा अपनी प्रतिभा को और ऊपर ले जा सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

- भारवि द्वारा रचित किरातार्जुनीयम् के वर्ण्य विषय से अवगत हो सकेंगे।
- इस इकाई के माध्यम एक कुशल गुप्तचर के कर्तव्यों को समझा सकेंगे।
- इस इकाई के माध्यम से एक कुशल शासक के व्यवहार से परिचित हो सकेंगे।
- इस इकाई की सहायता से वनेचर द्वारा कथित बातों की व्याख्या कर सकेंगे।

2.3 किरातार्जुनीयम् - श्लोक संख्या 1 से 15 तक

2.3.1 काव्य एवं वनेचर के कथन का उपक्रम

भारवि ने अपने ग्रन्थ का शुभारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण के साथ श्री शब्द से किया है। श्री शब्द मंगल का सूचक है। जो कि काव्य को सुखान्त तक पहुँचाने के लिए किया जाता है। तथा वनेचर द्वारा आगमन में कथा का मूल उपक्रम है। जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं
प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम् ।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ॥ 1 ॥

अन्वय- कुरूणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीं प्रजासु वृत्तिं वेदितुं यं (वनेचरं युधिष्ठिरः) अयुङ्क्त।
वर्णिलिङ्गी सः वनेचरः विदितः द्वैतवने युधिष्ठिरं समाययौ।

हिन्दी अनुवाद - कुरुदेश के राजा (दुर्योधन) के, राज्यलक्ष्मी का पालन करने वाले, प्रजाविषयक व्यवहार को जानने के लिए (युधिष्ठिर ने) जिसे नियुक्त किया था, ब्रह्मचारीवेशधारी वह वनेचर समस्त वृत्तान्त जानकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आया।

व्याख्या - दुर्योधन से द्यूत में पराजित होकर युधिष्ठिर द्वैतवन में वनवास का समय व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने एक किरात (वनेचर) को यह पता लगाने का कार्य सौंपा है कि प्रजा के साथ दुर्योधन कैसा व्यवहार कर रहा है ? और उसके प्रति प्रजा की क्या धारणा है ? किरात ब्रह्मचारी के वेश में गुप्त रूप में सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर वापस आता है और युधिष्ठिर से निवेदन करने के लिए उनके पास जाता है।

टिप्पणी - इस श्लोक के चतुर्थ चरण में 'वने वनेचरः' में छेकानुप्रास अलङ्कार है। वंशस्थ छन्द है। वंशस्थ का लक्षण है- 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' अर्थात् जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रम से जगण, तगण, जगण और रगण हों उसे वंशस्थ कहते हैं।

शब्द-रचना - कुरूणाम्- यहाँ 'कुरु' शब्द कुरुदेश का वाचक है। वेदितुम्- विद् + तुमुन्। अयुङ्क्त- युज् धातु, लङ्कार, प्रथम पुरुष, एक वचना। वर्णिलिङ्गी- वर्णी का अर्थ है- ब्रह्मचारी। लिङ्ग का अर्थ है चिह्न। लिङ्गी का अर्थ है चिह्नवाला। वर्णिनः लिङ्गं वर्णिलिङ्गम्, षष्ठी तत्पुरुष। विदितः- विद् धातु, कर्ता अर्थ में क्त प्रत्यय, इसका अर्थ है- विदितवान्, जानकर। वनेचरः- वने चरति इति वनेचरः- वने+चर् +ट। तत्पुरुष समास। युधिष्ठिरं- युधि स्थिरः युधिष्ठिरः तम्। तत्पुरुष समास।

टिप्पणी- महाकाव्य के लक्षण के अनुसार प्रथम सर्ग की कथा एक ही छन्द वंशस्थ में निबद्ध है। सर्ग के अन्त में 45वें और 46वें श्लोक में छन्द बदल दिए गए हैं। अतः 44वें श्लोक तक वंशस्थ छन्द की समझना चाहिए।

2.3.2 वनेचर की उक्ति

दूत का गुण है- अमौढयममान्धममृषाभाषित्वमव्युहकत्वं चेति चार गुणाः। इन गुणों से युक्त वनेचर अपने स्वामी के समक्ष उपस्थित होकर शब्द सौष्ठव तथा अर्थ गाम्भीर्य से युक्त वचन बोलना प्रारम्भ करता है।

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे

जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।

न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं

प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः॥ 2 ॥

अन्वय- कृतप्रणामस्य सपत्नेन जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य मनः न विव्यथे। हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुं न इच्छन्ति।

हिन्दी अनुवाद- प्रणाम करने के बाद, शत्रु द्वारा जीती गई पृथ्वी का वृत्तान्त राजा (युधिष्ठिर) से निवेदन करते समय उस (वनेचर) का मन व्यथित नहीं हुआ, क्योंकि हितैषी लोग असत्य प्रिय

बात नहीं कहना चाहते ।

व्याख्या- वनेचर शिष्टाचारस्वरूप सर्वप्रथम युधिष्ठिर को प्रणाम करता है। तत्पश्चात् राज्य के विषय में ज्ञात वृत्तान्त से उन्हें अवगत कराता है। यह राज्य ऐसा है, जो शत्रु द्वारा जीत लिया गया है। सर्वप्रथम दुर्योधन ने द्यूतक्रीडारूप कपट से राज्य प्राप्त किया और अब अपने व्यवहार से, नीति से प्रजा का सम्मान प्राप्त करने का प्रयास कर रहा है और सफल भी हो रहा है। इस प्रकार राज्य पर उसका वास्तविक अधिकार स्थापित हो रहा है। यद्यपि यह वृत्तान्त सत्य है, किन्तु युधिष्ठिर के लिए कटु भी हो सकता है। तो क्या वनेचर प्रिय लगने के लिए असत्य भाषण करे ? कवि का कथन है कि वह सत्य ही कहता है, भले ही वह कटु हो। इस कटु सत्य को कहने में उसे कोई पीड़ा नहीं होती, क्योंकि वह राजा युधिष्ठिर का कल्याण चाहता है। दवा कड़वी होती है, किन्तु स्वास्थ्यप्रद होती है। वास्तविक स्थिति का ज्ञान होने पर युधिष्ठिर उसके अनुरूप योजना बनायेंगे और सफल होंगे। केवल प्रिय लगने के लिए असत्य भाषण करने वाला शुभेच्छु नहीं हो सकता। वनेचर का कटु सत्य कथन-एक विशेष बात है और इसका समर्थन एक सामान्य तथ्य द्वारा किया गया है कि हितैषी जन असत्य प्रिय भाषण नहीं करते। अतः सामान्य से विशेष का समर्थन होने से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः' यह वाक्य सूक्ति है। सुन्दर कथन को सूक्ति या सुभाषित कहते हैं। सूक्तियाँ व्यापक लौकिक सत्य का उद्घाटन करती हैं।

शब्द रचना - कृतप्रणामस्य - कृतः प्रणामः येन सः कृतप्रणामः, तस्य कृतप्रणामस्य । बहुब्रीहि समासा। महीभुजे - महीं भुनक्ति इति महीभुक्, तस्मै। मही + भुज् + क्विप् । निवेदयिष्यतः - नि + विद् + णिच् + लृट् + शतृ । निवेदयिष्यत् का षष्ठी विभक्ति, एक वचन का यह रूप 'तस्य का विशेषण है। विव्यथे - व्यथ् धातु का लिट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन में रूप। हितैषिणः - हितम् इच्छन्ति इति हितैषिणः। हित + इष् + णिनि ।

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो

रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः ।

स सौष्ठवौदार्यविशेष शालिनीं

विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे ॥ 3॥

अन्वय- सः द्विषां विघाताय विधातुम् इच्छतः भूभृतः अनुज्ञाम् अधिगम्य रहसि सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थाम् इति वाचम् आददे ।

हिन्दी अनुवाद - वनेचर ने शत्रुओं के विनाश हेतु उद्योग करने की इच्छा वाले राजा (युधिष्ठिर) की अनुमति लेकर एकान्त में शब्दसौष्ठव और अर्थगाम्भीर्य से सुशोभित ऐसा (आगे कहा जाने वाला) वचन अपनाया (कहना आरम्भ किया) ।

व्याख्या- युधिष्ठिर अपने राज्य को पुनः प्राप्त करने के इच्छुक हैं। राज्य-प्राप्ति के लिए शत्रुओं का विनाश आवश्यक है। अतः शत्रु-विनाश हेतु कुछ उपाय करने की बात युधिष्ठिर सोच रहे हैं। इस दृष्टि से गुप्तचर द्वारा एकत्र सूचना महत्वपूर्ण है। अतः उनकी अनुमति लेकर वनेचर एकान्त में सुन्दर शब्दों में गरिमा - मण्डित प्रामाणिक बात कहता है।

इस श्लोक में उल्लिखित 'इति' शब्द वनेचर के कथन का संकेत करता है। यह कथन आगे श्लोकों में वर्णित है। वनेचर के कथन की विशेषताओं के माध्यम से कवि ने भाषा-शैली के प्रति अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की है।

शब्द रचना - भूभूतः- भुवं विभर्ति इति भूभूत्, तस्य । भू + भृ + क्विप् । षष्ठी विभक्ति, एक वचन । सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम् - सुष्ठुःइति अस्य भावः सौष्ठवम् (सुष्ठु + अञ्) । उदारस्य भावः औदार्यम् (उदार + ष्यञ्) सौष्ठवंच औदार्यञ्च सौष्ठवौदार्ये (इतरेतरद्वन्द्व समास), तयोः विशेषः सौष्ठवौदार्यविशेषः (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेन शालते शोभते इति सौष्ठवौदार्य विशेष शालिनी, ताम् । विनिश्चितार्थाम् - विशेषेणः निश्चितः विनिश्चितः। प्रादि तत्पुरुष । विनिश्चितः अर्थः यस्याः सा, ताम् । बहुव्रीहि समास । आददे - आ + दा + लिट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन ॥ 3 ॥

क्रियासु युक्तैर्नृप चारचक्षुषो

न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।

अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ॥ 4 ॥

अन्वय- हे नृप! क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुषः प्रभवः न वंचनीयाः। अतः असाधु साधु वा क्षन्तुम् अर्हसि । हितं मनोहारि च वचः दुर्लभम् ।

हिन्दी अनुवाद - हे राजन्! कार्यों में लगाये गये सेवकों को चाहिए कि वे गुप्तचररूपी नेत्रवाले स्वामी को धोखा न दें। इसलिए प्रिय अथवा अप्रिय (जो कुछ मैं कहूँ, उसे) आप क्षमा करें। क्योंकि हितकर और मधुर (प्रिय लगने वाले) वचन दुर्लभ होते हैं ।

व्याख्या- दुर्योधन के उत्कर्षरूप कटु सत्य का निवेदन करने से पूर्व वनेचर युधिष्ठिर से क्षमा याचना करता है। युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए वह कहता है -

हे राजन्! राजा द्वारा विशेष कार्यों में लगाये गये सेवकों को चाहिए कि वे स्वामी को यथार्थ से अवगत करा दें। स्वामी को तात्कालिक तनाव से दूर रखने के लिए, चाटुकारिता की दृष्टि से या अन्य किसी कारण से स्वामी के सामने यथार्थ को, सत्यभूत अर्थ को छिपाने का अर्थ है- स्वामी को धोखा देना। क्योंकि राजा के नेत्र गुप्तचर ही होते हैं। गुप्तचरों के माध्यम से ही उसे राज्य के स्थिति, प्रजा की प्रतिक्रिया आदि का ज्ञान होता है। इसलिए अपने कर्तव्य के अनुरूप आपसे यथार्थ-निवेदन करूँगा। मेरी बात आपको प्रिय लगे या अप्रिय, मुझे क्षमा करें। संसार में कल्याणकारी और प्रिय वचन दुर्लभ होते हैं।

श्लोक के पूर्वाद्ध में गुप्तचर के कर्तव्य का निर्देश किया गया है। चतुर्थ चरण 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' सूक्ति है। साभिप्राय विशेषण के प्रयोग के कारण यहाँ परिकर अलङ्कार है। तृतीय चरण के विशेष अर्थ का चतुर्थ चरण के सामान्य अर्थ से समर्थन के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

शब्द रचना - चरन्ति इति चाराः। च् धातु से कर्ता अर्थ में अच् प्रत्यय करने पर 'चर' बनता है। 'चर' से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होकर 'चार' बनता है। 'चार' शब्द का बहुवचन है 'चाराः'।

चाराः एवं चक्षुषि येषां ते चारचक्षुषः। बहुब्रीहि समास। यह पद 'प्रभवः' का विशेषण है। अनुजीविभिः - अनुजीवितं शीलम् एषाम् इति अनुजीविनः, तैः। अनु + जीव + णिनि। अनुक्त कर्ता में तृतीया। मनोहारि - मनो हर्तुं शीलमस्य इति। उपपद तत्पुरुषा मनस् + ह + णिनि।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं

हितान्न यः संश्रुणुते स किंप्रभुः।

सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं

नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ॥ 5 ॥

अन्वय- यः अधिपं साधु न शास्ति सः किंसखा। यः हितात् न संश्रुणुते सः किंप्रभुः। हि नृपेषु अमात्येषु च अनुकूलेषु सर्वसम्पदः सदा रतिं कुर्वते।

हिन्दी अनुवाद- जो (परामर्श देने वाला) स्वामी को उचित परामर्श नहीं देता वह कुमित्र (बुरा मित्र) है, जो (स्वामी) हितैषी से (हितवचन) नहीं सुनता वह निन्दनीय स्वामी है। क्योंकि राजाओं और मन्त्रियों के एक मत रहने पर ही सभी समृद्धियाँ अनुराग करती हैं।

व्याख्या- पूर्व श्लोक में अपने कर्तव्य का निर्देश करने के बाद वनेचर इस श्लोक में यह कहना चाहता है कि आपको (युधिष्ठिर को) मेरी बात ध्यान से सुननी चाहिए। वह कहता है कि जो व्यक्ति अपने स्वामी को उचित परामर्श नहीं देता, वह सच्चा हितैषी नहीं है, और जो राजा या स्वामी अपने हितैषी की बात को ध्यान से नहीं सुनता, बात पर ध्यान नहीं देता वह राजा या स्वामी निन्दित स्वामी है। क्योंकि दोनों के परस्पर अनुरागयुक्त रहने से ही समृद्धि होती है। ऐसा न होने पर विनाश हो जाता है। अतः आपको मेरी बात ध्यान से सुननी चाहिए।

परामर्श-दाता मन्त्री तथा राजा की परस्पर विश्वसनीयता ही समृद्धि का कारण है- इस राजनीतिक तथा लोकोपयोगी तथ्यों का निरूपण इस श्लोक में किया गया है। पूर्वार्द्ध के अर्थसामर्थ्य से सिद्ध तथा निर्दिष्ट राजा और मन्त्री की विश्वसनीयता - रूप कारण का सर्वसम्पत्ति सिद्धि-रूप कार्य द्वारा समर्थन के कारण यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। श्लोक का पूर्वार्ध सूक्ति है।

शब्दरचना- किंसखा - कुत्सितः सखा किंसखा। कर्मधारय समास। किंप्रभुः - कुत्सितः प्रभुः किंप्रभुः। कर्मधारय समास। सर्वसम्पदः - सर्वाः सम्पदः सर्वसम्पदः। कर्मधारय। शास्ति - शास् धातु, लट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन। द्विकर्मकधातु। संश्रुणुते - सम् + श्रु + लट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन। 'सम्' उपसर्ग लगने से अकर्मक धातु। कुर्वते - कृ धातु का लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन आत्मनेपद का रूप।

2.3.3 दुर्योधन के नीति का वर्णन

सिंहासन पर आसीन होकर भी दुर्योधन पराजय की शंका करता हुआ उत्तम प्रजानीति द्वारा पृथ्वी के राज्य को अपने वश में करने के लिये किस प्रकार प्रयत्न कर रहा है इसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः

क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः।

तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया**निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम् ॥ 6 ॥**

अन्वय - निसर्गदुर्बोधं भूपतीनां चरितं क्व । (अन्यत्र) अबोधविकलवाः (मादृशाः) जन्तवः क्वा (तथापि) मया विद्विषाम् निगूढतत्त्वं नयवर्त्म यत् अवेदि अयम् तव अनुभावः।

हिन्दी अनुवाद - स्वभाव से ही दुर्बोध राजाओं का चरित्र कहाँ ? और अज्ञान से अभिभूत मेरे जैसा क्षुद्र प्राणी कहाँ ? फिर भी मैं शत्रुओं के गूढ रहस्यवाले नीतिमार्ग को जो जान सका हूँ, वह आप का ही प्रभाव है।

व्याख्या - वनेचर अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुए राजाओं के व्यवहार की रहस्यात्मकता और राजनीति की सूक्ष्मता पर प्रकाश डालता है। राजाओं का व्यवहार रहस्यात्मक होता है। उसे समझ पाना सामान्य जन के वश की बात नहीं है। किस दृष्टि से कौन सा कार्य हो रहा है, इसका परिणाम क्या होगा, यह समझना कठिन होता है। सफल राजा अपनी चेष्टाओं से कार्यो का, उद्देश्यों का पता नहीं लगने देता। राजकार्य की सफलता गोपनीयता पर निर्भर रहती है। वनेचर कहता है कि मेरे पास इतनी बुद्धि कहाँ है कि राजनीति की गम्भीरता को समझ सकूँ। तथापि मैंने जो समझा है, वह आप की कृपा से ही सम्भव हो सका है। राजाओं के रहस्यात्मक चरित्र और सामान्य व्यक्ति की अज्ञानता में परस्पर विषमता का निरूपण किया गया है, अतः विषम अलंकार है।

शब्दरचना- निसर्गदुर्बोधम् - निसृज्यते इति निसर्गः, दुःखेन कुमते इति दुर्बोधम्, निसर्गेण दुर्बोधम् निगर्सदुर्बोधम् । तृतीया तत्पुरुष समासा 'चरितम्' का विशेषण है। भूपतीनाम् - भुवः पतिः भूपतिः, तेषाम् । षष्ठी तत्पुरुष समासा। अबोधविकलवाः - न बोधः अबोधः। नञ् तत्पुरुष । अबोधेन विकलवाः अबोधविकलवाः। तृतीया तत्पुरुष । निगूढतत्त्वम् - नितराम् गूढं तत्त्वं यस्य तत् निगूढतत्त्वम् । बहुब्रीहि । नयस्य वर्त्म नयवर्त्म । षष्ठी तत्पुरुष । अवेदि - विद् धातु लुङ् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन, कर्मवाच्य ।

विशंकमानो भवतः पराभवं**नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः ।****दुरोदरच्छद्मजितां समीहते****नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ॥ 7 ॥**

अन्वय- नृपासनस्थः अपि सुयोधनः वनाधिवासिनः भवतः पराभवं विशङ्कमानः दुरोदरच्छद्मजितां नयेन जेतुं समीहते ।

हिन्दी अनुवाद- सिंहासन पर आरूढ रहता हुआ भी दुर्योधन, वनवासी आप (युधिष्ठिर) से पराजय की आशंका करता हुआ, द्यूत के व्याज से जीती गई पृथ्वी को नीति से वश में करने की चेष्टा कर रहा है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन राजगद्दी पर बैठा हुआ है, साधनसम्पन्न है, फिर भी जंगल में रहने वाले साधनविहीन आप से पराजय की शंका करता रहता है। इसीलिए प्रजा का मन जीतने के लिए, प्रजा को अपने पक्ष में करने के लिए, नीति का आश्रय ले रहा है। उसने द्यूत

के माध्यम से राज्य प्राप्त किया है, वास्तव में उसके पास कोई जनाधार नहीं है। उसके प्रशासन का मूल प्रजा में नहीं है। अपनी इस दुर्बलता को वह जानता है। इसीलिए लोकप्रियता अर्जित करने का प्रयास कर रहा है।

यहाँ 'पृथ्वी को नीति से वश में करने' के कारण स्वरूप 'दुरोदरच्छद्मजिताम्' का कथन हुआ है। अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है।

शब्दरचना- नृपासनस्थः - नृपस्य आसनम् नृपासनम् । षष्ठी तत्पुरुष । नृपासने तिष्ठति इति नृपासनस्थः। उपपद तत्पुरुष । नृपासन + स्था + क । वनाधिवासिनः - वनम् अधिवसति । इति वनाधिवासी, तस्मात् । उपपद तत्पुरुष । वन + अधि + वस् + णिनि । सुयोधनः - सुखेन युध्यते इति सुयोधनः। सु + युध् + युच् । उपपद तत्पुरुष । विशङ्कमानः - वि + शङ्क + शानच् । समीहते - सम् + ईह् । लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

तथापि जिह्वाः स भवज्जिगीषया

तनोति शुभ्रं गुण सम्पदा यशः।

समुन्नयन्भूतिमनार्यसङ्गमाद्

वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः॥ 8॥

अन्वय- तथापि जिह्वाः सः भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रं यशः तनोति। भूतिं समुन्नयन् महात्मभिः समं विरोधः अपि अनार्यसङ्गमात् वरम् ।

हिन्दी अनुवाद- इस रूप में भी (सशङ्कित और नीतिपरायण रहता हुआ भी) कुटिल वह (दुर्योधन) आपको जीतने की इच्छा से गुणसमृद्धि द्वारा निर्मल यश फैला रहा है । ऐश्वर्यवृद्धिकारक महात्माओं के साथ विरोध भी दुर्जनों के साथ की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन आप से (युधिष्ठिर से) भयभीत रहता है। अतः लोकप्रिय बनने के लिए नीति का आश्रय ले रहा है। यद्यपि वह स्वाभाविक रूप से कुटिल है, किन्तु आप से प्रतिस्पर्धा रखने के कारण आपकी अपेक्षा स्वयं को उत्कृष्ट बनाने की इच्छा से गुणों द्वारा कीर्ति अर्जित कर रहा है। दुर्जनों की मित्रता की अपेक्षा महात्माओं के साथ शत्रुता भी श्रेयस्कर है। महापुरुष से विरोध होने पर उन्हें नीचा दिखाने के लिए गुणों का आश्रय लेना पड़ेगा। अतः व्यक्ति का उत्कर्ष ही होगा।

यहाँ 'ऐश्वर्य में वृद्धि करना' महात्माओं के साथ विरोध की श्रेष्ठता का कारण है। अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है और महात्माओं के साथ विरोध की श्रेष्ठता द्वारा 'दुर्योधन द्वारा कीर्ति-अर्जन' का समर्थन किया गया। अतः काव्यलिङ्ग से अनुप्राणित अर्थान्तरन्यास अलंकार है। श्लोक का चतुर्थ चरण सूक्ति है।

शब्दरचना- भवज्जिगीषया - जेतुमिच्छा जिगीषा, भवतः जिगीषा भवज्जिगीषा। षष्ठी तत्पुरुष। तथा, हेतु अर्थ में तृतीया । अनार्यसङ्गमात् - न आर्याः अनार्याः। नञ् तत्पुरुष । अनार्याणां सङ्गमः अनार्यसङ्गमः, तस्मात् षष्ठी तत्पुरुष। महात्मभिः - महान् आत्मा येषां ते महात्मानः तैः। बहुव्रीहि । समुन्नयन् - सम् + उत् + नी + शतृ । तनोति - तन् धातु, लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन ।

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवी-**मगम्यरूपां पदवीं प्रपित्सुना।****विभज्य नक्तन्दिवमस्ततन्द्रिणा****वितन्यते तेन नयेन पौरुषम् ॥ 9॥**

अन्वय- कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपां मानवीं पदवीं प्रपित्सुना अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तन्दिवं विभज्य, नयेन पौरुषं वितन्यते ।

अनुवाद- षड्विध शत्रुसमुदाय पर विजय प्राप्त कर, मनु द्वारा निर्दिष्ट दुर्गम मार्ग को प्राप्त करने की इच्छा से, आलस्य का त्याग कर वह (दुर्योधन) रात-दिन का विभाजन करके पुरुषार्थ का नीतिपूर्वक विस्तार कर रहा है।

व्याख्या- दुर्योधन मनुष्य के छः शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य पर विजय प्राप्त कर चुका है। मनु द्वारा प्रतिपादित प्रजापालन की दुर्गम नीति का अनुसरण करना चाहता है। वह आलस्य त्याग कर उचित समय पर कर्तव्य का अनुसरण करता हुआ पुरुषार्थ-सिद्धि में लगा हुआ है। अतः उसको पराजित करना सरल नहीं है।

श्लोक के द्वितीय चरण में 'प' तथा चतुर्थ में 'त' और 'न' की असकृत् अर्थात् बार - बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास है।

शब्दरचना- कृतारिषड्वर्गजयेन - षण्णां वर्गः षड्वर्गः। षष्ठी तत्पुरुष । अरीणां षड्वर्गः अरिषड्वर्गः। षष्ठी तत्पुरुष । कृतः अरिषड्वर्गस्य जयः येन सः कृतारिषड्वर्गजयः तेना बहुव्रीहि। अगम्यरूपां - न गम्यं रूपं यस्याः सा अगम्यरूपां, ताम्। बहुव्रीहि । नक्तन्दिवं - नक्तं च दिवा च नक्तन्दिवम् । द्वन्द्व समास । अस्ततन्द्रिणा - अस्ता तन्द्रिः यस्य सः तेना बहुव्रीहि । पौरुषम् - पुरुषस्य कर्म पौरुषम् । पुरुष + अण् । विभज्य - वि + भज् + क्त्वा (ल्यप्)।

टिप्पणी- मनुस्मृति में वर्णाश्रम - धर्म का सविस्तर प्रतिपादन है। ग्रन्थ का एक बड़ा अंश राजा के कर्तव्य, दण्डविधान आदि से परिपूर्ण है। इस मार्ग का अक्षरशः पालन दुष्कर कार्य है।

बोध प्रश्न 1 -**निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए**

क. श्रियः शब्द का क्या अर्थ है -

क. सरस्वती ख. लक्ष्मी ग. दुर्गा घ. वाग्देवी

ख. युधिष्ठिर के समक्ष गुप्त बातें बताता है

क. दुर्योधन ख. नारद ग. अर्जुन घ. वनेचर

रिक्त स्थान भरिए -

ग. युधिष्ठिर के दूत का नाम है।

घ. हितकारी और वचन दुर्लभ है।

सही और गलत के निशान लगाएं -

ड. दुर्योधन का मित्र वनेचर है। ()

च. राजाओं और मन्त्रियों के अनुकूल रहने पर सभी सम्पत्तियों अनुराग करती हैं। ()

2.3.4 सेवकादि के प्रति व्यवहार

दुर्योधन द्वारा अपने सेवकों आदि के सम्मानपूर्ण व्यवहार केवल दिखावटी नहीं अपितु हृदय से भली भाँति करता है। जिसके द्वारा वह अपने सेवकों के लिए प्रिय बन सके।

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः

समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।

स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः

कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम् ॥ 10 ॥

अन्वय- गतस्मयः सः अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीन् इव , सुहृदः बन्धुभिः समानमानान् , इव च, बन्धुतां कृताधिपत्याम् इव सन्ततं साधु दर्शयते।

हिन्दी अनुवाद- अहङ्कार रहित वह (दुर्योधन) बड़ी निपुणता से सेवकों को प्रिय मित्र जैसा, मित्रों को पारिवारिक व्यक्ति जैसा और पारिवारिक व्यक्तियों को राजा बनने जैसा बोध कराता है।

व्याख्या- दुर्योधन विनम्रभाव से कुशलतापूर्वक ऐसा व्यवहार करता है कि सेवक प्रिय मित्र लगते हैं अर्थात् सेवकों के साथ प्रियमित्र जैसा व्यवहार करता है। मित्रों के साथ पारिवारिक व्यक्ति जैसा व्यवहार करता है और पारिवारिक व्यक्तियों के साथ ऐसा व्यवहार करता है मानों वे स्वयं अधिपति हों। यहाँ छेकानुप्रास, उपमा तथा चतुर्थ चरण में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

शब्दरचना- गतस्मयः - गतः स्मयः यस्य सः। बहुव्रीहि समास। समानमानान् - समानं मानं येषां ते समानमानाः तान्। बहुव्रीहि। सुहृदः - शोभनं हृदयं येषां ते सुहृदः, तान्। बहुव्रीहि। बन्धुतां - बन्धूनां समूहो बन्धुता, ताम्। बन्धु + तल् + टाप्। कृताधिपत्यामिव - अधिपाति इति अधिपतिः। प्रादि तत्पुरुष। अधिपतेः भावः आधिपत्यम्। कृतम् आधिपत्यम् यस्याः सा कृताधिपत्या, ताम्। बहुव्रीहि।

2.3.5 त्रिवर्ग का वर्णन

दुर्योधन का सुखोपभोग धर्म के विपरीत नहीं है। और न ही अर्थ तथा काम। इन तीनों के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए वह त्रिवर्ण को बड़ी कुशलता के साथ अपनाता हुआ राज का भोग कर रहा है।

असक्तमाराधयतो यथायथं

विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।

गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्

न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम् ॥ 11॥

अन्वय - यथायथं विभज्य समपक्षपातया भक्त्या असक्तम् आराधयतः अस्य त्रिगणः गुणानुरागात् सख्यम् ईयिवान् इव परस्परं न बाधते।

अनुवाद - उचित विभाजन करके समान दृष्टि से श्रद्धापूर्वक निर्लेप भाव से सेवन करते हुए इस (दुर्योधन) के धर्म, अर्थ तथा काम गुणानुराग के कारण मानो मित्रता को प्राप्त हो गये हैं और परस्पर बाधा नहीं पहुँचाते।

व्याख्या- मानव -जीवन के लक्ष्य को चार भागों में विभक्त किया गया है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष , इन्हें पुरुषार्थ कहते हैं । इनमें से प्रथम तीन पुरुषार्थ लौकिक जीवन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है । जीवन में ऐसी अनेक परिस्थितियाँ आती हैं, जब यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि इसे किस रूप में देखा जाय ? धर्म के रूप में, अर्थ के रूप में या काम के रूप में ? इन तीनों को विभाजित करने वाली रेखा का निर्धारण कठिन कार्य है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य इनमें से किसी एक को अधिक महत्त्व देता है और दूसरे की उपेक्षा कर देता है। एक के प्रति उसकी अधिक आसक्ति हो जाती है । फलस्वरूप उसका जीवन असन्तुलित हो जाता है तो वह असफल हो जाता है । जीवन को सन्तुलित बनाए रखने के लिए, सफलता के लिए, जीवन के सभी पक्षों को उचित महत्त्व देना पड़ता है। दुर्योधन के जीवन में सन्तुलन है । वह धर्म, अर्थ, काम की सीमा का निर्धारण करके तीनों को समान महत्त्व देता है । अतः उसके जीवन में इन तीनों में परस्पर संघर्ष की स्थिति नहीं, अपितु समन्वय है । इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि लगता है कि दुर्योधन के गुणों से अनुराग होने के कारण इन्होंने परस्पर मित्रता स्थापित कर ली है। क्योंकि बिना मित्रता के एक आश्रय में रहना कठिन है ।

शब्दरचना- असक्तम् - न सक्तम् असक्तम् । नञ् तत्पुरुष । असक्तं यथा स्यात्तथा । क्रियाविशेषण । नञ् + सन्ञ् + क्त । समपक्षपातया - पक्षे पातः पक्षपातः। सुप्सुपा । समः पक्षपातः यस्यां सा समपक्षपाता, तया। बहुव्रीहि। गुणानुरागात् - गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः, तस्मात् । सप्तमी तत्पुरुष । त्रिगणः - त्रयाणां गणः त्रिगणः। षष्ठी तत्पुरुष । आराधयतः - आ + राध् + णिच् + शतृ । षष्ठी विभक्ति एक वचन । ईयिवान् - इ + लिट् + क्वसु, प्रथमा एकवचन ।

2.3.6 उपाय चतुष्टय का वर्णनः

साम, दान, दण्ड, भेद इन्हें उपाय चतुष्टय कहा गया है । अतः दुर्योधन भी इन उपायों को अपने राज्य विस्तार के लिये यथास्थानवत भाव के द्वारा प्रयोग करता रहता है ।

निरत्ययं साम न दानवर्जितं

न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम् ।

प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी

गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया ॥ 12॥

अन्वय- तस्य निरत्ययं साम दानवर्जितं न प्रवर्तते । (तस्य) भूरि दानं सत्क्रियां विरहय्य न (प्रवर्तते)। (तस्य) विशेषशालिनी सत्क्रिया गुणानुरोधेन विना न (प्रवर्तते) ।

हिन्दी अनुवाद- उस दुर्योधन की बाधा रहित सामनीति का प्रयोग धनदान के बिना नहीं होता, प्रभूत धनदान सत्कार - रहित नहीं होता और विशिष्ट सत्कार गुणानुबन्ध के बिना नहीं होता ।

व्याख्या- प्रस्तुत श्लोक में दुर्योधन की साम और दण्ड नीति का निरूपण करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन सामनीति का प्रयोग करता है, किन्तु उसके साथ धनदान भी करता है । केवल मधुर बात ही नहीं करता बल्कि उसके साथ धन देकर सामनीति को और पुष्ट कर देता है । दान भी यदि अनादरपूर्वक किया जाय तो, उस दान का कोई फल नहीं होता । अतः सम्मानपूर्वक

दान देता है। जिस किसी व्यक्ति का सम्मान करना भी अनुचित है। अतः वह गुणवानों का ही सत्कार करता है। इस प्रकार प्रशंसनीय बनने का पूर्ण प्रयास कर रहा है।

यहाँ पूर्व-पूर्व वाक्य के विशेषण के रूप में उत्तर - उत्तर वाक्य की स्थापना होने से एकावली अलङ्कार है।

शब्दरचना- निरत्ययं - निर्गतः अत्ययः यस्मादिति निरत्ययम् - निर् + अति + इ + अच् । बहुव्रीहि । दानवर्जितं - दानेन वर्जितं दानवर्जितम् । तृतीया तत्पुरुष । विशेषशालिनी - विशेषण शालते इति विशेषशालिनी । उपपद समास । गुणानुरोधेन - गुणानाम् अनुरोधः, तेन । षष्ठी तत्पुरुष । अनु + रुध् + घञ् । प्रवर्तते - प्र + वृत् + लट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन ।

वसूनि वाञ्छन् वशी न मन्युना

स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः ।

गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा

निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम् ॥ 13 ॥

अन्वय- वशी सः न वसूनि वाञ्छन्, न मन्युना (अपितु) निवृत्तकारणः स्वधर्मः इत्येव गुरूपदिष्टेन दण्डेन रिपौ वा सुतेऽपि धर्मविप्लवं निहन्ति ।

हिन्दी अनुवाद- जितेन्द्रिय वह दुर्योधन न तो धन के लाभ से, और न ही क्रोध के कारण, अपितु बिना किसी कारण के, 'मेरा धर्म है' ऐसा मानकर गुरुजनों द्वारा निर्दिष्ट (दण्ड-विधान के अनुरूप) दण्ड द्वारा शत्रु अथवा पुत्र द्वारा किये गए धर्मातिक्रमण को रोकता है ।

व्याख्या- दुर्योधन पूर्वाग्रह-मुक्त होकर केवल कर्तव्य-भावना से दण्डविधान के अनुरूप अपराधी को दण्ड देता है । दण्ड देते समय वह अपने और पराये का भेद नहीं करता। व्यक्ति की दृष्टि से दण्ड देने पर न्याय नहीं हो सकता, जिससे प्रजा राजा से खिन्न हो सकती है। दुर्योधन न्याय करता है। अतः इस विषय में प्रजा की खिन्नता का भी प्रश्न नहीं उठता ।

इस श्लोक में 'वसूनि वाञ्छन् वशी न मन्युना' इस अंश में व और न की असकृत् अर्थात् बार - बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास तथा धर्मविप्लव के निवारण में हेतुभूत स्वधर्म का कथन होने से काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।

शब्दरचना- वशी - वशः अस्ति अस्य इति। वश + इनि । वसूनि - वसु शब्द का द्वितीया विभक्ति बहुवचन का रूप है । वसु का अर्थ है धन । मन्युना - मन्यु शब्द का तृतीया एकवचन का रूप है । मन्यु का अर्थ है 'क्रोध'। निवृत्तकारणः - निवृत्तं कारणं यस्मात् सः। बहुव्रीहि समास । निवृत्तं + नि + वृत् + क्त । कारणम् - कृ + णिच् + ल्युट् । धर्मविप्लवम् - धर्मस्य विप्लवः धर्मविप्लवः तम्। षष्ठी तत्पुरुष । स्वधर्मः - स्वस्य धर्मः स्वधर्मः। षष्ठी तत्पुरुष । गुरूपदिष्टेन - गुरुभिः उपदिष्टः गुरूपदिष्टः तेन । तृतीया तत्पुरुष । निहन्ति - नि + हन् + लट्लकार, प्रथमपुरुष एकवचन ।

विधाय रक्षान् परितः परेतरा-

नशङ्किताकारमुपैति शङ्कितः।

क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः

कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः ॥ 14॥

अन्वय- शंकितः (सः) परितः परेतान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारम् उपैति। क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताः सम्पदः अस्य कृतज्ञतां वदन्ति।

हिन्दी अनुवाद- सशंकित होता हुआ वह (दुर्योधन) चारों ओर आत्मीयजनों को रक्षक नियुक्त करके निःशंक-सा हो जाता है। कार्य सम्पन्न हो जाने पर सेवकों को दी जाने वाली सम्पत्तियाँ इसकी कृतज्ञता प्रकट करती हैं।

व्याख्या- मनुष्य की विचारधारा विशेष परिस्थिति में बदल भी सकती है। कभी-कभी अपने भी पराये हो जाते हैं। इसीलिए शासक को किसी पर पूर्ण विश्वास नहीं करना चाहिए। किन्तु सब को सन्देह की दृष्टि से देखने पर विश्वसनीय भी अविश्वसनीय हो सकते हैं और धोखा दे सकते हैं। बुद्धिमान्नी यह है कि मन में सन्देह होते हुए भी उसे अपनी चेष्टा या व्यवहार द्वारा परिलक्षित न होने दें। दुर्योधन आत्मीयजनों को, विश्वसनीय लोगों को ही रक्षक नियुक्त करता है, किन्तु रक्षक नियुक्त करके भी उनकी गतिविधियों पर ध्यान रखता है। अपने व्यवहार से यह आभास नहीं होने देता कि वह शङ्का करता है। इसके अतिरिक्त यदि कोई सेवक निर्दिष्ट कार्य सम्पन्न कर देता है, तो उसे पारितोषिक देकर अपनी कृतज्ञता भी प्रदर्शित करता है।

इस श्लोक में र और त की बार - बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

शब्दरचना- परेतान् - परेभ्यः इतरे परेतरे तान् परेतान् । पन्चमी तत्पुरुष । रक्षान् - रक्षन्ति इति रक्षाः तान्। रक्ष् + अच्। विधाय - वि + धा + ल्यप्। अशङ्किताकारम् - शङ्का सन्जाता अस्य इति शङ्कितः। शङ्का + इतच्। न शङ्कितः अशंकितः। नञ् तत्पुरुष । अशंकितस्य आकारः अशंकितकारः तम् । षष्ठी तत्पुरुष । आकारः - आ + कृ + घञ् । क्रियापवर्गेषु - क्रियाणाम् अपवर्गाः क्रियापवर्गाः, तेषु । षष्ठी तत्पुरुष । अपवर्गः - अप + वृज् + णिच् + घञ् । अनु + जीविसात्कृताः - अनुजीविनां सात्कृताः इति अनुजीविसात्कृताः। अनुजीविन् + साति + कृ + टाप्। कृतज्ञताम् - कृतं जानाति इति कृतज्ञः, तस्य भावः कृतज्ञता, ताम्। कृत + ज्ञा + क = कृतज्ञः, कृतज्ञ + तल् + टाप्। उपैति - उप + इ + लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

अनारतं तेन पदेषु लम्बिता

विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः।

फलन्त्युपायाः परिवृंहितायती-

रूपेत्य सङ्घर्षमिवार्थसम्पदः ॥ 15॥

अन्वय- तेन पदेषु सम्यक् विभज्य विनियोगसत्क्रियाः लम्बिताः उपायाः सङ्घर्षम् उपेत्य इव परिवृंहितायतीः अर्थसम्पदः अनारतं फलन्ति ।

हिन्दी अनुवाद- उसके द्वारा (दुर्योधन द्वारा) उचित स्थानों पर भलीभाँति विभाजित करके विनियोगरूपी सत्कार को प्राप्त कराए गए (प्रयोग में लाए गए) साम, दान, दण्ड, भेद रूप उपाय (एक दूसरे से) मानो प्रतिस्पर्धा करते हुए उत्तरोत्तर वृद्धिकारिणी अर्थसम्पत्तियों को निरन्तर उत्पन्न करते रहते हैं।

व्याख्या- उपाय की सार्थकता क्रियान्वयन में है, अर्थात् लागू करने में है। इसके साथ ही यह भी

जानना आवश्यक है कि कब किस परिस्थिति में कौन सा उपाय लागू किया जाय ? दुर्योधन उपयुक्त अवसर पर उचित उपाय का प्रयोग करता है। राजनीति के चार उपाय हैं- साम, दान, दण्ड, भेद। इन उपायों का उचित विनियोग (प्रयोग) ही इनका सत्कार है। दुर्योधन द्वारा उचित विनियोग-रूप सम्मान से सम्मानित ये उपाय उसे अर्थसम्पत्ति प्रदान करने में (समृद्ध बनाने में) परस्पर एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहते हैं अर्थात् अधिकाधिक सिद्धि प्रदान करने में लगे हुए हैं। यहाँ उपायों में परस्पर स्पर्धा की सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

शब्दरचना- विनियोगसत्क्रिया: - विनियोग एव सत्क्रिया: येषां विनियोगसत्क्रिया:। विनियोग - वि + नि + युञ्। परिबृंहितायती: - परिबृंहिता आयति: यासां ता:। बहुव्रीहि। परिबृंहिता - परि + बृह + णिच् + क्त + टाप्। आयति: - आ + यम् + क्तिन्। उपेत्य - उप + इ + क्त्वा (ल्यप्)। तुक् का आगम। अनारतम् - न आरतम् अनारतम्। नञ् तत्पुरुष।

बोध प्रश्न:2 -

बहुविकल्पीय प्रश्न:-

क. पुरुषार्थ चतुष्टय में नहीं आता

(क) धर्म (ख) दण्ड

(ग) अर्थ (घ) काम

ख . सेवक आदि के प्रति व्यवहार का वर्णन किस श्लोक में किया गया है

(क) 10 वें (ख) 11 वें

(ग) 12 वें (घ) 13 वें

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें

(ग) दुर्योधन अपने सेवकों को..... देता है।

(घ) अनारतं लम्बिता।

नीचे कुछ वाक्य दिये गये हैं जिनमें सही वाक्यों के समक्ष सही (✓) तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (x) का निशान लगायें-

(ङ) दुर्योधन की सामनीति दान के बिना पूरी नहीं होती ()

(ख) दुर्योधन इन्द्रियों को वश में करके कार्य सम्पादन करता है ()

2.4 सारांश

किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग का यह भाग भारवि द्वारा एक सेवकों के अपने स्वामी के प्रति उन सभी कर्तव्यों का बोध कराता है। जिनके कि एक सेवक के अन्दर समाहित होने चाहिए। सेवक का कार्य केवल सेवा ही नहीं अपितु वे सभी कार्य जिससे की वह अपने स्वामी की रक्षा कर सके। वह एक सच्चा हितैषी भी है। राजा का कर्तव्य है कि वह अपने हितैषी के सभी वचनों को ध्यान से, बिना किसी मध्यवार्ता के सुनते रहे और सेवक का कर्तव्य है कि वह सत्य बात ही राजा के समक्ष प्रस्तुत करें। इस इकाई के माध्यम से आप किरातार्जुनीयम् में वर्णित युधिष्ठिर तथा वनेचर के मध्य वार्ता को बड़े ही सरल तरीके से अध्ययन कर सकेंगे तथा सम्बन्धित प्रश्नों

के उत्तर सरलता पूर्वक दे सकेंगे।

2.5 शब्दावली

वशी –	जितेन्द्रिय
हितैषिणः -	हित चाहने वाले
अनुजीविभिः -	सेवकों द्वारा
निसर्गदुर्बोधम् -	स्वाभाविक रूप से जानने में कठिन
नयेन -	नीति से
असक्तं -	अनासक्त भाव से
क्रियापवर्गेषु -	कार्य सम्पन्न होने पर

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. क. (ख)
ख. (घ)
ग. वनेचर
घ . मनोहारी
ड. गलत
च .सही
2. क. (ख)
ख. क 10 वें
ग. प्रचुर धन
घ . तेन पदेषु
ड. गलत
च. सही

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि - किरातार्जुनीयम्
2. वामनशिवरामआप्टे - संस्कृत हिन्दी कोश

2.8 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट
2. छन्दालंकारमन्जरी - डा0 वाकेलाल मिश्र

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वनेचर की उक्तियों की समीक्षा कीजिए।
2. दुर्योधन के राज्य से सम्बन्धित नीतियों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 3 . किरातार्जुनीयम् - श्लोक संख्या 16 से 30 तक

इकाई की रूपरेखा

- 3.1 प्रस्तावना
- 3.2 उद्देश्य
- 3.3 वनेचर की उक्तियों
 - 3.3.1 धन सम्पत्ति कृषि और प्रजासुख का वर्णन
 - 3.3.2 योद्धागण एवं गुप्तचर का वर्णन
 - 3.3.3 मित्रता एवं धार्मिकता का वर्णन
- 3.4 वनेचर का प्रस्थान एवं युधिष्ठिर का आगमन
- 3.5 द्रोपदी के कथन का उपक्रम
- 3.6 द्रोपदी की उक्तियों
- 3.7 सारांश
- 3.8 शब्दावली
- 3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 3.11 अन्य उपयोगी पुस्तकें
- 3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सुन्दर छाया की भाँति भारवि की प्रतिभा जिससे अधिक हो गई है ऐसे छत्र सदृश भारवि के वंशस्थ छन्द की विचित्रता अवर्णनीय और अलौकिक है। अर्थ गौरव के साथ-साथ पदों की विशदार्थता अपुनरुक्तार्थता पदों का परस्पर साकाडक्षत्व प्रभृति गुण भारवि उत्तम वाणि में मानते थे। भारवि के वर्णन की शक्ति के विषय में कोई सन्देह नहीं उनकी वर्णन शक्ति विविक्तवर्णाभरण है, सुख श्रुति है, प्रसन्नगम्भीर पद है, तथा सबके चित्त को प्रसन्न करने वाली है उनकी शैली के उत्कृष्ट रूप में एक प्रसन्न औदार्य रहता है, जो कि निश्चित ही मनोहर है भारवि का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है संस्कृत भाषा पर उनके अधिकार की पराकाष्ठा हम चित्रबन्ध में पाते हैं।

चित्रबन्ध निबन्धन यदि एक काव्य की दृष्टि से उत्तम नहीं कहा जा सकता तो दूसरी ओर यह भारवि का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार व्यक्त करना है। भारवि अपने समय के प्रतिनिधि कवि है इनकी शैली उदात्त है तथा वीर रस के सर्वथा अनुरूप है भारवि राजनीति के विषम घटना-चक्र के वर्णन में पूर्ण रूप से सफल भी दिखते हैं वही उन्होंने अपने ग्रन्थ में सूक्तियों का एक विशाल स्वरूप भी खड़ा किया है। अपने विषय पर पकड़ और कवित्वचातुरी का बड़े सुन्दर तरीके से प्रस्तुत किया है।

इस इकाई के माध्यम से कवि के वृहद स्वरूप के साथ-साथ उनकी राजनीति विषयक स्वरूप से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। उनकी भाषा तथा शब्द सौष्ठव का एक सुन्दर चित्रण इस इकाई के माध्यम से आप विश्लेषित कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से आप -

- दुर्योधन के प्रजा तथा उनके सुखादि से आप अवगत हो सकेंगे।
- द्रौपदी दारा युधिष्ठिर के समक्ष स्त्रीरूप की स्थापना से परिचित हो सकेंगे।
- भारवि की लेखन क्षमता से परिचित हो सकेंगे।
- सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर कुशलता से दे सकेंगे।

3.3 वनेचर की उक्ति

युधिष्ठिर दारा गुप्तचर के रूप में दुर्योधन के राज्य से सम्बन्धित सुचनाओं को प्राप्त करने के उपरान्त वनेचर सभा में उपस्थित होकर एक-एक करके सभी एकत्रित स्वरूप को यथावत स्थापित करने का सफल प्रयास करता है दुर्योधन के नीति का वर्णन से वकादि के प्रति व्यवहार ही वर्ग तथा धनसम्पत्ति के वर्णनोपरान्त उसके योद्धागण, गुप्तचर, मित्रता तथा धर्म-सम्पत्ति का

है जिसका अध्ययन आप आगे करेंगे।

अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं

तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम् ।

नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां

भृशं नृपोपायनदन्तिनां मदः ॥ 16 ॥

अन्वय- अयुग्मच्छदगन्धिः नृपोपायनदन्तिनां मदः अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलं तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं भृशम् आर्द्रतां नयति ।

हिन्दी अनुवाद- सप्तपर्ण पुष्प की गन्ध के समान गन्धवाला राजाओं द्वारा उपहार में दिए गए हाथियों का मदजल, अनेक राजाओं के रथों और अश्वों से भरे हुए उसके (दुर्योधन के) सभाभवन के प्राङ्गण को अत्यधिक गीला बना रहा है ।

व्याख्या- वनेचर दुर्योधन के प्रभाव को व्यक्त करने के लिए कहता है कि दुर्योधन के सभा भवन में अनेक राजा उपस्थित रहते हैं। उनके वाहनों से सभा भवन का प्राङ्गण भरा रहता है। दरबार में आने वाले राजा साथ में उपहार भी लाते हैं। ऐसे ही उपहार में प्राप्त श्रेष्ठ हाथियों के मदजल से प्राङ्गण गीला बना रहता है ।

वनेचर का भाव यह है कि दुर्योधन के बढ़ते प्रभाव के कारण विभिन्न देशों के राजा दुर्योधन से मैत्री-सम्बन्ध बनाने के लिए उत्सुक दिखाई पड़ते हैं और उसे प्रसन्न करने के लिए उपहार भी लाते हैं।

शब्दरचना- न युग्मः अयुग्मः। नञ् तत्पुरुष । अयुग्माः छदाः अस्य इति अयुग्मच्छदः। बहुव्रीहि। अयुग्मच्छदस्य विकारः पुष्पम् अयुग्मच्छदम् । अयुग्मच्छद + अण् । अयुग्मच्छदस्य गन्धः अयुग्मच्छदगन्धः। षष्ठी तत्पुरुष । अयुग्मच्छदस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः अयुग्मच्छन्दगन्धिः। बहुव्रीहि । नृपोपायनदन्तिनाम् - नृपाणाम् उपायनानि नृपोपायनानि । षष्ठी तत्पुरुष । नृपोपायनानि दन्तिनः नृपोपायनदन्तिनः। कर्मधारय । तेषाम् नृपोपायनदन्तिनाम् आस्थान - निकेतनाजिरम् - आस्थानस्य निकेतनम् आस्थाननिकेतनम् । षष्ठी तत्पुरुष। आस्थाननिकेतनस्य अजिरम् आस्थाननिकेतनाजिरम् । षष्ठी तत्पुरुष । अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम् - न एके अनेके । नञ् तत्पुरुष । अनेके राजन्याः अनेकराजन्याः। कर्मधारय । रथाश्च अश्वश्च रथाश्वम् । समाहार द्वन्द्व । अनेकराजन्यरथाश्वेन सङ्कुलम् इति अनेकराजन्यरथाश्वसङ्कुलम् । तृतीया तत्पुरुष ।

टिप्पणी- युग्म का अर्थ है जोड़ा । छद का अर्थ है पत्ता । जिस पेड़ के गुच्छे में जोड़ पत्ते नहीं होते, उसे अयुग्मच्छद कहेंगे । एक वृक्ष है, जिसमें एक गुच्छे में सात पत्ते होते हैं, इसीलिए इसे 'सप्तपर्ण' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम 'विषमच्छद' है। 'विषमच्छद' का ही पर्याय है- अयुग्मच्छद। श्रेष्ठ हाथियों के गण्डस्थल से चूने वाले मदजल की गन्ध सप्तपर्ण के फूल की गन्ध के समान होती है। आस्थान का अर्थ है- सभा ।

3.3.1 धन- सम्पत्ति, कृषि और प्रजासुख का वर्णन

दुर्योधन अपने राज्य में उपहार के रूप में लाए गए हाथियों और अश्वों जहाँ आँगन को अर्थ सम्पत्तियों से पूर्ण वैभवशाली बना रहा है वही खेती की समृद्धि तथा किसानों के सुख का

उल्लेख कर अपने प्रजा पालन की दक्षता दर्शाता है। श्लोक संख्या 17 के वर्णन में इसको निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है -

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलै-

रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।

वितन्वति क्षेममदेवमातृका

श्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति ॥ 17 ॥

अन्वय- चिराय तस्मिन् क्षेमं वितन्वति (सति) अदेवमातृकाः कुरवः अकृष्टपच्या इव कृषीवलैः

सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः चकासति।

हिन्दी अनुवाद - चिरकाल तक उसके (दुर्योधन के) द्वारा (प्रजा का) हित-सम्पादन होने पर वर्षा के जल पर आश्रित न रहने वाला कुरुदेश, कृषकों द्वारा मानो बिना जोताई के ही अनायास प्राप्त होने वाली फसलों को धारण करता हुआ सुशोभित हो रहा है।

व्याख्या -दुर्योधन के प्रशासन की विशेषता का प्रतिपादन करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन प्रजा के कल्याण के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। इसी का परिणाम है कि आज उसके राज्य में कृत्रिम नदियों और नहरों का जाल बिछा हुआ है। अब प्रजा को वर्षा के जल पर आश्रित नहीं रहना पड़ता। सिंचाई की पर्याप्त सुविधा के कारण किसान कृषिकार्य में कठिनाई का अनुभव नहीं करते। ऐसा प्रतीत होता है कि ये बिना जोताई वगैरह किए ही बड़ी आसानी से फसल प्राप्त कर लेते हैं। किसानों द्वारा उगाई गई फसल से सम्पूर्ण कुरुदेश सस्यसमृद्ध हो गया है। किसी देश की प्रमुख समस्या खाद्य-समस्या होती है। खाद्य-समस्या का समाधान कृषकों द्वारा ही सम्भव है। खेती के लिए कृषकों को उचित साधन उपलब्ध कराना राजा का कर्तव्य है। खेती में सबसे बड़ी समस्या सिंचाई की होती है। दुर्योधन ने सिंचाई की समुचित व्यवस्था कर दी है। इसका परिणाम यह है कि किसान पर्याप्त फसल उगा रहे हैं और कुरुदेश धनधान्य-परिपूर्ण हो गया है। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

टिप्पणी - जो देश वर्षा के जल से सिंचित होने वाली फसल पर आश्रित रहता है, उसे देवमातृक कहते हैं, और जो देश नदी के जल से सिंचित फसल पर आश्रित रहता है, उसे नदीमातृक कहते हैं। कवि ने यहाँ कुरुदेश के लिए 'अदेवमातृकाः' विशेषण का प्रयोग किया है अर्थात् वर्षा के जल पर आश्रित न रहने वाला। वर्षा के जल पर आश्रित न रहने का अर्थ है- कृत्रिम साधनों अर्थात् नदियों या नदियों से निकलने वाली नहरों के जल पर आश्रित रहना।

शब्दरचना- वितन्वति - वि + तन् + लट् शतृ, सप्तमी एकवचन। अदेवमातृकाः - देवः एव माता येषां ते देवमातृकाः। बहुव्रीहि। न देवमातृकाः अदेवमातृकाः। नञ् तत्पुरुष। कुरवः - कुरूणां निवासाः कुरवः। तस्य निवासः से अण्। कुरु + अण्। अण् का लोप। अकृष्ट पच्याः - कृष्टेन पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः, न कृष्टपच्याः अकृष्ट पच्याः। नञ् तत्पुरुष। कृषीवलैः - कृषिः अस्ति येषां ते कृषीवलाः तैः। कृषिः - कृष् + इ। कृषि + वलच्। वलच् के कारण इ का दीर्घ। सस्यसम्पदः - सस्यानां सम्पदः सस्यसम्पदः। षष्ठी तत्पुरुष।

उदारकीर्तेरुदयं दयावतः

प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया ।

स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता

वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी ॥ 18 ॥

अन्वय- उदारकीर्तेः दयावतः अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयं दिशतः वसूपमानस्य अस्य गुणैः

उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदुग्धे ।

हिन्दी अनुवाद- अतियशस्वी, दयालु, पूर्ण सुरक्षा के कारण निर्विघ्न रूप से प्रगति की वृद्धि करने वाले, कुबेर - सदृश इसके (दुर्योधन के) गुणों से द्रवित पृथ्वी अपने आप प्रभूत धन देती है।

व्याख्या- दुर्योधन अपने राज्य की पूर्ण सुरक्षा करता है । सुरक्षित राज्य की उन्नति में कोई व्यवधान नहीं हो पाता। किसी व्यक्ति को गाय का दूध प्राप्त करने के लिए बछड़े का सहारा लेना पड़ता है। बछड़े के प्रति प्रेम के कारण गाय द्रवित हो जाती है और उसके थन में दूध आ जाता है, किन्तु उसे दूध को निकालने के लिए व्यक्ति को प्रयास करना पड़ता है । दुर्योधन के गुणों से द्रवित पृथ्वी उस गाय के समान है, जो अपना दूध स्वयं दे देती है । इसके लिए अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता। पृथ्वी स्वयं प्रभूत धनसम्पत्ति प्रदान करती है अर्थात् राज्य बाहरी आक्रमण आदि से मुक्त होकर निरन्तर समृद्धि की ओर बढ़ रहा है ।

यहाँ पृथ्वी का वर्णन है, किन्तु वर्णन के आधार पर अप्रस्तुत 'गाय' की प्रतीति होने से समासोक्ति अलंकार है ।

शब्दरचना- उदारा कीर्तिः यस्य सः उदारकीर्तिः, तस्य । बहुव्रीहि । उद् + ऋ घञ् उदारः, कृत + क्तिन् कीर्तिः। दयावतः - दया अस्ति अस्य इति दयावान्, तस्य । दया + मतुप् (वतुप्)। प्रशान्तबाधम् - प्रशान्ता बाधा यथा स्यात्तथा । अव्ययीभाव समास, क्रियाविशेषण । वसूपमानस्य - वसुः उपमानम्, उप + मा + ल्यूट्। अभिरक्षा - अभितः रक्षा अभिरक्षा, तथा । दिशतः - दिश् + लट् शतृ, षष्ठी एकवचन, अस्य का विशेषण । प्रदुग्धे - प्र + दुह् + लट् कर्मकर्ता अर्थ में । प्रथमपुरुष एकवचन ।

3.3.2 योद्धा गण एवं गुप्तचर का वर्णन

दुर्योधन के राज्य में उसके सैनिक अपने युद्ध कौशल से अन्य राजाओं के मन में भय उत्पन्न कर देते हैं तथा अपनी प्राणों की आहुति देने से नहीं डरते। वहीं दुर्योधन द्वारा लगाये गये गुप्तचर अपने राजा के प्रति इमानदारी से सारी बातें प्रस्तुत करते हैं ।

महौजसो मानधना धनार्चिता

धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।

नसंहतास्तस्य नभिन्नवृत्तयः

प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ॥ 19॥

अन्वय- महौजसः मानधनाः धनार्चिताः, संयति लब्धकीर्तयः, नसंहताः नभिन्नवृत्तयः धनुर्भृतः

असुभिः तस्य प्रियाणि समीहितुं वाञ्छन्ति ।

हिन्दी अनुवाद- महाबलशाली, स्वाभिमानी, धन से सम्मानित, युद्ध में ख्याति पाये हुए,

स्वार्थवश संगठित न होने वाले और परस्पर विपरीत आचरण न करने वाले धनुर्धारी (अपने) प्राणों से (भी) उसका (दुर्योधन का) कल्याण करना चाहते हैं।

व्याख्या- वनेचर दुर्योधन की लोकप्रियता का वर्णन करते हुए कहता है कि दुर्योधन का हित चाहने वाले वीर अपने प्राणों की भी बाजी लगाने के लिए तैयार हैं कवि ने वनेचर के इस कथन में वीरों के लिए कुछ ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया है। जो प्रकारान्तर से दुर्योधन की सफलता की सम्भावना व्यक्त करते हैं।

दुर्योधन की सहायता के लिए तत्पर योद्धा बलशाली हैं। उन्हें युद्ध में पराजित करना आसान नहीं है। स्वाभिमानी हैं, अतः अपने पथ से विचलित होने वाले नहीं है। उनकी युद्ध-कला युद्ध में प्रमाणित हो चुकी है, अतः उसमें सन्देह का कोई कारण नहीं है। धन से सत्कृत हैं। अतः धन के लोभ में पड़कर दुर्योधन को धोखा दें, ऐसी भी सम्भावना नहीं है। स्वार्थ के कारण योद्धाओं में न तो कोई संगठन है और न ही परस्पर कोई विरोध है। यदि कोई संगठन होता, जो स्वार्थपूर्ति के लिए बना हो, तो स्वार्थपूर्ति के अभाव में विद्रोह भी हो सकता है। यदि उन योद्धाओं के व्यवहार परस्पर विरोधी हों तो भी दुर्योधन की सफलता सन्दिग्ध हो जाती। योद्धाओं का एक ही लक्ष्य है- दुर्योधन का हित सम्पादन और इसके लिए वे अस्त्र उठाए हुए प्राणों की बाजी लगाने के लिए तत्पर हैं। अतः दुर्योधन को पराजित करना कठिन कार्य है।

इस श्लोक में विशेषणों का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया गया है, अतः परिकर अलङ्कार है।
शब्दरचना- महौजसः - महत् ओजः येषां ते। बहुव्रीहि। मानधनाः - मानः एव धनं येषां ते। बहुव्रीहि। धनार्चिताः - धनेन अर्चिताः। तृतीया तत्पुरुष। अर्चिताः - अर्च+णिच् + क्त। धनुर्भृतः - धनुः विभ्रति इति धनुर्भृतः ते। उपपद समास। धनुष् + भृ + क्विप्। लब्धकीर्तयः - लब्धा कीर्तिः यै, ते। बहुव्रीहि। नसंहताः - न संहताः नसंहताः। सुप्समा। संहताः - सम् + हन् + क्त। नभिन्नवृत्तयः - भिन्नाः वृत्तयः तेषां ते भिन्नवृत्तयः। बहुव्रीहि। न भिन्नवृत्तयः नभिन्नवृत्तयः। सुप्सुपा। भिन्नाः - भिद् + क्त+टाप्। वृत्तिः - वृत् + क्तिन्। समीहितुम् - सम् + ईह् + तुमुन्। वन्छन्ति - वान्छ + लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रियाः

स वेद निःशेषमशेषितक्रियः।

महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः

प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः॥ 20॥

अन्वय- अशेषितक्रियः सः सच्चरितैः चरैः महीभृतां क्रियाः निःशेषं वेद। धातुः इव तस्य ईहितं महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते।

हिन्दी अनुवाद- (अपने) सभी कार्यों को सम्पन्न कर चुका वह (दुर्योधन) उत्तम चरित्रवाले गुप्तचरों के माध्यम से राजाओं की गतिविधियों का पता लगाता रहता है। ब्रह्मा की तरह उसकी (दुर्योधन की) चेष्टा उत्कृष्ट कल्याणप्रद परिणामों द्वारा (ही) ज्ञात होती है।

व्याख्या- एक कुशल राजा अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन नहीं रहता। सर्वप्रथम उसे

अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए। तत्पश्चात् अन्य राजाओं की गतिविधियों की जानकारी रखनी चाहिए। गुप्तचरों के माध्यम से अन्य राजाओं की गतिविधि का ज्ञान हो सकता है। अतः गुप्तचर को सच्चरित्र होना चाहिए। शासन में गोपनीयता आवश्यक है। अपनी योजना को गुप्त रखना चाहिए। दुर्योधन अपने कर्तव्य के प्रति सजग है। वह अपना कर्तव्य पूरा करके सदाचारी गुप्तचरों द्वारा अन्य राजाओं के विषय में सूचना एकत्र करता रहता है, साथ ही अपनी चेष्टा को छिपाये रहता है। कार्यसिद्धि होने पर ही इसकी चेष्टा का ज्ञान हो पाता है।

शब्दरचना- अशेषितक्रियः - न शेषिताः अशेषिताः। नञ् तत्पुरुष। अशेषिताः - क्रियाः येन सः अशेषितक्रियः। बहुव्रीहि। शिष् + णिच् + क्त + टाप्। सच्चरितैः - सत् चरितं येषां ते सच्चरिताः तैः। बहुव्रीहि। चरैः - चरन्ति इति चराः, तैः। चर् + अच्। महीभृताम् - महीं विभ्रति इति महीभृतः तेषाम्। उपपद तत्पुरुष। मही + भृ + क्विप्। निःशेषम् - निर्गतः शेषः यस्मात् तत् यथा स्यात् तथा। वेद - विद् + लट् प्रथम पुरुष, एकवचन। महोदयैः - महान् उदयः येभ्यः तानि महोदयानि, तैः। बहुव्रीहि। हितानुबन्धिभिः - हितम् अनुबन्धन्ति इति हितानुबन्धीनि, तैः। उपपद तत्पुरुष। हित + अनु + बन्ध् + णिनि। प्रतीयते - प्रति + इ + लट् लकार, प्रथमपुरुष एकवचन।

3.3.3 मित्रता एवं धार्मिकता

दुर्योधन के प्रति अन्य अधीन राजाओं के प्रति शस्त्र उठाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। राजाओं के साथ हमेशा मित्रवत् व्यवहार ही रखता है और अपने कनिष्ठ भ्राता दुःशासन को युवराज नियुक्त कर पुरोहित के आज्ञानुसार धर्माचरण में लगा हुआ है।

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः

कृतं न वा कोपविजिहमाननम् ।

गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते

नराधिपैर्माल्यमिवास्य शासनम् ॥ 21 ॥

अन्वय- तेन क्वचित् सज्यं धनुः न उद्यतम्। वा आननं कोपविह्वं न कृतम्। नराधिपैः अस्य शासनं गुणानुरागेण माल्यम् इव शिराभिः उह्यते।

हिन्दी अनुवाद- उसके द्वारा (दुर्योधन द्वारा) कभी न तो चढ़ी हुई प्रत्यन्चा वाला धनुष उठाया गया और न क्रोधवश मुँह टेढ़ा किया गया। राजाओं द्वारा इसका आदेश गुणों (दुर्योधन के दया, दाक्षिण्य आदि) के प्रति अनुराग के कारण माला (सुगन्ध, सुन्दरता आदि गुणों के कारण प्रिय) की भाँति शिर पर धारण किया जाता है।

व्याख्या- दुर्योधन की शासन-व्यवस्था का वर्णन करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन को कभी धनुष उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ी और न ही किसी ने कोई ऐसा अप्रिय कार्य किया कि उसे क्रोध करना पड़े। दूसरे राजा उसके गुणों से इस तरह प्रभावित हैं कि उसके आदेश को ससम्मान स्वीकार करते हैं। मनुष्य जिस प्रकार सुगन्ध, सौन्दर्य आदि से आकृष्ट होकर पुष्पमाला को शिर पर से गले में धारण करता है, उसी तरह राजा उसके आदेश को नतमस्तक होकर स्वीकार करते हैं। इस श्लोक में पूर्णोपमा अलंकार है। पूर्णोपमा अलंकार वहाँ होता है, जहाँ

उपमा के चारों तत्त्व शब्द रूप में गृहीत होते हैं। यहाँ ' शासन ' उपमेय, 'माला ' उपमान 'इव' सादृश्यवाचक शब्द तथा 'अनुराग ' साधारण धर्म है।

शब्द रचना- क्वचित् अव्यय है। सज्यम् - ज्यया सह वर्तते इति सज्यम्। 'तेन सहेति तुल्योगे' सूत्र से बहुव्रीहि समास। वोपसर्जनस्य ' सूत्र से सह को स आदेश हो जाता है। कोपविजिह्वम् - कोपेन विजिह्वम् कोपविजिह्वम्। तृतीय तत्पुरुष। गुणानुरागेण - गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः तेना सममी तत्पुरुष। हेतु अर्थ में तृतीया विभक्ति। नराधिपैः - नराणाम् अधिपाः नराधिपाः तैः। षष्ठी तत्पुरुष। अधिपः - अधि + पा + क। माल्यम् - माला एवं माल्यम्। माला +ष्यञ्। शिरोभिः - शिरस् शब्द का तृतीया बहुवचन का रूप है।

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं

निधाय दुःशासनमिद्धशासनः।

मखेष्वखिनोऽनुमतः पुरोधसा

धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम् ॥ 22 ॥

अन्वय- इद्धशासनः सः नवयौवनोद्धतं दुःशासनं यौवराज्ये निधाय पुरोधसा अनुमतः अखिन्नः (सन्) मखेषु हव्येन हिरण्यरेतसं धिनोति।

हिन्दी अनुवाद- अनतिक्रमणीय आज्ञावाला वह (दुर्योधन) अभिनव यौवन से धृष्ट दुःशासन को युवराज बनाकर, स्वयं पुरोहित की अनुमति से आह्लादपूर्वक यज्ञों में हवनीय पदार्थों द्वारा अग्नि प्रदीप्त कर रहा है।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन की आज्ञा का कोई अतिक्रमण नहीं करता। वह अपने अनुज को युवराज बनाकर, उस पर राज्यसंचालन का दायित्व सौंप कर स्वयं धार्मिक कार्य में लगा रहता है। उसे राज्य की चिन्ता नहीं है, क्योंकि राज्य के सभी अंग मन्त्री, सेवक आदि अपने - अपने कार्य में लगे हुए हैं। अतः राज्य के सामान्य कार्यों के संचालन के लिए उसने परिपक्व बुद्धिवाले अपने अनुज को नियुक्त कर दिया है। स्वयं राज्य-कार्यभार से मुक्त होकर पुरोहित के निर्देश के अनुसार यज्ञ-सम्पादन में तल्लीन रहता है।

यहाँ द्वितीय चरण में व्यञ्जनों की आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है।

शब्दरचना - इद्धशासनः - इद्धं शासनं यस्य सः। बहुव्रीहि। इद्धम् - इन्ध् + क्त। शासनम् - शास् + ल्युट्। नवयौवनोद्धतम् - यूनो भावः यौवनम्। यौवन - युवन् + अण्। उद्धतम् - उद् + हन् + क्त। दुःशासनम् - दुःखेन शास्यते इति दुःशासनम्। दुर् + शास् + युच्। तम्। यौवराज्ये - युवा चासौ राजा च युवराजः। कर्मधारय। युवराजस्य कर्म यौवराज्यं, तस्मिन्। युवराज + ष्यञ्- यौवराज्यम्। हिरण्यरेतसम् - हिरण्यं रेतो यस्य सः हिरण्यरेताः, तम्। बहुव्रीहि। धिनोति - धिन्व + लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।

बोध प्रश्न 1.

बहु विकल्पीय प्रश्न-

(क) दुर्योधन के राज्य में बिना जुताई ही मानो फसल तैयार हो रही थी

(क) कुरुक्षेत्र में

(ख) पालित राज्यों में

(ग) दोनों में (घ) किसी में नहीं
(ख) दुर्योधन के राज्य के धनुर्धारी क्या देकर उसका कल्याण चाहते हैं

(क) धन से (ख) प्राणों से

(ग) खेती से (घ) व्यवसाय से

रिक्त स्थानों कि पूर्ति कीजिए-

(ग) पृथ्वी मण्डल से समुद्र पर्यन्त तक का राज्य.....का है ।

(घ) महीभृतां क्रिया: ।

नीचे कुछ वाक्य दिये हैं जिनमें सही वाक्यों के समक्ष (✓) तथा गलत वाक्यों के समक्ष गलत (x) का निशान लगाइये-

(ड) धन सम्पत्ति , कृषि तथा प्रजासुख का वर्णन श्लोक संख्या 17 में किया गया है । ()

(च) योद्धागण एवं गुप्तचर का वर्णन श्लोक संख्या 21 में किया गया है । ()

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति
प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः ।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यती-
रहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता ॥ 23॥

अन्वय- सः प्रलीनभूलापम् स्थिरायति आवारिधि भुवः मण्डलं प्रशासत् अपि त्वत् एष्यतीः
भियः चिन्तयति एव । अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता ।

हिन्दी अनुवाद- वह (दुर्योधन) शत्रुराजाओं से रहित, चिरस्थायी, समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर शासन करता हुआ भी आप (युधिष्ठिर) से सम्भावित विपत्तियों के विषय में सोचता ही रहता है । आश्चर्य है, बलवानों से विरोध का परिणाम दुःखद होता है ।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि दुर्योधन समुद्रपर्यन्त भूमण्डल पर शासन कर रहा है । कोई प्रतिद्वन्द्वी राजा अवशिष्ट नहीं रह गया है । शासन में स्थिरता भी प्रतीत हो रही है, तथापि वह पाण्डवों से भयभीत रहता है । दुर्योधन के भयभीत होने का औचित्य प्रतिपादित करते हुए वनेचर पुनः कहता है कि बलवानों के साथ शत्रुता का परिणाम भयावह होता है । ऊपर से निश्चिन्त जैसा प्रदर्शन होने पर भी मन में एक भय व्याप्त रहता है । बलवान् शत्रु द्वारा प्रत्यक्ष रूप से संकट उत्पन्न न किए जाने पर भी भावी संकट की सम्भावना से वर्तमान में भी सुख-शान्ति का अनुभव नहीं होता। यहाँ चतुर्थचरण सूक्ति है । इस सूक्ति द्वारा पूर्व कथन का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

शब्दरचना- भुवं पालयन्ति इति भूपालाः। उपपद समास। प्रलीनाः भूपालाः यस्मिंस्तत् प्रलीनभूपालम्, तत्। बहुव्रीहि। स्थिरायति - स्थिरा आयतिः यस्य तत्। बहुव्रीहि। आवारिधि - आ वारिधिभ्य इति आवारिधि। अव्ययीभाव समास। प्रशासत्+प्र + शास् + शत्। प्रथमा एकवचन। एष्यतीः - इ + लृट् + शत्। द्वितीय बहुवचन। बलवद्विरोधिता - बलवता विरोधिता बलवद्विरोधिता। सुप्सुपा।

कथाप्रसंगेन जनैरुदाहृता-**दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः ।****तवाभिधानाद् व्यथते नताननः****सुदुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ॥ 24 ॥**

अन्वय- कथाप्रसंगेन जनैः उदाहृतात् सुदुःसहात् तवाभिधानात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः नताननः (सः) कथाप्रसङ्गेन उदाहृतात् सुदुःसहात् तवाभिधानात् मन्त्रपदात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः नताननः उरगः इव व्यथते ।

हिन्दी अनुवाद- बातचीत के प्रसंग में लोगों द्वारा उच्चरित अत्यधिक असह्य आपके नाम (को सुनने) से अर्जुन के पराक्रम का स्मरण हो जाने से झुके हुए शिर वाला (दुर्योधन), विषवैद्य द्वारा उच्चरित अत्यधिक असह्य, गरुड़ और वासुकि सर्प के नाम से युक्त मन्त्रपद से गरुड़ के पादक्षेप का स्मरण करने वाले (अतः) नतमस्तक सर्प की भाँति पीड़ित होता है ।

व्याख्या- वनेचर कहता है कि हे महाराज! बातचीत के प्रसंग में जब कोई आप का नाम लेता है तब दुर्योधन को अर्जुन के पराक्रम का स्मरण हो जाता है, उसका शिर झुक जाता है और वह पीड़ा का अनुभव करने लगता है । इसकी उपमा देते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन उस सर्प के समान हो जाता है जो विषवैद्य द्वारा उच्चरित मन्त्र में आए हुए गरुड़ और वासुकि के नाम को सुनकर गरुड़ के पादक्षेप का स्मरण कर दुःखी हो जाता है और शिर झुका लेता है ।

शब्दरचना- कथाप्रसंगेन - कथायाः प्रसंग कथाप्रसंगः तेन। षष्ठी तत्पुरुषा कथाप्रससंगः -

विषवैद्यः तेन। उदाहृतात् - उद् + आ + ह्+क्त्। तस्मात्। तवाभिधानात् - तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्यवासुकी। द्वन्द्व समासा। तवयोः अभिधानं यस्मिन् तत् तवाभिधानम्, तस्मात्। बहुव्रीहि। अभिधानम् - अभि + धा + ल्युट्। अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः - (उरगपक्षे) आखण्डलस्य सूनुः आखण्डलसूनुः। षष्ठी तत्पुरुषा तस्य विः आखण्डलसूनुविः। षष्ठी तत्पुरुषा अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः। बहुव्रीहि।

(दुर्योधनपक्षे) आखण्डलस्य सूनुः आखण्डलसूनुः। षष्ठी तत्पुरुषा आखण्डलसूनोः विक्रमः आखण्डलसूनुविक्रमः। षष्ठी तत्पुरुषा अनुस्मृतः आखण्डलसूनुविक्रमः येन सः। बहुव्रीहि। नताननः - नतम् आननं यस्य सः। बहुव्रीहि। व्यथते - व्यथ् लट्लकार, प्रथमपुरुष एकवचना।

तदाशु कर्तुं त्वयि निहामुद्यते**विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।****परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां****प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः॥ 25॥**

अन्वय - तत् त्वयि जिह्वं कर्तुम् उद्यते तत्र विधेयम् उत्तरम् आशु विधीयताम् । परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशां गिरः प्रवृत्तिसाराः खलु ।

हिन्दी अनुवाद - इसलिए आपके (युधिष्ठिर के) प्रति कुटिल व्यवहार करने में तत्पर उसके प्रति (दुर्योधन के प्रति) उचित प्रतिकार शीघ्र कीजिए। दूसरों के द्वारा कहे गए वचनों का संग्रह करने वाले मुझ जैसे लोगों के वचन निश्चित रूप से वृत्तान्त के सार मात्र होते हैं ।

व्याख्या- युधिष्ठिर से हस्तिनापुर का वृत्तान्त निवेदन करने वाला वनेचर अपने कथन का उपसंहार करते हुए कहता है कि दुर्योधन आपके प्रति कपट पूर्ण व्यवहार कर रहा है। अतः आप उसके प्रति शीघ्र ही उचित प्रतिकार करें।

वनेचर ने 'विधेयम्' अर्थात् 'उचित' शब्द का प्रयोग करके यह स्पष्ट कर दिया है कि कर्तव्य का निर्देश करना गुप्तचर का कार्य नहीं है। यदि गुप्तचर ऐसा करता है, तो वह अपनी सीमा का, मर्यादा का उल्लंघन करता है।

श्लोक के तृतीय और चतुर्थ चरण में वह गुप्तचर की कार्यपद्धति का भी निर्देश करता है। गुप्तचर गुप्तरूप में लोगों की बात सुनता है। उस बात में से अपने लिए उपयोगी अंश को ग्रहण करता है। यही वचन का चयन है। इस प्रकार उपलब्ध सभी अंशों का पर्यालोचन करता हुआ वह एक निष्कर्ष पर पहुँचता है। यह निष्कर्ष ही समाचार या वृत्तान्त ही उसके कथन का सार है। 'प्रवृत्तिसार' अर्थात् 'वृत्तान्तरूप सार' कहने का एक अभिप्राय यह है कि वनेचर यह स्पष्ट करना चाहता है कि मेरी ओर से इस वृत्तान्त में कुछ जोड़ा नहीं गया है। बल्कि मैंने जो सुना है, उसका ही सार है। यदि गुप्तचर पूर्वाग्रहयुक्त होकर अपनी धारणा के अनुरूप परिस्थितियों का विश्लेषण करने लगता है और उपलब्ध तथ्यों को गौण बना देता है, तब वह सही निष्कर्ष नहीं निकाल सकता। ऐसी स्थिति में वास्तविकता से अनभिज्ञ राजा की योजना विफल हो सकती है और राज्य नष्ट हो सकता है। यहाँ सामान्य से विशेष का समर्थन हुआ है अतः अर्थान्तरन्यास है।

शब्दरचना- उद्यते - उद् + यम् + क्त। तस्मिन्। विधेयम् - वि + धा + यत्। उत्तरम् - अतिशयेन उत् इति उत्तरम् - उत् + तरप् अथवा उद् + तृ + अप्। परप्रणीतानि - परैः प्रणीतानि, इति। तृतीया तत्पुरुषा। प्रवृत्तिसाराः - प्रवृत्तिः सारः यासां ताः। बहुव्रीहि। चिन्वताम् - चि + लट् शतृ। षष्ठी बहुवचन।

3.3.4 वनेचर का प्रस्थान एवं युधिष्ठिर का आगमन

दुर्योधन के राज्य संचालन से संबंधित प्राप्त विषय वस्तु को कुशलता के साथ युधिष्ठिर के समक्ष स्थापित करने के उपरान्त वनेचर प्रस्थान करता है तथा युधिष्ठिर द्रौपदी के महल में जाते हैं तथा वनेचर द्वारा कथित वृत्तान्त द्रौपदी से कहते हैं।

इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये

गतेऽथ पत्यौ वनसन्निवासिनाम् ।

प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा

तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ वचः॥ 26 ॥

अन्वय- वनसन्निवासिनां पत्यौ इति गिरम् ईरयित्वा आत्तसत्क्रिये गते (सति) अथ महीभुजा कृष्णासदनं प्रविश्य अनुजसन्निधौ तद् वचः आचक्षे ।

हिन्दी अनुवाद - वनवासियों के स्वामी (वनेचर) के ऐसा कह कर तथा (पुरस्कार से) सम्मानित होकर चले जाने के बाद राजा (युधिष्ठिर) ने द्रौपदी के पास जाकर भाइयों के सामने उस वृत्तान्त को कहा।

व्याख्या - वनेचर की बात सुनकर युधिष्ठिर कार्यनिष्पन्न करने के लिए उसे पुरस्कृत करते हैं।

पुरस्कार-रूप सम्मान पाकर वनेचर चला जाता है। इसके बाद युधिष्ठिर द्रौपदी के पास जाते हैं। वहाँ भाइयों के समक्ष द्रौपदी से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहते हैं। भाइयों की उपस्थिति में द्रौपदी से वृत्तान्त निवेदन का प्रयोजन यह है कि वर्तमान परिस्थिति में भावी कार्यक्रम पर विचार-विमर्श किया जा सके।

शब्दरचना- वनसन्निवासिनाम् - वने सन्निवसन्ति इति वनसन्निवासिनः तेषाम्। उपपद तत्पुरुष। वन + सत् + नि + वस् + णिनि। ईरयित्वा - ईर + णिच् + क्त्वा। आत्तसत्क्रिये - आत्ता सत्क्रिया येन स आत्तसत्क्रियः, तस्मिन्। बहुव्रीहि। आत्ता - आ + दा + क्त, सत्क्रिया - सत् + कृ + श। महीभुजा - महीं भुनक्ति इति महीभुक् तेन। उपपद तत्पुरुष। मही + भुज् + क्विप्। कृष्णासदनम् - कृष्णायाः सदनम् इति कृष्णासदनम्। षष्ठी तत्पुरुष। अनुजसन्निधौ - अनु पश्चात् जायन्ते ये ते अनुजाः। उपपदतत्पुरुष। अनुजानां सन्निधिः अनुजसन्निधिः, तस्मिन्। षष्ठी तत्पुरुष। अनुजः - अनु + जन् + ड। सन्निधिः - सम् + नि + धा + किः। आचक्षे - आङ् + ख्या (चक्षिङ्) + लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

3.5 द्रौपदी के कथन का उपक्रम

शत्रुओं की समृद्धि और उन्नति का समाचार सुनकर द्रौपदी अपने भावावेग को रोक नहीं पाती और राजा के क्रोध एवं उत्साह को बढ़ाने के लिए अपने क्रोध का सहारा लेकर कहने के लिए उधृत होती है।

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती-

स्ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा।

नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनी-

रुदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः॥ 27 ॥

अन्वय- ततः द्रुपदात्मजा द्विषतां सिद्धिं निशम्य ततस्त्याः अपाकृतीः विनियन्तुम् अक्षमा नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीः गिरः उदाजहार।

हिन्दी अनुवाद - तब द्रौपदी ने शत्रुओं के उत्कर्ष को सुनकर उससे उठने वाले मानसिक विकारों को रोकने में असमर्थ होकर राजा (युधिष्ठिर) के क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने के लिए कहना आरम्भ किया।

व्याख्या- युधिष्ठिर के मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने के बाद द्रौपदी कौरवों के उत्कर्ष की बात सुनकर तिलमिला उठती है। अपने मनोविकारों को वह नियन्त्रित नहीं कर पाती है और युधिष्ठिर के प्रति ऐसे मार्मिक वचन कहती है, जो युधिष्ठिर के क्रोध को प्रदीप्त कर दे और वे राज्य प्राप्ति हेतु उद्योग करने लगे।

इस श्लोक में 'त' की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है। मनोविकारों को न रोक पाना ही उत्तेजक वचन का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

शब्दरचना - द्रुपदात्मजा - द्रुपदस्य आत्मजा द्रुपदात्मजा। षष्ठी तत्पुरुष। ततस्त्याः - ततः

आगताः इति ततस्त्याः। ततस् + त्यप् टाप्। अक्षमा - न क्षमा अक्षमा। नञ् तत्पुरुष।

मन्युव्यवसाययोः दीपिन्यः मन्युव्यवसायदीपिन्यः, ताः। षष्ठीतत्पुरुष । व्यवसायः - वि + अव+सो +घञ् । दीपिनी - दीप् + णिनि + डीप् ।

3.6 द्रौपदी की उक्तियाँ

द्रौपदी अपने पति युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्सुक करने के लिए पूर्व में हुई घटनाओं को याद दिलाती हुए स्त्रियों की वार्ता के विषय में कहती है।

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं

भवत्यधिकक्षेप इवानुशासनम् ।

तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां

निरस्तनारीसमया दुराधयः॥ 28 ॥

अन्वय- भवादृशेषु प्रमदाजनोदितम् अनुशासनम् अधिकक्षेपः इव भवति । तथापि निरस्तनारीसमयाः दुराधयः मां वक्तुं व्यवसाययन्ति।

हिन्दी अनुवाद- आप जैसे लोगों के विषय में स्त्रियों द्वारा कहा गया उपदेशवचन अपमान-सदृश होता है। तथापि नारी की मर्यादा को नष्ट करने वाली मानसिक व्यथायें मुझे कहने के लिए बाध्य कर रही हैं।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर से अपनी बात कहने से पहले अपनी विवशता प्रकट करती है। युधिष्ठिर जैसे ज्ञानी व्यक्ति को स्त्री द्वारा उपदेशवचन तिरस्कार जैसा है। उनके ज्ञान और विवेक पर प्रश्नचिह्न लगाने वाला है। द्रौपदी यह अनुभव करती है, फिर भी स्वयं को नियन्त्रित नहीं कर पा रही है। अपनी बात कहने जा रही है। पत्नी पति को उपदेश दे, यह मर्यादा का अतिक्रमण है। किन्तु अतिक्रमण करना या न करना द्रौपदी के वश में नहीं है। उसके मन की पीड़ा उसे कहने के लिए बाध्य कर रही है। द्रौपदी का यह कथन उसकी मानसिक पीड़ा की तीव्रता व्यक्त करता है।

शब्दरचना- प्रमदाजनोदितम् - प्रमदा चासौ जनश्च प्रमदाजनः । कर्मधारय । प्रमदाजनेन उदितं प्रमदाजनोदितम् । तृतीया तत्पुरुष । प्रमदा - प्रमद् + अच् + टाप् । उदितम् - वद् + क्त । निरस्तनारीसमयाः - नारीणां समयाः नारीसमयाः। षष्ठी तत्पुरुष । निरस्ताः नारीसमयाः यैः ते निरस्तनारीसमयाः । बहुव्रीहि । निरस्तः निर् + अस् + क्त । समयः - सम् + इ + अच् । दुराधयः - दुष्टाः आधयः दुराधयः । प्रादि तत्पुरुष । अनुशासनम् - अनु + शास् + ल्युट् । वक्तुम् - वच् + तुमुन् । व्यवसाययन्ति - वि + अच् + सो + णिच् + लट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन ।

अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभि-

श्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः ।

त्वयात्महस्तेन मही मदच्युता

मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता ॥ 29 ॥

अन्वय- आखण्डलतुल्यधामभिः स्ववंशजैः भूपतिभिः चिरम् अखण्डं धृता मही त्वया मदच्युता मतङ्गजेन स्रक् इव आत्महस्तेन अपवर्जिता ।

हिन्दी अनुवाद - इन्द्र के समान तेजस्वी अपने पूर्वज राजाओं द्वारा चिरकाल तक पूर्णरूप से धारण की गई पृथ्वी तुम्हारे द्वारा अपने हाथ से उसी तरह दूर कर दी गई जैसे मतवाले हाथी द्वारा अपनी सूँड़ से दूर फेकी गयी माला ।

व्याख्या - द्रौपदी युधिष्ठिर के अहंकार को, स्वाभिमान को उद्दीप्त करने के लिए अपने कुल के गौरवपूर्ण इतिहास का स्मरण करा रही है। वह कहती है कि जिस राज्य को पूर्वजों ने अपने पराक्रम से बहुत दिनों तक अपने अधीन रखा था, उस राज्य को आपने सहज की त्याग दिया । जिस प्रकार हाथी माला के गुणों को न पहचान कर उसे दूर फेंक देता है, उसी तरह आपने राज्य के महत्त्व को नहीं पहचाना और उसे अपने हाथ से निकल जाने दिया। द्रौपदी यहाँ तक भी बताना चाहती है कि आपके पास सामर्थ्य है । यदि आप चाहते तो राज्य की रक्षा कर सकते थे । आपने रक्षा नहीं की। इसलिए मैं समझती हूँ कि आपने स्वयं ही राज्य को छोड़ दिया है ।

शब्दरचना- आखण्डलतुल्यधामभिः - आखण्डयति पर्वतान् इति आखण्डलः इन्द्रः। आखण्डलेन तुल्यं धाम येषां ते आखण्डलतुल्यधामानः तैः। बहुव्रीहि । यह पद 'भूपतिभिः' का विशेषण है । आखण्डलः - आ + खण्ड + कलच् । धामन् - धा + मनिन् । स्ववंशजैः - स्वस्य वंशः स्ववंशः। षष्ठी तत्पुरुष । स्ववंशात् जायन्ते ये ते स्ववंशजाः तैः। उपपद तत्पुरुष । मदच्युता - मदं च्योतति इति मदच्युत्, तेन। उपपद तत्पुरुष । मद + च्युत् + क्विप् । मतंगजेन - मतंगात् जायते इति मतंगजः तेन। उपपद तत्पुरुष । मतङ्ग + जन् + ड । आत्महस्तेन - आत्मनः हस्तः आत्महस्तः, तेन ।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं

भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।

प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्

असंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥ 30 ॥

अन्वय- मूढधियः ते पराभवं व्रजन्ति ये मायाविषु मायिनः न भवन्ति । हि शठाः तथाविधान् असंवृताङ्गान् निशिताः इवेषः इव प्रविश्य घ्नन्ति ।

हिन्दी अनुवाद - विवेकहीन वे लोग पराजित होते हैं, जो कपटपूर्ण व्यवहार करने वाले लोगों के प्रति कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करते। क्योंकि धूर्त लोग इनका विश्वासपात्र बनकर इन्हें वैसे ही नष्ट कर देते हैं, जैसे कवच आदि से अनाच्छादित शरीर वाले व्यक्ति के अन्दर प्रवेश करके तीक्ष्ण बाण उसे नष्ट कर देते हैं ।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर से 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति का अनुसरण करने के लिए कह रही है । उसका कहना है कि जिन्हें कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान नहीं है, जो समय और परिस्थिति के अनुरूप आचरण नहीं करते, उनका विनाश अवश्यम्भावी है । मायावी व्यक्ति के साथ मायावी जैसा ही आचरण करना चाहिए । वहाँ सज्जनता अहितकर होती है । जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण, कवच न धारण करने वाले व्यक्ति के भीतर सरलता से प्रवेश कर जाते हैं, और उसे मार

डालते हैं, उसी प्रकार धूर्त लोग सज्जन व्यक्ति की अन्तरंगता प्राप्त करके उसे नष्ट कर देते हैं। वहाँ माया को अंग के आवरणरूप में प्रस्तुत किया गया है। धूर्त लोगों से रक्षा के लिए माया कवच है। जिस प्रकार कवच अंग नहीं अपितु अंग का रक्षक है, वैसे ही माया को स्वभाव नहीं समझना चाहिए, उसे गुणरूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए, अपितु अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए विशेष परिस्थिति में उसका आश्रय लेना चाहिए। विशेष परिस्थिति में अर्थात् मायावियों के साथ भी सज्जनता का व्यवहार अहितकर होता है। इस श्लोक में काव्यलिंग तथा उपमा के कारण संसृष्टि अलंकार है।

शब्दरचना- मूढधियः - मूढा धीः येषां ते । बहुव्रीहि । मूढा - मुह् + क्त + टाप् । धीः - ध्यै + क्विप् । मायाविषु - माया अस्ति एषाम् इति मायाविनः, तेषु । माया + विनि। मायिनः - माया अस्ति एषाम् इति मायिनः। माया + इनि । असंवृताङ्गान् - न संवृतम् असंवृतम् । नञ् तत्पुरुष । असंवृतानि अंगानि येषां ते असंवृताङ्गाः तान् । बहुव्रीहि । निशिताः - नि + शो + क्त । प्रविश्य - प्र + विश् + क्त्वा (ल्यप्) । घ्नन्ति - हन् धातु लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन ।

टिप्पणी- इस श्लोक का पूर्वाद्ध सूक्ति है।

बोध प्रश्न .2

क. अहोदुरन्ता बलवद्विरोधिता , किसके लिए कहा गया है -

क. वनेचर ख. युधिष्ठिर ग. दुर्योधन घ. श्रीकृष्ण

ख. द्रोपदी उद्योग करनेके लिए किससे कहती है

क. भीम से ख. अर्जुन से ग. युधिष्ठिर से घ. दुर्योधन से

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

ग. युधिष्ठिर वृत्तान्त सुनने के बाद महल में जाते हैं।

घ. अर्जुन के पराक्रम का स्मरण मात्र से सिर झुक जाता है।

निम्नलिखित में सही गलत का निशान लगाइये

ड. वनेचर युधिष्ठिर का सैनिक है ()

च. महाभारत काल स्त्री प्रधान काल था ()

3.7 सारांश

वनेचर अपने स्वामी युधिष्ठिर के आदेशानुसार प्राप्त सूचना उनके समक्ष प्रस्तुत करता है जिससे दुर्योधन के धन ऐश्वर्य मित्रों के उसका व्यवहार धर्म परायणता सेवकादि के प्रति व्यवहार आदि का स्थापना करता है इसके पश्चात युधिष्ठिर द्रोपदी के महल में जाते हैं तथा वनेचर के वृत्तान्त को बताते हैं इसके बाद द्रोपदी राजा को युद्ध के लिए प्रेरित करने वाले वचनों को कहती है। जिसका सम्पूर्ण अध्ययन आप इकाई के माध्यम से प्राप्त कर लिए होंगे। इस इकाई में राजा का

राज्य के प्रति क्या व्यवहार होना चाहिए तथा एक स्त्री का पति के प्रति क्या व्यवहार होना चाहिए इन बातों का स्थापन किया गया है। मायावी व्यक्ति के साथ मायावी जैसा ही आचरण करना चाहिए। वहाँ सज्जनता अहितकर होती है। जिस प्रकार तीक्ष्ण बाण, कवच न धारण करने वाले व्यक्ति के भीतर सरलता से प्रवेश कर जाते हैं, और उसे मार डालते हैं, उसी प्रकार धूर्त लोग सज्जन व्यक्ति की अन्तरंगता प्राप्त करके उसे नष्ट कर देते हैं। अतः प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप इस इकाई से प्राप्त शिक्षाओं को बता सकेंगे।

3.8 शब्दावली

शब्द	अर्थ
मूढधियः -	विवेकहीन, मन्दबुद्धि वाले लोग
द्रुपदात्मजा	द्रुपद की पुत्री, द्रौपदी
निशम्य	सुनकर
मन्युव्यसायंदीपिनीः	क्रोध और उद्योग को उद्दीप्त करने वाली
अपाकृतीः	विकारों को, भावों को
प्रमदाजनोदितम् -	स्त्रियों द्वारा कहा गया
आखण्डलतुल्यधामभिः	इन्द्र के समान तेजस्वी
निशिताः	तीक्ष्ण

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

क. क	ख . ख	ग. दुर्योधन	घ . सच्चरितैश्चरैः
ड. सही	च . गलत		

बोध प्रश्न 2.

क. ग	ख. ग	ग. द्रौपदी	घ .दुर्योधन का
ड. गलत	च.गलत		

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि – किरातार्जुनीयम्
2. वामन शिवराम आपटे - संस्कृत - हिन्दी कोश

3.11 अन्य उपयोगी पुस्तकें

1. सिद्धान्त कौमुदी - वरदराजाचार्य
2. काव्य प्रकाश - आचार्य मम्मट
3. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वनेचर की उक्तियों की समीक्षा कीजिए ।
2. दुर्योधन के प्रजा सम्बन्धित स्वरूप की स्थापना कीजिए ।
3. द्रौपदी द्वारा कथित वाक्यों की व्याख्या कीजिए ।

इकाई 4 . श्लोक संख्या 31 से 46 तक

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 द्रोपदी की उक्तियाँ

4.3.1 शत्रु द्वारा राजलक्ष्मी का हरण

4.3.2 पाण्डवों के स्वरूप का वर्णन

4.3.3 युधिष्ठिर के पूर्व - जीवन का वर्णन

4.3.4 क्षत्रियोचित व्यवहार का वर्णन

4.3.5 शान्ति की नीति की आलोचना

4.5 सारांश

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भाषा भावाभिव्यक्ति का साधन है। भाषा शब्दमय होती है और भाव अर्थ रूप होते हैं। शब्द और अर्थ का साहचर्य ही साहित्य है। भारवि शब्द और अर्थ के प्रति विशेष जागरूक है क्योंकि इन्हें गम्भीर और व्यापक अर्थ के सन्निवेश की दृष्टि से शब्द-योजना करनी है। यह स्पष्ट है कि विशेष अर्थ के लिए विशेष शब्द का चयन करने में कवि को विशेष प्रयास करना पड़ता है। अतः काव्य में स्वाभाविकता का अभाव तो होता ही है। प्रायः क्लिष्टता भी आ जाती है। भारवि भी मानते हैं कि बड़े पुण्य से ऐसी वाणी प्राप्त होती है, जिसका अर्थ तत्काल ज्ञात हो जाए और वह अर्थ गम्भीर भी हो। भारवि की भाषा भावग्रहण में पूर्ण सक्षम है। वर्ण्य-विषय के अनुरूप वह कहीं सरल गति से चलती है तो कहीं वक्र गति का आश्रय लेती है प्रथम सर्ग में कवि ने वंशस्थ छन्द में राजनीति का वर्णन करके यह मान्यता स्थापित की है कि राजनीति निरूपण के लिये उपयुक्त छन्द वंशस्थ ही है। सर्ग के आरम्भ में वनेचर युधिष्ठिर के समक्ष दुर्योधन की शासन व्यवस्था का वर्णन करता है। वह वर्णन यथार्थ परक है। द्रौपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्तेजित करना चाहती है। उसकी वाणी में तीक्ष्णता है।

इस इकाई के माध्यम से आप द्रौपदी के द्वारा युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिये अनेक प्रकार के प्रयास का अध्ययन करेंगे। द्रौपदी अपने सम्मान तथा अपने पतियों के सम्मान को पुनः प्राप्त कराने के लिये युधिष्ठिर के समक्ष किन-किन बातों का सहारा लेती है इस इकाई का मुख्य विषय है। भारवि ने इस चित्र का बड़े ही विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। वे जिस वर्ण्य को प्रस्तुत करते हैं उसका वर्णन करते ही जाते हैं। जिससे मूलकथा विच्छिन्न - सी प्रतीत होने लगती है। किन्तु यह उनकी विशेषता है क्योंकि कथानक अतिसंक्षिप्त है। इसे वर्णन द्वारा ही विस्तृत किया जा सकता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- युधिष्ठिर के पूर्व जीवन का वर्णन कर पायेंगे।
- द्रौपदी के द्वारा युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिये अनेक प्रकार के प्रयास का वर्णन कर सकेंगे।
- क्रोधशून्य व्यक्ति का कोई आदर नहीं करता यह बता पायेंगे।
- श्लोको की व्याख्या कर सकेंगे।
- श्लोक में प्रयुक्त छन्द एवं अलंकार बता पायेंगे।

4.3 द्रौपदी की उक्तियाँ

युधिष्ठिर के द्वारा गुप्तचर के रूप में दुर्योधन के राज्य में भेजे गये वनेचर के द्वारा प्राप्त सूचनाओं को प्राप्त करने के बाद युधिष्ठिर द्रौपदी के महल में जाते हैं तथा वनेचर द्वारा प्राप्त सभी सूचनायें

द्रोपदी को बताते हैं। जिस पर द्रोपदी अपने आपको रोक नहीं पाती तथा प्रत्युत्तर में युधिष्ठिर से उनके सहित पूरे पाण्डवों के दुःखों का वर्णन करते हुए युद्ध के लिये प्रेरित करने का प्रयास करती है।

4.3.1 शत्रु द्वारा राजलक्ष्मी का हरण

जिस तरह दूसरों से अपनी पत्नी का अपहरण कराना लज्जापरक और मानहानिकारी होता है उसी प्रकार राजलक्ष्मी का भी शत्रुओं से अपहरण कराना महालज्जा का कारक है। यही बात द्रोपदी युधिष्ठिर को समझाते हुए कहती है।

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः

कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः ।

परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-

न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ॥ 31॥

अन्वय- अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी त्वत् अन्यः कः इव नराधिपः गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमाम् आत्मवधूम् इव (गुणानुरक्तां कुलजां मनोरमां) श्रियं परैः अपहारयेत् ।

हिन्दी अनुवाद- अनुकूल साधनों वाला, अपने वंश पर गर्व करने वाला आपके अतिरिक्त कौन-सा राजा, गुणों से प्रेम करने वाली, गुणवती, उच्च कुल में उत्पन्न और मन को प्रिय लगने वाली भार्या के समान (राजनीति के छः) गुणों के कारण प्रेम करने वाली, वंशपरम्परा से प्राप्त हुई मनोहर राजलक्ष्मी को (स्वयं ही) शत्रुओं द्वारा अपहृत कराएगा ।

व्याख्या- द्रौपदी राजलक्ष्मी की तुलना एक पत्नी से करती हुई युधिष्ठिर को उस पति के समान बताना चाहती है, जो अपने पास सामर्थ्य होते हुए भी शत्रुओं द्वारा अपनी प्रिय पत्नी के अपहरण का विरोध नहीं करता और निन्दा का पात्र बन जाता है।

पति का अर्थ है-रक्षक। पति पत्नी का रक्षक है। यदि पत्नी गुणवती न हो, उच्च कुल की न हो और प्रिय न हो तो उसकी उपेक्षा सम्भव है। किन्तु गुणवती, उच्च कुल में उत्पन्न और प्रिय पत्नी का अपहरण हो रहा हो और रक्षा करने में समर्थ होता हुआ भी पति उसकी रक्षा न करे तो वह लोकनिन्दा का पात्र बन जाता है। ऐसा पति अपहरण का समर्थक ही माना जाएगा।

आप राजलक्ष्मी के पति हैं। यह राजलक्ष्मी राजनीति के छः गुणों- सन्धि-विग्रह-मान-आसन-संश्रय-द्वैधीभाव-के कारण आप से प्रेम करने वाली है, आपको वंश-परम्परा से प्राप्त है और प्रिय भी है। ऐसी राजलक्ष्मी का आपके सामने शत्रुओं द्वारा अपहरण हुआ और सामर्थ्य रहते हुए भी आपने उसका प्रतिरोध नहीं किया। अतः यही कहा जाएगा कि आपने स्वयं ही राजलक्ष्मी का अपहरण कराया है। राजलक्ष्मी वंशपरम्परा से पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त हुई है, अतः उसे स्वेच्छा से नष्ट करने का भी अधिकार आपको नहीं है। दूसरी बात यह है कि आप को भी अपने कुल का अभिमान है। एक ओर कुल का अभिमान और दूसरी ओर कुल के उत्तराधिकार में प्राप्त राजलक्ष्मी का अपहरण करवाना - ये दोनों बातें असंगत है। आपके अतिरिक्त कोई राजा ऐसा असंगत आचरण नहीं करेगा। यहाँ श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा अलंकार है।

शब्दार्थ - अनुरक्तसाधनः - अनुरक्तं साधनं यस्य सः। बहुव्रीहि। अनुरक्तम् - अनु + रञ्ज् + क्त ।

साधनम् - साध् + णिच् + ल्युट् । कुलाभिमानी - कुलस्य अभिमानः कुलाभिमानः षष्ठी तत्पुरुष
कुलाभिमानः अस्ति अस्य इति कुलाभिमानी । अभिमानः - अभि + मन् + घञ् । गुणानुरक्ताम् -
गुणेषु अनुरक्ता गुणानुरक्ता, ताम् । तृतीया तत्पुरुष । कुलजाम् - कुलात् कुले वा जाता कुलजा,
ताम् । उपपद तत्पुरुष । कुल + जन् + ड + टाप् । मनोरमाम् - रमयति इति रमा । मनसो रमा
मनोरमा, ताम्, षष्ठी तत्पुरुष । रमा - रम् + णिच् + अच् + टाप् । आत्मवधूम् - आत्मनः वधूः
आत्मवधूः, ताम् । षष्ठी तत्पुरुष । अपहारयेत् - अप् + ह + णिच् + विधिलिङ् प्रथम पुरुष
एकवचन ।

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते

विवर्तमानं नरदेव वर्त्मनि ।

कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः

शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः ॥ 32 ॥

अन्वय- नरदेव! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानं भवन्तम् उदीरितः मन्युः शुष्कं शमीतरुम्
उच्छिखः अग्निरिव कथं न ज्वलयति ।

हिन्दी अनुवाद- हे राजन ! इस समय मनस्वी लोगों द्वारा निन्दित मार्ग पर चलने वाले आपको
उदीपित क्रोध सूखे हुए शमीवृक्ष को धधकती आग की तरह क्यों नहीं जला देता।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर के क्रोध को उदीप्त करना चाहती है। इसीलिए ऐसी बातें कहती है, जो
उनके मर्म पर प्रहार कर सकें। किन्तु युधिष्ठिर क्रोध करने का नाम नहीं लेते। वह कहती है-
शत्रुओं द्वारा उत्पन्न की गई जिस प्रकार की दुर्गति आप भोग रहे हैं, वह स्वाभिमानी व्यक्ति के
लिए उचित नहीं है। इस स्थिति में आप का क्रोध स्वयं तो उदीप्त नहीं ही हो रहा है, दूसरों द्वारा
उदीपित किये जाने पर भी उदीप्त होकर आपको नहीं जला रहा है, यह आश्चर्य की बात है। कोई
स्वाभिमानी व्यक्ति शत्रुओं द्वारा बार-बार किये गये अपमान को इस तरह चुपचाप सह नहीं
सकता। अतः आपको अपमान के प्रतिशोध और राज्य-प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए।
इस श्लोक में 'त' और 'न' की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास तथा उपमा अलंकार है।

शब्दरचना - एतर्हि - इदम् + र्हिल् । 'इदम्' को 'एत' आदेश । मनस्विगर्हिते - प्रशस्तं मनः एषाम्
इति मनस्विनः। मनस्विभिः गर्हितं मनस्विगर्हितं, तस्मिन्। तृतीया तत्पुरुष । मनस्विन् - मनस् +
विनि। गर्हितम् - गर्ह + क्त । विवर्तमानं - वि + वृत् + लट् (शानच्) । उदीरितः - उद् + ईर् +
णिच् + क्त । शमीतरुम् - शमी चासौ तरुश्च इति, तम्। कर्मधारय । उच्छिखः - उद्गता शिखा यस्य
सः उच्छिखः । बहुव्रीहि ।

अबन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां

भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।

अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना

न जातहादेन न विद्विषादरः॥ 33॥

अन्वय- अबन्ध्यकोपस्य आपदां विहन्तुः देहिनः स्वयम् एव वश्याः भवन्ति । अमर्षशून्येन
जन्तुना जातहादेन (सता) जनस्य आदरः न, विद्विषा च (सता) दरः न (भवन्ति)।

हिन्दी अनुवाद - जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता है और जो (निर्धनतारूप) विपत्तियों को (धन देकर) नष्ट करने वाला है, उसके वंश में सभी प्राणी स्वयं अधीन हो जाते हैं । क्रोधहीन क्षुद्र (अदाता) प्राणी के मित्र बन जाने पर कोई उसका आदर नहीं करता और शत्रु बन जाने पर भय (भी) नहीं करता ।

व्याख्या- द्रौपदी कहती है कि हे राजन! जिस व्यक्ति का क्रोध निष्फल नहीं होता और जो समय-समय पर धन देकर लोगों की कठिनाइयों को दूर करता है, उसके वंश में सभी प्राणी अनायास ही हो जाते हैं । किन्तु जो क्रोध करना जानता ही नहीं है और कुछ देता भी नहीं है, ऐसा व्यक्ति यदि मित्र रहे, तो लोग उसका आदर नहीं करते और शत्रु रहे, तो उससे डरते भी नहीं हैं ।

युधिष्ठिर शत्रुओं पर क्रोध नहीं कर रहे हैं और राज्यविहीन होने के कारण धन देकर लोगों की सहायता करने की स्थिति में भी नहीं है । अतः इनसे मित्रता और शत्रुता का कोई अर्थ नहीं है । स्वार्थ या भय के कारण ही लोग अनुराग रखते हैं । द्रौपदी के कथन का अभिप्राय यह है कि शत्रुओं पर आक्रमण करके युधिष्ठिर को अपना राज्य प्राप्त करना चाहिए और प्रजा का कष्ट दूर करके उसका सम्मान प्राप्त करना चाहिए। ऐसा न करने पर वे महत्त्वहीन हो जायेंगे । यहाँ 'विद्विषादरः' में श्लेष अलङ्कार है ।

शब्दरचना- अबन्ध्यकोपस्य - न बन्ध्यः अबन्ध्यः। नञ् तत्पुरुष । अबन्ध्यः कोपः यस्य सः अबन्ध्यकोपः, तस्य । बहुव्रीहि । आपदाम् - आ + पद् + क्विप्, षष्ठी बहुवचन । विहन्तुः - वि + हन् + तृच् + षष्ठी एकवचन । वश्याः - वशं गताः वश्याः। वश् + यत् । प्रथमा बहुवचन । अमर्षशून्येन - न मर्षः अमर्षः। नञ् तत्पुरुष । अमर्षेण शून्यः अमर्षशून्यः तेन । तृतीया तत्पुरुष । जातहार्देन - हृदयस्य कर्म हार्दम् । जातम् - जन् + क्त । जातं हार्दम् अस्य असौ जातहार्दः, तेन । बहुव्रीहि ।

टिप्पणी -1- इस श्लोक का पूर्वाद्ध सूक्ति है ।

2- 'विद्विषादरः' को दो रूपों में पढ़ना होगा-विद्विषा आदरः और विद्विषा दरः।

परिभ्रमँल्लोहितचन्दनोचितः

पदातिरन्तर्गिरि रेणुरूषितः।

महारथः सत्यधनस्य मानसं

दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः॥ 34॥

अन्वय- लोहितचन्दनोचितः महारथः अयं वृकोदरः रेणुरूषितः पदातिः अन्तर्गिरि परिभ्रमन् सत्यधनस्य मानसं न दुनोति कच्चित् ।

हिन्दी अनुवाद- लालचन्दन लगाने वाले, विशाल रथ पर चलने वाले, ये भीम (इस समय) धूलिधूसरित, पैदल पर्वतों पर घूमते हुए (आप जैसे) सत्यवादी के मन को सन्तप्त नहीं करते क्या

व्याख्या- द्रौपदी भीम द्वारा पहले अनुभव किए गए सुख और इस समय अनुभव किए जा रहे दुःख का स्मरण कराते हुए युधिष्ठिर के क्रोध को उद्दीप्त करने का प्रयास कर रही है । वह कहती है कि जो भीम राजमहल में रहते हुए लालचन्दन का लेप लगाते थे, वही इस समय (वनवास काल

में) धूलि से लिप्त रहते हैं। जो भीम पहले विशाल रथ पर चलते थे, वही इस समय पैदल चलते हैं। भीम को इस रूप में देखकर आपके मन में दुःख नहीं होता क्या ? यदि दुःख होता तो सच्चाई को ही अपना सर्वस्व मानकर आप इस तरह शान्त न रहते। यहाँ परिकर अलंकार है।

शब्दरचना- लोहितचन्दनोचितः - लोहितं च तत् चन्दनं लोहितचन्दनम् । कर्मधारय । उचितं लोहितचन्दनम् अस्य इति लोहितचन्दनोचितः। बहुव्रीहि । महारथः - महान् रथः अस्य इति महारथः। बहुव्रीहि । वृकोदरः - वृकस्य उदरम् इव उदरम् यस्य सः वृकोदरः। बहुव्रीहि । रेणुरूषितः - रेणुभिः रूषितः। तृतीया तत्पुरुष । पदातिः पादाभ्याम् अतति इति पदातिः। उपपद तत्पुरुष। पाद + अत्+इञ् । अन्तर्गिरि गिरिषु अन्तः इति अन्तर्गिरि । अव्ययीभाव समास । परिभ्रमन् - परि +भ्रम् + लट् + शतृ । प्रथमा एकवचन । सत्यधनस्य सत्यं धनम् अस्य इति सत्यधनः, तस्या बहुव्रीहि । दुनोति+ दु +लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन ।

4.3.2 पाण्डवों के स्वरूप का वर्णन

पाण्डवों के वन आगमन के बाद उनके शरीर मन तथा आत्मा में जो निर्बलता आयी है उसको बताते हुए द्रौपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करने का प्रयास कर रही है।

विजित्य यः प्राज्यमयच्छदुत्तरान्

कुरूनकुप्यं वसु वासवोपमः।

स वल्कवासांसि तवाधुनाऽऽहरन्

करोति मन्युं न कथं धनञ्जयः॥ 35॥

अन्वय- वासवोपः यः उत्तरान् कुरून् विजित्य प्राज्यम् अकुप्यं वसु अयच्छत् धनञ्जयः अधुना तव वल्कवासांसि आहरन् (तव) मन्युं कथं न करोति ?

हिन्दी अनुवाद - इन्द्रतुल्य जिस (अर्जुन) ने उत्तर कुरुदेश को जीतकर प्रभूत मात्रा में सोना-चाँदी रूप धन दिया था, वही अर्जुन इस समय आपके लिए वल्कलवस्त्र लाता हुआ आपके क्रोध को क्यों नहीं उत्पन्न करता ?

व्याख्या- इस पद्य में द्रौपदी अर्जुन की दयनीय स्थिति का उल्लेख करते हुए युधिष्ठिर को उत्तेजित करने का प्रयास कर रही है। वह कहती है कि अर्जुन ने दिग्विजय के समय उत्तर कुरुदेश को जीतकर बहुत सा धन लाकर दिया था। वही पराक्रमी अर्जुन इस समय आपके लिए वल्कलवस्त्र ला रहे हैं। यह कार्य अर्जुन जैसे पराक्रमी के लिए उचित नहीं है। उनके पराक्रम का अपमान है, तथापि आप को क्रोध नहीं आ रहा है। यह बड़े आश्चर्य का विषय है। अर्थात् अर्जुन को इस रूप में देखकर तो आप को क्रोध आना चाहिए।

यहाँ छेकानुप्रास अलंकार है।

शब्दरचना- वासवः - उपमा यस्य सः वासवोपमः। बहुव्रीहि। विजित्य - वि + जि + क्त्वा ल्यप्, अकुप्यम् - न कुप्यम् अकुप्यम् । नञ् तत्पुरुष । कुप्यम् - कुप् + क्यप्। गुप् के ग को क हो जाता है। कुप्य का अर्थ है, सोना-चाँदी से भिन्न धातु। सोना-चाँदी को अकुप्य कहते हैं। अयच्छत् - दा धातु लङ्लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप। 'दा' को 'यच्छ' आदेश हो जाता

है । धनन्जयः - धनं जयति इति धनन्जयः। उपपद तत्पुरुष । धन + जि +खच् । धन जीतने के कारण ही अर्जुन को धनंजय कहते हैं । वल्कवासांसि - वल्कानि एव वासांसि । कर्मधारय । आहरन् - आ + ह + लट् +शत् । प्रथमा एकवचन ।

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती

कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ ।

कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ

विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम् ॥ 36॥

अन्वय- वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचितौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्वं धृतिसंयमौ बाधितुं कथं न उत्सहसे।

हिन्दी अनुवाद- वन की भूमि पर सोने से कठोर शरीर वाले, चारों ओर बिखरे हुए बालों से ढके हुए, पर्वतीय हाथियों के समान इन दोनों यमलों (नकुल और सहदेव) को देखते हुए आप धैर्य और संयम का परित्याग करने के लिए क्यों नहीं उद्यत होते ?

व्याख्या- नकुल और सहदेव की दयनीय स्थिति का उल्लेख करती हुई द्रौपदी युधिष्ठिर को अपना धैर्य छोड़ कर युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित कर रही है। जंगल की भूमि पर सोने से नकुल और सहदेव का शरीर कठोर हो गया है। शिर के बाल चारों ओर शरीर पर बिखरे रहते हैं। पर्वतीय हाथी की भाँति शरीर नकुल और सहदेव युधिष्ठिर की भावना का सम्मान करते हुए चुपचुप कष्ट सह रहे हैं । द्रौपदी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है। इसका कहने का अभिप्राय यह है कि युधिष्ठिर को अपने लिए न सही, अपने प्रिय अनुजों की (नकुल और सहदेव की) इस अवस्था को देखकर तो धैर्य की सीमा तोड़ देनी चाहिए ।

यहाँ 'कृताकृती' में छेकानुप्रास 'अगजौ गजौ' तथा 'संयमौ, यमौ' में यमक अलङ्कार तथा 'गजौ इव यमौ' के कारण उपमा अलङ्कार है । तीनों अलङ्कारों की निरपेक्ष स्थिति है, अतः संसृष्टि अलङ्कार है ।

शब्दरचना - वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती - वनस्य अन्तः वनान्तः। षष्ठी तत्पुरुष। वनान्तः एव शय्या वनान्तशय्या । कर्मधारय । वनान्तशय्या कठिनीकृता वनान्तशय्याकठिनीकृता । तृतीया तत्पुरुष। वनान्तशय्याकठिनीकृता आकृतिः ययोः तौ वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती। बहुव्रीहि । कचाचितौ - कचैः आचितौ कचाचितौ । तृतीया तत्पुरुष । आचितः - आ + चि + क्त। अगजौ - न गच्छति इति अगः। अगे जातौ अगजौ । उपपद तत्पुरुष । धृतिसंयमौ - धृतिश्च संयमश्च धृतिसंयमौ तौ । द्वन्द्व समास । विलोकयन् - वि+लोक् + णिच् + लट् (शत्) प्रथमा एकवचन । बाधितुम् - बाध् + तुमुन् । उत्सहसे - उत् + सह् + लट् मध्यमपुरुष एकवचन ।

इमामहं वेद न तावकीं धियं

विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।

विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां

रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः ॥ 37 ॥

अन्वय- इमां तावकीं धियम् अहं न वेद । चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः खलु। परां भवदापदं विचिन्तयन्त्या मम चेतः आधयः प्रसभं रूजन्ति ।

हिन्दी अनुवाद- आपकी इस बुद्धि को मैं नहीं समझ पा रही हूँ क्योंकि चित्तवृत्तियाँ (लोगों की चित्तवृत्तियाँ) विचित्र होती हैं। (किन्तु) आपकी महती विपत्ति पर विचार करने पर मानसिक व्यथार्ये मेरे मन को हठात् पीड़ित करती हैं ।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर के धैर्य से ऊबकर उनकी बुद्धि पर आक्षेप कर रही है। कहती है कि मुझे समझ में नहीं आता कि आपकी बुद्धि कैसी है ? लोगों की मनोवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। उनके सोचने के ढंग अलग-अलग होते हैं । आपकी इस दुर्दशा को सोच-सोच कर मैं तो दुःखी हो रही हूँ । किन्तु आपको स्वयं कोई पीड़ा नहीं हो रही और इसलिए आप इस दुर्दशा के निवारण का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। कैसी विचित्र बात है कि विपत्ति देखने वाला तो दुःखी हो रहा है ।

द्रौपदी के कथन का अभिप्राय यह है कि इतनी बड़ी विपत्ति को चुपचाप सह लेना उचित नहीं है। अतः आपको इसका निवारण करना चाहिए ।

शब्दरचना- तावकीम् - तव इयं तावकी, ताम् । युष्मद् + अण्-डीप् । युष्मद् के स्थान पर तवक आदेश हो जाता है । धियम् - ध्यै + क्विप् । चित्तवृत्तयः - चित्तानां वृत्तयः चित्तवृत्तयः। षष्ठी तत्पुरुष । विचित्ररूपाः - विचित्रं रूपं यासां, ताः विचित्ररूपाः। बहुव्रीहि । भवदापदं - भवतः आपद् इति भवदापद्, ताम् । षष्ठी तत्पुरुष । आपद् - आ + पद् + क्विप् । विचिन्तयन्त्याः - वि + चिन्त् + णिच् + लट् शतृ-डीप् । षष्ठी एकवचन । रूजन्ति - रुज् धातु, लट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन ।

4.3.3 युधिष्ठिर के पूर्व जीवन का वर्णन

द्रौपदी युधिष्ठिर के वनागमन से पूर्व के जीवन जो कि एक राज्य का राजा रहते हुए अनेक सुख-सुविधाओं में रहा हो और अब एक भिखारी के समान जंगलों में भटक रहा है, इसको बताते हुए युद्ध के लिये प्रेरित कर रही है ।

पुराऽधिरूढः शयनं महाधनं

विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः ।

अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं

जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः ॥ 38 ॥

अन्वय- यः (त्वं) महाधनं शयनम् अधिरूढः स्तुतिगीतिमङ्गलैः पुरा विबोध्यसे सः (त्वं)

अदभ्रदर्भा स्थलीम् अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः निद्रां जहासि ।

हिन्दी अनुवाद- जो (आप) पहले बहुमूल्य शय्या पर सोये हुए स्तुति और गीति रूप मांगलिक शब्दों से जगाये जाते थे, वही (आप इस समय) कुशों से भरी हुई वन भूमि पर सोकर अमाङ्गलिक श्रृंगालीशब्दों से जगाये जाते हैं ।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर को पूर्व की सुखानुभूति का स्मरण कराकर वर्तमान की दुःखानुभूति

की तीक्ष्णता का बोध कराना चाहती है। तीक्ष्णता के बोध के साथ ही दुर्योधन के प्रति आक्रोश उत्पन्न होगा और युधिष्ठिर युद्ध के लिए उद्योग कर सकते हैं। वह कहती है कि पहले आप बहुमूल्य शय्या पर सोते थे और स्तुतिपाठकों के सुन्दर गीत से जगाये जाते थे, किन्तु आज कुशों से भरी वन की ऊँची-नीची जमीन पर सोते हैं, और स्तुतिपाठकों के सुन्दर गीतों के स्थान पर शृगालियों के अशुभ शब्दों को सुनते हुए जगते हैं।

यहाँ 'शिवैः शिवां' में छेकानुप्रास है।

शब्दरचना- महाधनं - महत् धनं यस्य तद् महाधनम् । बहुव्रीहि । शयनम् - शय्यते अस्मिन् इति शयनम्। शी + ल्युट् । स्तुतिगीतिमङ्गलैः - स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतयः। द्वन्द्व । स्तुतिगीतयः एव मङ्गलानि स्तुतिगीतिमङ्गलानि, तैः। कर्मधारय । विबोध्यसे - वि + वुध् + णिच् + लट्, मध्यमपुरुष एकवचन । अदभ्रदर्भाम् - अदभ्राः दर्भाः यस्यां सा अदभ्रदर्भा, ताम् । बहुव्रीहि । अधिशय्य - अधि + शी + क्त्वा- ल्यप् । अधिवैः - न शिवानि अशिवानि तैः। नञ् तत्पुरुष । शिवारुतैः शिवानां रुतानि शिवारुतानि, तैः। षष्ठी तत्पुरुष । जहासि - हा + लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन ।

टिप्पणी- दिन के प्रथम पहर में शृगाली का शब्द अशुभ माना जाता है।

बोध प्रश्न 1.

बहुविकल्पीय प्रश्न-

क . दुर्योधन ने युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी का किया था।

(क) दुर्योधन (ख) अपहरण

(ग) अपमान (घ) बहिष्कृत

ख. वृकोदर किसे कहा गया है

(क) युधिष्ठिर (ख) अर्जुन

(ग) भीम (घ) सहदेव

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(ग) वनान्तशय्या कृताकृती ।

(घ) विचित्ररूपाः खलु..... ।

पुरोपनीतं नृप रामणीयकं

द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।

तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं

परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः ॥ 39 ॥

अन्वय - नृप ! यत् एतत् (वपुः) पुरा द्विजातिशेषेण अन्धसा रामणीयकम् उपनीतं वन्यफलाशिनः ते तद् वपुः अद्य यशसा समं परं कार्श्यं परैति ।

हिन्दी अनुवाद - हे राजन् ! जो यह शरीर पहले ब्राह्मणों के भोजन के अवशिष्ट अन्न से पुष्ट

होकर सुन्दर लगता था, जंगली फल खाने वाले आपका वही शरीर आज यश के साथ-साथ अत्यधिक क्षीण हो रहा है।

व्याख्या- युधिष्ठिर जब राजा थे, तब सर्वप्रथम ब्राह्मणों को भोजन कराते थे, तत्पश्चात् स्वयं भोजन करते थे। उस समय उच्छिष्ट भोजन से भी शरीर पुष्ट था, अतः सुन्दर लगता था। वनवासी युधिष्ठिर वन में सुलभ फल खाने के लिए विवश हैं। पहले स्वेच्छा से उच्छिष्ट भोजन होता था। कोई विवशता नहीं थी, अभाव नहीं था। अतः लोकापवाद की सम्भावना नहीं थी। किन्तु आज विवशता के कारण फलाहार करना पड़ता है। इस फलाहार से शरीर ही नहीं, यश भी नष्ट हो रहा है। अतः लोकापवाद की सम्भावना नहीं थी। किन्तु आज विवशता के कारण फलाहार करना पड़ता है। इस फलाहार से शरीर ही नहीं, यश भी नष्ट हो रहा है। घर में प्रचुर भोज्य सामग्री रहने पर भोजन न करने वाला व्यक्ति उपहास का पात्र नहीं होता, दुर्बल होता हुआ भी अभावग्रस्त नहीं माना जाता। किन्तु वास्तव में अभावग्रस्त व्यक्ति यदि भोजन की अनिच्छा प्रकट करता है, तो उसकी अनिच्छा अविश्वसनीय होगी। यही सामाजिक स्थिति है। द्रौपदी युधिष्ठिर से इसी सामाजिक स्थिति की बात कर रही है। वह कहना चाहती है कि आपके धैर्य और सत्यनिष्ठा की चर्चा तो दूर की बात है, लोग आप के पराक्रम पर भी ऊँगली उठायेंगे। अतः पराक्रम का आश्रय लेकर अपनी कीर्ति की रक्षा कीजिए। यहाँ सहोक्ति अलंकार है।

शब्दरचना- द्विजातिशेषेण - द्वे जाती जन्मनी येषां ते द्विजातयः। बहुव्रीहि। द्विजातीनां शेषं द्विजातिशेषम्, तेन। षष्ठी तत्पुरुष। अन्धसा - अद्यते इति अन्धस्, तेन। अद् + असुन्। रामणीयकम् - रमणीय + वुञ् (अक)। उपनीतम् - उप + नी + क्त। वन्यफलाशिनः वने भवं वन्यं। वन्यम् फलं वन्यफलम्। कर्मधारय। वन्यफलम् अश्नाति इति वन्यफलाशी, तस्य। उपपद। वन्य - वन + यत्। फलाशी - फल + अश् + णिन्। परैति - परा + इ + लट् + प्रथम पुरुष, एकवचन।

अनारतं यौ मणिपीठशायिना-

वरञ्जयद्राजशिरःस्रजां रजः।

निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते

मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम् ॥ 40॥

अन्वय- अनारतं मणिपीठशायिनौ यौ चरणौ राजशिरःस्रजां रजः अरञ्जयत् तौ ते चरणौ मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषां वनेषु निषीदतः।

हिन्दी अनुवाद - हे राजन् ! सदैव रत्ननिर्मित पादपीठ पर सुखपूर्वक रहने वाले जिन चरणों को राजाओं के शिर की पुष्पमाला की धूलि अलङ्कृत करती रहती थी, आपके वे ही दोनों चरण इस समय हरिणों और ब्राह्मणों द्वारा छिन्न शिखावाले कुंशों के जंगल में पड़े हुए हैं।

व्याख्या- सिंहासनारूढ युधिष्ठिर के चरण रत्ननिर्मित पादपीठ पर रहते थे और देश-देशान्तर के राजा जब उन चरणों पर शिर टेक कर प्रणाम करते थे, तब उन राजाओं के शिर पर स्थित पुष्पमाला के पराग उन चरणों को सुवासित कर देते थे। आज वनवास के समय वे ही चरण कुंशों वाली वनभूमि पर पड़े हुए हैं। कहाँ वे सुख के क्षण और कहाँ यह दुःख की वेला ! दुःख

की वेला में सुख के क्षणों की स्मृति दुःख को असह्य बना देती है। द्रौपदी युधिष्ठिर के समक्ष इसी स्थिति का वर्णन कर रही है। यहाँ जकार की असकृत् आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है।

शब्दरचना- अनारतम् - न आरतम् अनारतम् । नञ् तत्पुरुष । मणिपीठशायिनौ - मणिनिर्मितं पीठं मणिपीठम् । शाकपार्थिवादि समास । मणिपीठे शयाते इति मणिपीठशायिनी । उपपद तत्पुरुष। राजशिरःस्रजाम् - राज्ञां शिरांसि राजशिरांसि। षष्ठी तत्पुरुष । राजशिरसां स्रजः राजशिरःस्रजः, तासाम् । षष्ठी तत्पुरुष। अरंजयत् - रंज + णिच् + लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन । मृगद्विजालूनशिखेषु - मृगाश्च द्विजाश्च मृगद्विजाः। द्वन्द्व समास । मृगद्विजैः आलूनाः मृगद्विजालूनाः। तृतीया तत्पुरुष। मृगद्विजालूनाः शिखाः येषां तेषु मृगद्विजालूनशिखेषु । बहुव्रीहि । बर्हिषाम् - बर्हिष् +आम् । षष्ठी बहुवचन । निषीदतः - निः + सद् + लट् लकार, प्रथमपुरुष, द्विवचन ।

4.3.4 क्षत्रियोचित व्यवहार का वर्णन

द्रौपदी युधिष्ठिर को 'शठे शाठ्यं समाचरेत् ' की भावना को याद दिलाने का प्रयास करती है कि क्षत्रिय हमेशा शत्रु के साथ शत्रुता का व्यवहार करते हैं, शान्ति की नीति नहीं अपनाते । अतः आप भी क्षत्रियोचित व्यवहार कीजिए ।

द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः

समूलमुन्मूलयतीव मे मनः ।

परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां

पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् ॥ 41 ॥

अन्वय - यत् इयं दशा द्विषन्निमित्ता ततः मे मनः समूलम् उन्मीलयति इव । परैः अपर्यासितवीर्यसम्पदां मानिनां पराभवोऽपि उत्सवः एव ।

हिन्दी अनुवाद - (हे राजन्!) चूँकि यह दशा शत्रुओं के कारण हुई है, इसलिए मेरे मन को समूल उत्पाटित-सा कर रही है। शत्रुओं जिनके पराक्रम को अभिभूत नहीं किया है, ऐसे मनस्वी व्यक्तियों के लिए अपमान भी उत्सव ही होता है।

व्याख्या- द्रौपदी अपनी मानसिक वेदना का कारण स्पष्ट करती हुई वेदना के औचित्य का प्रतिपादन कर रही है और युधिष्ठिर के स्वाभिमान को जागृत करने का प्रयास कर रही है । वह कहती है कि-

चूँकि यह दुखावस्था शत्रुजनित है, इसलिए मेरा मन पूर्ण रूप से क्षुब्ध हो उठा है। यदि यह दुखावस्था भाग्य के कारण होती तो मुझे कष्ट न होता । पुरुषार्थ करने के बाद यदि सफलता न मिले तब भाग्य को कारण माना जा सकता है । किन्तु आपका (युधिष्ठिर का) पुरुषार्थ, आपका पराक्रम अभी अप्रयुक्त है, अतः अपराजित है । शत्रुओं ने आपका तिरस्कार किया है, आपके पराक्रम का नहीं । जिनका पराक्रम अभी थका नहीं है, अर्थात् पराजित नहीं हुआ है, ऐसे स्वाभिमानी लोगों के लिए तिरस्कार भी एक चुनौती है और इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए । जिसके पास पराक्रम है, वही चुनौती स्वीकार कर सकता है । वीर पुरुषों को चुनौती

स्वीकार करने में वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है, जैसा उत्सव में। आपके अप्रतिहत पराक्रम के होते शत्रुकृत यह अपमान मेरे लिए असह्य हो उठा है।

यहाँ उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास तथा वृत्त्यनुप्रास अलंकारों की संसृष्टि है।

शब्दरचना- 'यत्' अव्यय है। यम् धातु से क्विप् प्रत्यय। 'गमादीनामिति वक्तव्यम्' वार्तिक से अनुनासिक 'म्' का लोप और 'तुक्' का आगम होकर 'यत्' बनता है। द्विषन्निमित्ता - द्विषन्तः निमित्तं यस्याः सा। बहुव्रीहि। द्विषत् - दिष् + लट् शतृ। 'द्विषोऽमित्रेद्' सूत्र से शतृप्रत्यया समूलम् - मूलेन सह वर्तमानं समूलम्, तद्यथा स्यात् तथा। अपर्यासितवीर्यं सम्पदाम् - न पर्यासिता अपर्यासिता। नञ् तत्पुरुषा वीरस्य भावः कर्म वा वीर्यम्। वीर्यमेव सम्पद् वीर्यसम्पद्। अपर्यासिता वीर्यसम्पद् येषां ते अपर्यासितवीर्यसम्पदः, तेषाम्। बहुव्रीहि। पर्यासिता - परि + अस् + णिच् + क्त + टाप्। वीर्यम् - वीर + यत्। सम्पद् - सम् + पद् + क्विप्। उन्मूलयति - उत् + मूल + णिच् + लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन। पराभवः - परा + भू + अप्।

विहाय शान्तिं नृप धाम तत्पुनः

प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम्।

व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहा

शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः॥ 42॥

अन्वय- नृप! शान्तिं विहाय विद्विषां वधाय तत् धाम पुनः सन्धेहि प्रसीदा। निःस्पृहाः मुनयः शत्रून् अवधूय शमेन सिद्धिं व्रजन्ति, भूभृतः न।

हिन्दी अनुवाद- हे राजन! शान्ति का परित्याग करके शत्रुओं के वध के लिए कृपया (अपना) वह तेज धारण कीजिए। संयम द्वारा शत्रुओं को जीतकर मुनिजन सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नहीं।

व्याख्या- द्रौपदी यहाँ स्पष्ट शब्दों में युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित कर रही है। वह कहती है कि युधिष्ठिर शान्ति का मार्ग छोड़कर क्षत्रियों - चित तेज आश्रय ले। शान्ति का मार्ग मुनियों के लिए है। वे संयम द्वारा, शम द्वारा मनुष्य के छः शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य को नियन्त्रित करके आत्मसाक्षात्काररूप सिद्धि प्राप्त करते हैं। भौतिक कामनाओं से रहित मुनियों के इस मार्ग का अनुसरण भौतिक कामना वाले राजसमुदाय के लिए उचित नहीं है। शान्ति द्वारा न तो शत्रु जीते जा सकते हैं, न राज्यप्राप्ति - रूप प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।

इस श्लोक में 'प्रसीद' शब्द 'कृपया' के लिए प्रयुक्त है अर्थात् यदि युधिष्ठिर शान्ति का परित्याग कर क्षत्रियोचित तेज का आश्रय लेते हैं तो द्रौपदी और अन्य पाण्डवों के ऊपर उनकी कृपा ही होगी। अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

शब्दरचना- शान्तिम् - शम् + क्तिन्, ताम्। विहाय - वि + हा + क्त्वा - ल्यप्। वधाय - हन् + अप् तस्मै। हन् को वध आदेश हो जाता है। सन्धेहि - सम् + धा + लोट् मध्यम पुरुष, एकवचन। निःस्पृहाः - निरस्ता स्पृहा येषां ते। बहुव्रीहि।

4.3.4 शान्ति की नीति की आलोचना

द्रौपदी किसी भी रूप में शान्ति का मार्ग अपनाना नहीं चाहती और न ही युधिष्ठिर के द्वारा ही

चाहती है। वह तो पराक्रमी पुरुष के हाथ में धनुष का अर्थ युद्ध ही जानती है। क्योंकि धनुष धारण करने वाले हमेशा युद्धोचित वार्ता ही करते तथा कभी भी शान्ति की बात नहीं करते आप जैसे योद्धा को भी यह शोभा नहीं देता।

पुरःसरा धामवतां यशोधनाः

सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम्।

भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिं

निराश्रया हन्त! हता मनस्विता ॥ 43 ॥

अन्वय- धामवतां पुरःसराः यशोधनाः भवादृशाः सुदुःसहं ईदृशं निकारं प्राप्य रतिम् अधिकुर्वते चेत्, हन्त, निराश्रया मनस्विता हता।

हिन्दी अनुवाद- तेजस्वियों में अग्रणी, कीर्ति को ही धन मानने वाले आप जैसे लोग यदि इस दुःसह अवज्ञा का अनुभव करके सन्तोष कर लें, (तब) बड़े कष्ट की बात है कि आश्रयरहित (होकर) मनस्विता नष्ट हो जाएगी।

व्याख्या- द्रौपदी युधिष्ठिर को प्रतीकार के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि आप (युधिष्ठिर) तेजस्वियों में अग्रगण्य हैं। यश ही आप का सर्वस्व है, फिर भी आप अपशब्द-प्रयोग, राज्यापहरण, वनवास आदि के रूप में शत्रुकृत पराभव का अनुभव करके शान्त बैठे हुए हैं। यदि आप जैसा व्यक्ति भी पराभव सह ले, तो इसका अर्थ यह है कि स्वाभिमान नाम का कोई पदार्थ रह ही नहीं गया। क्योंकि स्वाभिमानी के पास ही स्वाभिमान रहेगा या स्वाभिमान के कारण ही कोई स्वाभिमानी कहा जाता है। आपके पास स्वाभिमान नहीं है। इसीलिए आप स्वाभिमानी नहीं रह गये हैं। किन्तु यदि आप जैसे लोगों के पास भी स्वाभिमान नहीं रहेगा तो उसे और कहाँ आश्रय मिलेगा? क्या यह समझ लिया जाय कि अब स्वाभिमान का अस्तित्व ही नहीं है।

शब्दरचना- धामवतां - धाम अस्ति एषाम् इति धामवन्तः, तेषाम्। बहुव्रीहि। धामन् + मतुप्, के स्थान कर वतुप्। पुरःसराः - पुरः सरन्ति इति पुरःसराः, पुरस् +सृ + ट। सुदुःसहम् - अतिशयेन दुःसहं सुदुःसहम्। प्रादि तत्पुरुष। निकारम् - नि + कृ + घञ्, तम्। मनस्विता - प्रशस्तं मनः अस्य अस्ति एषाम् इति मनस्विन्ः, मनस्विनां भावो मनस्विता। मनस् + विनि मनस्विन्, मनस्विन् + तल् + टाप्।

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम-

चिराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।

विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं

जटाधरः सज्जुहुधीह पावकम् ॥ 44 ॥

अन्वय- अथ निरस्तविक्रमः चिराय क्षमाम् एव सुखस्य साधनं पर्येषि (तर्हि) लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं विहाय जटाधरः सन् इह पावकं जुहुधि।

हिन्दी अनुवाद- यदि (आप) पराक्रम का परित्याग कर एकमात्र क्षमा को ही सुख का साधन

मान बैठे हैं, तो राजस्व का बोध कराने वाले (राज चिह्नस्वरूप) इस धनुष् को छोड़कर जटा धारण कर लीजिए और इसी वन में आग में आहुति डालते रहिए।

व्याख्या- द्रौपदी आगे कहती है - यदि आपने क्षमा को ही सुख का साधन मान लिया है और इसीलिए पराक्रम की उपेक्षा कर रहे हैं तो राजचिह्न स्वरूप इस धनुष् का भी परित्याग कर दीजिए। वेश क्षत्रिय का और कार्य ऋषि का, यह संगति उचित नहीं। अपना वेश भी बदल दीजिए। जटा धारण कर लीजिए और इसी वन में रहकर आग में हवन करते रहिए। भाव यह है कि आप क्षत्रिय हैं, राजा हैं, तपस्वी नहीं है। अतः आपको क्षत्रियोचित पराक्रम प्रदर्शित करना चाहिए। यहाँ काव्यलिंग अलंकार हैं।

शब्दरचना- निरस्तविक्रमः - निरस्तः विक्रमः येन सः निरस्तविक्रमः। बहुव्रीहि। पर्येषि - परि+इ +लट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन। लक्ष्मीपतिलक्ष्म - लक्ष्म्याः पतिः लक्ष्मीपतिः। षष्ठी तत्पुरुष। तस्य लक्ष्म लक्ष्मीपतिलक्ष्म। षष्ठी तत्पुरुष। जुहुधि - हु + लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन।

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते

निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।

अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशा

विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि ॥ 45॥

अन्वय- परेषु निकृतिपरेषु भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणं न क्षमम्। हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

हिन्दी अनुवाद- (हे राजन्) जब शत्रु अपकार करने में लगे हैं, तब महान् तेजस्वी आपके लिए शर्त का पालन उचित नहीं है। क्योंकि विजयाकांक्षी राजा शत्रुता की स्थिति में किसी ब्याज से सन्धि में दोष उत्पन्न कर देते हैं।

व्याख्या- द्रौपदी इस श्लोक में गम्भीर राजनीतिक रहस्य का आश्रय लेकर युधिष्ठिर को प्रतीकार के लिए प्रेरित कर रही है। उसका कहना है कि शत्रु तो आपका अपकार करने में लगे हुए हैं और आप द्यूत की शर्त के अनुसार 'तेरह वर्ष' की अवधि की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसा करने से आप दुर्बल और शत्रु प्रबल होंगे। अतः आपके लिए शर्त का अनुपालन उचित नहीं है। नीति भी यही कहती है कि मित्र जब शत्रु बन जाय तो मित्रता की स्थिति में की गई सन्धि को राजा किसी न किसी बहाने से भंग कर देते हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि विजय की आकांक्षा सामर्थ्य पर निर्भर है। सामर्थ्य न होने पर विजय की आकांक्षा का कोई अर्थ नहीं है। सामर्थ्य रहने पर यदि विजय की आकांक्षा है, तब सन्धि को तोड़ना आवश्यक है। सामर्थ्य पर भी यदि विजय की आकांक्षा नहीं है, तो सन्धि को तोड़ना व्यर्थ है। यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

शब्दरचना- निकृतिपरेषु - निकृतिः परं येषां ते निकृतिपराः, तेषु। बहुव्रीहि। भूरिधाम्नः - भूरि धाम यस्य सः भूरिधामा, तस्य। बहुव्रीहि। समयपरिरक्षणम् - समयस्य परिरक्षणम् समयपरिरक्षणम्। षष्ठी तत्पुरुष। सोपधि - उपधीयते इति उपाधिः, तेन सह वर्तमानम्। बहुव्रीहि। उपाधिः - उप + धा + क्रि। सन्धिदूषणानि - सन्धेः दूषणानि, तानि। षष्ठी तत्पुरुष।

टिप्पणी- महाकाव्य के लक्षण के अनुसार यहाँ छन्द बदल दिया गया है। इसके पूर्व पूरे सर्ग में वंशस्य छन्द है। यहाँ पुष्पिताग्रा छन्द है। इसका लक्षण है - अयुजि नयुगरेफतो यकारों युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। प्रथम और तृतीय चरण में क्रमशः दो नगण, एक रगण तथा यगण होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण में क्रमशः एक नगण, दो जगण, एक रगण तथा अन्त में एक गुरु वर्ण होता है।

विधिसमयनियोगादीप्तिसंहारजिह्वं

शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्योधौ।

रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ

दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः ॥ 46 ॥

अन्वय- विधिसमयनियोगात् अगाधे आपत्योधौ मग्नं दीप्तिसंहारजिह्वं शिथिलवसुं रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानं त्वां दिनादौ दिनकृतम् इव लक्ष्मीः भूयः समभ्येतु।

हिन्दी अनुवाद- दैव और काल के प्रभाव से दुस्तर विपत्ति-सागर में पड़े हुए, प्रताप के नष्ट हो जाने से खिन्न, धन-वैभवरहित, शत्रुओं का नाश करके अभ्युदय प्राप्त करने वाले आपको पुनः लक्ष्मी प्राप्त हो, जैसे दैव और काल के प्रभाव से विपत्ति-समुद्र में डूबे हुए, तेज के नष्ट हो जाने से प्रकाशहीन, नष्ट किरणों वाले शत्रुसदृश अन्धकार को नष्ट करके उदित होते हुए सूर्य को प्रातःकाल लक्ष्मी प्राप्त होती है।

व्याख्या- इस श्लोक में द्रौपदी प्रतापहीन युधिष्ठिर को आश्वस्त करती हुई उनके अभ्युदय की कामना करती है। कवि-प्रसिद्धि है कि सूर्य सायंकाल समुद्र में डूब जाता है और पुनः प्रातःकाल निकलता है। युधिष्ठिर की स्थिति डूबे हुए सूर्य की भाँति है, किन्तु जिस प्रकार सूर्य का उदय अवश्यम्भावी है, उसी तरह युधिष्ठिर का अभ्युदय भी अवश्यम्भावी है। इसीलिए द्रौपदी शुभाशंसा करती है कि जिस प्रकार उदीयमान सूर्य लक्ष्मी सम्पन्न होता है, उसी तरह आप भी लक्ष्मी-सम्पन्न बनें।

यहाँ श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा अलंकार है। मालिनी छन्द है। मालिनी छन्द का लक्षण है- ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः। सर्गान्त होने से यहाँ छन्द परिवर्तित है।

शब्दरचना- विधिसमयनियोगात् - विधिश्च समयश्च इति विधिसमयौ। द्वन्द्व। तयोः नियोगः, विधिसमयनियोगः, तस्मात्। षष्ठी तत्पुरुष। अगाधे - न गाधः अगाधः, तस्मिन्। नञ् तत्पुरुष। दिनस्य आदिः दिनादिः, तस्मिन्। षष्ठी तत्पुरुष। दिनं करोति इति दिनकृत्, तम्। उपपद तत्पुरुष। दिन + कृ + क्विप्।

बोध प्रश्न .2

बहुविकल्पीय प्रश्न-

क. क्षत्रियोचित व्यवहार का वर्णन किस श्लोक में किया गया है

(क) 40 (ख) 41

(ग) 43 (घ) 44

ख. अन्तिम छन्द के रूप में प्रयोग किया गया है।

- (क) पुष्पिताग्रा (ख) मालिनी
(ग) मन्द्राक्रान्ता (घ) शिखरिणी

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(ग) सर्ग की समाप्ति में..... शब्द का प्रयोग किया गया है।

(घ) समूल मुन्मूलयतीव में मनः में अलंकार है।

नीचे के वाक्यों के समक्ष सही (✓) तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (x) का निशान लगाये-

(ड) संयम के द्वारा शत्रुओं को जीतकर राजा सिद्धि प्राप्त करते है। ()

(च) राजा, शत्रुता की स्थिति में किसी व्याज से सन्धि में दोष उत्पन्न कर देते है। ()

4.5 सारांश

राजा कितना भी प्रजा के प्रति अव्यवहार प्रकट करे किन्तु अपने प्रिया रूपी राजलक्ष्मी को अपहृत होते नहीं देख सकता। जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता उसकी अधीनता लोग स्वयं स्वीकार कर लेते है किन्तु जो क्रोध करना जानता ही नहीं उसे न तो स्वजनों का आदर मिलता है, न कोई शत्रु उससे भयभीत होता है। इस प्रकार के अनेक स्वरूपों का चित्रण करते हुए द्रोपदी अपने पति युधिष्ठिर को शान्ति का मार्ग छोड़कर युद्ध के लिये तैयार करने का प्रयास कर रही है। जिसका सजीव चित्रण भारवि ने प्रस्तुत किया है। एक राजा को अपने कर्तव्यों का जिस रूप में निर्वहण करना चाहिए कवि ने इसका प्रदर्शन बड़ी कुशलता से प्रदर्शित किया है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप द्रोपदी के कथनों से अवगत हो सकेंगे, जिसकी सहायता से द्रोपदी युधिष्ठिर को युद्ध का मार्ग, शान्ति के मार्ग को छोड़कर अपनाने के लिये कहती है। इस प्रकार आप कवि के कवित्व से भी परिचित हो सकेंगे।

4.6 शब्दावलियाँ

1. कुलाभिमानी - अपने कुल पर अभिमान करने वाला
2. गर्हित - निन्दित
3. वल्कवासांसि - वल्कल वस्त्र
4. वनान्तशय्याकठिनी कृताकृती - वन भूमि पर सोने से कठिन शरीर वाले
5. निराश्रया - आश्रय रहित

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1.

- क. ख
ख. ग

- ग. कठिनी
घ. चित्त वृत्तयः
ङ. सही

बोध प्रश्न 2.

- क. ख ख. ख ग. लक्ष्मी घ. उत्प्रेक्षा ङ.सही च. सही

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि - किरातार्जुनीयम्
2. वामन शिवराम आपटे - संस्कृत - हिन्दी शब्दकोश ।

4.8 अन्य उपयोगी पुस्तकें

1. काव्य प्रकाश - आचार्य लस्मत ।
2. साहित्य दर्पण - आचार्य विश्वनाथ ।
3. छन्दोलंकार मंजरी - डा0 बाके लाल मिश्र ।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. द्रोपदी के कथनों की समीक्षा कीजिए ।
2. भारवि के विषय-विवेचना पर प्रकाश डालिए ।

इकाई 5. प्रथम सर्ग के महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 वनेचर द्रौपदी की उक्तियाँ
 - 5.3.1 वनेचर की उक्ति
 - 5.3.2 द्रौपदी की उक्ति
- 5.4 भारवेऽर्थगौरवम् की व्याख्या
- 5.5 प्रथम सर्ग के महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या
 - 5.5.1 वनेचर द्वारा कथित सूक्तियाँ
 - 5.5.2 द्रौपदी द्वारा कथित सूक्तियाँ
- 5.6 सारांश
- 5.7 शब्दावली
- 5.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.10 अन्य उपयोगी पुस्तकें
- 5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पद्य काव्य किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग के अध्ययन से संबंधित यह पॉचवी इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग का ही अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में प्रथम सर्ग में आयी हुई महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या आप के अध्ययनार्थ प्रस्तुत की गई है।

वनेचर से भारवि ने जितनी भी बातें कहलवायी, या फिर द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर के प्रति कथन, सभी शब्द अपनी अर्थ गम्भीरता से पूर्ण पुष्ट है। भारवि ने अपने शब्दों से जो चाहा है बड़ी ही कुशलता से स्पष्ट रूप में प्रस्तुत कराया है। प्रथम सर्ग में कुल 12 सूक्तियाँ हैं और बारहों सूक्तियों में जो स्वरूप और व्यक्तित्व का चित्रण भारवि ने किया है वही उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रकाशित करने के लिए पूर्णतया सामर्थवान है। भारवि का ग्रन्थ केवल उस कथा को ही नहीं, अपितु तत्कालीन समाज के स्वरूप को भी प्रस्तुत करने में सहायक रहा है। कवि अपनी काव्य - कौशल को भले तत्कालीन से अलग रखकर क्यों न प्रस्तुत करने का प्रयास किया हो परन्तु कहीं न कहीं उसकी छटा द्रष्टव्य जरूर हो जाती है, और भारवि भी इस रूप से नहीं बच पाये हैं।

अतः इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रथम सर्ग में प्रयुक्त संवादों में आयी हुई विभिन्न सूक्तियों के महत्व से परिचित होकर उनकी सम्यक् व्याख्या कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

- प्रथम सर्ग में वनेचर तथा द्रौपदी के द्वारा कहे गये वक्तव्यों को बता सकेंगे।
- बलवानों से विरोध का परिणाम दुःखद होता है इसे बता सकेंगे।
- विवेक से रहित पराजय पाता है इस तथ्य की पुष्टि कर सकेंगे।
- जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता वह विपत्तियों को भी नष्ट कर देता है, इस सूक्ति की सम्यक् व्याख्या बता सकेंगे।

5.3 वनेचर एवं द्रौपदी की उक्तियाँ

5.3.1 वनेचर की उक्ति

जुए में दूसरी बार पराजित होकर शर्तों के अनुसार युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा द्रौपदी के साथ द्वैतवन में निवास करने लगे। वहाँ निवास करते हुए उन्होंने एक चतुर वनवासी किरात को दुर्योधन की प्रजा के प्रति नीति को जानने के लिए गुप्तचर बना कर भेजा। ब्रह्मचारी वेशधारी वनेचर दुर्योधन के राज्य का सभी वृत्तान्त जानकर युधिष्ठिर के पास लौटकर आया। उसने महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया और एकान्त में उनका आदेश पाकर शब्दसौष्ठव और

अर्थगाम्भीर्य से युक्त वचन कहने लगा ' हे महाराज, कार्य में लगाये गये सेवकों का यह कर्तव्य है कि वे स्वामियों को धोखा न दें, क्योंकि स्वामी लोग सेवकों के माध्यम से ही सभी कुछ जानते हैं, अतः मेरे कथन में यदि कुछ अप्रिय बात हो तो उसे क्षमा करेंगे, क्योंकि हितकारी और मनोहर वचन दुर्लभ होते हैं, जो मंत्री राजा को उचित उपदेश नहीं देता, वह कुत्सित होता है और जो जो राजा हितैषी मन्त्री की बात नहीं सुनता वह राजा ,राजा नहीं होता । मंत्रियों और राजाओं में परस्पर अनुकूलता होने पर ही राज्य की समृद्धि होती है । राजाओ का चरित्र दुर्बोध होता है, मेरे जैसा मंदबुद्धि व्यक्ति उसे भला कैसे जाने सकता है? फिर भी शत्रुओं के गुप्त रहस्यों का जो कुछ भेद मैं पा सका, वह आपका ही प्रभाव है । सिंहासन पर आसीन होकर भी दुर्योधन आपसे भयभीत है और पराजय की आशंका करता है, अतः कपट से जीते गए राज्य को उत्तम नीति का आचरण कर अपने वश में करने के लिए प्रयत्नशील है । कुटिल होते हुए भी वह गुणों का अर्जन करके अपनी कीर्ति का विस्तार कर रहा है । काम क्रोधादि मानसिक विकारों को जीत कर वह मनु द्वारा प्रतिपादित राजधर्म के मार्ग पर चलने का प्रयत्न कर रहा है और दिन तथा रात्रि विभाजन कर, आलस्य त्याग कर अपने प्रभाव को बढ़ा रहा है । सेवकों के साथ मित्रों की तरह, मित्रों के साथ संबंधियों की तरह एवं संबंधियों के साथ आत्मीयों की तरह व्यवहार कर राज्य के सभी वर्ग को सम्मान देता है, सभी में संतोष है । धर्म, अर्थ और काम का समान रूप से सेवन करता है और ये सभी दिन-दूने रात चौगुने से प्रयोग करता है। मुधर वचन से लोगों को अपने वश में करने के लिए दान देता है; दान के साथ यथोचित सत्कार करता है । विशेष रूप से सत्कार भी गुणों के आधार पर ही करता है ।

न्यायपालन में भी वह निष्पक्ष है और केवल कर्तव्य - पालन की भावना से अपराध करने पर शत्रु को और पुत्र को भी दण्ड देने में नहीं हिचकता । धन के लाभ या क्रोध के वशीभूत होकर ही किसी को दण्ड नहीं देता । शत्रुओ में भेद डालने में चतुर स्वजनों को रक्षक नियुक्त कर उनके ऊपर शंका करता हुआ भी वह शंकारहित सा आचरण करता है, सेवक जब उसका कार्य पूरा कर देते है, तो उन्हें प्रचुर धन देकर अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करता है। सभी उपायों का दुर्योधन ने सुंदर ढंग से विनियोग किया है और वे सुंदर परिणाम उत्पन्न कर रहे है, उसकी समृद्धि का भविष्य उज्ज्वल बना रहे हैं । धनसम्पति उसके पास इतनी प्रचुर है कि उसके सम्भाव का आंगन घोड़ों और रथों से खचाखच भरा है तथा कर देने वाले राजाओं द्वारा उपहार में दिये गये हाथियों के मदस्त्राव से गीला हो गया है। कृषकवर्ग भी खुशहाल और बिना परिश्रम के ही नदियों से सिंचाई करके फसल पा रहे हैं । किसी के ऊपर आश्रित नहीं क्योंकि दुर्योधन उनकी भलाई करने में तत्पर है । पृथ्वी उसके गुणों के कारण एक दुधारू गाय की तरह अनेक प्रकार के धन उत्पन्न कर रही है । उसके सैनिक भी अनुकूल हैं । वीर, यशस्वी, धनुर्धारी योद्धा बिना किसी गुटबंदी और पारस्परिक विरोध के उसका प्रिय कार्य करने में प्राणों की बाजी लगाकर जुटे हुए हैं । स्वामिभक्त दूतों के द्वारा वह अपने अधीन राजाओं की सभी बातों को जान लेता है । उसकी योजनाएं इतनी गोपनीय रहती हैं कि कार्य हो जाने के बाद ही पता चलता है कि दुर्योधन क्या चाहता था। सभी राजा उनके मित्र हो गए हैं । उसे धनुष उठाने की या क्रोध से भौंह टेढ़ी करने

की भी आवश्यकता नहीं है। राजागण उसकी आज्ञा को फूलों की माला की तरह शिरोधार्य करते हैं। इन सबके अलावा वह धर्म कर्म में भी लगा हुआ है। अपने अनुज नवयुवक दुःशासन को युवराज बनाकर पुरोहित के आदेश से यज्ञ भी कर रहा है किन्तु इन सबके बावजूद निष्कण्टक पृथ्वी का शासक होकर भी आपसे पराजय की आशंका करके वह भयभीत है। इसका प्रमाण यह है कि यदि सभा में वार्तालाप में आपका नाम ले लेता है, तो अर्जुन के अतुल पराक्रम का ध्यान कर वह दुःखी हो जाता है और अपना सिर लटका लेता है। वह आपके साथ कुटिलता करने में तत्पर है, अतः आप उसका प्रतीकार कीजिए।

इस प्रकार कहकर और युधिष्ठिर से पुरस्कार आदि के रूप में सत्कार प्राप्त कर वनेचर चला गया। युधिष्ठिर ने भी महल में प्रवेश करके द्रौपदी एवं भाइयों के सामने वनेचर द्वारा बताया गया सारा वृत्तान्त कह सुनाया। शत्रुओं की समृद्धि का समाचार सुनकर द्रौपदी अपने मनोवेग को रोक न सकी और युधिष्ठिर के क्रोध को भड़का कर शत्रु से बदला लेने के लिए प्रेरित करती हुई कहने लगी-

5.3.2 द्रौपदी की उक्ति

हे राजन्! आप जैसे विज्ञ लोगों के प्रति स्त्री का कुछ कहना तिरस्कार के समान है, फिर भी मेरे मन की व्यथाएं मुझे नारी के उचित व्यवहार को भूलकर कुछ कहने पर बाध्य कर रहीं हैं। अपने इन्द्रतुल्य पराक्रमी पूर्वजों द्वारा चिरकाल तक अधीन की गई पृथ्वी को तुमने वैसे ही त्याग दिया है, जैसे मदस्त्रावयुक्त हाथी माला को फेक देता है। जो लोग छल करनेवालों के प्रति छल नहीं करते, वे धूर्तों का शिकार बन जाते हैं। धूर्त उनके रहस्यों का भेद लेकर उन्हें नष्ट कर देते हैं। गुणों से अनुरक्त अपने कुल में उत्पन्न अपनी वधू जैसी राजलक्ष्मी का शत्रुओं के द्वारा अपहरण करानेवाला आपके सिवा भला और कौन होगा? आप इस मानिजनों द्वारा निन्दित मार्ग में चल रहे हैं, आपके क्रोध की अग्नि अब भी क्यों नहीं भड़कती? जिस व्यक्ति का क्रोध खाली नहीं जाता, उसके अधीन सभी हो जाते हैं। जिसमें क्रोध नहीं, उसकी मित्रता या शौक से लालचन्दन लगाते थे, अब वे ही धूल-धूसरित होकर पर्वत में इधर-उधर भटकते हैं। इन्हें देखकर आपके मन में दुःख नहीं होता क्या? जिस धनंजय ने उत्तर कुरु देश को जीतकर सोने चांदी की महान राशि लाकर दी थी, उसे अब वल्कल वस्त्र ढोते देखकर भी आपको शत्रु पर क्रोध नहीं आता? वन की भूमि पर सोने से जिनके शरीर कठोर हो गये हैं और बाल बढ़ गये हैं, ऐसे में दोनो जुड़वाँ भाईयों-नकुल-सहदेव को देखकर भी आप धैर्य और संयम को छोड़ने का साहस भला क्यों नहीं करते? मैं तुम्हारी इस बुद्धि को नहीं समझ पा रही हूँ। सचमुच लोगों की मनोवृत्तियाँ अजीब होती हैं। मैं जितना ही आपकी इस घोर विपत्ति के बारे में सोचती हूँ, मेरा हृदय उतना ही बलात् विदीर्ण होता है। आप अपनी हालत तो देखिए; जो पहले बहुमूल्य पलंग पर सोने के बाद बन्दियों के स्तुति और मंगल गीतों को सुनकर जागते थे। वहीं अब कुश-कण्टक वाली भूमि पर सियारिनियों के अशुभ शब्द सुनकर निद्रा छोड़ते हैं। आपका यह शरीर जो पहले ब्राह्मणों को खिलाने के बाद बचे हुए अन्न खाने से पुष्ट और सुन्दर दिखाई पड़ता था, वही अब जंगली फल-मूल खाने से दुबला होता जा रहा है। ये चरण जो पहले मणिपीठ पर रहते थे और प्रणाम करने वाले राजाओं

के सिर की मालाओं के पराग रंजित होते थे, वे ही अब कटे हुए कुशों के बीच रहते हैं, यह हालत शत्रुओं ने कर रखी है, इसी कारण मेरा मानों समूल उखड़ जा रहा है। शत्रु द्वारा पराजय भी मानी लोगों को बुरी नहीं लगती। राजन्! अब शान्ति छोड़िए। क्षत्रियों के तेज को धारण कीजिए। शान्ति का अवलम्बन करके निष्काम मुनि लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा लोग नहीं। आप जैसे तेजस्वियों में अग्रणी व्यक्ति यदि इस प्रकार का अपमान सहकर संतोष करके बैठ जाये, तो इस संसार से मनस्विता समाप्त हो चुकी। यदि क्षमा और शान्ति को ही हमेशा के लिए सुख का साधन मानते हो, तो धनुष फेंककर जटाएं धारण कर लो और यहां वन में बैठकर अग्नि में आहुति करो। शत्रु अपकार करने में लगा है, इसलिए तुम्हें अत्यंत तेजस्वी होते हुए, समय की प्रतीक्षा करने और शर्त का पालन करने की आवश्यकता नहीं। विजय चाहनेवाले राजा किसी बहाने संधि को तोड़कर शत्रु से बदला लेते हैं। दैव और समय के नियम से आपत्ति के समुद्र में पड़े हुए धन और साधनहीन होने के बाद उन्नति के लिए प्रयत्न करते हुए आपको राजलक्ष्मी उसी प्रकार प्राप्त होवे, जैसे रात्रि के अंधकार से निकलते हुए सूर्य को तेज मिलता है।

5.4 भारवेऽर्थगौरवम् की व्याख्या

संस्कृत के आलोचना जगत में भारवि अपने अर्थ गौरव के निमित्त नितान्त प्रख्यात है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थों की अभिव्यक्ति को हम अर्थगौरव की कसौटी मानते हैं। अपने अभिव्यंजनीय भावों के प्रकटीकरण के लिए कवि उतने ही शब्दों को चुनता है जितने उस कार्य के लिए आवश्यक होते हैं। भारवि का अर्थ गौरव उनकी गंभीर अभिव्यंजना शैली का फल है और इस शैली में शब्द तथा अर्थ दोनों के सुडौलपन की स्निग्धता है। भारवि गंभीर व्यक्तित्व से पण्डित महाकवि है। उनकी कविता में भावों की उदारता है। मानव हृदय के भीतर प्रवेश कर उसके अंतराल में पनपने वाले भावों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उनके प्रकटीकरण की महनीय शक्ति का अभाव उसकी काव्यकला में भले ही विद्यमान हो परन्तु लोक संबंध तथ्यों के विवरण देने में वे सर्वथा कृतकार्य हैं।

अर्थ - गौरव की कमनीयता का उदय श्लेषालंकार के अभ्युदय के कारण अनेक स्थलों पर दृष्टि गोचर होता है। श्लेषानुप्राणिता उपमा को प्रदर्शकारी यह प्रख्यात पद्य अर्थगौरव का चमत्कारी दृष्टान्त प्रस्तुत करता है:-

कथा प्रसंगेन जनैरूदाहृतादनुस्मृता खण्डलसुनुविक्रमः।

तवाभिधानाद्व्यथते नताननः सुदुः सहान्मंत्रपदादिवोरगः॥

जिस प्रकार सौंप विषवैध के द्वारा उच्चरित गरूड़ और वासुकी के नामों से युक्त अत एव असह्य मंत्र पद से गरूड़ के पराक्रम का स्मरण कर नतमस्तक हो जाता है उसी प्रकार जनसमूह में चर्चा के अवसर पर दुर्योधन आप का (युधिष्ठिर का) नाम सुनकर इन्द्रपुत्र अर्जुन के पराक्रम का स्मरण कर अपना सिर (लज्जा और सन्ताप के कारण) झुका लेता है। इस पद्य के कतिपय 12 श्लिष्ट पद अर्थ गौरव की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं - (1) तवाधिनात् तुम्हारे नाम से; त (ताक्षर्य, गरूड़) तथा व (वासुकी) के नाम धारण करने वाला एकदेश के ग्रहण से पूरे नाम का ग्रहण होता है। इस

न्याय से 'तव' शब्द ताक्षर्य तथा वासुकि का वाचक माना गया है।

(2) आखण्डलसुनुविक्रमः-इन्द्र के सुनु (पुत्र-अर्जुन) के विक्रम (पराक्रम) का स्मरण करने वाला; इन्द्र के सुनू (अनुज- विष्णु)के वि (पक्षी-गरूड़) के क्रम (पादविक्षेप) का स्मरण करने वाली। फलतः सभंगश्लेष की महिमा से संपन्न होने के कारण कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थों का समावेश इस पद को सौष्ठव प्रदान कर रहा है।

विषमोपि विगाह्यते नयःकृततीर्थ पयसामिवाशयः।

स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृतवर्त्म यः ॥

जिस प्रकार विषम-गंभीर जलाशय सीढ़ी बना देने पर स्नान के योग्य वन जाता है उसी प्रकार समस्याओं की विकटता के कारण विषम नीतिशास्त्र योग्य विद्वान द्वारा व्याख्यात होने पर सुगमता से प्रवेश किया जा सकता है। इतना होने पर भी वह व्यक्ति विशेष दुर्लभ का प्रतिपादन सुलभ है। परन्तु पदनुसार व्यवहार का प्रतिपादन दुष्कर है।

परिणामसुखे गरीयसि व्यथ केऽस्मिन् वचसि क्षतेजसाम्।

अतिवीर्यवतीव भेषजे वहरल्पीयसि दृश्यते गुणः ॥

परिणाम में लाभपद्र, श्रेष्ठ क्षोणवल वाले रोगियों को (पाचन शक्ति का च्युनता के कारण) कष्ट प्रद, अत्यंत वीर्य से संपन्न अल्पमात्रा वाले रसायन में जिस प्रकार अनेक गुण दिखते हैं, उसी प्रकार परिणाम में हितकर सारगर्भित, क्षीणशक्ति वाले व्यक्तियों को सन्तापकारी, ओजस्वी एवं अल्पाक्षर द्रोपदी के वचन में अनेक (मर्यादारक्षण, राज्यलाभादि) गुण पाये जाते हैं। रसायन के गुण का प्रतिपादक यह गंभीरार्थक पक्ष नितान्त विशद तथा अंतरंग है।

सखीनिव प्रीतिपुजोऽनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।

स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु वन्धुताम् ॥

अहंकार रहित वह सदा भृत्यों को प्रेमी मित्रों की भांति कुटुम्बियों की तरह आदरयुक्त और कुटुम्बीवर्ग को (अपने) स्वामी की भांति (लोगों को) दिखलाता है।

कृत प्रणामस्य महीं महीभुजे जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।

न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं प्रवक्तु मिच्छन्ति मृषा हितैषिणः॥

प्रणाम किए हुए जुए में शत्रु के द्वारा जीती गई पृथ्वी का वृतान्त राजा से कहते हुए उनका मन व्यथित नहीं हुआ। क्योंकि हिताकांक्षी व्यक्ति असत्य प्रिय वचन कहना नहीं चाहते ॥

भारवि की शास्त्रगत व्युत्पत्ति के अतिरिक्त लोकानुभव का प्रकृष्ट परिचय उनकी सूक्तियों में प्राप्त होता है। उनके सुभाषित शास्त्रों के पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित है उनमें नीति, राजनीति तथा सामान्य जीवन से संबद्ध सूक्तियों का भंडारगार है। इन सभी में 'अर्थान्तरन्यास' अलंकार निहित है। इन्हीं सूक्तियों में अर्थ गौरव की महत्ता अंकित करके सहृदय समीक्षकों ने यह उक्ति प्रचलित कर दी है - भारवेरर्थ गौरवम्। यहां कुछ सामान्य सूक्तियों के उदाहरण दिये जा रहे हैं -

(1) हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः (1/4) ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हितकर होने के साथ मन के

अनुकूलन भी हो ।

- (2) समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद वरं विरोधोऽपि समं महात्माभिः (1/8) नीचों की संगति की अपेक्षा बड़े लोगों से विरोध कहीं अच्छा है। क्योंकि उनसे ऐश्वर्य की सिद्धि होती है ।
- (3) अहो दुरन्ता वलवद्विरोधिताः (1/23) बलवान व्यक्तियों से विरोध करने पर अन्त तो कष्टकर होगा ही ।
- (4) वसन्ति ही प्रेमिणि गुणानवस्तुनि (8/37) प्रेम में गुण वसते हैं । किसी भी भौतिक पदार्थ में नहीं ।
- (5) अपातटम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (11/12) इन्द्रियों के विषयों को तो अपनी प्राप्ति के ही समय अच्छे लगते हैं । आन्तिभावस्थाप में वे सन्तापही देते है ।
- (6) सुलभा रम्यता लोके दुर्लभा ही गुणार्जनम् (11/11) संसार में सौन्दर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है। किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है ।
- (7) सहसा विदधीत न क्रियाम् (2/30) विना विचारे आर्थात् अकस्मात् कोई कार्य नहीं करना चाहिए ।
- (8) आविज्ञातेऽपि बन्धव ही बलात्प्रह्लादते मनः (11/8) अपने बान्धव को कोई न भी पहचान पाये तथापि उसे देखकर मन में प्रबल हर्षोद्रेक होता ही है ।
- (9) दूरधिगमा ही गति व प्रयोजनानाम् (10/40) किसी उद्देश्य का अन्तिम परिणाम क्या होगा यह जानना कठिन है ॥
- (10) आत्मवर्गाहितमिच्छति सर्वः (8/64) सभी लोग अपने वर्गका हित चाहते हैं।
- (11) यथोत्तरेक्षा ही गुणेषु कामिनः (8/4) कामी जन सदा गुणों की क्रमशः अधिकता की खोज करते रहते है ।
- (12) मात्सर्यरागोपहतात्मनां ही स्खलन्ति साधुश्चपि मानसानि (3/53) ईर्ष्या-ग्रस्त व्यक्तियों के चित्त सज्जनों के प्रति द्वेषयुक्त ही रहते हैं ।
- (13) वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः (9/16) सभी लोग निरापद स्थान पर रहना चाहते है ।

भारवि राजनीति के विशिष्ट ज्ञाता है । इसलिये तद्विषयक सूक्तियाँ भी उन्होंने अनेकानेक दिये है जैसे -

- (1) प्रकर्षतन्या ही रणे जय श्रीः (3/17) युद्ध में विजय की प्राप्ति पराक्रम ही आश्रित होती है ।
- (2) तेजोविहीन विधहाति दर्पः (17/16) निस्तेज व्यक्ति के पास स्वाभिमान कहीं से होगा ।
- (3) अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहादेन विद्विषादरः (1/33) क्रोध शून्य व्यक्तिका न मित्रही आदर करता है न शत्रु ही डरता है ।
- (4) ब्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषुयेनमायिनः (1/30) वे मूर्ख अवश्य ही पराजय पाते है जो मायावियों के प्रति माया का प्रयोग नहीं करते।
- (5) प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्य समुन्नतिं यथा (2/21) बड़े राजाओं का यह स्वभाव है जिसके कारण वे दूसरे के अभ्युदय को सह नहीं पाते ।

किरातर्जुनीयम् के द्वितीय सर्ग में नीति से पूर्ण अनेक पद्य है जैसे-ननु वक्तृ विषेशानिः

स्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः (2/5) अर्थात् विद्वान् लोग किसी के वाणी के गुणों का ग्रहण करते हैं वे यह नहीं देखते कि यह किस वक्ता की वाणी है (सभी की बात है या पुरुष की) अर्थ गौरव से सम्पन्न यह पद्य बहुधा उद्धृत किया जाता है-

असक्त माराधयतो यथायथं विभज्य भक्त्या समपक्षपातया ।

गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान् न वाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम् ।

निःसंदेह विचारों एवं भाषा की स्फूर्ति एवं उच्चकोटि की अभिव्यक्ति में भारवि को अनूठी सफलता मिली है। भले ही कल्पना का वैभव, कोमलता, भावुकता एवं गीतिकाव्य की मधुरता में महाकवि कालिदास भारवि से बहुत आगे है। परन्तु अपने बाद के कलावादी कवियों माघ या श्री हर्ष की तुलना में भारवि अनेक दृष्टियों से अधिक प्रशंसा के पात्र है। पण्डितों में यह उक्ति है कि भारवि से माघ बढ़कर कर है तथा माघ ने भारवि के प्रभाव को कम करने के लिए अपने काव्य की रचना की थी।

तावद् भा भारवेभाति यावन्माद्य ।

उदिते च पुनर्माधे भारवेरभा रवेरिव ॥

किन्तु माघ के काव्य में अस्वाभाविकता, शुष्कता, कृत्रिमता और अधिक बढ़ गयी है। उन्होंने भारवि का ही अनुकरण किया है। कालिदास के बाद भारवि दूसरे स्थान के उच्च अधिकारी हैं इसमें संदेह नहीं। थोड़े शब्दों में भाव का अनन्त सागर भर देते हैं-अर्थात् गागर में सागर भरना उन्हें आता है भारवि की इन्हीं गुणों की प्रशंसा करते हुए कृष्णकवि ने लिखा है कि -

प्रदेषतृत्यापि महान्तमर्थं प्रदर्शयन्त्री रसमादधान ।

साः भारवेः सत्यथदेपिकेव रम्याः कृतिः कैरिवनोपजीव्य ॥

अर्थात् रसभाव से भरपूर सत्यर्थ को प्रकाशित करने वाली दीपिका के समान भारवि की वाणी किसके लिये उपजीव्य नहीं है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति उससे मार्ग दर्शन कर सकता है।

उनकी इसी विशेषता को मल्लिनाथ के 'नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः' कह कर व्यक्त किया है। डॉ. भोलाशंकर व्यास ने यहाँ तक कहा है कि-“कालिदास की कविता में द्राक्षीपाक है, अँगूर के दाने की तरह मुँह में रखते ही रस की पिचकारी फूट पड़ती है। जबकी भारवि के काव्य में नारिकेलपाक है जहाँ नारियल को तोड़ने की सख्त मेहनत के बाद उसका रस हाथ आता है और कभी - कभी तो उसे तोड़ने की सख्त मेहनत के बाद इधर-उधर जमीन पर वह चला जाता है और उसमें बहुत थोड़ा वचा - खुचा सहृदय की रसना का आस्वाद्य बनता है।

निष्कर्ष यह है कि भारवि की प्रमुखता वर्णनात्मक तथा तार्किक प्रसंगों में विशेष है। लयसमन्वित गीति-काव्योचित माधुर्य का उनमें अभाव है। वे हिमालय के वर्णन में तथा राजनीतिक समस्याओं, तार्किक समस्याओं के समाधान में जितने समर्थ हैं, उतने किसी कोमल भावों की अभिव्यजना में नहीं। अलंकृत पदावली का विन्यास भारवि का निजी क्षेत्र है-असंशय तथा चमत्कारी वैशिष्ट्य।

5.5 प्रथम सर्ग के महत्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या

5.5.1 वनेचर द्वारा कथित सूक्तियाँ

न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः । 2 ।

अन्वयः-हि हितैषिणः मृषा प्रियं प्रवक्तुं न इच्छन्ति ।

शब्दार्थः- हि - क्योंकि, हितैषिणः = हित चाहने, मृषा = मिथ्या असत्य, प्रियं-प्रिय, प्रवक्तुं-कहने के लिये न इच्छन्ति नहीं चाहते ।

हिन्दी अनुवाद - क्योंकि हितैषी लोग असत्य प्रिय बात नहीं कहना चाहते हैं ।

व्याख्या - युधिष्ठिर के पास पहुँच कर उसे ब्रह्मचारी वेशधारी वनेचर ने में राजा को प्रणाम करने बाद अपने चित्त को बिना बिचलित किए सत्य कथन कहना प्रारम्भ किया क्योंकि राजा के समक्ष गुप्तचर का कर्तव्य होता है कि सत्य भाषण ही करे भले ही वह असत्य क्यों नहीं। सत्य बात कुछ क्षण के लिए मन को व्यथित कर सकती है परन्तु भविष्य में उठाये गये कदम उस पर आश्रित होकर ही उठेंगे। औषधी कड़वी होती है किन्तु स्वास्थ्य-प्रद होती है । उसी प्रकार हितैषी लोग हमेशा ही सत्य वार्ता ही प्रस्तुत करते हैं। असत्य और प्रिय बालेने वाले हितैषी नहीं कहे जा सकते क्योंकि वह असत्य और प्रिय वाणी भविष्य के लिए दुःख देने वाला ही होगा। इसलिए असत्य और प्रिय भाषण देने वाले लोग किसी का हित नहीं कर सकते। वनेचर भी इस बात से भली भाँति परिचित है इसलिए वह अपने राजा युधिष्ठिर को सत्य से ही अवगत कराना चाहता है जिससे कि युधिष्ठिर उस वार्ता को सुनकर सही नीति के साथ अपने कर्तव्य के लिए उद्धृत हो सके ।

2- हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

अन्वय - हितं मनोहारि च वचः दुर्लभम् ।

शब्दार्थः- हितं = कल्याणकारी, मनोहारी, च = और प्रिय, वचः = वचन, दुर्लभम् = दुष्प्राप्य होते हैं ।

हिन्दी अनुवाद- हित कर और मधुर (प्रिय लगने वाले) वचन दुर्लभ होते हैं ।

व्याख्या- राजभवनों में रहने वाले राजा लोग राष्ट्र का सम्पूर्ण हाल जानने में स्वयं असमर्थ हैं, वे अपने गुप्तचरों के द्वारा ही सब वृत्तान्त देखते या जानते हैं। अतः राजाओं के नेत्र गुप्तचर ही हैं । गुप्तचरों के द्वारा असत्य सूचना देने पर राजाओं का अन्धों की तरह विनिपात निश्चित है इसलिए राजा को ठीक-ठीक सूचना आकर देना सेवकों का कर्तव्य है राजा का भी कर्तव्य है कि वह सेवकों की निन्दा न करते हुए सेवकों द्वारा कहे गये वृत्तान्तों को ध्यान से सुने। सेवक द्वारा कहा गया वृत्तान्त अप्रिय भी हो सकता है । ऐसे में राजा को हितकारी और प्रिय वाणी के लिए कभी चिन्तित नहीं होना चाहिए । ये दोनों विपरीतार्थ और दोनों को एकत्र करना भी कठिन है । तथा कवि द्वारा कही गयी यह सूक्ति पूर्णतः नीतिपरक है कि हितकर और प्रिय वचन दुर्लभ होते हैं ।

3 - स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः सश्रृणुते स किं प्रभुः।

अन्वयः- यः अधिपं साधु न शास्ति सः किंसखा । यः हितात् न संश्रृणुते सः किं प्रभुः।

शब्दार्थः- यः - जो (मित्र, सचिव) , अधिपं = राजा को , साधु - उचित , नशास्ति -उपदेश नहीं देता है , स- वह, किंसखा = निकृष्ट मित्र होता है , कुत्सित मित्र है । यः = जो (स्वामी, राजा) हितात् = हितैषी व्यक्ति से (निर्दिष्टतथ्य को), न संश्रृणुते - नहीं सुनता है, सः = वह किंप्रभुः = कुत्सित स्वामी है, बुरा स्वामी है ।

हिन्दी अनुवादः-जो (परामर्श देने वाला) स्वामी को उचित परामर्श नहीं देता वह कुमित्र (बुरा मित्र) है जो (स्वामी) हितैषी से (हितवचन) नहीं सुनता वह निन्दनीय स्वामी है ।

व्याख्या - परामर्श दाता मन्त्री तथा राजा की परस्पर विश्वसनीयता ही समृद्धि का कारण है-इस राजनीतिक तथा लोकोपयोगी तथ्य का निरूपण इस सूक्ति में किया गया है । प्राणों पर आपत्ति आने पर भी अपने स्वामी के हित की बात कहना मित्र बने हुए अमात्य आदि का परम धर्म है और इस प्रकार के हितैषी अमात्यादि से उपदेश की बात सुनना राजा लोगों का भी परम कर्तव्य है। ऐसा होने पर ही राजा और मन्त्रियों में ऐकमत्य सम्भव है । तथा राज्य सम्पत्ति भी इनके अनुकूल होने पर ही वहाँ निवास करती है। जहाँ ये दोनों परस्पर विरोध उत्पन्न करते हैं वहाँ राजलक्ष्मी स्वयं नष्ट हो जाती है । अतः राजा अथवा मालिक का कर्तव्य है कि वह अपने हितैषियों की बातों को अथवा परामर्श को ध्यान से सुने तथा उस पर मंथन कर कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो तथा परामर्श दाता को भी अपने मित्र अथवा स्वामी को उचित परामर्श देकर कर्तव्य पथ के लिए अग्रसर करना चाहिए ।

4 - वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः । 8 ।

अन्वय - महात्मभिः समं विरोधोऽपि (अनार्य संगमात्) वरम् ।

शब्दार्थ- महात्मभिः महात्माओं के समं = साथ, विरोधोपि - विरोध भी, अनार्य संगमात् = दुर्जनों की साथ के अपेक्षा, वरं = श्रेष्ठ है ।

हिन्दी अनुवाद-महात्माओं के साथ विरोध भी दुर्जनों के साथ की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।

व्याख्या-यहाँ ऐश्वर्य में वृद्धि करना महात्माओं के साथ विरोध की श्रेष्ठता का कारण है और महात्माओं के विरोध की श्रेष्ठता द्वारा 'दुर्योधन द्वारा कीर्ति-अर्जुन' का समर्थन किया गया है। अर्थात् महात्माओं की संगति सर्वथा सुखप्रद होती है और दुर्जनों की संगति सर्वदा दुःखप्रद होती है। कुछ समय के लिये यदि महात्माओं से संगति छूट जाए तो दुर्जनों से संगति नहीं करनी चाहिए क्योंकि दुर्जन दुःख के कारण होते ही हैं । वहीं यदि विपरित भाव में देखे तो स्पष्ट होगा कि दुर्जन से संगति छोड़कर यदि महात्माओं की प्राप्त होती है तो वह सुख का कारण होगा । यदि कभी महात्माओं की संगति छूटती है तो दुर्जनों की संगति नहीं पकड़नी चाहिए। दुर्योधन की संगति युधिष्ठिर से छूट जाने के पश्चात राज्य की स्थिति व्यवस्था बनाये रखने के लिए तथा युधिष्ठिर पर विजय हेतु निर्मल यश को फैला रहा है । क्योंकि महापुरुष से विरोध होने पर उन्हें नीचा दिखाने के लिए गुणों का आश्रय लेना ही पड़ेगा ।

5 - गुणानुरोधेन बिना न सत्क्रिया । 12 ।

अन्वय-सत्क्रिया गुणानुरोधेन बिना न (प्रवर्तते)

शब्दार्थ- सत्क्रिया = सत्कार, गुणानुरोधेन = गुणों के सम्पर्क से, बिना = बिना, न = नहीं

हिन्दी अनुवाद - सत्कार गुणानुबन्ध के बिना नहीं होता ।

व्याख्या: - सत्कार का पात्र वही है जो गुणो से युक्त होता है , गुणवान से गुण प्राप्त किया जा सकता है । तथा उसके सत्कार से ही सम्भव है । यदि अब गुणी का सत्कार किया गया तो अवगुण ही प्राप्त होगा, जो कि एक राजा के लिये तो शोभनीय नहीं ही है । राजा का हमेशा ही गुणों युक्त लोगों, मनस्वियों के साथ रहना तथा उनके सत्कार से गुणों को प्राप्त करना धर्म होना चाहिये क्योंकि गुणवान् की संगति में दुर्जन भी सज्जन हो जाता है जैसा कि नीतिशतक में कहा गया है ।

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा

तत्राश्रिताच्च तरवस्तरवस्त एव।

मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण

कोलनिम्बकुटश्रा अपि चन्दनाः स्युः।

अर्थात् उस सुवर्ण पर्वत एवं सुमेरू पर्वत से क्या लाभ है ? जहाँ के लगे पेड़ वैसे के वैसे ही रह जाते हैं । हम तो उस मलयाचल को धन्य मानते हैं । जिसका आश्रय लेने पर कंकोल, दाल चीनी, नीम तथा कुरज पत्थर फूल के वृक्ष भी चन्दन से हो जाते हैं । अर्थात् गुणवान् सर्वत्र प्रशंसनीय है जिनकी संगति में आकर दुर्जन भी गुणवान हो जाते हैं ।

अभ्यास प्रश्न 1.

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

क. भारवेर्धगौरवम् किसके लिए आया है

क. दण्डी ख. माघ ग. भारवि घ. कालिदास

ख. किरातार्जुनीयम् की नायिका कौन है

क. द्रोपदी ख. कुन्ती ग. गान्धारी घ. सीता

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

ग. वरं विरोधोपि महात्मभिः ।

घ. व्यक्ति की मनोवृत्तियों होती हैं ।

सत्य या असत्य निर्धारित कीजिए

ड. हितकारी और मनोहारी वचन दुर्लभ होते हैं ।

6 - अहोदुरन्ता बलवद्विरोधिता । 23 ।

अन्वय:-अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता ।

शब्दार्थ:- अहो = आश्चर्य है, बलवद्विरोधिता = बलवानों के साथ विरोध, दुरन्ता = दुखमय परिणाम वाला होता है।

हिन्दी अनुवाद - आश्चर्य है, बलवानों से विरोध का परिणाम दुःखमय होता है।

व्याख्या - भले ही राजा कितना भी बलवान क्यों न हो परन्तु यदि वह अपने से बलवान से शत्रुता कर बैठा है तो हमेशा उसके मन में डरावना ही रहेगा। भले ही ऊपर से दिखावे के रूप वह निश्चिन्त क्यों ने बैठा हो परन्तु मन में भय बना ही रहता है। बलवान शत्रु द्वारा प्रत्यक्ष रूप से संकट उत्पन्न न किये जाने पर भी भावी संकट की सम्भावना से वर्तमान में भी सुख-शान्ति का अनुभव नहीं होता। दुर्योधन अपने शत्रु युधिष्ठिर से हमेशा युद्ध की शंका के कारण भयभीत रहता है। क्योंकि वह जानता है युद्ध कौशल में युधिष्ठिर उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ है। श्रेष्ठता स्वयं अपना स्वरूप स्थापित करती है। उसकी किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। भले हि दुर्योधन अपने समस्त राजनीतिक कौशलों से प्रजा में अपनी छवि एक सुसज्जित राजा की बनाई है। परन्तु जब भी वह पाण्डवों के विषय में सोचता है तो अन्तर्मन में भय व्याप्त हो जाता क्योंकि पाण्डवों की शक्ति को वह भली-भाँति जानता है।

7 - परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां- प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः ।125 ॥

अन्वय:- पर प्रणीतानि वचांसि चिन्वतां मादृशं गिरं प्रवृत्ति साराः खलु।

शब्दार्थ :- परप्रणीतानि - दूसरों द्वारा कहे गये ,वचांसि -वचनों का, चिन्वताम्-संग्रह करने वाले,मादृशं - मुझ जैसे, गिरः - वचन, प्रवृत्तिसाराः- वृत्तान्त रूप सारांश, खलु- निश्चय रूप से।

हिन्दी अनुवाद - दूसरों के द्वारा कहे गये वचन का संग्रह करने वाले मुझ जैसे लोगों के वचन निश्चित रूप से वृत्तान्त के सार मात्र हैं।

व्याख्या - गुप्तचर एक ऐसा व्यक्तित्व है जो कि स्वामी के सबसे अभिन्न अंग आँख के समतुल्य होता है। वह जो भी, जैसा देखता है। उसका उसी प्रकार वर्णन करना उसका धर्म है, परन्तु एक निश्चित समयवाधि में कह पाना उसके लिये नहीं अपितु सबके लिए कठिन है इसके लिए वह सभी विषयों को समेट कर बढ़े ही कम समय में इस रूप में कहता है जिससे कि सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त हो सके। अतः वह सभी छोटी-बड़ी बातों का सार ही प्रस्तुत करता है जिससे कि स्वामी पूर्ण रूप से जानकारी प्राप्त कर अपने कर्तव्य पथ पर आगे बढ़े। गुप्तचर कभी भी स्वामी को उपदेश नहीं देता है अपितु उसके कार्य में आने वाले विघ्नों से केवल सारगर्भित रूप से परिचित कराता है।

5.5.2 द्रौपदी द्वारा कथित सूक्तियाँ

8 - व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।30 ।

अन्वय- मूढधियः ते पराभवं व्रजन्ति ये मायाविषु मायिनः भवन्ति।

शब्दार्थ:- मूढधियः- विवेकहीन, ते- वे, पराभवं - पराजय को अपमान को , व्रजन्ति- प्राप्त करते हैं, ये-जो मयाविषु- -मायावियों के विषयमें, यापिनः-मायावी, न - नहीं भवन्ति होते हैं।

हिन्दी अनुवाद:-विवेके हीन लोग पराजित होते हैं कपट पूर्वक व्यवहार करने वालों के प्रति

कपटपूर्ण व्यवहार नहीं करते ।

व्याख्या - शठे शाठ्यं समाचरेत् अर्थात् शठ के साथ शठता का ही व्यवहार करना चाहिए, जो कपट व्यवहार करने वालों के साथ कपट का व्यवहार नहीं करते है वे मन्दबुद्धि वाले भोले व्यक्ति पराभव प्राप्त करते है, तथा वे शठ उसे उसी प्रकार मार देते है जैसे कवचादि से युक्त नहीं रहने वाले पुरुष के अन्दर तीर प्रवेश कर मार डालती है । मायावी व्यक्ति के साथ मायावी जैसा ही व्यवहार करना चाहिए । वहाँ सज्जनता अहितकर है । अतः शत्रु शत्रुता की ही भाषा समझ सकता है , नहीं तो पराजय निश्चित ही है ।

यहाँ माया को अंश के आवरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है । धूर्त लोगो से रक्षा के लिये माया कवच है जिस प्रकार कवच अंग नहीं अपितु अंग का रक्षक है । वैसे ही माया का स्वभाव नहीं समझना चाहिए , उसे गुण रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए, अपितु अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए विशेष परिस्थिति में उसका आश्रय लेना चाहिए । विशेष परिस्थिति में अर्थात् मायावियों के साथ भी सज्जनता का व्यवहार अहित कर होता है । इसी कारण कवि कहता है कि विवेक शून्य लोग पराजित होते है क्योंकि वे किसके साथ क्या व्यवहार करें, नहीं जानते वहीं दूसरी तरफ जो ये जानते है वे हमेशा कपट करने वाले साथ कपटपूर्ण व्यवहार कर जीत प्राप्त करते है ।

9. अबन्धकोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः । 33 ।

अन्वयः:-अबन्धकोपस्य आपदां विहन्तुः देहिनः स्वयम् एवं वश्याः भवन्ति ।

शब्दार्थः:- अबन्धकोपस्य-जिसका क्रोध निष्फल नहीं होता, सफल क्रोध वाले, आपदानम्- आपत्तियों में, निर्धनतारूप विपत्ति को, विहन्तुः-नष्ट करने वाले के देहिनः-शरीरधारीः प्राणी, स्वयमेव-स्वयं ही, वश्याः वशवर्ती वश में भवन्ति-हो जाते है ।

हिन्दी अनुवाद-जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता और जो विपत्तियों को नष्ट करने वाला है, उसके वश में सभी प्राणी स्वयं हो जाते है ।

व्याख्या:-जो राजा अथवा मनुष्य अनावश्यक क्रोध नहीं करता, परन्तु यदि किसी बात पर क्रोध आ जाए तो उसे दण्ड दिये बिना नहीं जाने देता, जो अपने हितैषियों का सदा भला करने के लिये सहयोगादि में निपुणता के उनके कष्टों का निवारण करता है। उसके लिये स्वयं ही सहिष्णुता वर्ण उपस्थित हो जाता है। अर्थात् सभी उसका गुण ज्ञान करते है। राजा का मुख्य कर्तव्य है कि प्रजा के दुखों से परिचित होकर उनके निराकरण के लिये सर्वस्व समर्पित कर दे जिससे की प्रजा हमेशा प्रसन्न हो कर उसके लिये तत्पर रहे और स्वयं को राजा के प्रति समर्पित कर दें। इसी से राज्य तथा राजा दोनों का सहसम्मान रहता है। युधिष्ठिर शत्रुओं पर क्रोध नहीं कर रहे है।

10 - अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः । 34 ।

अन्वयः:- अमर्ष शून्येन जन्तुना जातहार्देन जनस्य आदरः न विद्विषा (सता) दरः न (भवति)।

शब्दार्थ - अमर्षशून्येन-क्रोधरहित, अमर्ष से शून्य, जन्तुना-क्षुद्र प्राणी से (दान देने वाले पुरुष से) जात हार्देन-भिन्नता होने के कारण, शत्रुता होने पर, दरः भय, न-नहीं (होता) ।

हिन्दी अनुवाद - क्रोधहीन क्षुद्र (अदाता) प्राणी के मित्र बन जाने पर कोई उसका आदर नहीं करता और शत्रु बन जाने पर भय (भी) नहीं करता ।

व्याख्या:- मनुष्य के सांसारिक नियमों के अन्दर आने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी है क्रोध । मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है कि वह सांसारिक परिवेश में रहते हुए अपने समक्ष हो रहे गलत कार्य पर अपना आक्रोश प्रकट करें तथा गलत होने से रोके । जिससे उसकी समाज में अपनी पहचान बनती तथा लोग उसका आदर करते हैं उसके क्रोध से डरते भी हैं । इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य अपने सामने गलत कृत्य को देखने पर भी अपने आक्रोश प्रकट नहीं करता है तो वह समाज में तथा अपने ही लोगों के बीच हीन होता चला जाता है । न कोई उसका सम्मान करता है और न ही कोई उससे भय खाता है । वह मनुष्य क्रोध से विहिन होकर अपने अस्तित्व को गवाँ बैठता है । इसलिये ये मनुष्य को चाहिए की उपयुक्त समय पर अपने क्रोध को रोकने की चेष्टा न करें ।

11- विचित्र रूपाःखलु चित्तवृत्तयः ॥ 37 ॥

अन्वय- चित्तवृत्तयः विचित्र रूपाः खलु

शब्दार्थ- चित्तवृत्तयः - मनोवृत्तियाँ, विचित्ररूपाः-विचित्र प्रकार की, खलु- निश्चय ही ।

हिन्दी अनुवाद - मनोवृत्तियाँ विचित्र होती हैं ।

व्याख्या- वास्तव में इस संसार में मनुष्यों के स्वभाव विभिन्न होते हैं । कुछ लोग धीर-स्वभाव के होते हैं, कुछ लोग अधीर स्वभाव के, कुछ लोग धीर-अधीर स्वभाव वाले भी होते हैं । इसीलिए कोई भी किसी पुरुष की मनोवृत्तियों का ज्ञान अपने से नहीं कर सकता । कोई कि चित्तवृत्तियों के परस्पर भेद इसको समझने में बाधक हो जाता है । उसमें भी समयानुसार इनका बदलाव भला इन को समझने देगा । युद्ध स्थल में पहुँचा हुआ महारथी यदि अपने चित्त को वहाँ से हटाकर रागों में ले के चला जाय, मनस्वी अपने तपस्या के समय प्रजा के बारे में सोचे दान के समय धन के बारे में सोचे, अपमान के समय यश की स्थायित्व के बारे में सोचे तो क्या उनके लिये हितकर हो सकता है: कदापि नहीं । परन्तु यह ज्ञान भी तो कोई कैसे करें क्योंकि यह तो उसके अपने है और उन पर पूर्णाधिकार भी उन्हीं का है ये कब किस रूप को धारण कर ले कोई समक्ष नहीं सकता स्वयं शरीरी भी नहीं तो भला समक्ष बैठा हुआ इसको समझ लेगा । इसका अनुमान लगाना भी मूर्खता ही प्रकट करता है । अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं है । व्यक्ति की मनोवृत्तियाँ विचित्र ही होती हैं ।

12 - परैसपर्यासित वीर्य सम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम् । 38॥

अन्वय - परैः अपर्यासित वीर्य सम्पदां मानिनाम् पराभवः अपि उत्सव एव ।

शब्दार्थ:- परैः दूसरों से, शत्रुओं से, अपर्यासित वीर्य सम्पदां - अपराजित पराक्रमरूप धन वाले, जिनकी पराक्रम रूप सम्पत्ति नष्ट नहीं हुई है ऐसे, मानिनां - मनास्वियों, स्वाभिमानियों के लिये पराभवोऽपि - पराजय भी, तिरस्कार भी उत्सव ही होता है ।

हिन्दी अनुवाद - शत्रुओं ने जिनके पराक्रम को अभिभूत नहीं किया है ऐसे मनस्वी व्यक्तियों के

लिए अपमान भी उत्सव ही होता है ।

व्याख्या: - शत्रु मनुष्य का तिरस्कार करता है न कि उसके पराक्रम का और जिनका पराक्रम अभी थका नहीं है-पराजित नहीं हुआ है । ऐसे स्वाभिमानी लोगों के लिये तिरस्कार भी एक चुनौती है और इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिए । शेर का बच्चा होने पर भी मद से काले कपोल वाले हाथियों पर ही आक्रमण करता है क्योंकि उसमें भी वही पराक्रम है जोकि शेर में भले ही हाथी उसका जवाब क्यों न दे दे । नीतिशतक में कहा गया है कि-

पद् चेतनोऽपि पादैः प्रज्वलति सवित्रुरिनकान्तः।

तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ? ॥

जब जड़ सूर्यकान्तमणि भी सूर्य की किरणों से छू जाने पर जल उठता है तो चेतन प्राणी दूसरे द्वारा किये गये अपमान को सहन कैसे कर सकता है । राजा तो बलयुक्त होता ही है । भला वह तिरस्कार कैसे सहन कर सकता है । जिसके पास पराक्रम है वहीं चुनौती स्वीकार कर सकता है । वीर पुरुषों को चुनौती स्वीकार करने में वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है, जैसा उत्सव में जिसके अप्रतिहत पराक्रम के होते हुए ऐसा अपमान हों । वह तो असहनीय है ।

13 - व्रजन्ति शत्रु नवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः। 42 ।

अन्वय - निःस्पृहाः मुनयः शत्रून् अवधूय शमेना सिद्धिं व्रजन्ति भूभृतः न ।

शब्दार्थ : - निःस्पृहाः निष्काम, इच्छारहित, मुनयः- मुनिलोग, शत्रून्-शत्रुओं को, काम, क्रोध, मोह मद तथा मात्सर्य रूप छः मानव अवधूय- तिरस्कृत करके, पराजित करके, शमने-शान्ति से, शान्ति के माध्यम से, सिद्धि सफलता को व्रजन्ति-प्राप्त करते हैं, भूभृतः-राजालोग, न-नहीं ।

हिन्दी अनुवाद - संयम द्वारा शत्रुओं को जीतकर मुनिजन सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नहीं ।

व्याख्या- शान्ति का मार्ग मुनियों के लिए है वे संयम द्वारा राम द्वारा मनुष्य के छः शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य को नियन्त्रित करके आत्म साक्षात्कार रूप सिद्ध करते हैं। भौतिक कामनाओं से रहित मुनियों के इस मार्ग का अनुसरण भौतिक कामना वाले राज समुदाय के लिये उचित नहीं है । क्षत्रिय तो कार्य पूर्ण होने से पहले विश्राम नहीं लेते वे अपने कार्य को संयम नहीं अपितु वीरता से, धीरता से, बुद्धिमानी से पूर्ण करता है । जिस प्रकार देवता लोग समुद्र में से बहुमूल्य रत्नों को पाने पर भी संतुष्ट नहीं हुए और भयंकर विष से भी नहीं डरे वे अमृतपीये बिना विरत नहीं हुए । इसी प्रकार धीर और बुद्धिमान मनुष्य संकल्पित वस्तु को बिना प्राप्त किए कभी नहीं रूकते हैं । अर्थात् धीर पुरुष अपने निश्चित कार्य को पूरा किए बिना कभी विश्राम नहीं लेते । विश्राम से विजय केवल मुनिजन पाते हैं । शान्ति द्वारा न तो शत्रु जीते जा सकते हैं और नही राज्यप्राप्ति रूप प्रयोजन सिद्ध हो सकता है । अतः राजाओं के लिये बिना विश्राम के कार्य पूर्ण करने का स्वरूप ही सर्वोत्तम है । मुनिजन धीरता और गम्भीरता के अपने संयमित करके शत्रु पर विजय ले लेंगे । राजा नहीं ।

14 - निराश्रया हन्त हता मनस्विता । 43।

अन्वय- हन्त, निराश्रय मनस्विता हता ।

शब्दार्थ- हन्त-दुख है, निराश्रय-आश्रय विहिन होकर, आधार रहित होकर, मनस्विता-स्वाभिमानिता, तेजस्विता, हता-नष्ट हो गयी, नष्ट हो जाएगी।

हिन्दी अनुवाद- कष्ट है कि आश्रय रहित (होकर) मनस्विता नष्ट हो जाएगी।

व्याख्या: - मनुष्य अपने कार्यों एवं सत्गुणों से ही श्रेष्ठ अथवा हीन माना जाता है। उसका यश ही सबसे बड़ा धन है, और अपने कर्म ही अभिमान है। मनुष्य यदि इन दोनों गुणों से युक्त हो उस समय शत्रु अपमान करता है तथा वह तिरस्कार के रूप में कुछ भी नहीं कह सकता, न कर सकता है तो उसकी मनास्विता अर्थात् यश एवं अभिमान स्वयं ही उसका साथ छोड़ देती है। क्योंकि यश भी तभी रहता जब उसके अनुरूप मनुष्य कर्म करता रहे तथा अभिमान तो स्वयं उत्पन्न एवं नष्ट की जाती है, जब कर्म ही उनके अनुसार नहीं किए जाएँ तो भला निरादर किसको सहनीय है। वे अपना स्थान छोड़ देंगे। अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने यश तथा अपने स्वाभिमान को बचाने के लिये यथोचित कर्म से विमुख न हो ऐसा नहीं होगा तभी मानसिकता बनी रहेगी अन्यथा आश्रय से परे होने पर उसका नष्ट होना स्वाभाविक है।

15 - अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीश विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि । 45 ।।

अन्वय-हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

शब्दार्थ-हि क्योंकि, अरिषु-शत्रुओं के विषयमें, सोपधि-बहाने के साथ, सन्धि दूषणानि-सन्धिदोष, सन्धिभङ्ग, विदधति करते है, कर देते है।

हिन्दी अनुवाद - क्योंकि विजयाकांक्षी राजा शत्रुता की स्थिति में किसी ब्याज से संधि में दोष उत्पन्न कर देते है।

व्याख्या- यद्यपि बृहस्पति आदि दूसरे पाँच-छह प्रतिष्ठित ग्रह है। किन्तु विशेष पराक्रम में रूचि रखने वाला राहु, जिसका आकार सिरमात्र शेष है। अन्य ग्रहों से कभी वैर नहीं करता किन्तु सूर्य और चन्द्रमा इन दोनों पर ही अमावस्या एवं पूर्णिमा पर्व में आक्रमण करता है। इस प्रकार पराक्रमशाली व्यक्ति अन्य लोगों की उपेक्षा कर मकान बलशाली शत्रुओं पर आक्रमण करते है। यदि बीच किसी प्रकार की संधि की बात भी है तो सन्धि में दोष निकाल कर युद्ध के लिये तत्पर हो जाते है। न कि सन्धि स्वीकार करते हैं। यहाँ यह धातव्य है कि विजय की आकांक्षा सामर्थ्य पर निर्भर है सामर्थ्य न होने पर विजय की आकांक्षा का कोई अर्थ नहीं है। सामर्थ्य होने पर यदि विजय की आकांक्षा है तब सन्धि को तोड़ना अनावश्यक है। सामर्थ्य रहने पर भी यदि विजय की आकांक्षा नहीं है तो, सन्धि को तोड़ना व्यर्थ है।

अभ्यास प्रश्न 2.

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए -

क. तीन पुरुषार्थों का प्रयोग करता है -

क. अर्जुन ख . दुर्योधन ग. युधिष्ठिर घ. शिव

ख. कपटी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए

क. कपट ख . मित्र ग. दोस्त घ. बान्धव

ग . ब्रह्मचारी के वेश में दुर्योधन के राज्य में गया था

(क) नारद (ख) अर्जुन

(ख) वनेचर (ग) शिव

घ. अर्थगाम्भीर्य के लिए प्रसिद्ध हैं

(क) दण्डी (ख) वाण

ख) ये तीनों (ग) भारवि

ङ . तीन पुरुषार्थों का प्रयोग करता है

(क) दुर्योधन (ख) शिव

(ख) युधिष्ठिर (ग) अर्जुन

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) पुरुषार्थ के अन्तर्गत धर्म.....काम, मोक्ष चारों की गणना होती है।

(ख) पाण्डवों में जुड़वाँ भाई.....है।

(ग) ' न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति.....हितैषिणः।

(घ) निराश्रया: मनस्विता।

3. नीचे दिये हुए वाक्यों में सही वाक्यों के सामने सही (✓) तथा गलत वाक्यों के सामने गलत (×) का निशान बनाए।

(क) दुर्योधन अपने सेवकों के साथ क्रूरता से व्यवहार करता है। ()

(ख) हितकर और मनोहारी वचन सुगमता से मिलते हैं ()

(ग) किरातार्जुनीयम् 18 सर्गों में विभक्त है ()

5.6 सारांश

आपने इस इकाई के अध्ययन से जाना कि एक कुशल शासक को शासन के गुण दोषों के विषय में पूर्ण जानकारी तथा उसका सफलता पूर्वक उपयोग ही उस प्रजा के लिये प्रिय बनाता है। वहीं दूसरी ओर एक नारी का अपने पति को कर्तव्यों के लिये उद्यत करना तथा अपने सत्ता को पुनः प्राप्त करने में युद्ध के लिये तैयार करना इन सभी बातों को बड़ी सावधानी से सफल बनाने का प्रयास भारवि ने किया है। इन्हीं गुणों के कारण उनके लिए प्रसिद्ध लोकोक्ति 'भारवेरर्थगौरवम्' है। संयम द्वारा शत्रुओं को जीतकर मुनिजन सिद्धि प्राप्त करते हैं, राजा नहीं। शान्ति का मार्ग मुनियों के लिए है वे संयम द्वारा मनुष्य के छः शत्रुओं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य को नियन्त्रित करके आत्म साक्षात्कार रूप सिद्ध करते हैं। भौतिक कामनाओं से रहित मुनियों के इस मार्ग का अनुसरण भौतिक कामना वाले राज समुदाय के लिये उचित नहीं है। आश्रय रहित (होकर) मनस्विता नष्ट हो जाएगी। मनुष्य अपने कार्यों एवं सत्गुणों से ही श्रेष्ठ अथवा हीन माना जाता है। विजय की आकांक्षा सामर्थ्य पर निर्भर होती है, सामर्थ्य न होने पर विजय की आकांक्षा का कोई अर्थ नहीं है। सामर्थ्य होने पर यदि विजय की आकांक्षा है तब सन्धि को तोड़ना अनावश्यक है। सामर्थ्य रहने पर भी यदि विजय की आकांक्षा नहीं है तो, सन्धि को

तोड़ना व्यर्थ है। मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने यश तथा अपने स्वाभिमान को बचाने के लिये यथोचित कर्म से विमुख न हो ऐसा नहीं होगा तभी मानसिकता बनी रहेगी अन्यथा आश्रय से परे होने पर उसका नष्ट होना स्वाभाविक है। अतः इस इकाई का अध्ययन करने से आपमें विविध शिक्षाओं को जाना , और उन शिक्षाओं से सम्बन्धित तथ्यों को भली भाँति समझा सकेंगे।

5.7 शब्दावली

1. हितैषिणः - हित चाहने वाले।
2. दुर्लभम् - दुष्प्राप्य।
3. महात्मभिः - महात्माओं के साथ।
4. दुरन्ता - दुःखमय।
5. मूढधियः - विवेकहीन।
6. हन्त - दुःख है।

5.8 बोध (अभ्यास) प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1- का उत्तर-

क. ग ख. क ग. समं घ. विचित्र ङ. सही

अभ्यास प्रश्न 2- के उत्तर -

क. दुर्योधन ख. कपट ग. वनेचर घ. भारवि ङ. दुर्योधन

रिक्त स्थानों की पूर्ति

- (क) अर्थ
(ख) नकुल - सहदेव।
(ग) मृषा।
(घ) हन्त हता।

सही गलत -

क. गलत ख. गलत ग. सही

5.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारवि किरातार्जुनीयम्।
2. वामन शिवराम आपटे संस्कृत हिन्दी शब्दकोश
3. डॉ. उमाशंकर शर्मा ऋषि संस्कृत साहित्य का इतिहास

5.10 अन्योपयोगी ग्रन्थ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास डॉ. बलदेव उपाध्याय
2. किरातार्जुनीयम् समीर शर्मा (व्याख्याकार)

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वनेचर तथा द्रौपदी के कथनों की समीक्षा कीजिए।
2. भारवेरर्थगौरवम् इस शब्द की पुष्टि कीजिए।
3. प्रथम सर्ग के सूक्तियों पर प्रकाश डालिए।

खण्ड - दो
पद्यकाव्य , कुमारसम्भवम् - प्रथम सर्ग

इकाई 1. कालिदास का परिचय , समय एवं महाकाव्य के रूप में कुमारसम्भवम् का मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 कालिदास का परिचय , समय महाकाव्य के रूप में कुमार सम्भवम् का मूल्यांकन

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न - उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम में द्वितीय खण्ड कुमारसम्भव प्रथम सर्ग के वर्णन से सम्बद्ध यह पहली इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों में आपने भारवि रचित किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में आप कालिदास के बारे में जानेंगे। विद्वत् समाज में किंवदन्ती प्रसिद्ध है कालिदास उज्जयिनी के राजा महाराजा विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे।

कालिदास के परिचय के साथ उनके समय के विषय में भी विद्वानों में मतभेद ही है। आन्तरिक प्रमाणों के आधार कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक माना गया है। महाकाव्य के रूप में कुमारसम्भवम् विश्व विख्यात कवि कालिदास के द्वारा निर्मित महाकाव्य है। इसमें कवि के द्वारा प्रधान रूप से भगवान शंकर तथा भगवती पार्वती के विवाह एवं कार्तिकेय के जन्म का वर्णन किया गया है।

अतः इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप महाकवि कालिदास के जीवन से परिचित होकर उनके काल निर्धारण सम्बन्धी तथ्यों को जानकर कुमारसम्भव महाकाव्य के महाकाव्यत्व को समझा सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- कालिदास के महत्त्व को जानते हुए उनके सम्बन्ध में बताएंगे।
- कालिदास के जीवन के विषय में समझाएंगे।
- कालिदास के समय विषयक मतों को बता सकेंगे।
- कुमारसम्भव का महत्त्व बता सकेंगे।
- कालिदास की पत्नी विद्योत्तमा के विषय में भी जान सकेंगे।
- कालिदास के आठ ग्रन्थों के विषय में आप परिचित होंगे।
- कालिदास के विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ कुमारसम्भव के महाकाव्यत्व को सिद्ध कर सकेंगे।

1.3 कालिदास का परिचय,समय महाकाव्य के रूप में कुमार सम्भवम् का मूल्यांकन

कालिदास का परिचय

कालिदास ने अपने जीवन के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है, किन्तु विद्वत्समाज में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि कालिदास उज्जयिनी के राजा महाराज विक्रमादित्य

की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे। बचपन में इन्होंने कुछ भी पढ़ा लिखा नहीं था। एक स्त्री के कारण इन्हें अनमोल विद्यारत्न प्राप्त हुआ। इसकी कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है - महाराज सदानन्द की पुत्री विद्योत्तमा बड़ी विदुषी और सुन्दरी थी। उसको अपनी विद्या पर बहुत गर्व था। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा, उसी से मैं अपना विवाह करूँगी। उस राजकुमारी के रूप, यौवन और विद्या की प्रशंसा सुनकर दूर-दूर से विद्वान् आते थे, परन्तु शास्त्रार्थ में इससे पराजित होकर चले जाते थे। जब विद्वानो ने देखा कि यह राजकुमारी किसी प्रकार भी वश में नहीं आती है, सबको पराजित कर देती है, तब उसकी विद्वत्ता से लज्जित होकर सभी ने राय की कि किसी ढंग से इसका विवाह ऐसे महामूर्ख के साथ करा दिया जाय कि जिससे यह जीवन भर अपने अहंकार पर पश्चात्ताप करती रहे। परिणामस्वरूप वे लोग एक मूर्ख की खोज में पड़ गये। एक दिन कहीं रास्ते में जाते हुए देखा कि भेड़ चराने वाला एक आदमी पेड़ के ऊपर जिस डाल पर बैठा है, उसी को जड़ से काट रहा है। विद्वानों ने उसे देखकर समझा कि यह तो बहुत बड़ा मूर्ख है। इसी से विद्योत्तमा का विवाह हो जाय तो अच्छा है। बाद में बड़े प्रेम से नीचे बुलाया और कहा कि चलो हम लोग तुम्हारा विवाह एक राजकुमारी के साथ करा देंगे, परन्तु इस बात का ध्यान रखना कि राजसभा में मुँह से कुछ भी नहीं बोलना, जो कुछ भी कहना हो वह इशारे से कहना। लो, यह यह धोती, चादर, जामा, और पगड़ी पहन लो। पण्डित बनकर हम लोगों के साथ चलो तो तुम्हारा विवाह जरूर करा दिया जायेगा। इस प्रकार पण्डितों की बात पर विश्वास कर मूर्ख पण्डित बनकर राजभवन में पहुँच गया। पहले से ही उपस्थित विद्वानों ने उसका खूब सत्कार किया और उसे सबसे ऊँचे आसन पर बैठा दिया। विद्योत्तमा से कहा कि बृहस्पति के समान ये विद्वान् आपके साथ शास्त्रार्थ करने के लिए आये हुए हैं। किन्तु इस समय ये तपस्या करने के कारण मौनव्रत लिये हुए हैं। शास्त्रार्थ में आपको जो कुछ कहना हो उसे संकेत से कहिये।

यह सुनकर राजकुमारी ने अपने मन में यह सोचकर कि ईश्वर एक है, एक अंगुली उठाई। उधर मूर्ख ने समझा कि यह एक अंगुली उठाकर मेरी एक आँख फोड़ने का संकेत कर रही है। इसलिए उसकी दोनों आँख फोड़ने के अभिप्राय से अपनी दो अंगुलियों को उठाया। इस पर विद्योत्तमा के विरोधी उपस्थित विद्वानों ने इसका अर्थ लगाया कि ये यह संकेत कर रहे कि आत्मा एक नहीं है किन्तु दो है; एक जीवात्मा तथा दूसरा परमात्मा। विद्वानों के इस कुचक्र के परिणामस्वरूप उस राजकुमारी को उससे हार मानकर पूर्व में की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार अपना विवाह उस मूर्ख के साथ कर लेना पड़ा। रात के समय एकान्त में जब दोनों का मिलन हुआ, तब तक किसी तरफ से एक ऊँट चिल्ला उठा। राजकुमारी ने पूछा कि कौन शोर मचा रहा है। उस मूर्ख ने उत्तर दिया कि उट्ट चिल्लाता है। राजकुमारी ने चौंककर फिर पूछा कि कैसा शोर है। तब वह उष्ट्र बोलता है श् के बदले उष्ट्र बोलता है ष् कहने लगा, क्योंकि वह जन्म से महामूर्ख था, उष्ट्र का शुद्ध उच्चारण कैसे कर सकता था। बाद में विद्योत्तमा को पण्डितों की धूर्तता का पता चल गया, इस पर वह पश्चात्ताप करती हुई फूट-फूट कर रोने लगी। बाद में अत्यन्त दुःखी होकर उस मूर्ख को घर के बाहर निकाल दिया और कहा कि तुम विद्वान् होकर आओगे तो मेरे साथ तुम्हारा

सम्बन्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं। इधर वह मूर्ख इस व्यवहार से बड़ा ही लज्जित हुआ , पहले तो सोचा कि अपना प्राण दे दूँ फिर सोच- समझकर विद्योपार्जन हेतु परिश्रम करने लगा। भगवती काली की उसने बड़ी उपासना की , फलस्वरूप देवी की कृपा से थोड़े ही दिनों में वह एक प्रभावशाली विलक्षण विद्वान् हो गया जिसका नाम संस्कृत- साहित्य ही नहीं , विश्व के इतिहास में अजर - अमर हो गया। सच्ची लगन से क्या नहीं हो सकता है। ये ही हैं चरितनायक कविवर कालिदास , जो उपासना द्वारा भगवती काली की कृपा से महाकवि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हो गये। जब वे कवि होकर अपने घर लौटे , तब घर का दरवाजा बन्द था। उसे खुलवाने के अभिप्राय से इन्होंने संस्कृत में कहा कि 'अनावृतकपाटं द्वार देहि तब विदुषी पत्नी ने प्रश्न किया कि 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' कवि ने अपनी पत्नी विद्योत्तमा के प्रश्न-भूत वाक्य के अन्दर वर्तमान - अस्ति, कश्चिद् और वाग् - इन तीन शब्दों से आरम्भ करके तीन काव्य बना डाले।

अस्ति शब्द से आरम्भ करके - कुमारसम्भव महाकाव्य।

कश्चिद् शब्द से आरम्भ करके - मेघदूत खण्डकाव्य।

वाग् शब्द से आरम्भ करके - रघुवंश महाकाव्य।

विद्योत्तमा को इस प्रकार पति को एक प्रतिभासम्पन्न महाकवि के रूप में पाकर जैसा आनन्द का अनुभव हुआ होगा , वह लिखे के बाहर है। इसी प्रकार कालिदास और विक्रमादित्य तथा कालिदास और भोज के सम्बन्ध में भी कई किंवदन्तियाँ विद्वत्समाज में प्रसिद्ध हैं , जिन्हें यहाँ लिखकर भूमिका का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं। कालिदास कब हुए , कहाँ हुए किस वंश में और उन्होंने कितने ग्रन्थ लिखे , इत्यादि प्रश्नों का अभी तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो पाया है। क्योंकि उन्होंने अपने सम्बन्ध में अपने ग्रंथों के अन्दर कहीं कुछ भी नहीं लिखा है। फिर भी विद्वानों ने उनके ग्रन्थों के आधार पर अब तक जो कल्पनाएँ की हैं , उसी के आधार पर बराबर ही विचार होता आ रहा है।

कालिदास के ग्रन्थ

किस कालिदास ने कौन-से ग्रन्थ लिखे हैं ? इसका निर्णय करना एक प्रकार से असम्भव - सा है। फिर भी अधिक आलोचकों तथा विद्वानों के मत में उज्जयिनीनरेश महाराजा विक्रमादित्य की अभिरुपभूयिष्ठा सभा को अलंकृत करने वाले कालिदास के 8 ग्रन्थ माने जाते हैं। दो महाकाव्य - एक कुमार - सम्भव , दूसरा रघुवंश ; एक खण्डकाव्य - मेघदूत ; दो स्फुट काव्य - ऋतुसंहार और श्रृंगारतिलक तथा तीन नाटक - एक अभिज्ञानशाकुन्तल , दूसरा मालविकाग्निमित्र , तीसरा विक्रमोर्वशीय। कुछ लोग नलोदय और श्रुतबोध को भी इन्हीं की कृति मानते हैं। विद्वानों की परम्परा में अनेक कालिदास होने की बात प्रसिद्ध है। दशम शताब्दी में वर्तमान राजशेखर कवि ने अपने काव्यमीमांसा में तीन कालिदासों का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त एकादश शताब्दी में राजा भोज के दरबार में भी एक कालिदास थे , इसका पता वल्लाल कवि - प्रणीत भोजप्रबन्ध से लगता है। अनेक कालिदासों को देखकर कुछ आलोचकों ने यह भी माना है कि जैसे आद्यस्वामी शंकराचार्य की परम्परा पर चलने वाले आगे

के संन्यासियों को शंकराचार्य कह दिया जाता है , वैसे ही आदि कालिदास के समान कविता करने वाले कवि को भी कालिदास कहने लग गये थे । इसलिए संस्कृत में अनेक कालिदासों की उपलब्धि विभिन्न समयों में होती है। जो कुछ हो , विद्वान् लोग इस कल्पना कैसे स्वयं समझ लें।

कालिदास की प्रसिद्धि का कारण

अन्य ग्रन्थों के रहते हुए भी प्राच्य और पाश्चात्य देशों में कालिदास की इतनी महती प्रतिष्ठा का कारण उनका अभिज्ञानशाकुन्तल है । जब कलकत्ता हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस सर विलियम जोन्स ने शाकुन्तल का अंग्रेजी में अनुवाद किया , तो उसे पढ़कर पाश्चात्य विद्वानों की आँखें खुली और कालिदास की कवि - कल्पना पर मुग्ध होकर उन्होंने बड़े हर्ष के साथ कालिदास को “ भारतीय शेक्सपीयर ” की उपाधि से विभूषित किया और संस्कृत की तरफ उनकी रुचि यहाँ तक बढ़ी कि वेदों तक की भी छान - बीन शुरू हो गयी ।

देखिए – पाश्चात्य विद्वानों की कैसी श्लाघनीय गुणग्राहिता हैं ? इसी से वे इतनी शीघ्रता से अपनी इतनी उन्नति कर गये हैं । एक तरफ पाश्चात्य विद्वान् हैं , जिन्होंने अपने देश के कवियों की तो बात ही क्या है , कहीं के भी विद्वानों के गुण प्रकाश करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं । दूसरी तरफ भारतीय विद्वान् हैं , जिन्हें इस दिशा में थोड़ी भी अभिरुचि नहीं है । खेद का विषय है कि पाश्चात्य अनुकरण करने में प्रवीण भारतीय विद्वानों में भी विशेष अभिरुचि नहीं । कालिदास ही क्या महाराजाधिराज विक्रमादित्य , भोज , भास , भारवि , माघ , श्रीहर्ष , बाणभद्र और प्रातः स्मरणीय स्वामी शंकराचार्य आदि विद्वानों का वास्तविक स्वरूप ही भारतीय विद्वानों ने अभी तक नहीं समझा है । पाश्चात्य विद्वान् इनका जो कुछ मूल्यांकन कर देते हैं , उन्हीं के बल पर ये भी कुछ कहने लग जाते हैं । जहाँ विदेशों में एक शेक्सपीयर की कृतियों की आलोचना की असंख्य पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और बराबर लिखी भी जा रही हैं , वहाँ भारतीय विद्वान् मौनावलम्बन में मस्त हैं। यह बड़े खेद का विषय है ।

कालिदास की जन्मभूमि

इसी प्रकार कालिदास की जन्मभूमि तथा समय के सम्बन्धमें भी विद्वानों में बहुत बड़ा मतभेद है। बंगदेशीय विद्वान् इन्हें बंगाली मानते हैं और नवद्वीप को इनकी जन्मभूमि बतलाते हैं । बहुत से विद्वान् कहते हैं कि इनकी जन्म-भूमि कश्मीर है क्योंकि इन्होंने हिमालय का जैसा सुन्दर वर्णन किया है , वैसे दूसरे का नहीं । कुछ लोग इन्हें पंजाबी , कुछ लोग मालवीय मानते हैं । किन्तु विशिष्ट विद्वान् इन्हें उज्जयिनी - निवासी कहते हैं , क्योंकि इन्होंने उज्जयिनी के लिए विशेष पक्षपात दिखलाया है , जिससे इनकी जन्मभूमि उज्जयिनी ही मालूम पड़ती है ।

इनके मेघदूत में कान्ता - विरही यक्ष रामगिरि से सीधे उत्तर अलकापुरी जाने वाले मेघ के लिए रास्ता टेढ़ा होने पर भी सकलसम्पत्सम्पन्न उज्जयिनी को देखने के लिए मेघ से आग्रह करते हुए कहता है कि यदि तुम उज्जयिनी के विशाल महलों और मृगाक्षी रमणियों के कटाक्षों को देखने से वंचित रह गये तो तुम्हारा जीवन ही निष्फल है । मेघदूत में कालिदास ने उज्जयिनी प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का जैसा सूक्ष्म वर्णन करते हुए छोटी से छोटी नदियों का नाम -

निर्देश किया है और उनका जमकर वर्णन किया है ,वैसा अन्यत्र नहीं ।

इस प्रकार उज्जयिनी के प्रति विशेष पक्षपातपूर्ण वर्णन तथा भौगोलिक परिचय के आधार पर यही कहा जा सकता है कि कालिदास उज्जयिनी के ही निवासी थे । पर्वतों में हिमालय , नगरियों में उज्जयिनी , देवताओं में शिव , अलंकारों में उपमा और छन्दों में मन्दाक्रान्ता कालिदास को परमप्रिय थे । इसका भौगोलिक ज्ञान बहुत ही समुन्नत हैं ,जिसका पता मेघदूत , रघुवंश में रघु की दिग्विजय और इन्दुमती के स्वयंवर में देश-देश के राजाओं के वर्णन से स्पष्ट मालूम पड़ता है ।कुमारसम्भव ,मेघदूत और शकुन्तला के वर्णन से स्पष्ट है कि इन्हें हिमालय तथा उत्तर भारत जितना प्रिय था , उतना विन्ध्य तथा दक्षिण भारत नहीं ।

कालिदास का समय

कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों में बहुत बड़ा मतभेद है । विभिन्न विद्वानों ने आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर कालिदास की सत्ता ई० पू० प्रथम से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक मानी है । इस सम्बन्ध में प्रधान रूप से दो मत हैं । एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन प्राचीन मत के पोषक संस्कृत के भारतीय विद्वान् हैं और अर्वाचीन मत के अनुयायी अंग्रेजी के पाश्चात्य विद्वान् तथा इसके अनुकरण करने वाले कुछ भारतीय विद्वान् हैं ।

धन्वन्तरी क्षपणकामरसिंह षड्कुवेतालभट्ट-घटखर्पर - कालिदासः।

ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य ॥

इस जनश्रुति के आधार पर भारतीय संस्कृति के विद्वान् मानते हैं कि कविवर कालिदास विद्वत्प्रिय विक्रमसंवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा महाराजाधिराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक प्रमुख रत्न थे , जिनके बिना महाराज को एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता था । इसकी अद्भूत कवि-कल्पना पर महाराज सदा मुग्ध रहते थे । कालिदास के ग्रन्थों से भी विक्रमादित्य के दरबार में रहने का संकेत मिलता है । शाकुन्तल की प्रस्तावना में विक्रम की अभिरूपभूयिष्ठा परिषद् में विश्वविख्यात शकुन्तला नाटक का अभिनय करने का संकेत है । विक्रमोर्वशीय नाटक में यद्यपि राजा पुरुरवा नायक हैं , तथापि विक्रम का स्पष्ट नामोल्लेख है। “ अनुत्सेकः खलु विक्रमा-लंकारः ” इत्यादि वचनों से भी इसकी पुष्टि होती है कि कालिदास का विक्रम से सम्बन्ध अवश्य था । रामचन्द्र महाकाव्य में तो स्पष्ट उल्लेख है कि शकाराति वीर विक्रमादित्य ने कालिदास की बहुत बड़ी ख्याति की थी । देखिए - “ ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना ” । इसलिए जब तक परम्परागत इन जनश्रुतियों के खण्डन करने के लिए इसके विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता , तब तक ‘ नहारमूला जनश्रुतिः ’ के आधार पर यह मानना सर्वथा न्यायसंगत है कि महाकवि कालिदास विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे । पाश्चात्य विद्वानों में से केवल सर विलियम जोन्स महोदय ने भारतीय प्राचीन मत को ही प्रामाणिक माना है और अंग्रेजी में शकुन्तला का अनुवाद किया है ।

कालिदास के समय के सम्बन्ध में विभिन्न मतभेद

कालिदास ने प्रथम शताब्दी के शुंगवंशी राजा अग्निमित्र को अपने माल-विकाग्निमित्र नाटक

का नायक बनाया है और षष्ठ शताब्दी के महाराज हर्षवर्द्धन के दरबार के महाकवि बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में कालिदास की कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अतः कालिदास का समय ई० पू० एक से लेकर षष्ठ शताब्दी के बीच में कहीं होना चाहिए। इस आधार पर कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्रधान रूप से तीन मत उपस्थित होते हैं।

1. कालिदास षष्ठ शताब्दी में थे।
2. कालिदास गुप्तनरेशों के समय में थे।
3. कालिदास की सत्ता ई० पू० प्रथम शताब्दी में थी।

(1.) **पहला मत** - इतिहास में विक्रम-उपाधिधारी चार राजाओं का उल्लेख पाया जाता है, जिनके सम-सामयिक होने के कारण कालिदास का समय विभिन्न शताब्दियों में मानना पड़ता है। डा० हार्नली मानते हैं कि यशोधर्मन ने बलादित्य नरसिंहगुप्त की सहायता से कारुर के युद्ध में हूणवंश के प्रतापी राजा मिहिरकुल को हराकर विक्रमादित्य की उपाधि प्राप्त की और अपनी इस बड़ी विजय के उपलक्ष्य में विक्रम नाम का एक नया संवत् चलाया। इसे प्राचीन सिद्ध करने की इच्छा से इसे 600 (छह सौ) वर्ष पहले से ही प्रचारित किया गया। यह नई कल्पना डा० फर्गुसन साहब के मस्तिष्क की उपज थी। कालिदास के समय - निरूपण के लिए डा० हार्नली ने भी इसका उपयोग करते हुए यह दिखलाया है कि यशो-धर्मन् की राज्य-सीमा से रघु की दिग्विजय का वर्णन बिल्कुल मिलता - जुलता है। और एक आलोचक ने कुमारसम्भव की देवस्तुति के सांख्यसिद्धान्त को छठी शताब्दी में लिखी गई ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका के आधार पर अव-लम्बित मानकर उससे आशय ग्रहण करनेवाले कालिदास का समय भी छठी शताब्दी माना है। म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने कौतुकपूर्ण अनेक युक्तियों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि कालिदास भारवि के बाद छठी शताब्दी में हुए हैं।

समीक्षा - हूणों को पराजित करने वाले यशोधर्मन् हूणारि कहे जा सकते हैं, शकारि नहीं और न उसने शिलालेखों में कहीं विक्रम संवत् स्थापना की चर्चा है। 6 सौ वर्ष पहले से यशोधर्मन् द्वारा विक्रम की स्थापना भी इतिहास के विरुद्ध है, क्योंकि इतिहास-प्रसिद्ध है कि मालव संवत् के नाम से यह संवत् चला आता था, विक्रमादित्य ने शकों की विजय के उपलक्ष्य में इसका नाम विक्रम संवत् रख दिया। दूसरी बात यह है कि ४७३ ई० में कुमारगुप्त की प्रशस्ति के लेखक वत्सभट्टि कवि ने अपने ग्रन्थ में कालिदास के बहुत से पद्यों का अनुकरण किया है। इसलिए कालिदास को पंचम शताब्दी के बाद मानना अप्रामाणिक और इतिहास के विरुद्ध हैं।

(2.) **दूसरा मत** - बहुत से विद्वानों ने सर्वतः समृद्ध शान्तिमय गुप्त - नरेशों के स्वर्ण युग में कालिदास की सत्ता मानी है। इनमें भी पूना के प्रोफेसर के० पी० पाठक का मत है कि कालिदास स्कन्दगुप्त के समकालिक थे। क्योंकि रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित महाराज रघु की दिग्विजय से स्कन्दगुप्त की विजय में अधिक समानता है। किन्तु डा० रामकृष्ण भण्डारकर, पं० रामा-वतार शर्मा और बहुसंख्यक पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं कि कालिदास के आश्रयदाता गुप्तनरेशों में सबसे अधिक प्रभावशाली चन्द्रगुप्त द्वितीय थे। क्योंकि शकों को भारत से बाहर निकाल देने वाले विक्रमादित्य पदवीधारी चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में सब तरह से शान्ति थी और

भारतीय कला -कौशल की उन्नति चरमसीमा तक पहुँच गई थी। कालिदास के ग्रन्थों के समान गम्भीर विचार के ग्रन्थ ऐसे ही शान्तिमय समय में स्थिर चित्त से लिखे जा सकते हैं और रघुवंश के छठे सर्ग के ७५ वें श्लोक में वर्णित शान्ति का समुचित समय चन्द्रगुप्त - द्वितीय का ही समय था। इसके अतिरिक्त इन्दुमती के स्वयंवर में सम्मिलित मगधराज के लिए चन्द्रमा की जो उपमा दी गई है। उसमें चन्द्रगुप्त नाम का ही संकेत है।

समीक्षा - गुप्तकाल के स्वर्णयुग में कालिदास की सत्ता मानना भी ठीक नहीं , क्योंकि केवल चन्द्रगुप्त -द्वितीय ही विक्रमादित्य नहीं थे , किन्तु इससे पूर्व मालवा में राज्य करने वाले विक्रमादित्य का पता इतिहास को मालूम है। दूसरी बात यह है कि यदि कालिदास गुप्तकाल में होते तो प्रयाग के स्कन्दगुप्त के स्तम्भ पर कालिदास की रचना न होकर साधारण पण्डित हरिसेन से क्यों लिखवाया जाता ? इसलिए कालिदास को गुप्तकाल में मानना सर्वथा असंगत है।

(2.) तीसरा मत - उपर्युक्त कल्पनाओं से असन्तुष्ट होकर कुछ विद्वानों ने 68 ईसवी की गाथासप्तशती के पद्य में दानशील राजा विक्रमादित्य का स्पष्ट उल्लेख मिलने के आधार पर ईसा पूर्व विक्रमादित्य की संवत् प्रामाणिक रूप से स्थिर मानी है। इनके शकारि होने में किसी प्रकार की आपत्ती नहीं है , क्योंकि ईसा से 150 वर्ष पूर्व भारत में आने वाले शकों का पता इतिहास में पाया जाता है। अतः इन्हीं की सभा में कालिदास की सत्ता मानना युक्ति-युक्त एवं प्रामाणिक प्रतीत होता है। रघुवंश के षष्ठ सर्ग के श्लोक में पाण्डय-नरेश का वर्णन करते हुए कालिदास ने उरगपुर को उनकी राजधानी बतलाया है। उरियापुर का ही संस्कृत रूप उरगपुर जान पड़ता है। इतिहास के अनुसार प्रथम शताब्दी में उरियापुर पाण्डय-नरेशों की राजधानी थी। इसलिए कालिदास को प्रथम शताब्दी में मानना ठीक ही है।

दूसरी बात यह है कि अभिज्ञानशाकुन्तल के मंगलाचरण में सूचित धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से भी मालूम पड़ता है कि कालिदास ऐसे समय में हुए थे जब कि लोग बौद्धधर्म के प्रभाव से देवी-देवताओं के विषय में श्रद्धाविहीन होते जा रहे थे। ऊर्ध्वार्कित पद्य में ' प्रत्यक्षाभिः ' इस पद का प्रयोग करके कालिदास ने देवता-विषयक अविश्वास को दूर करने का प्रयास किया है। जिस भूतभावन भगवान् शिव का जल , अग्नि , यजमान , सूर्य , चन्द्रमा , आकाश , पृथ्वी और वायु - इन आठ रूपों में हमें सर्वदा प्रत्यक्ष दर्शन होता है , उनके विषय में अश्रद्धा कैसे हो सकती है। इसी प्रकार शकुन्तला के षष्ठ अंक में दुष्यन्त की अंगूठी को बेचने के समय राजपुरुषों द्वारा पकड़े जाने पर मछली मारना अपनी जाति का कर्तव्य बतलाता हुआ धीवर कहता है कि भगवान् ने जिस जाति को जो भला-बुरा काम दे दिया है , वह छोड़ा नहीं जाता है। देखिए - पशुओं को मारना तो बुरा काम है , परन्तु बड़े-बड़े दयावान और वेद जानने वाले ब्राह्मण भी यज्ञ में पशुओं को मारते थे। इस वर्णन से मालूम पड़ता है कि कालिदास ने बौद्धधर्म के प्राबल्य के कारण यज्ञों के विषय में होने वाली हिंसाजन्य निन्दा और अश्रद्धा को दूर करने का प्रयास करते हुए आवश्यक कर्तव्य होने के कारण हिंसा होने पर भी ब्राह्मणों को यज्ञ करना जातीय धर्म बतलाया है। अतः कुलपरम्परागत जातिधर्म का त्याग करना उचित नहीं , यज्ञों का अनुष्ठान करना ब्राह्मणों के लिए सर्वथा श्रेयस्कर है। इस आधार

पर हम कह सकते हैं कि कालिदास उस समय थे , जब वर्ण-व्यवस्था और यज्ञादि का खण्डन करने के कारण बौद्ध-धर्म के प्रति अश्रद्धा बढ़ती जा रही थी और ब्राह्मणधर्म का अभ्युदय हो रहा था । यह समय ई० पू० द्वितीय शताब्दी के बाद शुंगवंशीय नरेशों के बाद का है , इसलिए कालिदास का जन्म प्रथम शताब्दी मानना न्यायसंगत है । प्रथम शताब्दी में वर्तमान कनिष्क की सभा के महापण्डित बौद्धकवि अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित में कालिदास के बहुत से पद्यों का अनुकरण किया है । दोनों के काव्यों में अत्यधिक साम्य है । कथानक की सृष्टि और विकास , वर्णन-शैली , अलंकारों का प्रयोग , छन्दों का चयन एवं शब्दों का विन्यास-दोनों कलाकारों में से एक-दूसरे से प्रभावित है । जैसे -

रघुवंश में - अलं महीपाल तव श्रमेण ।

बुद्धचरित में - मोघ श्रमं नार्हसि मारकैतुम् ।

इसी प्रकार कालिदास ने रघुवंश के सप्तम सर्ग में इन्दुमती के स्वयंवर से लौटे हुए अज को देखने के लिए उत्सुक स्त्रियों का जैसा सुन्दर वर्णन किया है , ठीक वैसा ही वर्णन अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित के तृतीय सर्ग में शुद्धोदन की समृद्ध नगरी में प्रथम बार प्रवेश करते हुए राजकुमार सिद्धार्थ को देखने के लिए अत्युत्कण्ठापूर्वक दौड़ती हुई नारियों का किया है । इन दोनों महाकवियों के वर्णन में बहुत बड़ी समानता है । अश्वघोष द्वारा कालिदास का अनुकरण करने के बल पर यह सिद्ध होता है । कि कालिदास अश्वघोष के पहले ई० पूर्व प्रथम शताब्दी में उत्पन्न महाकवि है ।

कविता-कला

कविकुल कलाधर कविवर कालिदास की कमनीय-कलेवर-कोमल-कविता विश्व के किस सहृदय को आनन्दमग्न नहीं कर देती है । इनकी कविता में प्रसादगुण की अगाधता, माधुर्य का मधुर सन्निवेश, कोमलकान्तपदावली, उपमाकी अपूर्वता, अलंकारों की रमणीयता, छन्दों की छटा और भाव-सौष्ठव आदि पर्याप्त मात्रा में रहने के कारण इनकी कविता विश्वविख्यात बन गयी है। इनके काव्यों को जिस दृष्टि से देखा जाये, उसी से काव्य-कला की कमनीयता प्रकट होती है । इनकी कविता में सरल-सरल-सुबोध तथा सुन्दर- सुन्दर शब्दों एवं भावों का साम्राज्य मन को मुग्ध कर देता है ।

वास्तव में कालिदास की कविता में सहृदयों की तो बात ही क्या है, साधारण व्यक्ति को भी जैसा प्रसादगुण का रसास्वादन, शब्द और अर्थ की निर्दोषता , गुण और अलंकारों का चमत्कार मिलता है। वैसा दूसरे किसी कवि में नहीं मिलता । व्यंग्यार्थ-प्रतिपादन की विलक्षण शैली , रसप्रकर्ष का प्रकाशन, विस्तृत विषय का थोड़े में वर्णन , वर्ण्य-विषय को सुन्दर क्रम से रखकर रोचक बनाना स्वाभाविक भाव के द्वारा लोकोत्तरानन्दप्रदान का ढंग आदि कालिदास की कविता के स्वाभाविक गुण हैं । ध्वनिकाव्य का उत्तम गुण व्यंजना-व्यापार कालिदास के सभी ग्रन्थों में अनुभूत है । कालिदास संस्कृत-साहित्य के अद्वितीय महाकवि माने जाते हैं । इनकी

कविता की मधुरिमा के सामने अन्य कवियों की कविता फीकी पड़ जाती है। मानव-हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का आपने जैसा निरीक्षण किया है, वैसा अन्य कवियों ने नहीं। कालिदास अन्तर्जगत् तथा बाह्यजगत्-दोनों के सूक्ष्मनिरीक्षक एवं पारखी कवि है। समष्टि से अन्य कवियों की अपेक्षा इनका उपमा अंलकार स्वभावतः सुन्दर होता है और इनकी कविता में प्रसादगुण सर्वत्र प्राप्त होता है। ये उपमा के तो बेजोड़ कवि माने जाते हैं। एक आलोचक ने ठीक ही कहा है -

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

वाल्मीकि और व्यास के बाद विद्वत्समाज में सर्वप्रथम महाकवि के नाम से कालिदास ही प्रसिद्ध है। कवि में जितने गुण होने चाहिए, वे सभी कालिदास में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। इनकी नैसर्गिक रचना में पात्रानुकूल भाव भरने की अद्भुत कला है। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण और मानव-हृदय के अन्त-निहित भावों को व्यक्त करने में कालिदास को स्वतः सिद्धि प्राप्त है। इसलिए विदेशों के समीक्षक विद्वान् भी मुक्तकण्ठ से कालिदास की कविता-कला की प्रशंसा करते हुए इनके काव्यों का आदर करते हैं। मल्लिनाथ ने तो स्पष्ट कहा है कि कालिदास की वाणी का रहस्य तो केवल तीन व्यक्तियों ने ही समझा है- एक तो विधाता ब्रह्मादूसरी वादेवी सरस्वती तथा स्वयं कालिदास।

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।

चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मातृशाः ॥

कवि ने शकुन्तला की विदाई के समय केवल आश्रमवासी मनुष्यों को ही नहीं, किन्तु मृग, मयूर, चक्रवाक और निर्जीव लताओं को भी रुला दिया है। यह अद्भुत कला शकुन्तला के प्रति महर्षि कण्व का उपदेश और दुष्यन्त के प्रति सन्देश तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए आदरणीय और आचरणीय है। तपोवन के पावन वातावरण में पली हुई शकुन्तला मानो साक्षात् प्रकृति की कन्या है। वहाँ जीवों के प्रति उसका हृदय बान्धव-स्नेह से आप्लुत है।

कालिदास को वैदिक-धर्म पर पूर्ण विश्वास और वर्णाश्रम-व्यवस्था को पूर्णरूपेण मानते हैं। इन्हें धर्म, अर्थ काम, और मोक्ष पर अपार श्रद्धा है। ये सभी को त्याग और तपस्या की शिक्षा देते हैं। इनको नगर-निवासी की अपेक्षा तपोवन का जीवन बहुत अच्छा लगता है। ये आशुतोष भगवान् के परम उपासक महाकवि हैं। इन्होंने अपने तीनों नाटकों और रघुवंश के मंगलाचरण में शिव का ध्यान किया है और इनके सभी ग्रन्थों में शिव की महिमा विशेष पायी जाती है। इनके नाटकों के भरत-वाक्य से मालूम होता है। कि ये भगवान् सदाशिव से विश्व-कल्याण की कामना करते हैं। ये व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्त्व देते हैं। और सभी को लोककल्याणार्थ कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। ये आशावादी कवि हैं, निराशावादी नहीं ये सत्कार्यों के सम्पादन द्वारा परलोक-मार्ग को सुगम बनाना मानव-जीवन का वास्तविक सदुपयोग और अन्तिम लक्ष्य समझते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के भरत-वाक्य में भगवान् सदा-शिव से पुनर्जन्म को दूर करने के लिए प्रार्थना करते हुए कहते हैं -

“ ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः ॥ ”

कालिदास भारतीय संस्कृति के सच्चे उपासक महाकवि थे। इसका आभास उनके काव्यों में स्थान-स्थान पर मिलता है। रघुवंशमहाकाव्य में कालिदास ने रघुवंशी राजाओं को निमित्त बनाकर उदारचरित पुरुषों का स्वभाव पाठकों के समक्ष रखा है। और उनकी योग्यता का वर्णन करने के बहाने कितने ही प्रकार के रमणीय उपदेश प्राणिमात्र के लिए दिये हैं। चक्रवर्ती राजा दिलीप द्वारा २२ दिन महर्षि वसिष्ठ की नन्दिनी गौ की सेवा कराकर वरदान के रूप में पुत्र-प्राप्तिरूप मनोरथसिद्धि एवं इन्द्र द्वारा दिलीप के आश्वमेधिक अश्वहरण के बाद गोमूत्र को नेत्र में लगाते ही रघु को दिव्य-दृष्टिप्राप्त करना, गो-सेवा का अलौकिक फल दिखलाकर संसार को गो-सेवा से अपने - २ मनोरथों को पूर्ण करने का निर्देश किया है और गो-सेवा की अपूर्व महिमा बतलायी है। इसी प्रकार महर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स को अपार धनराशि देकर अज को पुत्र रूप में प्राप्त करना ब्राह्मण भक्ति का अनुपम उदाहरण है। राम के चरित्र जैसा भारतीय संस्कृति के आदर्श का दिग्दर्शन तो कहीं अन्यत्र उपलब्ध ही नहीं हो सकता है। भारतीयों का अनुपम आदर्श, अतिथि-सत्कार और महाराजा रघु द्वारा कौत्स को अपार धनराशि देकर विद्यादान के प्रति अटल श्रद्धा व्यक्त की है। कुमारसम्भव में दिव्य नायक का दिव्य चरित्र वर्णित है, किन्तु लौकिक काम और श्रृंगार रस की सूक्ष्म भावनाओं का वर्णन करने के लिए उन्होंने मेघदूत लिखा। महाकाव्य के रूप में कुमारसम्भव का मूल्यांकन विश्वविख्यात कविकुलकलाधर महाकवि कालिदास द्वारा निर्मित ग्रन्थों में कुमारसम्भव एक अन्यतम महाकाव्य है। यह १७ सर्गों में विभक्त है। इसमें प्रधानरूप में भगवान् शंकर तथा भगवती पार्वती के विवाह एवं कुमार (कार्तिकेय) के जन्म का सहेतुक विस्तृत वर्णन है। कुमार के जन्म की घटना के आधार पर इसका नाम कुमारसम्भव पड़ा है –

‘ कुमारस्य सम्भवो नामाभूतिर्महिमा चेति यस्मिन् काव्ये तत्कुमारसम्भवम् । ’

कुमारसम्भव की कथा महाभारत, ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, कालिका-पुराण और शिवपुराण में मिलती है, परन्तु शिवपुराण के साथ कुमारसम्भव की कथा अधिक मिलती-जुलती है। साहित्य की दृष्टि से कुमारसम्भव बहुत ही सुन्दर काव्य है, किन्तु रघुवंश की अपेक्षा इसकी रचना कुछ शिथिल-सी लगती है। फिर भी कितने अंशों में यह रघुवंश से बढ़कर है। भाषा-भाव और काव्य-शैली के आधार पर कुछ लोग मानते हैं कि कुमारसम्भव के प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास द्वारा निर्मित हैं। शेष ९ से १७ सर्ग किसी अन्य कवि की रचना है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि ‘ अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः ’ की कथा से सिद्ध है कि कालिदास ने रघुवंश के पहले ही कुमारसम्भव को लिखा है। इसलिए पूरा ग्रन्थ कालिदास-कृत ही है।

कुमारसम्भव वैदर्भी रीति का महाकाव्य है और इसमें आरम्भ से अन्त तक प्रसादगुण ओतप्रोत है। इसमें उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास अलंकार विशेष रूप से मिलते हैं। इसकी भाषा सरल, सरस, सुबोध और परिष्कृत है। इसमें प्रायः प्रसिद्ध शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। छन्दों का चुनाव भी अर्थों के अनुरूप ही हुआ है। यह श्रृंगाररस-प्रधान काव्य है। इसमें तीव्र तपस्या के द्वारा पार्वती के शिव-विषयक मनोरथ की सफलता का वर्णन करते हुए कवि-वर कालिदास ने तपस्या में अपना अटल विश्वास व्यक्त किया है। इसका मत है कि जो वस्तु किसी प्रकार से भी

प्राप्त नहीं हो सकती, वह तपस्या द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है –

यद् दुष्करं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुस्तरम् ।

तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमः ॥

उग्र तपस्या द्वारा प्राप्त शक्ति से उद्दण्ड होकर संसार को दुःख देनेवाले वज्रनाभ के पुत्र दुर्दान्त तारकासुर को मारने के लिए देवताओं का प्रयास विश्व-कल्याण की भावना की और संकेत करता है। धन्य है कविवर कालिदास और धन्य है उनका यह महाकाव्य।

अभ्यास प्रश्न 1 -

निम्नलिखित के एक शब्द में उत्तर दीजिए -

- (1) विद्योत्तमा के पिता का क्या नाम था ?
- (2) जिस डाल पर बैठा उसी को जड़ से कौन काट रहा था ?
- (3) कालिदास को किसकी उपासना से विद्या प्राप्त हुई ?
- (4) कश्चिद् शब्द से आरम्भ करके कालिदास ने किस खण्डिकाव्य की रचना की ?
- (5) उज्जयिनी नरेश का क्या नाम था ?
- (6) कालिदास के महति प्रतिष्ठा का कारण क्या था ?
- (7) कालिदास को कौन सा अलंकार परमप्रिय था ?
- (8) कालिदास का जन्मस्थान कहा माना जाता है ?
- (9) अभिज्ञान शकुन्तला का अंग्रेजी अनुवाद किसने किया है ?
- (10) कालिदास के प्रथम शताब्दी के राजा कौन थे ?

उपमा कालिदासस्य

काव्य में अलंकार -प्रयोग के विषय में ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने एक बड़ी रहस्यमयी उक्ति प्रस्तुत की है --

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शब्दत्रयो भवेत् ।

अपृथग्- यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलंकारो ध्वनौ मतः ॥

रस के द्वारा अक्षिप्त होने के कारण जिसका बन्ध या निर्माण शक्य होता है और जिसकी सिद्धि में किसी प्रकार के प्रथक् प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती, वहीं सच्चा अलंकार है - ध्वनिवादियों का यही मत है। प्रथम होती है रस की अनुभूति और तदनन्तर होती है उसकी अलंकृत अभिव्यक्ति। रसानुभूति तथा शब्दाभिव्यक्ति -- दोनों एक ही प्रयास के परिणत फल है। कोई कलाकार जिस चित्तप्रयास द्वारा रस - विधारण करता है उसी चित्तप्रयास द्वारा अलंकारादि के माध्यम से रसप्रस्फुटन करता है ; उसके लिए उसे किसी प्रकार के पृथक् प्रयास करने की जरूरत नहीं होती। रससंवेग द्वारा ही अलंकार के स्वतः प्रकाशन का यह सिद्धान्त ध्वनिवादियों को ही मान्य नहीं है , प्रत्युत प्रख्यात आलोचक कोचे भी इसमें पूर्णतया सहमत हैं। चित्त की सहजानुभूति (इन्ट्यूशन) एवं अभिव्यंजना (एक्सप्रेसन) - इन दो वस्तुओं को वे दो प्रक्रियाओं से उत्पन्न नहीं मानते। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि कला की अभिव्यंजना की सम्भावना

बीज-रूप में हृदय की रसानुभूति में ही निहित रहती है; जैसे निहित रहती है एक विराट वृक्ष की शाखा-प्रशाखायें, किसलय-पल्लव, फूल आदि की रेखाओं की प्रकाशन-संभावना एक छोटे से बीज में। साहित्य के रस एवं साहित्य की भाषा में अद्वय योग रहता है। अभिनवगुप्त ने बड़े मार्मिक शब्दों का यह समस्त सौन्दर्य - कटककुण्डलादिवत् कहीं बाहर से जोड़ा हुआ नहीं रहता प्रत्युत वह काव्यपुरुष का स्वाभाविक देह-धर्म होता है। अभिनव - गुप्त ने भी स्पष्ट ही कहा है न तेषां बहिरंगत्वं रसाभिव्यती। इस विषय में महाकवि कालिदास भी अद्वयवादी थे:-

वागर्थविषयं संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

वाक् तथा अर्थ का - काव्य अन्तर्निहित भाववस्तु एवं उसके अभिव्यंजक शब्द का-परस्पर नित्य सम्बन्ध है, चिन्मय शिव की विश्व में अभिव्यक्ति का कारण बनती है। शिव के आश्रय बिना शक्ति की लीला नहीं, शक्ति के बिना शिव का कोई अस्तित्व ही नहीं; वह शवमात्र होता है। साहित्य के क्षेत्र में भी भावरूप महेश्वर एवं शब्दरूपा पार्वति - दोनों ही एक दूसरे के आश्रित हैं। महाकवि कालिदास की उपमा (या अलंकार) के प्रयोग के अवसर पर इस तथ्य का अनुशीलन नितान्त आवश्यक है कि रसानुभूति की समग्रता को वर्ण, चित्र तथा संगीत में जो भाषा जितना अधिक मूर्त कर सकेगी, वह भाषा उतनी ही सुन्दर एवं मधुर होगी। कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनों के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं। समाधि में निरत भूतभावन शंकर की उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया गया है उसका सौन्दर्य नितान्त अवलोकनीय है (कुमारसम्भव ३।४२)

अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहम् अपामिवाधारमनुत्तरंगम्

अन्तश्चराणां मरुतां विरोधाद् निवापनिष्कम्पमिव प्रदीपम्

योगेश्वर महादेव शरीरस्थ समस्त वायुओं को निरुद्ध कर पर्यङ्कबन्ध में स्थिर अचंचल भाव से बैठे हैं; जैसे वृष्टि के संरम्भ से हीन अम्बुवाह मेघ हो (जल को धारण करने वाला अम्बुवाह किसी भी क्षण में बरस सकता है) , तरंग से हीन समुद्र हो (चंचल जलराशि का आधारभूत समुद्र जैसे तरंगहीन अचंचल हो ' अपामिवाधार ' शब्द की यही ध्वनि है) तथा निवातनिष्कम्प प्रदीप हो। यहाँ तानों प्राकृतिक उपमानों के द्वारा कालिदास योगराज की अचंचल स्थिरता की अभिव्यंजना कर उसके गौरव की एक रेखा खींचते हुये प्रतीत होते हैं।

रघुवंश (३/२) में कालिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा का बड़ा सुन्दर चित्र उपमा के द्वारा खींचा है

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना ।

तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी ॥

आसन्नप्रसवा सुदक्षिणा मानीं प्रभातकल्पा रजनी हो। रजनी दिन को प्रकाश देने वाले सूर्य का प्रसव करती है, वैसे ही रानी वंशकर्ता उज्ज्वलमूर्ति रघु को प्रसव करने जा रही है। सूर्यरूपी पुत्र को गर्भ में धारण करनेवाली आसन्नप्रसवा विराट रजनी की महिमामयी मूर्ति होती है, सुदक्षिणा की मूर्ति में वह गौरव प्रस्फुटित हो रहा है। शरीर की कृशता के कारण हीरे, जवाहिरों के भूषण

स्वयं खिसक पड़े है, जैसे रजनी में टिमटिमाते तारे स्वयं खिसक जाते हैं और दो चार ही बच रहते हैं। लोध्र के समान ईशत-पीला मुख पीले पड़ जानेवाले चन्द्रमा के समान प्रकाशहीन हो गया है। गर्भिणी के स्वाभाविक चित्रण के साथ ही प्रभातप्राया निशा का कितना समुचित वर्णन हमारे नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाता है। कालिदास की उपमाओं की रसात्मिकता तथा रसपेशलता नितान्तमर्मस्पर्शी है। औचिन्त्य तथा सन्दर्भ को शोभन बनाने की कला उसमें अपूर्व है। तपस्या के लिए आभूषणों को छोड़कर केवल वल्कल धारण करने वाली पार्वती चन्द्र तथा ताराओं से मण्डित होने वाली अरूणोदय से युक्त रजनी के समान बतलाई गई है (कुमार. ५/४४)। स्तनों के भार किंचित् झुकी हुई आतपसन्न लालवस्त्र को धारण करने वाली पार्वती फूलों के गुच्छों से झुकी हुई नवीन लाल पल्लवों से संचारिणी लता के समान प्रतीत होती है --

पर्याप्त-पुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव । स्वयंवर में उपस्थित भूपालों को छोड़कर जब इन्दुमती आगे बढ़ जाती है, तब वे राजमार्ग पर दीपशिखा के द्वारा छोड़े गये महलों के समान प्रतीत होते हैं। यहाँ राजाओं की विशरणता तथा उदासी की अभिव्यक्ति इस उपमा के द्वारा बड़ी सुन्दरता से की गई है --

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिवरा सा ।

नरेन्द्र-मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥

इसी उपमा-प्रयोग के सौन्दर्य के कारण यह महाकवि ' दीपशिखा कालिदास ' के नाम से कविगोष्ठी में प्रसिद्ध है। कालिदास उपमा की यह भूयसी विशिष्टता है कि वह ' स्थानीय ' (लोकल कलरिंग) से रंजित है और इसमें श्रोता के चक्षुःपटल के सामने समग्र चित्र को प्रस्तुत कर देती परास्त किये जाने पर पुनः वंगीय नरेश रघु के चरण-कमल के ऊपर नम्र होकर उन्हें फलों से समृद्ध बनाते हैं, जिस प्रकार उस देश के धान के पौधे (रघु. ४। ३७)। कलिंग-नरेश के मस्तक पर तीक्ष्ण प्रताप के रखने वाले रघु की समता गंभीरवेदी हाथी के मस्तक पर तीक्ष्ण अंकुश रखने वाले महावत से की गई है (रघु. ४। ३८)। प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) के नरेश रघु के आगमन पर उसी प्रकार झुक जाते हैं जिस प्रकार हाथियों के बाँधने के कारण कालागुरु के पेड़ झुक जाते हैं (रघु. ४। ४८१)। इन समस्त उपमाओं में ' स्थानीय रंजन ' का आश्चर्यजनक चमत्कार है। प्रकृति से गृहीत उपमाओं में एक विलक्षण आनन्द है। राक्षस के चंगुल से बचने पर बदहोश उर्वशी धीरे-धीरे होश में आ रही है। उसकी समता के लिए कालिदास चन्द्रमा के उदय होने पर अन्धकार से छोड़ी जाती हुई (मुच्यमाना) रजनी , रात्रीकाल में धूमराषि से विरहित होने वाली अग्नि की ज्वाला, बरसात में तट के गिरने के कारण कलुषित होकर धीरे-धीरे होने वाली गंगा के साथ देकर पाठकों के नेत्रों के सामने तीन सुन्दर दृश्य को एक साथ उपस्थित कर देते हैं। ये तीनों उपमार्ये औचित्यमण्डित होने से नितान्त रसाभिव्यंजक हैं (विक्रमोर्वशीय १।९)

आविर्भूते शशिनि तसमा मुच्यमानेव रात्रि -

नेषस्यार्चिहुतभुज इव छिन्नभूयिष्ठधूमा ।

मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा

गंगा रोधःपतनकलुषा गृह्णीतव प्रसादम् ॥**पात्र-चित्रण**

कालिदास के पात्र जीवनी शक्ति से सम्पन्न जीते-जागते प्राणी हैं। उनकी शकुन्तला प्रकृति की कन्या, आश्रम की निसर्ग बालिका है, जिसके जीवन को बाह्य प्रकृति ने अपने प्रभाव से कोमल से कोमल तथा स्निग्ध बनाया है। हिमालय की पुत्री पार्वती तपस्या तथा पातिव्रत का अपूर्व प्रतीक हैं, जिसके कठोर तपश्चरण के आगे ऋषिजन भी अपना माथा टेकते हैं। धीरता की मूर्तिधारिणी, चपल प्रेम की प्रतिमा मालविका, उन्नत प्रेम की अधिकारिणी उर्वशी, पारस्परिक ईर्ष्या तथा प्रणसमान की प्रतिनिधि इरावती - संस्कृत - साहित्य के अवि-स्मरणीय स्त्री-पात्र हैं। आदर्श पात्रों के सर्जन में रघुवंश अद्वितीय है। देवता और बाह्यण में भक्ति, गुरुवाक्य में अटल विश्वास, मातृरूपिणी की परिचर्या, अतिथि की इष्टपूर्ति के लिए धरिणीधर राजा की व्याकुलता, लोकरंजनके निमित्त तथा अपने कुल को निष्कलंक रखने के लिए नरपति के द्वारा अपनी प्राणोपमा धर्मपत्नी का निर्वासन-कालिदासीय आदर्श सृष्टि के कतिपय के दृष्टान्त हैं। कालिदास रमणी-रूप के चित्रण में ही समर्थ नहीं है; प्रत्युत नारी के स्वाभिमान तथा उदात्त रूप के प्रदर्शन में भी कृतकार्य है। मेघदूत भारतीय कवि की अब्धूत प्रतिभा के द्वारा चित्रित भारतश्री का एक नितान्त सरस चित्रण है। 'ऋतुसंहार' में समस्त ऋतुएँ अपने विशिष्ट रूप में प्रस्तुत होकर पाठको का मनोरंजन करती है।

अभ्यास प्रश्न 2 - बहुविकल्पीय प्रश्न

- (1) अपनी विद्यापर बहुत गर्व था -

(क) द्रौपदी	(ख) विद्योत्तमा
(ग) शकुन्तला	(घ) इन्दुमति
- (2) कुमारसम्भव है -

(क) महाकाव्य	(ख) खण्डकाव्य
(ग) नाटक	(घ) गद्य काव्य
- (3) कालिदास के कुल ग्रन्थ माने जाते हैं -

(क) 6	(ख) 4
(ग) 5	(घ) 8
- (4) कालिदास के कुल नाटक हैं -

(क) 5	(ख) 2
(ग) 3	(घ) 7
- (5) कुमारसम्भव कुल सर्गों में विभक्त है -

(क) 18	(ख) 17
(ग) 20	(घ) 14
- (6) कौन सा छन्द कालिदास को परम प्रिय था -

- (क) मन्दाक्रान्ता (ख) अनुष्टुप
 (ग) शिखरिणी (घ) स्रग्धरा
 (7) कालिदास के प्रिय देव थे -
 (क) ब्रह्मा (ख) विष्णु
 (ग) नारद (घ) शिव
 (8) विक्रमादित्य को सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे -
 (क) भारवि (ख) श्रीहर्ष
 (ग) कालिदास (घ) बाणभट्ट

1. 4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि कालिदास का परिचय क्या है, वे किस शताब्दी में हुए थे। कालिदास के ग्रन्थ क्या है ? इसके विषय में परिचित होंगे। कालिदास के आठ ग्रन्थ हैं। इनके परिचय को जानते हुए उनके महत्त्व को भी समझेंगे। कालिदास का व्यक्तित्व महान था। वे कवियों में सबसे श्रेष्ठ कवि माने गये हैं। उनकी पत्नी का नाम विद्योत्तमा था, वे महान विदुषी थी, कालिदास की कविता विश्व के हृदय को भी आनन्दमय कर देती है। इनकी कविता में प्रसाद गुण की अगाधता, माधुर्य का सन्निवेश, उपमा की अपूर्वता आदि विश्व विख्यात माने जाते हैं।

1. 5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
विद्योपार्जन	विद्या का उपार्जन
अनावृत कपाटं	बन्द फाटक को
अस्ति	है
कश्चित	कौन
वाग	वाणी
विरही	बेचैन
मृगाक्षी	मृग के नेत्र के समान आँख वाली
अलं	पर्याप्त
तव	तुम्हारे
श्रमेण	श्रम से
कालिदासस्य	कालिदास का
भारवेरर्थं गौरवम्	भारवी का अर्थ गौरव
सन्ति तयो गुणाः	तीन गुण हैं।
कालिदास गिरां	कालिदास के वाणी को
ममापि	मेरा भी

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 – (1) महाराज सदानन्द (2) कालिदास (3) मॉ काली (4) मेघदूत खण्डकाव्य (5) महाराजा विक्रमादित्य (6) अभिज्ञानशाकुन्तल (7) उपमा अलंकार (8) उज्जयिनी (9) सर विलियम जोन्स महोदय (10) अग्निमित्र ।

2- बहुविकल्पीय प्रश्न – (1) (ख) (2) (क) (3) (घ) (4) (ग) (5) (ग)
(6) (क) (7) (घ) (8) (ख)

1.7 सन्दर्भ

1. पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी
2. पुस्तक का नाम - संस्कृत साहित्य का इतिहास , लेखक का नाम - कपिलदेव द्विवेदी
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1. पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक वुना नाला वाराणसी

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कालिदास के जन्म समय के विषय में परिचय दीजिये ।
2. कालिदास की शैली की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
3. कालिदास की काव्यकला पर प्रकाश डालिए ।
4. कुमारसम्भव का महाकाव्य के रूप में मूल्यांकन कीजिए ।

इकाई . 2 श्लोक संख्या 1 से 15 तक (मूल,अन्वय,अर्थ, व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 श्लोक संख्या 1 से 15 तक (मूल अन्वय अर्थ - व्याख्या)

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 उपयोगी पुस्तकें

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित यह खण्ड दो की दूसरी इकाई है । इसके पूर्व की इकाई में आपने कालिदास के बारे में अध्ययन किया था । प्रस्तुत इकाई में आप कालिदास रचित कुमारसम्भव के कुछ श्लोकों की व्याख्या से परिचित होंगे । इस इकाई में पन्द्रह श्लोकों की व्याख्या की गयी है ।

कालिदास ने अपने ग्रन्थ कुमारसम्भवम् में एक से लेकर पन्द्रह श्लोकों में हिमालय का वर्णन किया है । कालिदास ने हिमालय का वर्णन करते हुए यह कहा है कि भारत वर्ष के उत्तर दिशा में पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ विशाल हिमालय पर्वत मानों पृथ्वी की लम्बाई नापने वाला माप-दण्ड है जिसके दो पलड़ों के रूप में पूर्व एवं पश्चिम दिशा में दोनों समुद्र स्थित हैं ।

अतः इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप कुमारसम्भव के प्रारम्भिक 15 श्लोकों की व्याख्या करते हुए उनके महत्व को बता सकेंगे ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- कालिदास द्वारा बताए गये प्रकृति चित्रण से परिचित हो सकेंगे ।
- इस इकाई में प्राप्त सूक्तियों की विशेषता बताएंगे ।
- हिमालय , रत्नों का उत्पत्ति स्थान है , समझा सकेंगे ।
- श्लोक संख्या एक से पाँच तक के महत्व को अलग से बता सकेंगे ।
- सम्पूर्ण इकाई में वर्णित तथ्यों को भली भाँति समझा सकेंगे ।
- प्रस्तुत इकाई पर एक निबन्ध भी लिख सकेंगे ।

2.3 श्लोक संख्या 1 से 15 तक(मूल अन्वय अर्थ-व्याख्या)

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।

पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥ 1 ॥

अन्वय - उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयः नाम नगाधिराजः पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य पृथिव्याः मानदण्ड इव स्थितः अस्ति।

पदार्थ - उत्तरस्यां = उत्तर (में) । दिशि = दिशा में । देवतात्मा = देवतास्वरूप । हिमालयो नाम = हिमालय नामक । नगाधिराजः = पर्वतों का राजा (पर्वतराज) पूर्वापरौ = पूर्व और पश्चिम (के)। तोयनिधी = (दोनों) समुद्रों को । वगाह्य = व्याप्त करके । पृथिव्याः = पृथ्वी के। मानदण्डः इव = मानदण्ड की तरह । स्थितः = स्थित । अस्ति = है ।

अनुवाद - (भारत वर्ष के) उत्तर दिशा में देवतास्वरूप (देवता-मय) हिमालय नामक (हिमालय नाम से प्रसिद्ध) पर्वतराज (समस्त पर्वतों का राजा) पूर्व और पश्चिम में स्थित (दोनों) समुद्रों को

व्याप्त करके (पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा तक फैलकर) मानों पृथ्वी के मानदण्ड की तरह स्थित (विद्यमान) है ।

समास - देवता आत्मा यस्य सः देवतात्मा (बहुव्रीहि) । हिमानाम् आलयः हिमालयः (षष्ठी तत्पुरुष)। न गच्छन्तीति नगाः (नञ् तत्पुरुष), अधिको राजा अधिराजः (प्रादि तत्पुरुष), नगानाम् अधिराजः नगाधिराजः (षष्ठी तत्पुरुष) । पूर्वश्च अपरश्च तौ पूर्वापरौ (द्वन्द्व)। तोयानां निधिः, तौ तोयनिधी (षष्ठी तत्पुरुष) । मानस्य दण्डः मानदण्डः (ष0त0) ।

व्याकरण - देवता-दीव्यतीति देवः, देव एव देवता, स्वार्थे तल्प्रत्यय 'तलन्तं स्त्रियाम्' इस नियम से इस पद को स्त्रीलिंग टाप् प्रत्यय हुआ। अधि + राजन् + टच्, 'राजाहःसखिभ्यश्च' इति समासान्तश्च । वगाह्य-अवगाह्य = अव + गाह् + क्त्वा (ल्यप्), भागुरि के मतानुसार अव के अ का लोप हो गया है । मानस् - भाव मे ल्युट् अथवा मीयतेऽनेनेति मानम् - करण में ल्युट् ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

छन्द - उपजाति । इस सर्ग के अधिकांश श्लोकों में उपजाति वृत्त है ।

विशेष - तात्पर्य यह है कि भारत वर्ष के उत्तर दिशा में पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ विशाल हिमालय पर्वत मानों पृथ्वी की लम्बाई नापने वाला माप-दण्ड है जिसके दो पलड़ों के रूप में पूर्व एवं पश्चिम दिशा में दोनों समुद्र स्थित है । ॥1॥

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।

भास्वान्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम् ॥ 2 ॥

अन्वय - सर्व शैलाः यं वत्सं परिकल्प्य दोहदक्षे मेरौ दोग्धरि स्थिते (सति) पृथूपदिष्टां गोरूपधारिणीं) धरित्रीं भास्वान्ति रत्नानि महौषधी च (क्षीरत्वेन परिणताः) दुदुहुः।

पदार्थ - सर्व शैलाः = समस्त पर्वता यम् = जिस (हिमालय) को। वत्सं = बछड़ा । परिकल्प्य = कल्पना करके । दोहदक्षे = दुहने में कुशला मेरौ = मेरू पर्वत के । दोग्धरि = दुहने वाला । स्थिते = स्थित होने पर । पृथूपदिष्टाम् = पृथु राजा की आज्ञा से । धरित्रीम् = पृथ्वी को । भास्वान्ति = चमकते हुए । रत्नानि = रत्नों को (मरकतमणि आदि)। महौषधीः = महान् औषधियों को (मृतसंजीवनी आदि) दुदुहुः = दुहा ।

अनुवाद - समस्त पर्वतों ने जिस (हिमालय) को बछड़ा बनाकर दुहने में कुशल सुमेरू पर्वत के दुहने वाला होने पर पृथु राजा की आज्ञा से पृथ्वी के चमकते हुए रत्नों को और (संजीवनी आदि) महान औषधियों को दुहा ।

समास - सर्वे च ते शैलाः सर्वशैलाः (कर्मधारय)। दोहे दक्षः दोहदक्षः, तस्मिन् दोहदक्षे (सप्तमी तत्पुरुष) । महत्यश्च ता ओषधयः, महौषधयः, ता महौषधीः (कर्म0) । पृथुना उपदिष्टा पृथुदिष्टा, ताम् पृथूपदिष्टाम् (तृतीया तत्पु0)। भास्वान्ति च भास्वत्यश्चेति भास्वान्ति (एक शेष) ।

व्याकरण - परिकल्प्य = परि + कल्प् + ल्यप् । दोग्धरि = दुह् + तृच् (स0ए0व0) । स्थिते - सति सप्तमी, इसे 'भावलक्षणा' सप्तमी भी कहते हैं । उपदिष्टाम् = उप + दिश् + क् + टाप् (दि0ए0व0)। भास्वान्ति-भास्वत् शब्द का द्वितीया बहु-वचन, नपुंसकलिंग का रूप है तथा रत्नानि शब्द का विशेषण है । दुदुहुः - दुह + लिट्, प्रथम पुरुष, बहुवचन ।

अलंकार - तुल्ययोगिता ।

विशेष - प्राचीन काल में नारायण के अंश से उत्पन्न सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ पृथु राजा ने प्रजा के कल्याण के लिए गोरूप पृथ्वी से अनेक रत्नों का दोहन किया था। उस समय समस्त पर्वतों ने पृथु राजा की आज्ञा से सुमेरु पर्वत को ग्वाला तथा हिमालय को बछड़ा बनाकर पृथ्वी रूपी गौ से मरकत आदि मणियों तथा मृत संजीवनी आदि जड़ी-बूटियों का दोहन किया था । प्रस्तुत श्लोक से 16 श्लोक पर्यन्त हिमालय की शोभा का वर्णन है । ॥ 2 ॥

अनन्त-रत्न-प्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम् ।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥3॥

अन्वय - अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं सौभाग्यविलोपि न जातम् । हि गुणसन्निपाते एकः दोषः इन्दोः किरणेषु अङ्कः इव निमज्जति।

पदार्थ - अनन्तरत्नप्रभवस्य = असंख्य रत्नों के उत्पत्ति (उद्गम) स्थान। यस्य = जिस (हिमालय) का। हिमम् = बर्फ । सौभाग्यविलोपि = सौन्दर्य का विनाशक। न जातम् = नहीं हुआ। हि = क्योंकि गुणसन्निपाते = गुणों के समूह में। एकः दोषः एक दोष। इन्दोः = चन्द्रमा की। किरणेषु = किरणों में। अङ्कः इव = कलङ्क की तरह। निमज्जति = छिप जाता है।

अनुवाद - असंख्य रत्नों के उद्गम स्थान हिमालय के सौन्दर्य को हिम नष्ट नहीं कर सका, क्योंकि अनेक गुणों के समूह में एक दोष (अवगुण) चन्द्रमा की किरणों में कलंक की तरह विलीन हो जाता है।

समास - अविद्यमानः अन्तः येषां तानि अनन्तानि (बहु०), अनन्तानि च तानि रत्नानि अनन्तरत्नानि (कर्म०), अनन्तरत्नानां प्रभवः तस्य अनन्तरत्नप्रभवस्य (ष० तत्पु०) । सौभाग्यं विलुम्पति तच्छील इति सौभाग्यविलोपि (उपपद तत्पु०) । गुणानां सन्निपातः गुणसन्निपातः तस्मिन् गुणसन्निपाते (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण - अनन्तानि - अविद्यमानः अन्तः येषां तानि । यहाँ 'अविद्यमानः' में विद्यमान पद का वैकल्पिक लोप हुआ है । प्रभव-प्र + भू + अप् । सौभाग्यम् - सुभग् + ष्य्, सुभगस्य भावः सौभाग्यं 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्य् । 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इच्युभयपदवृद्धि । हिमम्-कर्ता है ।

अलंकार - अर्थान्तरन्यास, उपमा ।

विशेष - हिमालय को अपरिमित रत्नों का भण्डार कहा गया है । इस पर्वत पर अनेक श्रेष्ठ वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं । उमा नामक कन्यारत्न, वैदूर्यादि मणिरत्न, देवदारु प्रभृति वृक्षरत्न, मृतसंजीवनी आदि औषधीरूपी रत्न, गंगादि नदी रूपी, रत्न तथा सोमलता आदि यज्ञ द्रव्य का रूप रत्न हिमालय पर ही उत्पन्न होते हैं । इसीलिए कवि ने हिमालय के लिए अनन्तरत्न प्रभवस्य विशेषण का प्रयोग किया है । असंख्य रत्नरूपी गुण समूहों के कारण हिमालय का बर्फ रूपी एक दोष उसके सौन्दर्य को नष्ट नहीं कर सका, क्योंकि बहुत से गुणों के समूह में एक दोष उसी प्रकार विलुप्त हो जाता है, जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है । तात्पर्य यह है कि हिम के कारण हिमालय की शोभा कम नहीं हुई ॥3 ॥

यश्चाप्सरो-विभ्रम-मण्डानानां सम्पादयित्रीं शिखरैर्विभर्ति।**बलाहकच्छेद-विभक्तरागामकाल-सन्ध्यामिव धातुमत्ताम् । 4 ।****अन्वय - यः च अप्सरोविभ्रममण्डानानां सम्पादयित्रीं बलाहकच्छेदविभक्तरागां धातुमत्ताम्****अकालसन्ध्याम् इव शिखरैः विभर्ति ।****पदार्थ - यः = जो हिमालय । अप्सरोविभ्रममण्डानानाम् = अप्सराओं के विलासमय अलंकारों का। सम्पादयित्रीम् = सम्पादन करने वाली । बलाहक = मेघ । छेद = खण्डों (टुकड़ों में) । विभक्तरागाम् = रंग का संक्रमण करने वाली । धातुमत्ताम् = सिन्दूर, गैरकादि (गेरू आदि) धातु सम्पत्ति को । अकालसन्ध्याम् इव = असमय में प्राप्त संध्या की तरह। शिखरैः = शिखरों से। विभर्ति = धारण करता है ।****अनुवाद - जो (हिमालय) अप्सराओं के विलासमय अलंकरणों का सम्पादन करने वाली (अप्सराओं के श्रृंगार की उपादान भूत) और मेघ-खण्डों (आस-पास विचरण करने वाले बादल के टुकड़ों) में (अपनी लालिमा से) रंग का संक्रमण (संचार करने वाली गेरू आदि धातुओं को असमय (सूर्यास्त से अतिरिक्त समय) में प्राप्त संध्या की तरह शिखरों पर धारण करता है ।****समास - विभ्रमेण मण्डनम् विभ्रममण्डनम् (तृ०तत्पु०), अप्सरसां विभ्रममण्डनम् तेषां अप्सरोविभ्रममण्डनानाम् (ष० तत्पु०) बलाहकानां छेदाः बलाहकच्छेदाः (ष० तत्पु०)। बलाहकच्छेदेषु विभक्तः (स० तत्पु०) रागो यया ताम् बलाहकच्छेदविभक्तरागाम् (बहु०)। अकाले सन्ध्या ताम् अकालसन्ध्याम् (स० तत्पु०) ।****व्याकरण - सम्पादयित्रीम् - सम् + पद् + णिच् + तृण् + डीप् । धातुमत्ताम्-धातु + मतुप् + तल् + टाप्, द्वितीया एक०। विभर्ति- भृ + लट्, प्र० पु०, एक०।****अलंकार - जात्युत्प्रेक्षा ।****विशेष - हिमालय की कतिपय चोटियों पर गेरू आदि धातुओं की रंग-बिरंगी चट्टानें हैं। कभी-कभी उन चट्टानों के समीप पहुँचे हुए बादल के टुकड़े उनकी छाया पड़ने पर संध्याकालीन बादलों के समान रंग-बिरंगे दिखलाई पड़ने लगते हैं । उन्हें देखकर वहाँ की अप्सराओं को संध्या होने के पूर्व ही संध्या का भ्रम हो जाता है और वे सायंकालीन नृत्य-गान के लिए श्रृंगार करना प्रारम्भ कर देती हैं । ॥ 4 ॥****आमेखलं सञ्चरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य ।****उद्वेजिता वृष्टि भिराश्रयन्ते श्रृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥ 5 ॥****अन्वय - सिद्धाः आमेखलं सञ्चरतां घनानां अधः सानुगतां छायां निषेव्य, वृष्टिभिः उद्वेजिताः (सन्तः) यस्य आतपन्ति श्रृङ्गाणि आश्रयन्ते ।****पदार्थ - सिद्धाः = सिद्ध लोग (अणिमा आदि सिद्धि को प्राप्त करने वाले अथवा विश्रवाबसु प्रभृति सिद्ध लोग) । आमेखलाम् = मध्यभाग (नितम्ब) पर्यन्त । सञ्चरताम् = विचरण करते हुए (संचरणशील) । घनानाम् = बादलों की । अधः सानुगताम् = शिखर के नीचे की । छायाम् = छाया का । निषेव्य = सेवन करके । वृष्टिभिः = वर्षा से। उद्वेजिताः = पीड़ित (होकर) । यस्य = जिस (हिमालय) के । आतपवन्ति = धूप से युक्त । श्रृङ्गाणि = शिखरों का । आश्रयन्ते = आश्रय**

लेते हैं।

अनुवाद - सिद्ध लोग (हिमालय के) के मध्य भाग में संचरणशील मेघों की निम्न शिखर स्थित छाया का सेवन करके (पुनः) वर्षा से पीड़ित होकर जिसके धूप से युक्त शिखरों पर चले जाते हैं।

समास - मेखलामभिव्याप्य इति आमेखलम् (अव्ययी०)। अधः स्थितानि सानूनि अधः सानूनि (मध्यमपदलोपी कर्म०), अधःसानूनि गता अधःसानुगता ताम् अधः सानुगताम् (द्वि०तत्पु०)।

व्याकरण - संचरताम् - सम् + चर् + शतृ, (षष्ठी बहु)। 'समुपसर्ग-पूर्वकाज्वर्धातोः 'लृट्: शतृशानचावप्रथममासमानाधिकरणे' इति शतृप्रत्यया निषेव्य-नि + सेव् + ल्यप्। उद्वेजिताः - उद् + विञ् + णिच् + क्त, प्रथमा बहु०। आतपवन्ति-आतप + मतुप्, (द्वितीया बहु०)। आश्रयन्ते - आ + श्रि + लट्, प्र० पु०, (बहु०)।

अलंकार - परिकर, काव्यलिंग।

विशेष - हिमालय की कतिपय चोटियाँ इतनी ऊँची हैं कि मेघ भी उनके मध्यभाग तक ही पहुँच पाता है, उनके ऊपर का आधा भाग मेघों के ऊपर निकला रहता है। इसलिए निम्न भाग में छाया का आनन्द लेने वाले सिद्ध लोग अधिक वर्षा से पीड़ित होने पर बादलों के ऊपर उठे हुए हिमालय के उन शिखरों पर चले जाते हैं, जहाँ उस समय धूप होती है। तात्पर्य यह है कि हिमालय बादलों से भी ऊँचा है। ॥5॥

पदं तुषार - स्तुतिधौत-रक्तं यस्मिन्नदृष्ट्वाऽपि हतद्विपानाम् ।

विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः ॥ 6 ॥

अन्वय - यस्मिन्किराताः तुषारस्तुतिधौतरक्तं हतद्विपानां केसरिणां पदम् अदृष्ट्वा अपि नखरन्ध्रमुक्तैः मुक्ताफलौ मार्गं विदन्ति।

पदार्थ - यस्मिन् = जिस (हिमालय) में। किराताः = किरात लोग। तुषारस्तुतिधौतरक्तम् = हिमस्त्राव से धुले रक्त से सने। हतद्विपानाम् = हाथियों को मारने वाले (गजहिंसक)। केसरिणाम् = सिंहों के। पदम् = पदचिन्ह को। अदृष्ट्वा = न देखकर। अपि = भी। नखरन्ध्रमुक्तैः = नाखूनों के छिद्रों से गिरी हुई। मुक्ताफलैः = (गज) मुक्ताओं के द्वारा। मार्गम् = मार्ग को। विदन्ति = जानते हैं।

अनुवाद - जिस (हिमालय) में किरात लोग, हाथियों का वध करने वाले सिंहों के पदचिन्हों को, जिनका रक्त हिम की धारा से धुल गया है, न देखकर भी (जिनके) नखछिद्रों से गिरे हुए मोतियों के द्वारा उनके गन्तव्य मार्ग को जानते हैं।

समास - तुषाराणां स्तुतयः तुषारस्तुतयः (ष० तत्पु०), तुषारस्तुतिभिः धौतं तुषारस्तुतिधौतम् (तृ०तत्पु०), तुषारस्तुतिधौतं रक्तं यस्य तत् तुषारस्तुति-धौतरक्तम् (बहु०)। हता द्विपाः यैः ते हतद्विपाः तेषाम् हतद्विपानाम् (बहु०)। नखानां रन्ध्राणि नखरन्ध्राणि (ष०तत्पु०), नखरन्ध्रेभ्यो मुक्तानि तैः नखरन्ध्रमुक्तैः (ष० तत्पु०)। मुक्ता एवं फलानि, तैः मुक्ताफलैः (कर्म०)।

व्याकरण - स्तुति-स्त्रवणं श्रुतिः, स्त्रुघातोः 'स्त्रियां क्तिन्' इति भावे क्तिन्प्रत्ययः। द्विपानाम्-द्वाभ्यां पिबन्तीति द्विपाः, द्वि + पा + क। केसरिणाम्-केसर + इन्, 'अत इनि ठनौ' इति केसरशब्दा न्नित्य योगे इनि -प्रत्ययः। अदृष्ट्वा - न दृष्ट्वा - नञ् + दृश् + क्त्वा।

अलंकार - उदात्त ।

विशेष - हिमालय पर्वत पर निवास करने वाले सिंह जब हाथियों का शिकार करके चले जाते हैं तब रक्त से लाल उनके पंजों की छाप, पिघलने के कारण निरन्तर प्रवाहित हो रही हिम की धारा से धुल जाती है। फिर भी उन सिंहों के नखों से गिरी हुई गजमुक्ताओं को देखकर वहाँ के किरात यह पता लगा लेते हैं कि सिंह किस दिशा में गये। ॥6 ॥

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुंजरबिन्दु-शोणाः ।

व्रजन्ति विद्याधर-सुन्दरीणामनंगलेख-क्रियोपयोगम् ॥7 ॥

अन्वय - यत्र धातुरसेन न्यस्ताक्षराः कुंजरबिन्दुशोणाः भूर्जत्वचः विद्याधर-सुन्दरीणाम् अनंगलेखक्रियया उपयोगं व्रजन्ति ।

पदार्थ - यत्र = जहाँ । धातुरसेन = धातुरस (सिन्दूर आदि द्रव) । न्यस्ताक्षराः = लिखे गये वर्ण । कुंजरबिन्दुशोणाः = गजबिन्दु के समान लाल । भूर्जत्वचः = भोजपत्र । विद्याधरसुन्दरीणाम् = विद्याधरियों (विद्याधरों की स्त्रियों) के । अनंगलेखक्रियया = प्रेम-पत्र लिखने के । उपयोगम् = काम में । व्रजन्ति= आते हैं ।

अनुवाद - जहाँ विद्याधरों की सुन्दरियाँ, भोजपत्रों को-जिनपर सिन्दूर द्रव (अथवा गेरू आदि के द्रव) से लिखे गये अक्षर गजबिन्दु के समान लाल मालूम पड़ते हैं-प्रेमपत्र लिखने के काम में लाती हैं ।

समास - धातूनां रसः तेन धातुरसेन (ष० तत्पु०) । न्यस्तानि अक्षराणि यासु ताः न्यस्ताक्षराः (बहु० व्री०) । कुंजराणां बिन्दवः इति कुंजरबिन्दवः (ष० तत्पु०), कुंजरबिन्दव इव शोणाः कुंजरबिन्दव इव शोणाः कुंजरबिन्दुशोणाः (उपमित् कर्म०) । भूर्जानां त्वचः भूर्जत्वचः (ष० तत्पु०) । विद्याधराणां सुन्दर्यः तासाम्, विद्याधरसुन्दरीणाम् (ष० तत्पु०) । अनंगस्य लेखाः (ष० तत्पु०), अनंगलेखानां क्रिया तथा अनंगलेखक्रियया (ष० तत्पु०)।

व्याकरण - न्यस्त - नि + अस् + क्त । भूर्जत्वचः-कर्तृपद है ।

अलंकार - लुप्तोपमा ।

विशेष - तात्पर्य यह है कि हिमालय पर्वत पर उत्पन्न होने वाले भोजपत्रों पर लिखे गए अक्षर हाथी की सूँड़ पर बनी हुई लाल बुँदकियों के समान प्रतीत होती हैं ॥7 ॥

अभ्यास प्रश्न - 1

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

1. हिमालय भारत के किस दिशा में स्थित है

क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण

2. किससे रत्नों और ओषधियों को धुलवाया

क. पृथ्वी ख. हिमालय ग. सुमेरू घ. मैनाक

रिक्त स्थान भरिये -

3. अनन्त यस्य ।

4. नख छिद्रों से गिरे हुएसे सिंहों के मार्ग जान जाते हैं ।

सही गलत का निशान लगाएं -

5. हिमालय अनेक रत्नों का उत्पत्ति स्थान है ()

यः पूरयन् कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन ।

उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिषोपगन्तुम् ॥ 8 ॥

अन्वय - यः दरीमुखोत्थेन समीरणेन कीचकरन्ध्रभागान् पूरयन् उद्गास्यतां किन्नराणां तानप्रदायित्वम् उपगन्तुम् इच्छति इव ।

पदार्थ - यः = जो (हिमालय) । दरीमुखोत्थेन = गुहामुख से उत्पन्ना समीरणेन = वायु के द्वारा । कीचकरन्ध्रभागान् = कीचक नाम के बाँसों में स्थित छिद्र प्रदेशों को । पूरयन् = भरता हुआ (बजाता हुआ) । उद्गास्यताम् = उच्च स्वर में गाने वाले । किन्नराणाम् = किन्नरों (देवगायकों) को । तानप्रदायित्वम् = तान प्रदान करने की । उपगन्तुम् इच्छति इव = मानो इच्छा करता है ।

अनुवाद - जो (हिमालय) गुफा रूपी मुख से उत्पन्न वायु के द्वारा वेण के छिद्रों को भरता हुआ उच्च स्वर में गाने वाले किन्नरों को मानों तान प्रदान करने की इच्छा करता है ।

समास - दरी एवं मुखं दरीमुखं (कर्म०), दरीमुखादुत्तिष्ठतीति दरी - मुखोत्थः तेन दरीमुखोत्थेन (पं० तत्पु०) । कीचकरन्ध्राणां भागाः तान् कीचक-रन्ध्रभागान् (ष० तत्पु०) । तानं प्रदातुं शीलं यस्य सः, तस्य भावः तान प्रदायित्वम् (उपपद बहु० व्री०) ।

व्याकरण - उत्थेन-उद् + स्था + क्त, तृ० एक०, 'आतश्चोपसर्गे' इति कर्तरि क्तः। पूरयन् - तृ + णिच् + शतृ, प्र० एक० । उद्गास्यताम् - उद् + गै + स्य+शतृ, ष० बहु० । तान- प्र + दा + णिनि + त्व, द्वि एक०, 'सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये' इति तानप्रोपदात् दाधातोर्णिनिप्रत्ययः। 'तस्य भावस्तलौ' इति भावार्थे- त्व प्रत्ययः। उपगन्तुम् - उप + गम् +तुमुन् ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

विशेष - हिमालय पर्वत पर छेदवाले बाँस प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं जो वायु भर जाने पर बजने लगते हैं । उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो देव गायक किन्नरों के साथ ये संगत कर रहे हों ॥8 ॥

कपोलकण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।

यत्र स्त्रुतक्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति ॥9 ॥

अन्वय - यत्र करिभिः कपोलकण्डूः विनेतुं विघट्टितानाम् सरलद्रुमाणां स्त्रुतक्षीरतया प्रसूतः गन्धः सानूनि सुरभी करोति ।

पदार्थ - यत्र = जहाँ । करिभिः = हाथियों के, कपोलकण्डूः = गालों की खुजली को । विनेतुम् = मिटाने के लिए । विघट्टितानां = रगड़े गये । सरलद्रुमाणाम् = देवदारु के वृक्षों से । स्त्रुतक्षीरतया = बहने वाले दुग्ध से । प्रसूतः उत्पन्न । गन्धः = सुगन्ध । सानूनि = शिखरों को । सुरभीकरोति = सुगन्धित करती है ।

अनुवाद - जहाँ हाथियों के द्वारा अपने गालों (गण्डस्थल) की खुजली मिटाने के लिए रगड़ने गए देवदारु के वृक्षों से बहने वाले दूध से उत्पन्न गन्ध शिखरों को सुगन्धित करती है ।

समास - कपोलयो कण्डूः कपोलकण्डूः (ष० तत्पु०)। सरलाश्च ते द्रुमाः तेषाम् सरलद्रुमाणाम्

(कर्म०) । स्त्रुतानि क्षीराणि येषां ते स्त्रुतक्षीराः तेषां भावस्तया स्त्रुतक्षीरतया (बहु०व्री०)।

व्याकरण - करिभिः - करः (शुण्डादण्डः) अस्ति येषां ते इति करिणस्तैः, करशब्दात् 'अत इनि ठनौ' इति नित्ययोगे इनिः, करि+इनि । विनेतुम्-वि + नी + तुमुन् (तुम्) 'तुमुन् ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' । प्रसूतः- प्र+सू + क्त, प्र० एक० । सुरभीकरोति - सुरभि + च्वि + कृ, लट्, प्र०पु०, एक० ।

विशेष - जब हिमालय पर निवास करने वाले हाथी अपनी कनपटी को खुजलाने के लिए देवदारू वृक्षों से माथा रगड़ते हैं तब उनसे ऐसा सुगन्धित दूध बहने लगता है । जिससे हिमालय की समस्त चोटियाँ सुरभिमान हो जाती है ॥ 9॥

वनेचराणां वनिता-सखानां दरीगृहोत्संग-निषक्त-भासः ।

भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपुराः सुरतप्रदीपाः ॥ 10 ॥

अन्वय - यत्र रजन्यां दरीगृहोत्संग निषक्तभासः ओषधयः वनितासखानाम् वनेचराणाम् अतैलपुराः सुरतप्रदीपाः भवन्ति ।

पदार्थ - यत्र = जहाँ । रजन्याम् = रात्रि में । दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः = (दरीगृह = गुफा, उत्संग गोद गुफाओं के भीतर प्रकाश को फैलाती हुई । ओषधयः वनेचरों के लिए । अतैलपुराः = तेल की अपेक्षा से रहित । सुरतप्रदीपाः = सम्भोगकालीन दीपक । भवन्ति = हो जाती हैं, काम करती हैं ।

अनुवाद - जहाँ रात में गुफाओं के भीतर प्रकाश फैलाती हुई ओषधियाँ, (अपनी) प्रेमिकाओं के साथ (विहार करने वाले) वनेचरों के लिए, तेल की अपेक्षा से रहित संभोगकालीन दीपक का काम करती हैं ।

समास - दर्या एव गृहाः दरीगृहाः (कर्म०), दरीगृहाणाम् उत्संगाः (ष० तत्पु०), तेषु निषक्ताः (स० तत्पु०), भासः (कर्म०) यासाम् ताः दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः (बहु० व्री०) । वनितानां सखायः वनितासखाः तेषाम् (ष० तत्पु०) । वने चरन्तीति वनेचराः तेषाम् (उपपद तत्पु०) । तैलेन पूर्यन्त इति तैलपुराः (उपपद तत्पु०), न तैलपुराः अतैलपुराः (न' तत्पु०) । सुरतेषु प्रदीपाः सुरतप्रदीपाः (स० तत्पु०) ।

व्याकरण - निषक्त - नि + सञ् + क्त । वनितासखानाम् - वनितानां सखायः - वनितासखि + टच् । वनेचराणाम् - वने+ चर् + ट (अलुक् तत्पु०) ।

अलंकार - संसृष्टि ।

विशेष- हिमालय पर कुछ ऐसी औषधियाँ हैं, जो प्रौढ़ हो जाने पर, रात के समय, चतुर्विक् प्रकाश फैलाती हैं । कवि यहाँ ऐसी औषधियों से भी संभोगकालीन दीपक का काम ले रहा है ॥10॥

उद्वेजयत्यंगलिपार्ष्णिभागान् मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र ।

न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः ॥11॥

अन्वय - यत्र शिलीभूतहिमे अंगलिपार्ष्णिभागान् उद्वेजयति अपि मार्गे दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता अश्वमुख्यः मन्दां गतिं न भिन्दन्ति ।

पदार्थ - यत्र = जहाँ (हिमालय पर) । शिलीभूतहिमे = बर्फ की चट्टानें । अंगलिपाष्णिभागान् = अंगुलियों एवं चरणतलों को । उद्वेजयति = अत्यन्त कष्ट देने वाली होती हुई । अपि = भी। मार्ग = मार्ग में । दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता = (दुर्वह = उठाने में असह्य, श्रोणि = नितम्ब, पयोधर = स्तन) नितम्बों और स्तनों के भार से पीड़ित । अश्वमुख्यः = किन्नरियाँ । मन्दाम् =(अपनी) मन्द । गतिम् = गति को) न भिन्दन्ति = नहीं छोड़तीं ।

अनुवाद - जहाँ (गमनकाल में) हिमशिलाओं द्वारा अंगुलियों एवं चरणतलों के खिन्न हो जाने पर भी, नितम्बों तथा स्तनों के भार से पीड़ित किन्नरियाँ मार्ग में (अपनी स्वाभाविक) मन्दगति को नहीं छोड़ पाती हैं।

समास - शिलीभूताः हिमाः यस्मिन् तत्र शिलीभूतहिमे (बहु०) । अंगलयश्च पाष्ण्यश्चेति अंगलिपाष्णि (द्वन्द्व), अंगलिपाष्णिनो भागाः तान्, अंगलिपाष्णिभागान् (ष० तत्पु०) । श्रीणयश्च पयोधराश्च श्रोणिपयोधरेण आर्ताः दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ताः। अश्वानां मुखानीव यासां ताः अश्वमुख्यः (बहु०) ।

व्याकरण - शिलीभूत-अशिलाः भूताः शिलीभूताः, शिला+च्चि+भू + क्त । अंगलिपाष्णि - अंगलयश्च पाष्णी च अंगलिपाष्णि (द्वन्द्व), समाहार में एकवद्भाव । उद्वेजयति - उद् + विज्+ णि+ शतृ, स० ए० व० । दुर्वह - दुर् + वह् + अच् ।

अलंकार – काव्यलिंगः।

विशेष - हिममय मार्ग पर नंगे पाँव चलती किन्नरियों के पैर के तलवे ठण्ड के कारण सुन्न-से हो जाते हैं। प्रायः ऐसी स्थिति में तेज चलना ही श्रेयस्कर होता है। किंतु नितम्बों एवं स्तनों के भार से खिन्न बेचारी किन्नरियाँ तेज चल ही कैसे सकती हैं ? ॥11॥

दिवाकराद् रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवाऽन्धकारम् ।

क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव ॥12॥

अन्वय - यः दिवाभीतम् इव गुहासु लीनं अन्धकारं दिवाकरात् रक्षति उच्चैः शिरसां शरणं प्रपन्ने क्षुद्रे अपि सति इव नूनं ममत्वम् (भवति) ।

पदार्थ - यः = जो (हिमालय) । दिवाभीतम् इव = मानो दिन में भयभीत । गुहासु = गुफाओं में । लीनम् = लीन । अन्धकारम् = अन्धकार को । दिवाकरात् = सूर्य से । रक्षति = बचाता है । उच्चैः शिरसाम् = श्रेष्ठ पुरुषों की । शरणम् = शरण में । प्रपन्ने = आये हुए । क्षुद्रे अपि = क्षुद्र व्यक्ति के प्रति भी । सति इव = सज्जन के समान । नूनम् = निश्चित रूप से । ममत्वम् (भवति) = आत्मीयता (होती है) । े

अनुवाद - हिमालय, मानो दिन में भयभीत एव गुफाओं में छिपे हुए अन्धकार को सूर्य से रक्षा करता है (अथवा- जो दिन में डरे हुए उल्लू की तरह गुफाओं में छिपे हुए अन्धकार को सूर्य से बचाता है) । निश्चित रूप से महापुरुषों की अपनी शरण में आये हुए नीच व्यक्ति के प्रति भी सज्जन के समान (ही) आत्मीयता होती है ।

समास - दिवा भीतः तम् दिवाभीतम् (अव्ययी०) । दिवा करोति इति, तस्मात् दिवाकरात् (उदपदसमास) । उच्चैः शिरः येषाम् ते, तेषाम् उच्चैः शिसाम् (बहु०) ।

व्याकरण - दिवाकरात् - दिवा + कृ + ट, पंचमी ए० व० । ममत्वम्- मम +त्वं, यहाँ पर मम पद अव्यय हैं ।

अलंकार - अर्थान्तरन्यास ।

विशेष - ज्ञातव्य है कि, उल्लू दिन में नहीं निकलते एवं अन्धेरे में छिपे रहते हैं। प्रस्तुत श्लोक में कवि ने गुहालीन अन्धकार को हिमालय की शरण में आये हुए उल्लूक की तरह कल्पित किया है । शरणापन्न अन्धकार की रक्षा करने के कारण हिमालय की महानता की व्यंजना की गई हैं ॥12 ॥

लांगलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचि गौरैः ।

यस्याऽर्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति बालव्यजनैश्चमर्यः ॥13 ॥

अन्वय - चमर्यः इतस्ततः लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैः चन्द्रमरीचिगौरैः बालव्यजनैः यस्य गिरिराजशब्दम् अर्थयुक्तं कुर्वन्ति ।

पदार्थ - चमर्यः = चमरी गायें । इतस्ततः = चारों ओर । लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैः = (लांगूल = पूँछ, विक्षेप = हिलाना, विसर्पि = विस्तृत) (निरन्तर) पूँछों के हिलाने से विस्तृत शोभावाले । चन्द्रमरीचिगौरैः = (मरीचि = किरण, गौर = श्वेत) चन्द्रकिरणों के समान श्वेत । बालव्यजनैः चामरों के द्वारा । यस्य = जिस (हिमालय) की । गिरिराजशब्दम् = गिरिराज पदवी को । अर्थयुक्तम् = सार्थक । कुर्वन्ति = बनाते हैं ।

अनुवाद - चमरी गायें, चारों ओर (अपनी) पूँछों को हिलाकर (एक विशेष) शोभा को फैलाती हुई, चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत (हिलते) चामरों के द्वारा, हिमालय को 'गिरिराज' पदवी को सार्थक (सी) बना रही हैं ।

समास - लांगूलानां विक्षेपाः लांगूलविक्षेपाः (ष० तत्पु०), लांगूलविक्षेपै विसर्पिण्यः (तृ० तत्पु०), शोभाः येषाम् तैः लांगूलविक्षेपविसर्पिशोभैः (बहु०) । चन्द्रस्य मरीचयः चन्द्र मरीचयः चन्द्र मरीचि (ष० तत्पु०), चन्द्रमरीचिभिः इव गौराणि तैः चन्द्रमरीचिगौरैः (उपमित कर्म०) । बाला एव व्यजनानि तैः बालव्यजनैः (कर्म०) । गिरिराजश्चासौ शब्दः तम् गिरिराजशब्दम् (कर्म०) ।

व्याकरण - 'विसर्पिशोभैः यहाँ गोस्त्रियोरूपसर्जनसय' इस सूत्र से 'विसर्पिणी' में ह्रस्व हुआ है । अर्थयुक्तम् - अर्थ + युज् + क्त द्वितीय एक० । गिरिराज - गिरि + राजन् + टच् । 'राजाहस्सखिभ्यष्टच्' इससे टच् प्रत्यय हुआ है ।

अलंकार - काव्यलिंगः ।

विशेष - छत्र, चँवर आदि से सुशोभित होने पर ही राजत्व की प्रतिष्ठा है । हिमालय पर पायी जाने वाली चमरी गायों की हिलती हुई पूँछों की, कवि ने यहाँ चँवर के रूप में कल्पना की है । इस प्रकार हिमालय के राजत्व को 'गिरिराज' पद से प्रतिष्ठित किया गया है ॥13 ॥

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किम्पुरूषाऽग्नानाम् ।

दरीगृहद्वारविलम्बिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति ॥ 14 ॥

अन्वय - यत्र अंशुकालेपविलज्जितानां किम्पुरूषाऽग्नानां यदृच्छया दरीगृहद्वारविलम्बिम्बाः

जलदाः तिरस्करिण्यः भवन्ति ।

पदार्थ - यत्र = जहाँ (हिमालय में) । अंशुकाक्षेपविलज्जितानाम् = वस्त्र के अपहरण से अत्यन्त लज्जित । किम्पुरूषांगानाम् = किन्नरियों के लिए । यदृच्छया = अकस्मात्, स्वेच्छा से, दैवगति से । दरीगृह = गुफा रूप भवन के । द्वारविलम्बिबिम्बाः = द्वार पर लटकने वाले । जलदाः = बादल । तिरस्करिण्यः = आवरण, पर्दे । भवन्ति = बन जाते हैं ।

अनुवाद - जहाँ (जिस हिमालय में) वस्त्रापहरण से अतिलज्जित किन्नरियों के लिए स्वेच्छा से गुफारूपी भवन के द्वार पर लटकने वाले मेघ पर्दे बन जाते हैं ।

समास - अंशुकानाम् आक्षेपः अंशुकाक्षेपः (ष० तत्पु०), विशेषेण लज्जिताः (प्रादि तत्पु०), अंशुकाक्षेपेण विलज्जिताः तेषाम् अंशुकाक्षेपविलज्जितानाम् (तृ० तत्पु०) । किम्पुरूषाणाम् अंगनाः तासाम् किम्पुरूषांगानाम् (ष० तत्पु०) । दरी एवं गृहम् दरीगृहम् (कर्म०), दरीगृहस्य द्वारम् दरीगृहद्वारं (ष०तत्पु०) । दरीगृहद्वारे विलम्बिनो (स० तत्पु०) , बिम्बा येषाम् ते दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बाः (बहु०) ।

व्याकरण - विलज्जित - वि + लज्ज् + क्त । जलदाः - जलं ददातीति - जल + दा + क । तिरस्करिण्यः - तिरस् + कृ + इन् + डीप्, प्रथम बहु० ।

अलंकार - परिणाम, रूपका

विशेष - जब हिमालय की गुफाओं में किन्नरियाँ अपने प्रियतमों के साथ कामक्रीड़ा करती रहती हैं, तब उनके द्वारा वस्त्र खींच लेने पर वे अत्यन्त लज्जित हो जाती हैं । इस समय बादल उन गुफाओं के द्वार पर लटककर ओट करके अँधेरा कर देते हैं । इस प्रकार ये बादल किन्नर-बन्धुओं के लिए अकस्मात् लज्जा - कवच से बन जाते हैं ॥14 ॥

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः ।

यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥ 15 ॥

अन्वय - भागीरथीनिर्झरसीकराणाम् वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः भिन्नशिखण्डिबर्हः यद्वायुः अन्विष्टमृगैः किरातैः आसेव्यते ।

पदार्थ - भागीरथीनिर्झरसीकराणाम् = (भागीरथी = गंगा, निर्झर = झरना, सीकर = जलबिन्दु) = गंगा के झरनों के जलबिन्दुओं को । वोढा = वह करने वाला । मुहुः = पुनः । कम्पितदेवदारु = जिसने देवदारु के वृक्षों को कम्पित किया है । भिन्नशिखण्डिबर्हः = (भिन्न = अलग, शिखण्डिबर्ह = मयूरपंख) = जिसने मयूरपंखों को अलग कर दिया है । यद्वायुः = जिसकी हवा । अन्विष्टमृगैः = मृगों के शिकारी । किरातैः = किरातों के द्वारा । आसेव्यते = सेवित की जाती है ।

अनुवाद - गंगा के झरनों के जलबिन्दुओं को वहन करने वाली, देवदारु के वृक्षों को बारंबार कम्पित करने वाली तथा मोरों के पंखों को अलग करने वाली हिमालय की हवा का मृगों के शिकारी लोग भली प्रकार सेवन करते हैं ।

समास - भागीरथ्याः निर्झरः भागीरथीनिर्झरः (ष०तत्पु०), भागीरथी-निर्झरस्य सीकराः तेषाम् भागीरथी निर्झरसीकराणाम् (ष० तत्पु०) । कम्पिता देवदारवो येन सः कम्पितदेवदारुः (बहु०) ।

भिन्नानि शिखण्डिना बर्हाणि येन सः भिन्नशिखण्डिबर्हः (बहु0) । यस्य वायुः यद्वायुः (ष0 तत्पु0) । अन्विष्टाः मृगाः यैः तैः अन्विष्टमृगैः (बहु0) ।

व्याकरण - वोढा - वह् + तृच्, प्रथम पु0 एक0 । भिन्नशिखण्डिबर्हः - शिखण्डः अस्यास्तीति शिखण्डी, खण्ड + इति । शिखण्डिनां बर्हाणि (ष0 तत्पु0) शिखण्डिबर्हाणि येन सः । अन्विष्ट - अनु + इष् + क्त । आसेव्यते - आ + सेव् + य, लट्, प्रथम पु0, एक0 (कर्मणि रूपम्) ।

अलंकार - स्वभावोक्ति ।

विशेष - इस श्लोक द्वारा हिमालय पर बहने वाली हवा की शीतलता एवं पवित्रता व्यंजित की गयी है ॥ 15 ॥

अभ्यास प्रश्न 2 -

एक शब्द में उत्तर दीजिए -

- 1- इस इकाई में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है
- 2- हिमालय कहाँ स्थित है
- 3- किन चोटियों पर गेरु आदि धातुओं की रंग विरंगी चट्टानें हैं
- 4- सन्ध्याकाल के समय चट्टानें किस प्रकार दिखायी देती हैं
- 5- हाथियों का शिकार करने वाले सिंह कहाँ निवास करते हैं

बहुविकल्पीय प्रश्न

- 1- बाँस प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं -
क-जंगल में ख - वन में
ग-घर में घ- हिमालय पर
- 2 - श्लोक संख्या दश में वर्णन है-
क- हाथी का ख- सिंह का
ग- मोर का घ- औषधियों का
- 3 - श्लोक संख्या ग्यारह में वर्णन है-
क- हाथी का ख- किन्नरियों का
ग- मोर का घ- औषधियों का
- 4 - श्लोक संख्या तेरह में वर्णन है-
क- हाथी का ख- किन्नरियों का
ग- चमरी गायों का घ- औषधियों का
- 5 - श्लोक संख्या चौदह में वर्णन है-
क- सप्तर्षियों का ख- किन्नरियों का
ग- चमरी गायों का घ- औषधियों का

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. दिवाकराद्रक्षति
2. गंगा के को वहन करने वाला ।

2. 4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि कालिदास ने कुमार सम्भव में हिमालय का वर्णन किया है। वह हिमालय प्रस्तर खण्डों एवं हिम शिलाओं से युक्त पाषाण मात्र नहीं है। वह मनुष्यों के पहुँच से उपर है। वह देवताओं की आत्मा है। हिमालय को अपरिमित रत्नों का भण्डार कहा गया है। इस पर्वत पर अनेक श्रेष्ठ वस्तुएँ उत्पन्न होती है। उमा नामक कन्यारत्न, वैदूर्यादि मणिरत्न, देवदारू प्रभृति वृक्षरत्न, मृतसंजीवनी आदि औषधीरूपी रत्न, गंगादि नदी रूपी, रत्न तथा सोमलता आदि यज्ञ द्रव्य का रूप रत्न हिमालय पर ही उत्पन्न होते हैं। हिमालय की कतिपय चोटियाँ इतनी ऊँची हैं कि मेघ भी उनके मध्यभाग तक ही पहुँच पाता है, उनके ऊपर का आधा भाग मेघों के ऊपर निकला रहता है। इसलिए निम्न भाग में छाया का आनन्द लेने वाले सिद्ध लोग अधिक वर्षा से पीड़ित होने पर बादलों के ऊपर उठे हुए हिमालय के उन शिखरों पर चले जाते हैं, जहाँ उस समय धूप होती है। तात्पर्य यह है कि हिमालय बादलों से भी ऊँचा है। हिमालय पर्वत पर निवास करने वाले सिंह जब हाथियों का शिकार करके चले जाते हैं तब रक्त से लाल उनके पंजों की छाप, पिघलने के कारण निरन्तर प्रवाहित हो रही हिम की धारा से धुल जाती है। हिमालय पर्वत पर छेदवाले बाँस प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होते हैं जो वायु भर जाने पर बजने लगते हैं। जब हिमालय की गुफाओं में किन्नरियाँ अपने प्रियतमों के साथ कामक्रीड़ा करती रहती हैं, तब उनके द्वारा वस्त्र खींच लेने पर वे अत्यन्त लज्जित हो जाती हैं। गंगा के झरनों के जलबिन्दुओं को वहन करने वाली, देवदारू के वृक्षों को बारंबार कम्पित करने वाली तथा मोरों के पंखों को अलग करने वाली हिमालय की हवा का मृगों के शिकारी लोग भली प्रकार सेवन करते हैं। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि कालिदास द्वारा रचित कुमारसम्भवम् के प्रथम सर्ग में हिमालय का वैभव किस प्रकार चित्रित है।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
उत्तरस्यां	उत्तर (में)
दिशि	दिशा में।
देवतात्मा	देवतास्वरूप।
सर्व शैलाः	समस्तपर्वत।
यम्	जिस (हिमालय) को।
रजन्याम्	रात्रि में।
करिभिः	हाथियो के।
दिवाभीतम् इव	मानो दिनमें भयतीत। (उल्लू)
गुहासु	गुफाओं में।
अन्धकारम्	अन्धकार को।
भागीरथी	गंगा।

निर्झर

झरना

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 -

1. ग 2. क 3. रत्न प्रभवस्य 4. गजमुक्ता से
5. सही

अभ्यास प्रश्न 2 -

- (1) हिमालय का (2) उत्तर दिशा में (3) हिमालय की चोटियों पर
(4) रंग विरंगी (5) हिमालय पर

2- बहुविकल्पीय प्रश्न -

- (1) घ (2) घ (3) ख (4) ग (5) ख

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी
2. पुस्तक का नाम - संस्कृत साहित्य का इतिहास
लेखक का नाम - कपिलदेव द्वेदी प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना
नाला वाराणसी

2.8 उपयोगी पुस्तकें

- 1 - पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्लोक संख्या चार की व्याख्या करें।
2. श्लोक संख्या 9 की विशेषताएं लिखिए।
3. श्लोक संख्या 1 से 5 तक की व्याख्या पर एक निबन्ध लिखिए।
4. हिमालय पर्वत के वैभव पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई . 3 श्लोक संख्या 16 से 30 तक (मूल,अन्वय,अर्थ, व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 श्लोक संख्या 16 से 30 तक(मूल अन्वय अर्थ-व्याख्या)

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित खण्ड दो की यह तीसरी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने श्लोक संख्या एक से 15 तक की व्याख्या का अध्ययन किया। इस इकाई में आप आगे 16 से 30 तक के श्लोकों की व्याख्या का अध्ययन करेंगे। कालिदास ने अपने ग्रन्थ कुमारसम्भवम् में सोलह से लेकर तीस श्लोक में हिमालय का वर्णन करते हुए पार्वती के जन्म का भी वर्णन किया है।

महाकविकालिदास ने हिमालय का वर्णन करते हुए यह कहा है कि - शिव की पूर्व पत्नी सती ने ही अपने पिता दक्ष द्वारा किये हुए यज्ञ में अपने पति को यज्ञीय भाग समर्पित न करने के कारण योगाम्नि द्वारा तत्क्षण अपने शरीर का उसी स्थान में परित्याग कर पुनः जन्म के लिए हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ में अपने को आश्रित किया। उसके बाद पार्वती के रूप में पुनः जन्म लिया।

अतः इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप श्लोक संख्या सोलह से तीस तक के अन्वय , अर्थ व्याख्या आदि से अवगत होकर स्वयं व्याख्यायित कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- हिमालय के महत्त्व को जानते हुए पार्वती के जन्म- सम्बन्ध में परिचित होंगे।
- हिमालय के महत्त्व को समझा सकेंगे।
- मेना का स्वरूप बता सकेंगे।
- पार्वती जन्म और नामकरण की स्थिति का निरूपण कर सकेंगे।
- इस इकाई में वर्णित श्लोकों की महत्ता बता सकेंगे।
- कालिदास की भाषा शैली का निरूपण कर सकेंगे।

3.3 श्लोक संख्या 16 से 30 तक(मूल अन्वय अर्थ- व्याख्या)

सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाण्यधो विवस्वान्परिवर्तमानः ।

पद्मानि यस्याऽग्रसरोरूहाणि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखैर्मयूखैः ॥ 16 ॥

अन्वय - सप्तर्षिहस्ताऽवचिताऽवशेषाणि यस्य अग्रसरोरूहाणि पद्मानि अधः परिवर्तमानः विवस्वान् ऊर्ध्वमुखैः मयूखैः प्रबोधयति ।

पदार्थ - सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि = सप्तर्षियों के द्वारा हाथों से चुनने के बाद शेष । यस्य = जिसके अग्रसरोरूहाणि = ऊपर के सरोवरों में उत्पन्न । पद्मानि = कमलों को । अधः = नीचे । विवस्वान् = सूर्य । ऊर्ध्वमुखैः = ऊपर की ओर फैलने वाली । मयूखैः = किरणों से । प्रबोधयति = विकसित करता है ।

अनुवाद - सप्तर्षियों के द्वारा हाथों से चुन लेने के बाद बचे हुए जिस (हिमालय) की ऊँचाई पर स्थित सरोवरों में उत्पन्न कमलों को नीचे घूमता हुआ सूर्य (अपनी) ऊपर की ओर फैलने वाली किरणों से विकसित करता है।

समास - सप्त च ते ऋषयः सप्तर्षयः (द्विगु), सप्तर्षीणां हस्ताः सप्तर्षिहस्ताः(ष० तत्पु०), सप्तर्षिहस्तैः अवचितानि सप्तर्षिहस्तावचितानि (तृ०तत्पु०) सप्तर्षिहस्तावचितेभ्यः अवशेषाः तानि सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि (पं० तत्पु०) । अग्रे सरांसि अग्रसरांसि (स०तत्पु०) अग्रसरस्यु रूहाणि अग्रसरोरूहाणि (स० तत्पु०) । ऊर्ध्वं मुखं येषाम् तैः ऊर्ध्वमुखैः (बहु०) ।

व्याकरण - अवचित - अव + चि + क्त । परिवर्तमानः - परि + वृत् + शानच् प्रथमा एक० । विवस्वान् - वि + वस् + मतुप्, प्रथमा एकवचन । प्रबोधयति - प्र+बुध् + णिच् लट्, प्र० पु० एक० ।

अलंकार - उदात्त ।

विशेष - तात्पर्य है कि हिमालय इतना ऊँचा है कि सूर्य भी उसके मध्यभाग में ही घूमता रहता है, इसलिए ऊँचे शिखरों में स्थित सरोवरों में उत्पन्न कमलों को वह नीचे की ओर फैलने वाली किरणों से विकसित नहीं कर सकता है। केवल ऊपर की ओर फैलने वाली किरणों से ही विकसित कर पाता है। सप्तर्षियों के नाम हैं - (1) मरीचि, (2) अंगिरा(3) अत्रि, (4) पुलस्त्य, (5) पुलह, (6) क्रतु, (7) वसिष्ठ - ये सात ऋषि सप्तर्षि कहे जाते हैं। कुछ लोगों के मतानुसार - (1) कश्यप, (2) अत्रि, (3) भारद्वाज, (4) विश्वामित्र, (5) गौतम, (6) जमदग्नि (7) वसिष्ठ - ये सात ऋषि सप्तर्षि माने जाते हैं ॥ 16 ॥

यज्ञांगयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च ।

प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत् ॥ 17 ॥

अन्वय - यस्य यज्ञांगयोनित्वं धरित्रीधरणक्षमं सारं च अवेक्ष्य प्रजापतिः स्वयं कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं अन्वतिष्ठत् ।

पदार्थ - यस्य = जिस (हिमालय) की । यज्ञांगयोनित्वम् = यज्ञ सम्बन्धी वस्तुओं की उत्पत्ति की कारणता को । धरित्रीधरणक्षमम् = पृथ्वी को धारण करने योग्य । सारम् = सामर्थ्य को । अवेक्ष्य = देखकर । प्रजापतिः = ब्रह्मा ने । स्वयम् = स्वयं । कल्पितयज्ञभागम् = कल्पित यज्ञांश को देकर । शैलाधिपत्यम् = पर्वतों का स्वामित्व । अन्वतिष्ठत् = प्रदान किया ।

अनुवाद - जिस हिमालय की यज्ञ सम्बन्धी वस्तुओं की उत्पत्ति की कारणता को एवं जिसकी पृथ्वी धारण करने योग्य सामर्थ्य को समझकर, ब्रह्मा ने (जिसे) स्वयं कल्पित यज्ञांश को देकर पर्वतों का स्वामी बनाया।

समास - यज्ञस्य अंगानि (ष० तत्पु०), यज्ञांगानां योनिः यज्ञांगयोनिः, तस्य भावः तत् यज्ञांगयोनित्वम् (ष० तत्पु०), धरित्रीधरणक्षमम् (स० तत्पु०) । यज्ञाय भागः यज्ञ भागः (ष० तत्पु०) । कल्पित यज्ञभागः यस्मिन् तत् (बहु०) । शैलानाम् अधिपत्यम् शैलाधिपत्यम् (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण - अवेक्ष्य - अव + ईक्ष् + क्त्वा (ल्यप्) । अधिपत्यम्-अधिपति-यक्, द्वितीया एक० ।

अलंकार – काव्यलिंगः।

विशेष - ज्ञातव्य है कि हिमालय समग्र यज्ञीय सामग्रियों एवं विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों का प्रादुर्भाव-स्थल हैं ॥17॥

स मानसीं मेरुसखः पितृणां कन्यां कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञः ।

मेनां मुनीनामपि माननीयामात्मानुरूपां विधिनोपयेमे ॥ 18 ॥

अन्वय - मेरुसखः स्थितिज्ञः सः पितृणां मानसीं मुनीनाम् अपि माननीयाम् आत्मानुरूपां मेनां कन्यां कुलस्य स्थितये विधिना उपयेमे ।

पदार्थ - मेरुसखः = सुमेरु के मित्र । स्थितिज्ञः = मर्यादा को जानने वाले । सः = उस (हिमालय) ने । पितृणाम् = पितरों के लिए भी । मानसीम् = मनः संकल्प से उत्पन्न । मुनीनाम् अपि = मुनियों के लिए भी । माननीयाम् = पूजनीय । आत्मानुरूपाम् = अपने अनुरूप । स्थितये = कुल की प्रतिष्ठा के लिए । विधिना = शास्त्रोक्त विधि से । उपयेमे = विवाह किया ।

अनुवाद - सुमेरु पर्वत के मित्र एवं मर्यादा के पालक हिमालय ने पितरों के मनः संकल्प से उत्पन्न मुनियों के लिए भी पूजनीय, अपने गुणों के अनुरूप मेना नाम की कन्या से, वंश की प्रतिष्ठा के लिए शास्त्रीय विधि से विवाह किया ॥18॥

समास - मेरोः सख मेरु सखः (ष० तत्पु०) । स्थितिं जानतीति स्थितिज्ञः (उपपद तत्पु०)।

आत्मनः अनुरूपाम् आत्मानुरूपाम् (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण - मेरुसखः - मेरुसखि + टच् । स्थितिज्ञः - स्थिति+ज्ञाः क । मानसीम्, मनस् + अण् + डीप्, द्वितीया एक० । अनुरूपाम्- रूपम् अनुगता - अनुरूपा, ताम् । उपयेमे - उप + यम्, लिट्, प्र०पु० एक० आत्मनेपद ।

अलंकार - परिकर ।

कालक्रमेणाऽथ तयोः प्रवृत्ते स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसंगे।

मनोरमं यौवनमुद्बहन्त्या गर्भोऽभवद् भूधरराजपत्न्याः ॥19॥

अन्वय - अथ कालक्रमेण तयोः स्वरूपयोग्ये सुरतप्रसंगेप्रवृत्ते मनोरमं यौवनम् उद्बहन्त्याः भूधरराजपत्न्याः गर्भः अभवत् ।

पदार्थ - अथ = तदनन्तर । कालक्रमेण = समयानुसार । तयोः उन दोनों के । स्वरूपयोग्ये = सौन्दर्य (अथवा शास्त्र) के अनुकूल । सुरतप्रसंगे = मैथुन व्यापार के । प्रवृत्ते = आरम्भ होने पर । मनोरम् = चित्ताकर्षक । यौवनम् = यौवन को । उद्बहन्त्याः = धारण करने वाली । भूधरराजपत्न्याः = (भूधराज = पर्वतराज) = पर्वतराज (हिमालय) की पत्नी (मेना) को । गर्भः अभवत् = गर्भ हुआ ।

अनुवाद - तदनन्तर उन दोनों (हिमालय और मैना) के स्वरूप के अनुकूल मैथुन व्यापार के आरम्भ होने पर, मनोहारी यौवन का धारण करने वाली हिमालय की पत्नी ने गर्भ धारण किया ।

॥ 19 ॥

समास - कालस्य क्रमः कालक्रमः तेन कालक्रमेण (ष० तत्पु०) । स्वरूपस्य योग्य स्वरूप योग्य स्वरूपयोग्यः, तस्मिन् स्वरूपयोग्ये (ष० तत्पु०) । सुरतस्य प्रसंगः तस्मिन् सूरतप्रसंगे (ष० तत्पु०)

। भुवः धराः भूधराः (ष० तत्पु०), भूधराणां राजा भूधरराजः (ष० तत्पु०) भूधराजस्य पत्नी तस्याः भूधराजपत्न्याः (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण - प्रवृत्ते - प्र + वृत् + क्त, सप्तमी एक० । यौवनम् - यून् भवः, युवन् + अण् ।

उद्धहन्त्याः - उद् +वह् + शतृ + डीप्, षष्ठी एक० ।

अलंकार - परिकर ।

असूत सा नागवधूपभोग्यं मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम् ।

क्रुद्धेऽपि पक्षच्छिदि वृत्रशत्राववेदनाज्ञं कुलिशक्षतानाम् ॥ 20॥

अन्वय- सा नागवधूपभोग्यम् अम्भोनिधिबद्धसख्यं पक्षच्छिदि वृत्रशत्रौ क्रुद्धेऽपि कुलिशक्षतानाम् अवेदनाज्ञं मैनाकम् असूत ।

पदार्थ - सा = उस (मेना) ने । नागवधूपयोग्यम् = नाग कन्याओं से विवाह करने योग्य ।

अम्भोनिधिबद्धसख्यम् = समुद्र के साथ मित्रता रखने वाले। पक्षच्छिदि = पंखों को काटने वाले ।

वृत्रशत्रौ = वृत्र के शत्रु (इन्द्र) के । क्रुद्धे अपि = कुपित होने पर भी । कुलिशक्षतानाम् = ब्रज के

प्रहारों की। अवेदनाज्ञम् = पीड़ा से अपरिचित । मैनाकम् = मैनाक नामक । पुत्रम् = पुत्र को ।

असूत = जन्म दिया ।

अनुवाद - मेना ने नागकन्या से विवाह योग्य सरित्पति (समुद्र) से मित्रता करने वाले पर्वतों के

पंखों को छेदन करने के लिए प्रवृत्त इन्द्र के कुपित होने पर भी वज्रप्रहार की अतिशय पीड़ा से

अपरिचित मैनाक को उत्पन्न किया ।

समास - नागस्य वधूः नागवधूः, नागवध्वाः उपभोग्यः नावधूपभोग्यः (ष० त०) तं

नागवधूपभोग्यम् । अम्भसां निधिः अम्भोनिधिः, सख्युर्भावः सख्यम्, अम्भोनिधिना बद्धं संख्यं ये

सः अम्भोनिधिबद्धसख्यः (बहु०) तम् । पक्षान् छिनतीति पक्षच्छिद् (उपपद स०) तस्मिन् ।

कुलिशस्य क्षतानि कुलिशक्षतानि, तेषां कुलिशक्षतानाम् । वेदनां जानातीति वेदनाज्ञः, न

वेदनाज्ञः, अवेदनाज्ञः, तम् अवेदनाज्ञम् (नञ् तत्पु०) ।

व्याकरण - पक्षच्छिदि - छिद् + क्विप् । “सत्सूद्विष०” इस सूत्र से यहाँ पर क्विप् प्रत्यय हुआ

है। अवेदनज्ञं - जानातीति ज्ञः । ज्ञा + कः। यहाँ पर ‘इगुपधज्ञा-प्री-किरः’ इस सूत्र के क प्रत्यय

हुआ है ।

अलंकार - परिकर, विशेषोक्ति ।

विशेष - शिव की पूर्व पत्नी सती ने ही अपने पिता दक्ष द्वारा किये हुए यज्ञ में अपने पति को

यज्ञीय भाग समर्पित न करने के कारण योगाम्नि द्वारा तत्क्षण अपने शरीर का उसी स्थान में

परित्याग कर पुनः जन्म के लिए हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ में अपने को आश्रित किया। इस

कथा को विस्तार रूप से महाभारत में देखना चाहिए॥ 20॥

अथवाऽवमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भवपूर्वत्नी।

सती-सती योगविसृष्टदेहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे ॥21॥ ।

अन्वय - अथ दक्षस्य कन्या भवपूर्ण पत्नी सती पितुः अवमानने प्रयुक्ता योगविसृष्टदेहाः सती

जन्मने तां शैलवधं प्रपेदे ।

पदार्थ - अथ = इसके बाद । दक्षस्य कन्या = दक्ष की कन्या । भवपूव पत्नी = (भव = शिव) = शिव की प्रथम पत्नी । सती = सती ने । पितुः = पिता के । अवमानने = अपमान से । प्रयुक्ता = प्रेरित होकर । योगविसृष्टदेहा सती = योग विधि से (अपने) शरीर को त्याग कर । जन्मने = पुनर्जन्म प्राप्त करने के लिए । ताम् = उस । शैलवधूम् = पर्वत् (हिमालय) की पत्नी (मेना के गर्भ) प्रपेदे = प्रवेश किया ।

अनुवाद - इसके बाद दक्ष(प्रजापति) की कन्या तथा (भगवान्) शंकर की प्रथम पत्नी सती ने पिता द्वारा किये गये (अपने पति अर्थात् शिव के) अपमान से खिन्न होकर योगबल से अपने शरीर को छोड़कर पुनर्जन्म को प्राप्त करने के लिए हिमालय की पत्नी के गर्भ में प्रवेश किया ।

समास - पूर्वा चासौ पत्नी पूर्वपत्नी (कर्म०) , भवस्य पूर्वपत्नी भवपूर्व- पत्नी (ष० तत्पु०) । योगेन । विसृष्ट देहः यया सा योगविसृष्टदेहा (बहु०) । शैलस्य वधूः ताम् शैलवधूम् (ष० तत्पु०)

व्याकरण - प्रयुक्ता - प्र + युज् + क् टाप्, प्रथमा एकवचन । विसृष्ट - वि + सृज् + क्ता प्रपेदे - प्र + पद्, लिट्, एक०, आत्मनेपद ।

अलंकार – यमक ।

विशेष - पुराकाल में दक्षप्रजापति ने एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया था । इस यज्ञ में भाग लेने के लिए उन्होंने सभी ऋषियों, देवताओं आदि को निमन्त्रित किया । किन्तु अपने जामाता शिव से असन्तुष्ट होने के कारण नहीं बुलाया । जिस समय देवता लोग अपने विमानों पर चढ़कर उस यज्ञ में भाग लेने के लिए जाने लगे तो शिव के पास बैठी सती को वह दृश्य देखकर बड़ा कौतूहल हुआ, कारण पूछने पर शिव ने उनसे उनके पिता द्वारा आयोजित यज्ञ की बात बतायी । साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि तुम्हारे पिता हम पर क्रुद्ध हैं । इसीलिए हमें नहीं बुलाया गया। यज्ञ की बात सुनकर सती के मन में उसे देखने की इच्छा प्रबल हो उठी । जब सती ने यज्ञ को देखने की अपनी इच्छा प्रकट की तो शिव ने जाने से मना किया । सती जाने की जिद पर अड़ गयीं तब बाध्य होकर शिव ने अनाहूत सती को अपने गणों के साथ भेज दिया । पिता के घर पहुँचने पर सती ने देखा कि यज्ञभूमि में शिव के लिए कोई आसन नहीं था । इसे सती ने अपने पति का घोर अपमान माना तथा कुपित होकर उन्होंने यज्ञभूमि में ही योगबल से अपने शरीर को दग्ध कर दिया । कालक्रम से सती ने मेना के गर्भ में प्रवेश किया ॥21॥

सा भूधराणामधिपेन तस्यां समाधिमत्या मुदपादि भव्या ।

सम्यक्प्रयोगादपरिक्षतायां नीतौविबोत्साहनुगणेन् सम्पत् ॥22॥

अन्वय - भव्या सा भूधराणाम् अधिपेन समाधिमत्यां तस्यां सम्यक्प्रयोगात् अपरिक्षतायां नीतौ उत्साहगुणेन सम्पत् इव उदपादि ।

पदार्थ - भूधराणाम् = पर्वतों के । अधिपेन = राजा (हिमालय) ने । समाधिमत्याम् = एकाग्रचित्त वाली (नियमवती) । तस्याम् = उस (मेना) में । सम्यक्प्रयोगात् = उचित प्रयोग से । अपरिक्षतायाम् = नष्ट न होने वाली । नीतौ = नीति में । उत्साहगुणेन = उत्साहरूपी गुण से । सम्पत् इव = सत्पत्ति के समान । भव्या = कल्याणी । सा = उस कन्या को । उदपादि =

उत्पन्न किया ।

अनुवाद - पर्वतराज हिमालय ने नियमावली उस मेना में उचित प्रयोग से, नष्ट न होने वाली नीति में उत्साह रूपी गुण से सम्पत्ति के समान कल्याणमयी उस (कन्या) को जन्म दिया ।

समास - भुवः धरा भूधराः, तेषां भूधराणाम् (ष० तत्पु०) । सम्यक् चासौ प्रयोगश्च तस्मात्, सम्यक्प्रयोगात् (कर्म०) । न परिक्षता अपरिक्षता, तस्याम् अपरिक्षतायाम् (नञ् तत्पु०) । उत्साह एवं गुणः तेन उत्साहगुणेन (कर्म०) ।

व्याकरण - भूधराणाम् - धरतीति धरः, धृ + अप्, भुवः धरः - भूधरः, तेषाम् । अधिपेन - अधि + पा + क, तृ० एक० । समाधिमत्याम् - समाधि + मतुप् + डीप्, एक० । अपरिक्षतायाम् - न + परि + क्षण् + क्त + टाप्, स० एक० । उदपादि - उद् + पद् + णि + लुङ्, प्रथम पु० एक० ।

अलंकार - उपमा ।

विशेष - तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार किसी परिश्रमी व्यक्ति द्वारा सम्यक् प्रयोग से विफल न होने वाली नीति उत्साह का मेल पाकर बड़ी सम्पत्ति को उत्पन्न करती है उसी प्रकार हिमालय ने पतिव्रता मेना से उस मंगलमयी कन्या को जन्म दिया ॥ 22 ॥

प्रसन्न-दिक्पांसु-विविक्तवातं शखड-स्वनानन्तर-पुष्पवृष्टि ।

शरीरिणां स्थावरजंगमानां सुखाय तज्जन्मदिनं बभूव ॥23 ॥

अन्वयः - प्रसन्नदिक् पांसुविविक्तवातं शखडस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि तज्जन्मदिनं स्थावरजंगमानां शरीरिणाम् सुखाय बभूव ।

पदार्थ - प्रसन्नदिक् = (दिक् = दिशा) = निर्मल दिशाओं वाला । पांसुविविक्तवातम् (पांसु = धूल, विविक्त = रहित, वात = वायु) = धूलविहीन वायु वाला । शखडस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि = (स्वन = ध्वनि) शखध्वनि के पश्चात् फूलों की वर्षा से युक्त । तज्जन्मदिनम् = तत् = पार्वती का) = उसका जन्म दिन । स्थावरजंगमानाम् = (स्थावर = अचर, जंगम = चर) चराचर । शरीरिणाम् = देहधारियों के । सुखाय = सुख के लिए । बभूव = हुआ ।

अनुवाद - स्वच्छ दिशाओं , धूलरहित पवन से युक्त तथा शखध्वनि के अनन्तर पुष्प वर्षा से शोभायमान पार्वती का जन्मदिन चराचर प्राणियों को (अत्यन्त) आनन्द देने वाला हुआ ॥23॥

समास - प्रसन्नाः दिशः यस्मिन् तत् प्रसन्नदिक् (बहु०) । पांसुभिः विविक्तः वातः यस्मिन् तत् पांसुविविक्तवातम् (बहु ०) । शखंडस्य स्वनः शखडस्वनः (ष० तत्पु०) शखस्वनाद् अनन्तरम् शखडस्वनान्तरं (ष० तत्पु ०) शखस्वनानन्तरं पुष्पवृष्टि यस्मिन् तत् शखस्वनानन्तरपुष्पवृष्टि (बहु०) । जन्मनः दिनम् जन्मदिनम् । (ष० तत्पु०), तस्याः जन्मदिनं तज्जन्मदिनम् (ष० तत्पु०) । स्थावराश्च जंगनाम् (द्वन्द्व) ।

व्याकरण - विविक्त - वि + विज् + क्त । शरीरिणाम् - शरीर + इन्, ष ० बहु० ।

अलंकार - परिकर ।

विशेष - पार्वती के जन्म दिवस पर सभी दिशाएँ निर्मल हो गयीं व स्वच्छ पवन प्रवाहित होने लगी तथा शख ध्वनि के बाद पुष्प की वृष्टि हुई । सभी प्राणी आनन्दित हो उठे। इसमें कवि ने

पौराणिक परम्पराओं की ओर संकेत किया है।

तथा दुहित्रा सुतरां सवित्री स्फुरत्प्रभामण्डलया चकासे ।

विदूरभूमिर्नमेघशब्दादुद्धिन्नया रत्नशलाकयेव ॥ 24॥

अन्वय - स्फुरत्प्रभामण्डलया तथा दुहित्रा सवित्री विदूरभूमिः नवमेघशब्दात् उद्धिन्नया रत्नशलाकया इव सुतरां चकासे ।

पदार्थ - स्फुरत्प्रभामण्डलया = देदीप्यमान तेज-मण्डल से युक्त । तथा = उस । दुहित्रा = पुत्री से । सवित्री = माता । विदूरभूमिः = विदूर पर्वत की भूमि । नवमेघशब्दात् = नूतन मेघ के गर्जन से । उद्धिन्नया = निकले हुए । रत्नशलाकया इव = रत्नांकुर से जिस प्रकार शोभामय हो उठती है (ठीक) वैसे ही (मेना पार्वती को पाकर) । सुतराम् = नितान्त । चकासे = सुशोभित हुई ।

अनुवाद - चमकते हुए तेजपुंज से युक्त उस पुत्री से माता, नवीन मेघ के गर्जन से भूमि को भेद कर बाहर निकले हुए रत्न के अंकुर से विदूर पर्वत की भूमि (मणियों की खान) के समान नितान्त सुशोभित हुई ।

समास - प्रभाणां मण्डलम् प्रभामण्डलम् (ष0 तत्पु0), स्फुरत् प्रभामण्डलं यस्याः, तथा स्फुरत्प्रभामण्डलया (बहु0) । विदूरस्य भूमिः विदूरभूमिः (ष0 तत्पु0) । मेघस्य शब्दः मेघशब्दः (ष0 तत्पु0), नवश्चासौ मेघशब्दः नवमेघशब्दः तस्मात् (कर्म0) । रत्नस्य शलाका रत्नशलाका तथा रत्नलाकया (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - उद्धिन्नया - उद् + भिद् + क्त टाप्, तृ0 एक0। चकासे - कास् + लिट्, प्र0 पु0 एक0 (आत्मनेपद) ।

अलंकार - उपमा ।

विशेष - कवि ने यहाँ पार्वती की उपमा रत्नांकुर से तथा मेना की उपमा विदूर भूमि से दी है। जिस प्रकार नवीन मेघों के गर्जन से उद्धिन्न रत्नांकुरों से विदूर पर्वत की भूमि प्रकाशमान् हो उठती है उसी प्रकार दीप्तिमान् तेजपुंज से युक्त पार्वती को गोद में पाकर मेना खिल उठीं ॥ 24 ॥

अभ्यास प्रश्न 1 .

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए -

- हिमालय की पत्नी का नाम क्या था
क. मेना ख. रति ग. उर्वशी घ. मेनका
- सूर्य पर्वत पर स्थित कमलों को कैसे विकसित करता है
क. नीचे पड़ती हुई किरणों से
ख. सामने पड़ती हुई किरणों से
ग. उपर उठती हुई किरणों से
घ. नहीं जानते

रिक्त स्थान भरिए -

- दक्षस्य पूर्व पत्नी ।
- दक्ष का अर्थ है ।

सत्य / असत्य का ज्ञान करें -

5. सती जन्म लेने के लिए मेना के गर्भ में आयीं ()
 6. पार्वती के जन्म के समय दिशाएं प्रसन्न चित्त थी ()

दिन-दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा ।

पुपोष लावण्यमयान् विशेषाज्योत्सनान्तराणीव कलान्तराणि ॥ 25 ॥

अन्वय - लब्धोदया दिने - दिने परिवर्धमाना सा चान्द्रमसी लेखा इव लावण्यमयान् विशेषान् ज्योत्सनान्तराणि कलान्तराणि इव पुपोष ।

पदार्थ - लब्धोदया = (लब्ध = प्राप्त, उदय = जन्म) = उत्पन्न होकर । दिने- दिने = प्रतिदिन । परिवर्धमाना = हर ओर से वृद्धि को प्राप्त । सा = उसने । चान्द्रमसी = चन्द्रमा की । लेखा इव = रेखा की तरह । लावण्यमयान् = सौन्दर्ययुक्त । विशेषान् = अंगों को । ज्योत्सनान्तराणि = (ज्योत्सना = चन्द्रिका, अन्तराणि = अन्तर्हित) चन्द्रिका से अन्तर्हित । कलान्तराणि इव = चन्द्रमा की कलाओं के समान । पुपोष = पुष्ट किया ।

अनुवाद - जन्म लेने के पश्चात् प्रतिदिन बड़ी होती हुई पार्वती ने अपने सौन्दर्यशाली अंगों को इस प्रकार विकसित किया जिस प्रकार (शुक्लपक्ष की) चन्द्रलेखा चाँदनी में अन्तर्हित (छिपी हुई) अपनी विभिन्न कलाओं को पुष्ट करती है ॥ 25 ॥

समास - लब्धः उदयः यया सा लब्धोदया (बहु0) । ज्योत्सनायामन्तर येषाम् तानि ज्योत्सनान्तराणि (बहु0) । अन्या कलाः कलान्तरम् तानि (मयूरव्यंसकादि अथवा सुप्सुपा समास) कलान्तराणि ।

व्याकरण - परिवर्धमाना - परि + वृध् + शानच् + टाप्, प्र 0 एक 0 । चान्द्रमसी - चन्द्र + मस् + अण् + डीप्, प्र 0 एक 0 । लावण्यमयान् - लावण्य + मयट्, द्वि 0 बहु 0 । पुपोष - पुष + लिट्, प्र 0 एक 0 ।

अलंकार - उपमा ।

विशेष - शुक्लपक्ष की चन्द्रमा के समान पार्वती प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसके अंग-प्रत्यंग वैसे ही लावण्य से पूरित होने लगे जैसे ज्योत्सना से चन्द्रकलाएँ पूरित होती जाती हैं ।

तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना बन्धुप्रियां बन्धुजनो जुहाव ।

उ मेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम ॥26 ॥

अन्वयः - बन्धुप्रियां तां बन्धुजनः आभिजनेन नाम्ना पार्वती इति जुहाव पश्चात् मात्रा उ मा इति तपसः निषिद्धा (सती) सुमुखी उमाऽऽख्यां जगाम ।

पदार्थ - बन्धुप्रियाम् = स्वजनो (आत्मीयजनों) को प्रिय । ताम् = उस (पार्वती) को । बन्धुजनः = कुटुम्बियों ने । आभिजनेन नाम्ना = वंशानुगत नाम से । जुहाव = पुकारा । पश्चात् = बाद में । मात्रा = माता के द्वारा । उ = हे पुत्री (तप) । मा = मत करो । इति = इस प्रकार । तपसः = तप से । निषिद्धा = निवृत्त (होकर) । सुमुखी = सुन्दर मुख वाली । उमाऽऽख्याम् = उमा नाम को । जगाम = प्राप्त हुई ।

अनुवाद - बन्धुओं को प्रिय उस (कन्या) को कुटुम्बीजन कुल के अनुसार पार्वती नाम से पुकारने लगे। बाद में (जब) माता ने 'हे पुत्री', तप मत करो' इस प्रकार उसे तप से निवृत्त किया (तब) वह सुन्दरी (पार्वती) 'उमा' नाम से प्रसिद्ध हुई ॥26॥

समास - बन्धुनां प्रियाम् बन्धुप्रियाम् (ष० तत्पु०) । बन्धुश्चासौ सौ जनः बन्धुजनः (कर्म०) ।
व्याकरण - आभिजनेन - अभिजन + अण्, तृ० एक० । जुहाव - हु + लिट्, प्र० पु० एक० । निषिद्धा - नि + साध् + क्त + टाप्, प्र० एक० । सुमुखी - सु + मुख + डीप्, प्र० एक० । जगाम - गम् + लिट्, प्र० पु०, एक० ।

अलंकार - काव्यलिंग ।

विशेष - इसमें पार्वती के पार्वती व उमा नामकरण के कारणों को दर्शाया गया है। जो पौराणिक कथाओं की ओर संकेत करता है।

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम् ।

अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेषसंगाः ॥ 27 ॥

अन्वय - पुत्रवतोऽपि महीभृतः दृष्टिः तस्मिन् अपत्ये तृप्ति न जगाम । हि अनन्तपुष्पस्य मधोः द्विरेफमाला चूते सविशेषसंगाः (भवति) ।

पदार्थ - पुत्रवतः = अनेक सन्तानों के होते हुए । अपि = भी । महीभृतः = (पर्वतराज की) हिमालय की । दृष्टिः = निगाह । तस्मिन् = उस । अपत्ये = सन्तति (पार्वती) में (निरन्तर लगी रहने पर भी) । तृप्तिम् = तृप्त । न जगाम = न हुई । हि = क्योंकि । अनन्तपुष्पस्य = असंख्य पुष्पों से युक्त । मधोः = वसन्तकाल की । द्विरेफमाला = भ्रमरपंक्ति । चूते = आम्रमंजरी में (ही) । सविशेषसंगाः = विशेष रूचि रखती हैं ।

अनुवाद - अनेक सन्तानों के होते हुए भी हिमालय की निगाह पार्वती में (ही निरन्तर लगी रहती थी फिर भी) तृप्त न हो पाती थी, क्योंकि विविध पुष्पों से युक्त वसन्तकाल का भ्रमरसमूह आम्रमंजरी में ही विशेष रूचि रखता है ॥ 27 ॥

समास - पुत्राश्च दुहितरश्चेति पुत्राः, तद्वतः पुत्रवतः (एकशेष) । मही विभर्तीति महीभृत, तस्य (उपपद तत्पु०) महीभृतः। अविद्यमानः अन्तः येषाम् तानि अनन्तानि (नञ् बहु०) , अनन्तानि पुष्पाणि यस्य सः, तस्य अनन्तपुष्पस्य (बहु०) । द्वौ रेफौ येषाम् ते द्विरेफाः (बहु०), द्विरेफाणां माला द्विरेफमाला (ष० तत्पु०) । विशेषेण सह सविशेषः (बहु०), सविशेषः सगडो यस्याः सा सविशेषसगडा (बहु०) ।

व्याकरण - पुत्रवतः - पुत्र + मतुप्, ष० एक० । महीभृतः - मही + भृ + क्विप् ष० एक० । जगाम- गम् + लिट्, प्र० पु०, एक० ।

अलंकार - प्रतिवस्तूपमालंकार ।

विशेष - हिमालय राज के अनेक सन्तानें थीं पर वे पार्वती से विशेष प्रेम करते थे । जैसे बसन्त ऋतु में भ्रमर समूह आम्रमंजरी से विशेष प्रेम करता है ।

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः ।

संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तथा स पूतश्च विभूषितश्च ॥ 28॥

अन्वय - प्रभामहत्या शिखया दीपः इव, त्रिमार्गया त्रिदिवस्य मार्ग इव संस्कारवत्या गिरा मनीषी इव, तथा स पूतः च विभूषितः च ।

पदार्थ - प्रभामहत्या = अत्यन्त प्रकाशमान् । शिखया = लौ से । दीपः इव = दीपक की भाँति । त्रिमार्गया = (तीनों लोगों में प्रवाहित) गंगा से । त्रिदिवस्य = स्वर्ग के । मार्गा इव = मार्ग के समान । संस्कारवत्या = संस्कार- वान् । गिरा = वाणी से । मनीषी इव = विद्वान के समान । तथा = उस (पार्वती) से । सः वह (हिमालय) । पूतः च = पवित्र हुआ । विभूषितः च और सुशोभित हुआ ।

अनुवाद - अत्यन्त प्रकाशवान् लौ से दीपक के समान, गंगा से स्वर्ग के मार्ग के समान वह (हिमालय) पार्वती के द्वारा पवित्र और सुशोभित हुआ ।

समास - प्रभाभिः महती तथा प्रभामहत्या (तृ० तत्पु०) । त्रयः मार्गाः यस्याः सा त्रिमार्गा तथा त्रिमार्गया (बहु०) । तृतीया द्वौः तस्य त्रिदिवसस्य (द्विगु) । विशेषेण भूषितः विभूषितः (सुप्सुपासमासः) ।

व्याकरण - त्रिदिवस्य - त्रि + दिव् + क = त्रिदिव् + अ = त्रिदिव षष्ठी एक० । संस्कारवत्या - संस्कार + मतुप् + डीप्, तृतीया एक० । मनीषी - मनस् + ईषा - मनीषा + इति - मनीषिन् प्रथमा एक० । पूतः- पू + क्त, प्रथमा एक० । विभूषितः - वि + भूषः क्त, प्रथमा एक० ।

अलंकार - मालोपमा ।

विशेष - अर्थात् जिस प्रकार अत्यधिक प्रकाशवान् लौ से दीपक, गंगा से स्वर्ग का मार्ग पवित्र हो जाता है तथा व्याकरणजन्य शुद्ध वाणी से विद्वान् सुशोभित होता है, उसी प्रकार दैदीप्यमान तेजपुंज से युक्त कन्या को प्राप्त कर हिमालय पवित्र तथा सुशोभित हुआ ॥28॥

मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च ।

रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये ॥29॥

अन्वय - सा बाल्ये क्रीडारसं निर्विशती इव सखीनां मध्यगता (सती) मन्दाकिनी सैकतवेदिकाभिः कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैः च मुहुः रेमे ।

पदार्थ - सा = वह (पार्वती) । बाल्ये = बाल्यावस्था में । क्रीडारसम् = (क्रीडा = खेल, रस = आनन्द) खेलकूद के रस का । निर्विशती इव = उपयोग करती हुई । सखीनाम् = सहेलियों के । मध्यगता = बीच । मन्दाकिनी = गंगा के । सैकत = रेतीले । वेदिकाभिः = वेदिका (मण्डपों) से । कन्दुकैः = गेदों के द्वारा । कृत्रिम = हस्तनिर्मित । पुत्रकैः = गुड़ियों से । च = और । मुहुः = पुनः । रेमे = खेलती रहती थी ।

अनुवाद - पार्वती बचपन से ही सखियों के बीच क्रीडारस का (भरपूर) आस्वाद लेती हुई गंगा के तट पर कभी रेत-निर्मित वेदिकाओं से, कभी (विविध) गेदों के द्वारा, तो कभी कृत्रिम गुड़ियों से बार-बार खेला करती थी ॥29॥

समास - क्रीडाया रसः तम् क्रीडारसम् (ष० तत्पु०) । मध्यं गता मध्यगता (द्वि० तत्पु०) । मन्दाकिन्याः सैकतम् मन्दाकिनीसैकतम् (ष० तत्पु०), मन्दाकिनी सैकतेषु वेदिकाः मन्दाकिनी सैकतवेदिकाः ताभिः मन्दाकिनीसैकतवेदिकाभिः (स० तत्पु०) । कृत्रिमाश्च ते पुत्रतकाः तैः

कृत्रिमपुत्रकैः (कर्म०) ।

व्याकरण - बाल्ये - बालस्य भावः बाल्यम्, बाल + ष्य् । निर्विशती - निर् + विश् + शतृ + डीप्, प्रथमा एक० । रेमे - रम् + लिट्, प्र० पु०, एक० आत्मनेपद ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

विशेष - बाल्यावस्था में पार्वती अनेक प्रकार के खेलों में रूचि रखती थीं। इसमें पार्वती के बाल्यावस्था का वर्णन है।

तां हंसमालाः शरदीव गंगा महौषधिं नक्तविवात्मभासः ।

स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ॥30 ॥

अन्वय - शरदि गंगा हंसमाला इव, नक्तं महौषधिम् आत्मभासः इव स्थिरोपदेशां तां उपदेशकाले प्राक्तनजन्मविद्याः प्रपेदिरे।

पदार्थ - शरदि = शरद् ऋत में। गङ्गा = गंगा को । हंसमाला इव = हंसों की पंक्ति के समान । नक्तम् = रात्रि में । महौषधिम् = महौषधियों को । आत्मभासः इव = अपने प्रकाश के समान। स्थिरोपदेशाम् = स्थायी विद्याभ्यास वाली । ताम् = उस (पार्वती) को उपदेशकाले = विद्याभ्यास के समय । प्राक्तन - जन्मविद्याः = पूर्वजन्म की विद्याएँ । प्रपेदिरे = प्राप्त हुई ।

अनुवाद - जैसे शरत्काल में गंगा में (स्वयमेव) हंस-पंक्ति उतर आती है, (अथवा) जैसे रात्रि में औषधियाँ अपने आप प्रकाशित हो उठती हैं (ठीक) वैसे ही स्थिर ग्रहणशक्ति वाली पार्वती को पूर्वजन्म की विद्याएँ (स्वतः) प्राप्त हुई ॥ 30 ॥

समास - स्थिरः उपदेशः यस्याः सा, ताम् स्थिरोपदेशाम् (बहु०) । उपदेशस्य कालः तस्मिन् उपदेशकाले (ष० तत्पु ०) । प्राक्तनं च तज्जन्म प्राक्तजन्म (कर्म०), प्राक्तनजन्मनः विद्याः प्राक्तनजन्मविद्याः (ष ० तत्पु ०) । हंसस्य मालाः हंसमालाः (ष ० तत्पु ०) । महती चासौ ओषधिः महौषधिः ताम् महौषधीम् (कर्म०) । आत्मनः भासः आत्मभासः (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण - उपदेशः - उप + दिश् + घञ् । विद्या - विद् + क्यप् + टाप् ।

अलंकार - उपमा ।

विशेष - शरद् ऋतु में जिस प्रकार गंगा के तट पर हंस स्वयं आ जाते हैं व रात्रि में औषधियाँ अपने आप प्रकाशमान हो जाती हैं । उसी प्रकार पूर्वजन्म की अर्जित विद्यार्यें पार्वती को अल्पाभ्यास से स्वतः ही प्राप्त हो गयीं ।

अभ्यास प्रश्न 2 -

एक शब्द में उत्तर दीजिए -

- 1 - इस इकाई में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है ।
- 2 - सुमेरु पर्वत का मित्र कौन था ।
- 3 - मैना का पुत्र कौन था ।
- 4 - भगवान शंकर की पूर्व पत्नी का नाम क्या था ।
- 5- पार्वती किसकी कन्या थी ।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. बसन्त ऋतु में भ्रमर पंक्ति किस पर आसक्त रहती है
क. नीम ख. अमरूद ग. आम घ . अंगूर
2. पार्वती को पाकर कौन पवित्र औश्र विभूषित हुआ
क.हिमालय ख. सुमेरू ग. मैनाक घ . रामगिरि

रिक्त स्थान भरिए

3. मंदाकिनी वेदिकाभिः ।
4. तां हंसमाला गंगा ।

सत्य/ असत्य का निर्धारण करें

5. पार्वती स्थिर अपदेया को ग्रहण करने वाली नहीं थी ()
6. पार्वती गेंद और गुड्डों से खेलती थी ()

3. 4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि सप्तर्षिगण के तोड़ने से बचे पुष्पों को सूर्य किस प्रकार विकसित करता है। पुराकाल में दक्ष जाति ने एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया था। इस यज्ञ में भाग लेने के लिए उन्होंने सभी ऋषियों, देवताओं आदि को निमन्त्रित किया। किन्तु अपने जामाता शिव को असन्तुष्ट होने के कारण नहीं बुलाया। जिस समय देवता लोग अपने विमानों पर चढ़कर उस यज्ञ में भाग लेने के लिए जाने लगे तो शिव के पास बैठी सती को वह दृश्य देखकर बड़ा कौतूहल हुआ, कारण पूछने पर शिव ने उनसे उनके पिता द्वारा आयोजित यज्ञ की बात बतायी। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि तुम्हारे पिता हम पर क्रुद्ध हैं। इसीलिए हमें नहीं बुलाया गया। यज्ञ की बात सुनकर सती के मन में उसे देखने की इच्छा प्रबल हो उठी। जब सती ने यज्ञ को देखने की अपनी इच्छा प्रकट की तो शिव ने जाने से मना किया। सती जाने की जिद पर अड़ गयीं तब बाध्य होकर शिव ने अनाहूत सती को अपने गणों के साथ भेज दिया। पिता के घर पहुँचने पर सती ने देखा कि यज्ञभूति में शिव के लिए कोई आसन नहीं था। इसे सती ने अपने पति का घोर अपमान माना तथा कुपित होकर उन्होंने यज्ञभूमि में ही योगबल से अपने शरीर को दग्ध कर दिया। कालक्रम से सती ने मेना के गर्भ में प्रवेश किया आदि -आदि। अतः इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इसमें वर्णित श्लोकों की व्याख्या कर सकेंगे।

3. 5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
सप्तर्षिहस्तावचितावशेषाणि यस्य	सप्तर्षियों के द्वारा हाथों से चुनने के बाद शेष जिसके
अग्रसरोरूहाणि पद्मानि	ऊपर के सरोवरों में उत्पन्न कमलों को

विवस्वान्	सूर्य ।
मरूसखः	सुमेरू के मित्र
दिने - दिने	प्रतिदिन ।
परिवर्धमाना	हर ओर से वृद्धि को प्राप्त
लावण्यमान	सौन्दर्ययुक्त ।
शरदि	शरद् ऋत में ।
गंगा	गंगा को ।
हंसमाला इव	हंसों की पंक्ति के समान ।
नक्तम्	रात्रि में ।
महौषधिम्	महौषधियों को ।
आत्मभासः इव	अपने प्रकाश के समान ।
स्थिरोपदेशाम्	स्थायी विद्याभ्यास वाली ।

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- अभ्यास प्रश्न 1. 1. क 2. ग 3. भव 4. शंकर 5. सही 6. सही
 अभ्यास प्रश्न 2. (1) राजा दक्ष का (2) हिमालय (3) मैनाक (4) सती (5) राजा दक्ष की
 बहुविकल्पीय प्रश्न - (1) घ (2) ख (3) ख (4) ग (5) ख

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1 - पुस्तक का नाम - कुमारसम्भवमहाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
 प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी
2. पुस्तक का नाम - संस्कृत साहित्य का इतिहास , लेखक का नाम - कपिल दिवेदी
 प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी

3.8 उपयोगी पुस्तकें

- 1 - पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
 प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्लोक 16 से 20 तक की व्याख्या करें।
2. श्लोक संख्या 25 की सन्दर्भ सहित व्याख्या करें।
3. प्रस्तुत इकाई पर एक निबन्ध लिखिए।

इकाई 4. श्लोक संख्या 31 से 45 तक(मूल अन्वय अर्थ- व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 श्लोक संख्या 16 से 30 तक(मूल अन्वय अर्थ-व्याख्या)
- 4.4 सारांश
- 4.5 शब्दावली
- 4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.8 उपयोगी पुस्तकें
- 4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित यह खण्ड दो की यह चौथी इकाई है। इस इकाई में पन्द्रह श्लोकों की व्याख्या की गयी है। कालिदास ने अपने ग्रन्थ कुमारसम्भवम् में इकतीस से लेकर पैंतालीस श्लोकों में पार्वती का वर्णन करते हुए उनके यौवना अवस्था का भी वर्णन किया है।

कालिदास ने पार्वती का वर्णन करते हुए पार्वती के किशोरावस्था के समाप्त होने पर वह यौवन को प्राप्त हुई। कवि द्वारा उनके मनोहर अंगों का वर्णन किया गया है।

अतः इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि पार्वती का सौन्दर्य वर्णन कालिदास ने किस शैली में किया है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पार्वती के किशोरावस्था के समाप्त होने पर उनके यौवनावस्था के स्वरूप से परिचित होंगे।
- पार्वती की विशेषताएं बता सकेंगे।
- पार्वती के यौवनावस्था का चित्रण अपने शब्दों में कर सकेंगे।
- कवि ,द्वारा वर्णित पार्वती के अंगों में प्रयुक्त भाषा शैली का वर्णन कर सकेंगे।
- श्लोक संख्या पैंतीस की विशेषता बता सकेंगे।
- श्लोक संख्या चालीस के विषय टिप्पणी कर सकेंगे।
- इस इकाई का महत्व समझा सकेंगे।

4.3 श्लोक संख्या 31से 45 तक(मूल अन्वय अर्थ - व्याख्या)

असम्भृतं मण्डनमांगयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य ।

कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्पं साऽथ वयः प्रपेदे ॥31॥

अन्वय - अथ सा अंगयष्टेः असम्भृतं मण्डनम् अनासवाख्यं मदस्य करणं कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तम् अस्त्रं बाल्यात् परं वयः प्रपेदे ।

पदार्थ - अथ = तदनन्तर । सा = वह (पार्वती) । अंगयष्टेः = मनोहर अंगों का । असम्भृतं = स्वाभाविक । मण्डनं = अलंकार । अनासवाख्यम् = मदिरा से रहित । मदस्य = मद का । करणम् = साधन । कामस्य = कामदेव का । पुष्पव्यतिरिक्तं = फूलों के अतिरिक्त । अस्त्रम् = अस्त्ररूपी । बाल्यात् = किशोरावस्था से । परम् = उत्तरवर्ती (बाद में आने वाले) । वयः = यौवनावस्था को । प्रपेदे = प्राप्त हुई ।

अनुवाद - किशोरावस्था के समाप्त होने पर पार्वती उस यौवन को प्राप्त हुई जो उसके मनोहर अंगों का स्वाभाविक अलंकार था, मद्य के अभाव में मद का साधन था तथा पुष्पों के अतिरिक्त

कामदेव का (कोई अन्य) अस्त्र था ॥ 31 ॥

समास - अंगयष्टिरिव तस्य अंगयष्टेः (उपमित् कर्म 0) । न सम्भृतम् असम्भृतम् (नञ् तत्पु 0) । आसवाश्चासौ आख्या आसवाख्या (कर्म 0), अविद्यमाना आसवाख्या यस्य तत् (बहु0), न आसवाख्यम् अनासवाख्यम् (नञ् तत्पु0) । विशेषेण अतिरिक्तम् व्यतिरिक्तम् (सुप्सुषा), पुष्पेभ्यः व्यतिरिक्तम् (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - असम्भृतम् - न + सम् + भृ + क्त । करणम् - क्रियतेऽनेनेति, कृ + ल्युट् (= अन्) । व्यतिरिक्त - वि + अति + रिच् + क्त । बाल्यात् - बाल + ष्य्, प0 एक0 । प्रपेदे - प्र + पद् + लिट्, प्र0 पु0 एक0 ।

अलंकार - परिणाम, विभावना ।

विशेष - इसमें पार्वती के अंगों की अतिशय सुन्दरता का वर्णन है। जो उन्हें यौवनावस्था से प्राप्त हुई है ।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्याशुभिर्भिन्नमिवाऽरविन्दम् ।

बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन ॥32 ॥

अन्वय - नवयौवनेन विभक्तं तस्या वपुः तूलिकया उन्मीलितं चित्रम् इव, सूर्याशुभिः भिन्नम् अरविन्दम् इव चतुरस्रशोभि बभूव ।

पदार्थ - नवयौवनेन = नवीन यौवन से । विभक्तम् = अभिव्यक्त । तस्याः = उस (पार्वती) का । वपुः = शरीर । तूलिकया = कूँची (तूलिका) से । उन्मीलितम् = चित्रित । चित्रम् इव = चित्र के समान । सूर्याशुभिः = सूर्य की किरणों से । भिन्नम् = खिले हुए । अरविन्दम् इव = कमल के समान । चतुरस्रशोभि = सर्वांग रूप से सुशोभित । बभूव = हुआ ।

अनुवाद - नवयौवन से अभिव्यंजित उस (पार्वती) का शरीर, तूलिका के अंकित चित्र की भाँति (तथा) सूर्य की रश्मियों से विकसित कमल की भाँति, हर ओर से पूर्णरूपेण सुशोभित हुआ ।

समास - नव च तद् यौवनं नवयौवनम्, तेन नवयौवनेन (कर्म0) । सूर्यस्य अंशवः सूर्याशवः, तैः सूर्याशुभिः (ष 0 तत्पु 0) । चतस्रः अस्त्रयः यस्य तत् चतुरस्रम् (बहु0), चतुरस्रं शोभते इति, तत् चतुरस्रशोभि (उपपद तत्पु 0) ।

व्याकरण - विभक्तम् - वि + भञ् + क्त, प्र 0 एक 0 । उन्मीलितम् - उद् + मील् + क्त, प्रथमा एकव 0 । भिन्नम् - भिद् + क्त, प्रथमा एक0 । शोभि- शुभ् + णिनि । वभू - भू + लिट्, प्र0 पु0 एक0 ।

अलंकार - मालोपमा ।

विशेष - जिस प्रकार तूलिका से रंग भरने पर चित्र सुन्दर प्रतीत होता है तथा सूर्य की रश्मियों का स्पर्श पाकर कमल खिल उठता है उसी प्रकार पार्वती का शरीर नवयौवन में सौन्दर्य से भर उठा ॥ 32 ॥

अभ्युन्नतांगुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ।

आजहन्नतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम् ॥33 ॥

अन्वय - अभ्युन्नतांगुष्ठनखप्रभाभिः निक्षेपणात् रागम् उद्गिरन्तौ इव तच्चरणौ पृथिव्याम्

अव्यवस्थां स्थलारविन्दश्रियम् आजहत्तुः ।

पदार्थ - अभ्युन्नत = ऊपर को उठे हुए । अंगुष्ठ = अँगूठों (के) । नख = नखों (की) । प्रभाभिः = चमक से । निक्षेपणाम् = भली प्रकार रखने से । रागम् = लालिमा (का) । उद्गिरन्तौ = वमन करते हुए । इव = मानो । तच्चरणौ = उसके (दोनों) चरण । पृथिव्याम् = भूमि पर । अव्यवस्थाम् = जंगम (=चलने वाले) । स्थालविन्दश्रियम् (स्थालारविन्द = स्थलकमल, श्रियम् = सौन्दर्य को) = स्थलकमल के सौन्दर्य को । आजहत्तुः = प्राप्त कर रहे थे । या चुरा रहे थे ।

अनुवाद - पार्वती के दोनों चरण (जब) भूमि पर पड़ते थे तो (अपने उठे हुए अँगूठों के नखों की कान्ति से (वे) लालिमा का मानो वमन करते हुए (और तब इस प्रकार) चलने वाले स्थलकमल के सौन्दर्य को प्राप्त कर रहे थे ॥ 33 ॥

समास - अंगुष्ठयोः नखौ (ष० तत्पु०) अंगुष्ठनखौ, अंगुष्ठनखयोः प्रभा अंगुनखप्रभा (ष० तत्पु०), अभ्युन्नता चासौ, अंगुनखप्रभा अभ्युन्नतांगुष्ठनखप्रभा ताभिः (कर्म०) । तस्याः चरणा तच्चरणौ (ष०तत्पु०) । अविद्यमाना व्यवस्था यस्याः सा, ताम् अव्यवस्थाम् (बहु०) । स्थलस्य अरविन्दम् (ष० तत्पु०), स्थालारविन्दस्य श्रीः ताम् स्थलारविन्दश्रियम् (ष० तत्पु०)।

व्याकरण - अभ्युन्नत - अभि + उद् + नम् + क्त । निक्षेपणात् - नि + क्षिप् + ल्युट् (=अन), प० एक०। उद्गिरन्तौ - उद् + गृ + शतृ, प्र० द्वि०। आजहत्तुः - आजहत्तुः - आ + ह + लिट्, प्र०पु० द्वि० ।

अलंकार - उपमेय । निदर्शनालंकार ।

विशेष - इसमें पार्वती के चरण व अंगुष्ठ के नखों की क्रांतिमयी लालिमा का वर्णन है । ध्यातव्य है कि - देवताओं के सुन्दरता का वर्णन पादांगुष्ठ से व मनुष्यों के सुन्दरता का वर्णन केश से प्रारम्भ किया जाता है ।

सा रजहंसैरिव सन्नतांगी गतेषु लीलांजितविक्रमेषु ।

व्यनीयत प्रत्युपदेशलुब्धैरादित्सुभिर्नूपुरसंजितानि ॥ 34 ॥

अन्वय - प्रत्युपदेशलुब्धैः नूपुरसंजितानि आदित्सुभिः राजहंसैः सन्नतांगी सा लीलांजितविक्रमेषु गतेषु व्यनीयत इव ।

पदार्थ - प्रत्युपदेशलुब्धैः = प्रत्युपदेश (= प्रतिरूप उपदेश) के लोभी । नूपुरसंजितानि = नूपुरध्वनि (पायल की झनकार) को । आदित्सुभिः = सीखने के इच्छुक। राजहंसैः = राजहंसों के द्वारा । सन्नतांगी = (स्तनों के भार से) झुके अंगोवाली । सा = वह (पार्वती) । लीलांजित विक्रमेषु = सविलास चरणविन्यास से युक्त । गतेषु = गमन में । व्यनीयत इव = मानो विशेष रूप से शिक्षित की गई ।

अनुवाद - प्रत्युपदेश से उत्सुक राजहंसों ने (पार्वती से) नूपुरध्वनि की शिक्षा प्राप्त करने के लिए मानो उन्हें सविलास चरणविन्यास से युक्त गमन (क्रिया) में विशेष रूप से शिक्षित किया ।

समास - उपदेशस्य प्रतिदानम् प्रत्युपदेशः (प्रादि तत्पु०), प्रत्युपदेशे लुब्धाः तैः प्रत्युपदेशलुब्धैः (स ० तत्पु ०) ।

व्याकरण - लुब्ध - लुभ् + क्त । आदित्सुभिः - आ + दा + सन्, तृ० बहु०। सन्नत - सम् + नम्

+ क्त। अलंकार - उत्प्रेक्षा, परिवृत्ति।

विशेष - कहने का आशय यह है कि पार्वती की चाल राजहंसों की चाल की तरह अत्यन्त मनोहर थी ॥ 34 ॥

वृत्तानुपूर्वे च न चाऽतिदीर्घे जंघे शुभे सृष्टवतस्तदीये।

शेषांगनिर्माणविधौ विधातुर्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः ॥ 35 ॥

अन्वय - वृत्तानुपूर्वे न च अतिदीर्घे शुभे तदीये जघडे सृष्टवतः विधातुः शेषांगनिर्माणविधौ उत्पाद्ये लावण्ये यत्नः आस इव।

पदार्थ - वृत्तानुपूर्वे = (वृत्त = गोलाकार, अनुपूर्वे = अनतिह्रस्व) = वर्तुल एवं गोपुच्छ के आकार वाले। न च अतिदीर्घे = अतिदीर्घे (= जो बहुत लम्बे नहीं थे)। शुभे = शुभ गुणों से युक्त। जघडे = जंघाओं को। सृष्टवतः = सृष्टि करने वाले। विधातुः = ब्रह्मा को। शेषांगनिर्माणविधौ = अन्य (अर्थात् जंघाओं के अतिरिक्त) अंगों के निर्माण हेतु। उत्पाद्ये = अपेक्षित। लावण्ये = सौन्दर्य (को सृष्ट करने) में। यत्नः = उद्योग। आस इव = (सा) करना पड़ा।

अनुवाद - गोपुच्छ के आकार वाले एवं नातिदीर्घ शुभ गुणों से युक्त जंघाओं के निर्माण में समग्र सौन्दर्य के समाप्त हो जाने पर, (जंघाओं के अतिरिक्त) अन्य अंगों की रचना के लिए ब्रह्मा को अपेक्षित सौन्दर्य को सृष्ट करने में उद्योग-सा करना पड़ा।

समास - वृत्ते च ते अनुपूर्वे वृत्तानुपूर्वे (कर्म०), पूर्वमनुगता अनुपूर्वा, ते (प्रादि० तत्पु०)। अत्यन्तं दीर्घा अतिदीर्घा, ते अदिदीर्घे (सुप्सुपा तत्पु०)

व्याकरण - तदीये - तत् + छ (ईय्), स० एक०। सृष्टवः सृज् + तवत्, एक०। विधातुः - वि + धा + ष० एक०। निर्माण - निर् + मा + ल्युट् (अन्)। उत्पाद्ये - उत् + पद + ण्यत्, स० एक०। आस - 'बभूव' के अर्थ में अव्यय है अथवा 'वभूव' के स्थान पर प्रामादिक प्रयोग है।

अलंकार - उत्प्रेक्षा।

विशेष - कवि का आशय यह है कि पार्वती के जंघाओं के निर्माण में ब्रह्मा का सारा रचना-चातुर्य समाप्त हो गया। फलतः अन्य अंगों की रचना करने के लिए विशेष नूतन सौन्दर्य की उद्भावना करनी पड़ी ॥35॥

नागेन्द्रहस्तास्त्वचिर्कशत्वादेकान्तशैत्यात् कदलीविशेषाः ॥

लब्ध्वाऽपि लोके परिणाहि रूपं जातास्दूर्वो रूपमानबाह्याः ॥36 ॥

अन्वय - नागेन्द्रहस्ताः त्वचिर्कशत्वात् कदलीविशेषाः एकान्तशैत्यात् लोके परिणाहि रूपं लब्ध्वाऽपि तदूर्वोः उपमानबाह्याः जाताः।

पदार्थ - नागेन्द्रहस्ताः = गजेन्द्रों के हाथों (सूँडों)। त्वचिर्कशत्वात् = त्वचा के कठोर होने के कारण। कदलीविशेषाः = केले के खम्भे। एकान्तशैत्यात् = अत्यन्त शीतल होने के कारण। लोके = लोक में। परिणाहि = विशाल। रूपम् = आकार को। लब्ध्वाऽपि = प्राप्त करके भी। तदूर्वोः = उस (पार्वती) के उरूओं के। उपमानबाह्याः = उपमान नहीं। जाताः हुए।

अनुवाद - हाथी की सूँड़ त्वचा के अत्यन्त कठोर होने के (तथा केले के खम्भे अत्यन्त शीतल

होने के कारण संसार में विशाल आकार प्राप्त करके भी उस (पार्वती की जंघाओं के उपमान (तुलना) योग्य नहीं हो सके ॥ 36 ॥

समास - नागानाम् इन्द्राः (ष0 तत्पु0) नागेन्द्राणां हस्ताः नागेन्द्रहस्ताः (ष0 तत्पु0) । त्वचि कर्कशत्वात् त्वचिकर्कशत्वात् (अलुक् तत्पु0) । कदलीनां विशेषाः कदलीविशेषाः (ष0 तत्पु0) । एकान्तं शैत्यम् तस्मात् एकान्तशैत्यात् (कर्म0), तस्या ऊरू तयोः तदूर्वोः (ष0 तत्पु0) । उपमाने बाह्याः उपमानबाह्याः (स0 तत्पु0) ।

व्याकरण - कर्कशत्वात् - कर्कश + त्व (प0 एक0 व0) । शैत्यात् - शीत + घ्य्' । लब्ध्वा - लभ् + क्त्वा । बाह्याः - बहिष् + य', प्र0 बहु0 ।

अलंकार - व्यतिरेक ।

विशेष - इसमें पार्वती की सुडौल जंघाओं का वर्णन है ।

एतावता नन्वनुमेयशोभि कांचीगुणस्थानमनिन्दितायाः ।

आरोपितं यद्गिरिशेन पश्चादनन्यनारीकमनीयमंकम् ॥ 37 ॥

अन्वय - यत् पश्चात् गिरिशेन अनन्यनारीकमनीयम् अंकम् आरोपितम् अनिन्दितायाः कांचीगुणस्थानम् एतावता ननु अनुमेयशोभि ।

पदार्थ - यत् = जो । पश्चात् = बाद में । गिरिशेन = शिव के द्वारा । अनन्यनारीकमनीयम् = (अनन्य = दूसरी, नारी = स्त्रियों को, कमनीय = दुर्लभ) दूसरी स्त्रियों के लिए दुर्लभनीय । अंकम् = गोद में । आरोपितम् = रखा गया । अनिन्दितायाः = सर्वांगसुन्दरी (पार्वती) कांचीगुणस्थानम् = (कांची = करधनी की, गुण = लड़ियों का, स्थानम् = स्थल) = नितम्ब की । एतावता = इसी से (अर्थात् गोद में आरोपित करने से) । ननु = निश्चित रूप से । अनुमेयशोभि = शोभा का अनुमान लगाया जा सकता है ।

अनुवाद - निश्चित रूप से इतने मात्र से ही अनिन्द्य सुन्दरी पार्वती के नितम्ब की शोभा का अनुमान लगाया जा सकता है, जिसे (विवाह के) पश्चात् शिव ने अन्य स्त्रियों के लिए दुष्प्राप्य (अपनी) गोद में (भली प्रकार से) रखा।

समास - गिरौ शेते गिरिशः तेन गरिशेन (अलुक् तत्पु0) । अन्याश्च ता नार्यः अन्यनार्यः (कर्म0), अन्यनारीणां कमनीयः (ष 0 तत्पु 0) न अन्यनारी कमनीय तम् । अन्यनारीणां कमनीयम् (नञ् तत्पु 0) । न निन्दिता अनिन्दिता तस्याः अनिन्दितायाः (नञ्त्पु0) । कांचयागुणः - कांचीगुणः (ष0 तत्पु 0), कांचीगुणस्य स्थानम् कांचीगुणस्थानम् (ष0 तत्पु0) । अनुमेया शोभा यस्य तत् अनुमेयशोभि (बहु 0) ।

व्याकरण - गिरिशेन - गिरि + शी + ड, तृतीया एक0, अथवा गिरि + श, तृतीया एक0 । कमनीयम् - कम् + अनीयर्, द्वितीया एक0 । आरोपितम् - आ + रूप् + ण + क्त, प्रथमा एक0 । अनिन्दितायाः - न + निन्द् + टाप्, षष्ठी एक0 । एतावता - एतद् + वतुप्, तृतीया एक0 । अनुमेय - अनु + मा + यत् । शोभि - शुभ + इनि, नपुं0, प्रथमा एक0 ।

अलंकार - अनुमान ।

विशेष - ज्ञातव्य है कि पार्वती ने अत्यन्त उग्र तप करके शिव को पति के रूप में प्राप्त किया था।

अतः तपोलभ्य शिव द्वारा अंक में आरोपित करने से पार्वती के अत्यन्त सौन्दर्यशाली नितम्ब की व्यंजना की गयी हैं । ॥ 37 ॥

अभ्यास प्रश्न -

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अति संक्षेप में दीजिए -

- 1- -इस इकाई में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है
- 2 - पार्वती के यौवन के सौन्दर्य की तुलना किससे की गई है।
- 3- पार्वती की चाल किसके चाल की तरह अत्यन्त मनोहर थी ।
- 4- पार्वती ने अत्यन्त उग्र तप करके पति के रूप में किसको प्राप्त किया था ।
- 5- पार्वती किसके समान कृशोदरी थी ।

बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- षोडश वर्षीया है-

क-पार्वती ख- गौरी

ग-शकुन्तला घ- मैना

2- - त्रिवली को धारण किया,

क- हाथी ख-पार्वती

ग- मोर घ- औषधियों

3- कवि ने पार्वती की नेत्र की उपमा किससे दी है-

क - कमल से ख- अंकुर से

ग - मोर से घ- औषधियों से

4- श्लोक संख्या बयालीस में वर्णन है-

क - हाथी का ख- किन्नरियों का

ग - पार्वती के पयोधरों का घ- औषधियों का

5- श्लोक संख्या पैतालीस में वर्णन है-

क- सप्तर्षियों का ख- पार्वती के मधुर वाणी का

ग- चमरी गायों का घ- औषधियों का

तस्याः प्रविष्टा नतनाभिरन्ध्र रराज तन्वी नवलोमराजिः ।

नीवीमतिक्रम्य सितेतरस्य तन्मेखलामध्यमणेरिवाऽर्चिः ॥ 38॥

अन्वय - नीवीम् अतिक्रम्य नतनाभिरन्ध्रं प्रविष्टा तन्वी तस्याः नवलोमराजिः सितेतरस्य तन्मेखला मध्यमणेः अर्चि इव रराज ।

पदार्थ - नीवीम् = कटिवस्त्र के बन्ध को । अतिक्रम्य = लाँघकर । नतनाभिरन्ध्रम् = नीचे नाभि छिद्र में। प्रविष्टा = प्रविष्ट होती हुई । तन्वी = पतली। तस्याः = उस (पार्वती) की । नवलोमराजिः = नवीन रोम पंक्ति। सितेतरस्य = श्वेत से भिन्न नीले रंग की। तन्मेखलामध्यमणेः = उसकी करधनी के मध्य में स्थित (इन्द्रनील) मणि की । अर्चिः = कान्ति (सी) । इव = मानो । रराज = सुशोभित हुई ।

अनुवाद - नीवी का अतिक्रमण करके निम्न नाभि विवर में प्रविष्ट उनकी पतली नवीन रोमपंक्ति करधनी के मध्य में स्थित इन्द्रनीलमणि की क्रान्ति के समान मालूम पड़ती थी ।

समास - नाभेः रन्ध्रम नाभिरन्ध्रम् (ष0 तत्पु0), नतच्' तत् नाभिरन्ध्रम् नतनाभिरन्ध्रम् (कर्म0) । नवानि च तानि लोमानि नवलोमानि (कर्म0), नवलोम्ना राजिः नवलोमराजिः (ष0 तत्पु0) । सिताद् इतरः सितेतरः, तस्य सितेतरस्य (पंचमी तत्पु0) । तस्या मेखला तन्मेखला (ष0 तत्पु0) मध्यश्चासौ मणिः मध्यमणिः (कर्म0), तन्मेखलाया मध्यमणिः तन्मेखलामध्यमणिः, तस्य तन्मेखलामध्यमणेः (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - अतिक्रम्य - अति + क्रम् + क्त्वा (ल्यम्) । प्रविष्टा - प्र + विश् + क्त + टाप्, प्रथमा एक0 । तन्वी - तनु + डीप्, प्रथमा एक0। रराज - राज् + लिट्, प्र0 पु0 एक0 ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

विशेष - नवयौवन के कारण नाभि तक रोमों की जो पतली रेखा बन गई थी उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो मेखला के मध्य में जड़ा हुआ नीलम चमक उठा हो ॥38॥

मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलियत्रयं चारू बभार बाला ।

आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥ 39 ॥

अन्वय - वेदिविलग्नमध्या सा बाला मध्येन चारूवलियत्रयं कामस्य आरोहणार्थं नवयौवनेन प्रयुक्तं सोपानम् इव बभार ।

पदार्थ - वेदिविलग्नमध्या = (विलग्न = कृश) = वेदी के समान कृश उदर वाली। सा = उस। बाला = (षोडश वर्षीया) कुमारी ने । मध्येन = मध्यभाग में । चारू = मनोहर । वलियत्रयम् = त्रिवली का । कामस्य = कामदेव के । आरोहणार्थम् = चढ़ने के लिए । नवयौवनेन = नवयौवन से । प्रयुक्तम् = निर्मित । सोपानम् इव = सोपान (= सीढ़ी) के समान । बभार = धारण किया ।

अनुवाद - वेदी के समान कृशोदरी षोडश वर्षीया पार्वती ने (अपने) मध्य भाग में मनोहारी त्रिवली को धारण किया, जो (मानो) कामदेव के आरोहण के लिए नवयौवन द्वारा विरचित सीढ़ी (-सी मालूम पड़ती) थी ।

समास - वेदिः इव विलग्नः मध्यः यस्याः सा वेदिविलग्नमध्या (बहु0) । वलीनां त्रयम् वलियत्रम् (ष0 तत्पु0) । नवं च तद् यौवनम् नवयौवनम् तेन नव यौवनेन (कर्म0) । आरोहणाय इदम् आरोहणार्थम् (चतु0 तत्पु0)।

व्याकरण - आरोहण - आ + रूह् + ल्युट् (= अन) । प्रयुक्तम् - प्र + युज् + क्त। बभार - भृ + लिट्, प्र0 पु0, एक0 । अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

विशेष - यहाँ मध्यभाग में स्थित त्रिवली में प्रयोजन पर कवि द्वारा उत्प्रेक्षा की गयी हैं। कालिदास इस त्रिवली को कामदेव के चढ़ने के लिए नवयौवन द्वारा निर्मित सीढ़ी मानते हैं ॥39॥

अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् ।

मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥ 40 ॥

अन्वय - अन्योन्यम् उत्पीडयत् पाण्डु उत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं तथा प्रवृद्धम्, श्याममुखस्य तस्य मध्य यथा मृणालसूत्रान्तरम् अपि अलभ्यम् (आसीत्)

पदार्थ - अन्योन्यम् = एक दूसरे को । उत्पीडयत् = दबाते हुए । पाण्डु = गोरे । उत्पलाक्ष्याः = कमलनयनी (पार्वती) के । स्तनद्वयम् = दोनों स्तन । तथा = इस प्रकार । प्रवृद्धम् = बढ़ गये । (कि) । श्याममुखस्य = काले अग्रभाग वाले तस्य= उस स्तनयुगल (दोनों स्तनों) के । मध्ये = मध्य में । मृणालसूत्रान्तरम् = कमलनाल के तन्तु मात्र का अन्तर । अपि = भी । अलभ्यम् = दुर्लभ । आसीत् = था ।

अनुवाद - (नील) कमल के सदृश नेत्रोंवाली पार्वती के एक दूसरे से (अत्यन्त) सटे हुए गौर वर्ण के दोनों स्तन इतने बढ़ गये कि काले अग्र भाग वाले उन दोनों (स्तनों) के बीच मृणालसूत्र रखने (तक) का भी अवकाश (खाली स्थान) न था ।

समास - उत्पले इव अक्षिणी यस्याः सा उत्पलाक्षी, तस्याः उत्पलाक्ष्याः (बहु0) स्तनयोः द्वयम् स्तनद्वयम् (ष0 तत्पु0) । प्रकर्षेण वृद्धम् प्रवृद्धम् (सुप्सुपा समास)। श्यामं मुखं यस्य तत् श्याममुखम्, तस्य श्याममुखस्य (बहु0) । मृणालय सूत्रम् मृणालसूत्रम् (ष0 तत्पु0), मृणालसूत्रस्य अन्तरम् मृणालसूत्रान्तरम् (ष0 तत्पु0) । न लभ्यम् अलभ्यम् (नञ्त्पु0)।

व्याकरण - उत्पीडयत् - उत् + पीड + शतृ, एक0 । प्रवृद्धम् - प्र + वृध् + क्त, प्रथमा एक0 । अलभ्यम् - लभ्यम्, लभ् + यत् ।

अलंकार - अतिशयोक्ति ।

विशेष - गौरवर्णी दोनों स्तनों के बीच मृणालसूत्र रखने तक के अवकाश का भी न होना पार्वती के विशाल स्तन अतएव उनके पूर्ण यौवन का व्यञ्जक हैं । कवि ने मनोहर स्तनों की विशालता के कारण ही उन्हें अन्यत्र (श्लोक सं0 34) “सन्नतांगी” कहा है ॥40 ॥

शिरीषपुष्पाऽधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति में वितर्कः ॥

पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन ॥41॥

अन्वय - यौ पराजितेन अपि मकरध्वजेन हरस्य कण्ठपाशौ कृतौ तदीयौ बाहू शिरीषपुष्पाऽधिकसौकुमार्यौ इति में वितर्कः (अस्ति)॥

पदार्थ - यौ = जो (दोनों) । पराजितेन अपि = पराजित होने पर भी । मकरध्वजेन = कामदेव द्वारा । हरस्य = शिव के । कण्ठपाशौ = गले के हार । कृतौ = बनाये गये । तदीयौ = उसकी (दोनों) । बाहू = बाहें । शिरीषपुष्पाऽधिकसौकुमार्यौ = शिरीष पुष्पों से भी अधिक कोमल (हैं)। इति = ऐसा । में = मेरा वितर्कः = अनुमान । (अस्ति = हैं) ।

अनुवाद - पराजित होने पर भी कामदेव ने जिन्हें शिव का कण्ठपाश बना दिया (निश्चय ही) पार्वती की वे बाहें शिरीष पुष्पों से भी अधिक कोमल हैं ऐसा मेरा अनुमान (हैं) ।

समास - मकरः ध्वजः सः, तेन मकरध्वजेन (बहु0) । कण्ठपाशौ = कण्ठस्य पाशौ (ष0 तत्पु0) । शिरीषस्य पुष्पम् (ष0 तत्पु0), शिरीषपुष्पाद् अधिकं शिरीषपुष्पाधिकं (प0 तत्पु0), शिरीषपुष्पाण्यधिकं सौकुमार्यं ययोः तौ (बहु0) । विशिष्टः तर्कः वितर्कः (कर्म0) ।

व्याकरण - पराजितेन - परा + जि + क्त, तृ0 एक । कृतौ - कृ + क्त, प्रथमा द्वि । तदीयौ - तद् + छ (= इय), प्रथमा द्वि0। सौकुमार्यौ - सु + कुमार + ष्य' प्रथमा द्वि0 ।

अलंकार - परिणाम ।

विशेष - सर्वविदित है कि शिव ने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से काम को जला डाला था। अतएव कामदेव शिव का स्वाभाविक बैरी है । उस बैर - शोधन के लिए ही मानों कामदेव ने शिरीषपुष्पों से भी अधिक कोमल पार्वती के बाहों के पाश में शिव को बांध दिया॥ 41॥

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य ।

अन्योन्यशोभाजननाद् बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः ॥ 42 ॥

अन्वय - स्तनबन्धुरस्य तस्याः कण्ठस्य निस्तलस्य मुक्ताकलापस्य च अन्योन्यशोभाजननात् भूषणभूष्यभावः साधारणः बभूव ।

पदार्थ - स्तनबन्धुरस्य = पयोधरों से उन्नत । तस्याः = उस (पार्वती) के । कण्ठस्य = गले के। निस्तलस्य मुक्ताकपालस्य च = (निस्तल = वर्तुल, वृत्ताकार । तथा वर्तुल मुक्ताहार के । अन्योन्यशोभाजननात् = परस्पर भूषित करने से । भूषणभूष्यभावः = अलंकार - अलंकार्य भाव । साधारणः = समान । बभूव = हो गया ।

अनुवाद - पयोधरों से उन्नत पार्वती के कण्ठ की गोल मोतियों की माला अलंकृत करती थी तथा गोल मौक्तिकमाला को उनका स्तनोन्नत कण्ठ सुशोभित करता था (इस प्रकार) एक दूसरे को विभूषित करने से (उन दोनों का) अलंकार-अलंकार्य भाव समान हो गया ॥ 42 ॥

समास - स्तनाभ्यां बन्धुरः स्तनबन्धुरः तस्य स्तनबन्धुरस्य (तृ0 तत्पु 0) । निर्गतस्तलात् निस्तलस्य (प्रादि तत्पु 0) मुक्तानां कलापः मुक्ताकलापः तस्य मुक्ताकलापस्य (ष0 तत्पु0) । अन्योन्यस्य शोभा अन्योन्यशोभा (ष 0 तत्पु 0) । भूषणं च भूष्यच्च भूषणभूष्यः (द्वन्द्व) भूषणभूष्ययोः भावः (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - जनन - जन् + ल्युट् (= अन) । भूषण - भूषण - भूष् + ल्युट् (= अन) । भूष्य - भूष् + यत् । बभूव - भू + लिट्, प्र 0 पु 0 एक 0 ।

अलंकार - अन्योन्य ।

विशेष - इसमें पार्वती के कण्ठभाग की सुन्दरता वर्णित है जो मोतियों की माला में भी सुशोभित कर रही हैं ।

चन्द्रं गता पद्म गुणान् भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।

उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥ 43 ॥

अन्वय - लोला लक्ष्मीः चन्द्रं गता (सती) पद्मगुणान् न भुङ्क्ते, पद्माश्रिता (सती) चान्द्रमसीम् अभिख्यां (न भुङ्क्ते), उमामुखं प्रतिपद्य तु द्विसंश्रयां प्रीतिम् अवाप ।

पदार्थ - लोला = चंचल । लक्ष्मीः = श्री (कान्ति की अभिमानिनी देवी) । चन्द्रं गता = चन्द्रमा

ेके पास पहुंचकर । पद्मगुणान् = (पद्म = कमल, गुण = विशेषता) कमल (अनिन्द्य सौरभ आदि) के गुणों को । न भुङ्क्ते = नहीं प्राप्त करती । उपामुखम् = पार्वती के मुख को । प्रतिपद्य = प्राप्त करके । द्विसंश्रयाम् = (चन्द्रमा और कमल) दोनों (की विशेषताओं) पर निर्भर करने वाले ।

प्रीतिम् = आनन्द को । अवाप = प्राप्त किया ।

अनुवाद - चंचला (सौन्दर्य) लक्ष्मी (रात में) चन्द्रमा पर स्थित होकर कमल के सौरभ आदि गुणों से वंचित हो जाती है तथा (दिन में) कमल पर विराजमान होकर चन्द्रमा के आह्लादक आदि गुणों से हीन हो जाती है । (किन्तु) पार्वती के मुख पर विराजमान (सौन्दर्य) लक्ष्मी ने चन्द्रमा और कमल के विशिष्ट गुणों पर निर्भर करने वाले आनन्द को एक साथ (ही) प्राप्त किया ।

समास - पद्मस्य गुणाः तान् पद्मगुणान् (ष० तत्पु०) । पद्म आश्रिता पद्माश्रिता (द्वि० तत्पु०) ।

उमायाः मुखम् उमामुखम् (ष० तत्पु०) । द्वे संश्रयः यस्याः ताम् द्विसंश्रयाम् ।

व्याकरण - भुङ्क्ते - भुञ् + लट्, प्र० पु० एक०, आत्मनेपद । चान्द्र - मसीम् - चन्द्रमसः इमाम्, चन्द्रसेन + अण् + डीप्, द्वितीया एक० । प्रतिपद्य - प्रति + पद्, क्त्वा (ल्यप्) । अवाप - अव + आप् + लिट्, प्र० पु० एक० ।

अलंकार - व्यतिरेक ।

विशेष - इस श्लोक में कवि ने पार्वती के मुख के सौन्दर्य को कमल और चन्द्रमा में वर्तमान सौन्दर्य से उत्कृष्ट बतलाकर उनके मुख के अलौकिक सौन्दर्य की व्यजना की है। पार्वती के मुख में कमल के सौरभ आदि गुण तो वर्तमान है ही, साथ ही साथ उसमें चन्द्रमा की आह्लादकता आदि विशेषताएँ भी विद्यमान हैं ॥ 43 ॥

पुष्पं प्रवालोलपहितं यदि स्यात्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम् ।

ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरूचः स्मितस्य ॥ 44 ॥

अन्वय - पुष्पं प्रवालोलपहितं स्यात् यदि मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थं (स्यात् यदि) । ततः विशदस्य ताम्रौष्ठपर्यस्तरूचः तस्या स्मितस्य अनुकुर्यात् ।

पदार्थ - (यदि) पुष्पम् = (यदि श्वेत) फूल । प्रवालोलपहितम् = नवीन पत्ते पर रखा हुआ । स्यात् = हो। मुक्ताफलम् = मोती । स्फुटविद्रुमस्थं = स्वच्छ मूँगे पर स्थित हो । ततः = तब । विशदस्य = शुभ्र वर्ण के । ताम्रौष्ठपर्यस्तरूचः = लाल वर्ण वाले होठों पर फैली हुई कान्ति । तस्याः = उस (पार्वती) के । स्मितस्य = मुस्कान का । अनुकुर्यात् = अनुकरण कर सकती है ।

अनुवाद - (यदि श्वेत) फूल नवीन कोमल पत्ते पर रखा हुआ हो अथवा यदि स्वच्छ मूँगे पर मोती रखा हो (और तब इस प्रकार जो शोभा उत्पन्न होगी वह) लाल होठों पर फैली हुई कान्ति वाली उस (पार्वती) की मन्द मुस्कान का अनुकरण कर सकती है ॥ 44 ॥

समास - प्रवालोलपहितम् प्रवालोलपहित् (स० तत्पु०) । मुक्ता एवं फलम् मुक्ताफलम् (मथूरव्यंसकादि) । स्फुटश्चासौ विद्रुमश्च इति स्फुटविद्रुमः, स्फुट विद्रुपे ओष्ठः ताम्रौष्ठः (कर्म०),

ताम्रौष्ठे पर्यस्ता ताम्रौष्ठार्यस्ता (स० तत्पु०) ताम्रौष्ठ पर्यस्तं रूक् यस्य तस्य ताम्रौष्ठपर्यस्तरूचः (बहु०) ।

व्याकरण - उपहितम् - उप+धा + क्त । विद्रुमस्थम् - विद्रुम् + स्था + क । पर्यस्थ - परि + अस् + ता । अनुकुर्यात् - अनु + कृ + विधिलिङ् प्र० पु० एक० ।

अलंकार - अतिशयोक्ति ।

विशेष - इसमें पार्वती के लालिमायुक्त ओष्ठ, श्वेत दन्त, मन्द मुस्कान की व्यंजना की गयी है।

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि ।

अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रारिव ताड्यमाना ॥ 45॥

अन्वय - अभिजातवाचि तस्याम् अमृतस्रुता इव स्वरेण प्रजल्पितायाम् अन्यपुष्टा अपि ताड्यमाना वितन्त्रीः इव श्रोतुः प्रतिकूलशब्दा ।

पदार्थ - अभिजातवाचि = मधुरभाषिणी । तस्याम् = उस (पार्वती) के । अमृतस्रुता = अमृत की वर्षा करने वाले । स्वरेण = स्वर से । प्रजल्पितायाम् = बातचीत करने पर । अन्यपुष्टा = कोयल (की बोली) । अपि = भी । ताड्यमाना = आहत । वितन्त्रीः = विस्वर वीणा । इव = के समान । श्रोतुः = सुनने वाले को । प्रतिकूलशब्दा = कर्णकटु प्रतीत होती थी ।

अनुवाद - मधुरभाषिणी पार्वती जब (अपने) अमृतवर्षी स्वर में बोलने लगतीं तो (उस समय उनकी वाणी के) श्रोता को कोयल की बोली भी विस्वर वाणी के समान कर्णकटु प्रतीत होती थी

समास - अभिजाता वाक् यस्याः सा तस्याम् अभिजातवाचि (बहु०) अमृतं स्रवतीति तेन, अमृतस्रुता (उपपदतत्पु०) । प्रकर्षेण जल्पिता तस्याम् (प्रादि तत्पु०) । अन्यैः पुष्टा अन्यपुष्टा (तृ० तत्पु०) । विषमबद्धा तन्त्रीः (मध्यमपदतोपितत्पु०) । प्रतिकूलः शब्दः यस्याः सा प्रतिकूलशब्दा (बहु०) ।

व्याकरण - अमृतस्रुत्, तृ० एक०। प्रजल्पितायाम् - प्र +जल्प + क्त + टाप्, स०एक०। ताड्यमाना - ताड् + य + शानच् + टाप् । वितन्त्रीः - यह स्त्रीलिंग शब्द जीवन्त नहीं है अतः 'सु' का लोप नहीं हुआ है। श्रोतुः - श्रोतृ, ष० एक०।

अलंकार - उपमा ।

विशेष - पार्वती की मधुरवाणी के आगे कोयल के स्वर की क्या विसात । उस अमृतवर्षी स्वर को सुन लेने के बाद कोयल की कूक ऐसी लगती जैसे किसी अनाड़ी द्वारा छोड़ी गई विस्वर वाणी ॥ 45 ॥

4.4 सारांश

यह सर्वविदित है कि शिव ने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से काम को जला डाला था । अतएव कामदेव शिव का स्वाभाविक बैरी है । उस बैर-शोधन के लिए ही मानों कामदेव ने शिरीषपुष्पों से भी अधिक कोमल पार्वती के बाहों के पाश में शिव को बांध दिया । इसी प्रकार कवि ने पार्वती के सभी अंगों का वर्णन किया है । पयोधरों से उन्नत पार्वती के कण्ठ की गोल मोतियों की माला अलंकृत करती थी तथा गोल मौक्तिकमाला को उनका स्तनोन्नत कण्ठ सुशोभित

करता था (इस प्रकार) एक दूसरे को विभूषित करने से (उन दोनों का) अलंकार - अलंकार्य भाव समान हो गया । कवि ने पार्वती के मुख के सौन्दर्य को कमल और चन्द्रमा में वर्तमान सौन्दर्य से उत्कृष्ट बतलाकर उनके मुख के अलौकिक सौन्दर्य की व्यञ्जना की है । पार्वती के मुख में कमल के सौरभ आदि गुण तो वर्तमान है ही, साथ ही साथ उसमें चन्द्रमा की आह्लादकता आदि विशेषताएँ भी विद्यमान हैं । अतः इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकते हैं कि पार्वती किशोरावस्था समाप्त होने के बाद युवावस्था में प्रवेश करती हैं । उनके भिन्न शारीरिक अवयवों का विश्लेषण कवि ने विभिन्न उपमाओं का सहारा लेकर मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है जिसमें नखशिख वर्णन उपलब्ध हैं ।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
अंगयष्टेः	मनोहर अंगों का ।
मण्डनम्	अलंकार ।
अनासवाख्यम्	मदिरा से रहित ।
मदस्य	मद का ।
नवयौवनेन	नवीनयौवनसे ।
तूलिकया	कूँची
चारू	मनोहर
वलित्रयम्	त्रिवली का

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1- (1) पार्वती के सौन्दर्य का (2) कमल से (3) राजहंसों की चाल की तरह (4) शिव को (5) वेदी के समान

विकल्पीय - (1) क (2) ख (3) ख (4) ग (5) ख

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी
2. पुस्तक का नाम - संस्कृत साहित्य का इतिहास लेखक का नाम - कपिल दिवेदी
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी

4.8 उपयोगी पुस्तकें

- 1 - पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास

प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्लोक संख्या पैतालीस की व्याख्या करें ।
2. पार्वती का सौन्दर्य वर्णन पर एक निबन्ध लिखिए ।
3. प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए ।

इकाई 5. श्लोक संख्या 46 से 60 तक (मूल अन्वय अर्थ- व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 श्लोक संख्या 16 से 30 तक (मूल अन्वय अर्थ-व्यख्या)

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 उपयोगी पुस्तकें

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य से सम्बन्धित यह खण्ड दो की यह पॉचवीं इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों में आप अन्य वर्णनों का अध्ययन कर चुके हैं। कालिदास ने अपने ग्रन्थ कुमारसम्भवम् में पैतालीस से लेकर साठ तक के श्लोकों में पार्वती और शिव के विवाह की सम्भावना, शिव की तपस्या तथा तपस्वी शिव की पार्वती द्वारा सेवा का वर्णन किया है।

देवर्षि नारद को ब्रह्माजी का आशीर्वाद प्राप्त था। वे अपनी इच्छा से कहीं भी आ जा सकते थे। देवर्षि नारद ने पार्वती को ॐ नमः शिवायः मन्त्र जपने की सलाह दिया था। शिवमहापुराण में यह कथा प्राप्त होती है आदित्यादि।

अतः इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप शिव - पार्वती विवाह आदि तथ्यों का सम्यक् वर्णन प्रस्तुत कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पार्वती के नेत्रों की शोभा के विषय में आप परिचित होंगे।
- पार्वती को ब्रह्मा ने रचा। इसके विषय में बताएंगे।
- देवर्षि नारद ने पार्वती से शिव के विवाह की भविष्यवाणी की थी। इसके विषय में आप परिचित होंगे।
- शिव पार्वती विवाह की सम्भावनाओं को समझा सकेंगे।
- कालिदासकी काव्यकला को बता सकेंगे।
- इस इकाई में किन - किन छन्दों का प्रयोग हुआ है, यह भी बताएंगे।

5.3 श्लोक संख्या 46 से 60 तक (मूल अन्वय अर्थ-व्याख्या)

प्रवात नीलोत्पल - निर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या ।

तया गृहीतं नु मृगांगनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगांगनाभिः ॥ 46 ॥

अन्वय - प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम् अधीरविप्रेक्षितम् आयताक्ष्या तया मृगाङ्गनाभ्यः गृहीतं नु, मृगाङ्गनाभिः ततो गृहीतं नु।

पदार्थ - प्रवातनीलोत्पलनिर्विशेषम् = (प्रवात = अत्यधिक वायु वाला स्थल, नीलोत्पल = कमल, निर्विशेषम् = समान) अत्यधिक वायु वाले स्थल में हिलते हुए कमल के समान। अधीर = चंचल। विप्रेक्षितम् = अवलोकन को। आयताक्ष्या = बड़े-बड़े नेत्रों वाली। तया = उस (पार्वती) के द्वारा। मृगाङ्गनाभ्यः = हिरणियों से। गृहीतं नु = ग्रहण किया गया? मृगाङ्गनाभिः = (अथवा) हिरणियों ने। ततः = उस (पार्वती) से। गृहीतं नु = सीखा क्या?

अनुवाद - तेज वायु वाले स्थल में हिलते हुए नीलकमल के सदृश, चंचल अवलोकन को

विशाल नेत्रों वाली उस (पार्वती) ने हिरणियों से सीखा? अथवा हिरणियों ने पार्वती से सीखा?

समास - प्रवातम् - प्रकृष्टा वाता यत्र तत् प्रवातम् (स० तत्पु०), नीलोत्पलम् - नीलं च तद् उत्पलम् (कर्म०), निर्विशेषम् - विशेषात् निर्गताम् (प्रादितत्पु०), प्रवाते नीलोत्पलम् प्रावतनीलोत्पलम् (स० तत्पु०), विशिष्टं च तत् प्रेक्षितम् विप्रेक्षितम् (कर्म०) । अधीरं च तत् विप्रेक्षितम् अधीर विप्रेक्षितम् (कर्म०) आयते अक्षिणी यस्याः सा, तया आयताक्ष्याः (बहु०) ।

व्याकरण - विप्रेक्षितम् - वि + प्र + ईक्ष् + क्त, प्र० एक० । गृहीतम् - ग्रह् + क्त, प्र० एक०। ततः - तत् + तसिल् - पंचम्यास्तसिल् ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा और सन्देह का संकर ।

विशेष - पार्वती का अवलोकन हिरणियों के चंचल अवलोकन की तरह था अथवा नीली आँखों वाली पार्वती के चंचल अवलोकन सा था - यह कहना कठिन है ।

तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयोर्यां

ता वीक्ष्य लीलाचतुरामनंग स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ॥ 47॥

अन्वय - आयतलेखयोः तस्याः भ्रुवोः शलाकाञ्जननिर्मिता इव या कान्तिः लीलाचतुरां तां वीक्ष्य अनगड स्वचापसौन्दर्यमदं मुमोच ।

पदार्थ - आयतलेखयोः = विस्तीर्ण रेखा वाले । तस्याः = उस (पार्वती) के । भ्रुवोः = भौंहों को । शलाकाञ्जननिर्मिता = तुलिका की स्याही से विरचित । इव = मानो । या = जो । कान्तिः = शोभा । लीलाचतुराम् = विलाससुभग । ताम् = उस (शोभा) को । वीक्ष्य = देखकर । अनंग = काम ने । स्वचापसौन्दर्यमदम् = अपने धनुष के सौन्दर्य के गर्व को । मुमोच = छोड़ दिया ।

अनुवाद - पार्वती की लीलाचतुर दीर्घ भौंहों की सुषमा को, जो तूलिका की स्याही से चित्रित मालूम पड़ती थीं - (जिसे) देखकर कामदेव ने अपने धनुष के सौन्दर्य पर घमण्ड करना छोड़ दिया ॥ 47 ॥

समास - आयता लेखा ययोः ते आयतलेखे, तयोः आयलेखयोः (बहु०) । शलाकायाः अञ्जनम् शलाकाञ्जनम् (ष० तत्पु०), तेन निर्मिता शलाकाञ्जनम् ।

व्याकरण - आयत - आ + यम् + क्त । निर्मिता - निर् + मा + क्त + टाप्, प्र० एक० । वीक्ष्य - वि + ईक्ष् + क्त्वा - ल्यप् । मुमोच - मुच्, लिट्, प्र० एक० ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति ।

विशेष - पार्वती की भौहें धनुष के आकार की थीं । पार्वती की भौहें की विलासमयी शोभा को देखकर कामदेव ने धनुष के सौन्दर्याभिमान को त्याग दिया ।

लज्जा तिरश्चा यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः ।

तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युः बालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः ॥ 48 ॥

अन्वय - तिरश्चा चेतसि लज्जा स्याद् यदि असंशयं पर्वत - राजपुत्र्याः तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य चमर्यः बालप्रियत्वं शिथिलं कुर्युः ।

पदार्थ - तिरश्चा = पशु-पक्षियों के । चेतसि = हृदय में । लज्जा स्याद् यदि = यदि लज्जा (निवास करती) हो । असंशयम् = (तो) निःसन्देह । पर्वतराजपुत्र्याः = शैलराज पुत्री (पार्वती) के।

तम् = उस । केशपाशम् = केशजाल को । प्रसमीक्ष्यं = अच्छी तरह देखकर । चमर्यः = चमरी गायें।

बालप्रियत्वम् = बालप्रियता (केशाभिमान) को । शिथिलं कुर्युः = छोड़ देतीं ।

अनुवाद - (मनुष्यों के समान) पशु-पक्षियों के मन में (भी) यदि लज्जा (की भावना) होती तो निश्चय ही पार्वती के उन सुन्दर केशों को देखकर चमरी गायें अपने केशाभिमान का परित्याग (अवश्य) कर देतीं ।

समास - संशस्य अभावः असंशयम् (अव्ययीभाव) । पर्वतानां राजा पर्वतराजः (ष० तत्पु०), पर्वतराजस्य पुत्री तस्याः पर्वतराजपुत्र्याः (ष० तत्पु०) । केशानां पाशः तम् केशपाशम् (ष० तत्पु०) । बालाः प्रिया यासाम् ताः बालप्रियाः तासां भावः ' बालप्रियत्वम् (बहु०) ।

व्याकरण - तिरश्चाम् - तिर्यञ्च, ष० बहु० । प्रसमीक्ष्य = प्र +सम् + ईक्ष् + क्त्वा (=ल्यम्) । बालप्रियत्वम् - बालप्रिय +त्व, द्वि० एक० ।

अलंकार - काव्यलिङ्ग ।

विशेष - तात्पर्य यह है कि पार्वती के केशजाल की अपने केशों पर अभिमान करने वाली चमरी गायों के केशसमूह से क्या तुलना ? ॥ 48 ॥

सर्वोपमाद्रव्यमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।

सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥49॥

अन्वय - सा विव्श्वसृजा एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षया इव प्रयत्नात् यथाप्रदेशं विनिवेशितेन सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन निर्मिता ।

पदार्थ - सा = वह । विश्वसृजा = ब्रह्मा के द्वारा । एकस्थसौन्दर्यदिदृक्षया = एक ही स्थान पर सौन्दर्य दर्शन की इच्छा से । इव = मानो । प्रयत्नात् = प्रयत्नपूर्वक । यथाप्रदेशं = यथाचित (विभिन्न) अवयवों में । विनिवेशितेन = निहिता सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन = सकल उमानभूत पदार्थों से । निर्मिता = निर्मित की गयी ।

अनुवाद - जगन्निर्माता ब्रह्मा ने मानों एक ही स्थान पर (निखिल) सौन्दर्य को देखने की इच्छा से प्रयत्न करके यथोचित अवयवों में विन्यस्त सकल उपमानभूत पदार्थों से उस (पार्वती) को रचा ।

समास - विश्वं सृजतीति तेन विश्वसृजा (उपपद तत्पु०) । एकस्मिन् तिष्ठतीति एकस्थम् (उपपद तत्पु०), एकस्थं सौन्दर्यम् एकस्थसौन्दर्यम् (कर्म०), एकस्थसौन्दर्यस्य दिदृक्षया (ष० तत्पु०) । प्रकृष्टः यत्नः प्रयत्नः तस्मात् प्रयत्नात् (प्रादि तत्पु०) । प्रदेशम् अनतिक्रम्य यथाप्रदेशम् (अव्ययी०)। विनिवेशितेन् - विशेषेण निवेशितः विनिवेशितेन (सुप्सुपासमास) । उपामाया द्रव्याणि उपमाद्रव्याणि (ष० तेत्पु०) सर्वाणि च तानि उपद्रव्याणि सर्वोपमाद्रव्याणि (कर्म०), सर्वोपमाद्रव्याणां समुच्चयः ' तेन सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण - विश्वसृजा - विश्वसृज + टा, तृ० एक० । एकस्थ - एक + स्था + का दिदृक्षया - दृश् + सन् + टाप, तृ० एक० । विनिवेशितेन - वि + नि + विश् + णि + क्त, तृ० एक० । निर्मिता - निर् + मा + क्त + टाप + प्र० एक० ।

अलंकार - उत्प्रेक्षा ।

विशेष - उपमान भूत पदार्थों के रूप में कवियों द्वारा चन्द्र, किसलय, कमल आदि मुख, अधर, चरण आदि के लिए प्रयुक्त होते हैं। प्रस्तुत श्लोक में महाकवि ने यह भाव व्यंजित किया है कि ब्रह्मा ने समग्र उपमानभूत पदार्थों से पार्वती की मानो इसलिए रचना की, जिससे कि वे एक ही स्थान पर (चराचर में व्याप्त) समस्त सौन्दर्य का अवलोकन कर सके ॥49॥

तां नारदः कामचरः कदाचित् कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे ।

समादिदेशैकवधुं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य ॥50॥

अन्वय - कदाचित् कामचरः नारदः पितुः समीपे कन्यां तां तां प्रेक्ष्य किल प्रेम्णा हरस्य शरीरार्धहराम् एकवधुं भवित्रीं समादिदेश ।

पदार्थ - कदाचित् = एक बार । कामचरः = स्वेच्छा से विचरण करने वाले । नारदः = नारद ने । पितुः = पिता (हिमालय) के । समीपे = पास । कन्यां ताम् = उस कन्या को । प्रेभ्य = देखकर । प्रेम्णा = प्रेम से । हरस्य = शिव की । शरीरार्धहराम् = अर्धांगिनी । एकवधुम् = एक पत्नी । भवित्रीम् = होगी । समादिदेश = (ऐसा) कहा ।

अनुवाद - एक बार स्वेच्छाचारी नारद ने पिता (हिमालय) के समीप (बैठी हुई) उस कन्या (पार्वती) को देखकर कहा कि (यह कन्या) प्रेम से भगवान् शंकर की अर्धांगिनी (तथा) एक पत्नी होगी ॥50॥

समास - कामेन चरतीति कामचरः (उपपद तत्पु०) । अर्धं हरतीति अर्धहरा, (उपपद तत्पु०) शरीरस्य अर्धहरा शरीरार्धहरा ताम् (ष० तत्पु०) । एका चासौ वधुः, ताम् (कर्म०)

व्याकरण - कामचरः - काम + चर् + ट्, प्र० एक० । नारदः = नारं (ज्ञानं) ददातीति नारद - नर + दा + क, नारः - नगरस्य भावः, नारः - नर + अण् । प्रेक्ष्य - प्रे + ईक्ष् + क्तवा (=ल्यप) । अर्धहराम् - अर्ध + ह + अच् + टाप्, ताम् । भवित्रीम् - भू + तृच् + डीप्, द्वि० एक० । समादिदेश - सम् + आ + दिश्, लिट्, प्र० एक० ।

अलंकार - अनुप्रास ।

विशेष - देवर्षि नारद को ब्रह्माजी का आशीर्वाद प्राप्त था । वे अपनी इच्छा से कहीं भी आ जा सकते थे । देवर्षि नारद ने पार्वती को ऊँ नमः शिवायः मन्त्र जपने की सलाह दिया था । शिवमहापुराण में यह कथा प्राप्त होती है ।

गुरुः प्रगल्भेऽपि वयस्यतोऽस्यास्तस्थौ निवृत्तान्यवराभिलाषः ।

ऋषे कृशानोर्न हि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् ॥ 51॥

अन्वय - गुरुः अतः अस्याः प्रगल्भे वयसि अपि निवृत्तान्यवराऽभिलाषः तस्थौ । हि मन्त्रपूतं हव्यं कृशानोः ऋते अपराणि तेजांसि न अर्हन्ति ।

पदार्थ - गुरुः = पिता (हिमालय) अतः = इसलिए । अस्याः इसके । प्रगल्भे वयसि = यौवनावस्था में । अपि = भी । निवृत्तान्यवराभिलाषः = (किसी) अन्य वर की अभिलाषा को छोड़कर । तस्थौ = बैठे रहे । (क्योंकि) कृशानोः = अग्नि के ऋते = बिना । अपराणि = दूसरे । तेजांसि = (सुवर्ण आदि) तेज । मन्त्रपूतम् = मंत्र से पवित्र । हव्यम् = हव्य (को ग्रहण करने में) । नार्हन्ति = असमर्थ हैं ।

अनुवाद - (ऋषि नारद की भविष्यवाणी पर विश्वास करने के कारण) पिता हिमालय ने पार्वती के यौवनावस्था में (कदम रखने पर) भी किसी अन्य वर की (यह सोचकर) अभिलाषी नहीं की कि अग्नि ने अतिरिक्त (सुवर्णादिक) अन्य तेज अभिमन्त्रित हव्य को (ग्रहण करने में कदापि) समर्थ नहीं हैं । ॥51॥

समास - अन्यश्चासौ वरः अन्यवरः (कर्म०) । अन्यवरे अभिलाषः अन्यवराभिलाषः (स० तत्पु०), निवृत्तः अन्यवराभिलाषः यस्य सः निवृत्तान्यवराभिलाषः (बहु०) । मन्त्रेण पूतम् मन्त्रपूतम् (तृ० तत्पु०)

व्याकरण - निवृत्तः - नि + वृत् + क्त । तस्थौ - स्थाः लिट्, प्र० एक० । पूतम् - पू + क्त, द्वि० व० । हव्यम् - हू + यत्, द्वि० एक०व० । कृशानोः - ऋते के योग में पंचमी । अर्हन्ति - अर्ह + लट्, प्र० बहु० ।

अलंकार - अर्थान्तरन्यास ।

विशेष - देवर्षि नारद ने पार्वती से शिव के विवाह की भविष्यवाणी की थी । ऐसी कथा शिवमहापुराण में प्राप्त होती हैं।

अयाचितारं न हि देवदेवमद्रिः सुतां ग्राहयितुं शशाक ।

अभ्यर्थनाभंगभयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽप्यवलम्बतेऽर्थे ॥52॥

अन्वय - अद्रिः अयाचितारं देवदेवं सुतां ग्राहयितुं न शशाक। हि साधुः अभ्यर्थनामगडभयेन इष्टे अपि अर्थे माध्यस्थ्यम् अवलम्बते।

पदार्थ - अद्रि = हिमालय । अयाचितारम् = मांग करने वाले । देवदेवम् = देवों के देव (महादेव) से। सुताम् = कन्या को । ग्राहयितुम् = ग्रहण कराने के लिए (विवाह का प्रस्ताव रखने के लिए) । न शशाक = साहस न कर सके । हि = क्योंकि । साधुः = सज्जन । अभ्यर्थनाभंगभयेन = प्रार्थना के विफल होने के भय से । इष्टे अपि अर्थे = इच्छित वस्तु में भी । माध्यस्थ्यम् = उदासीनता का । अवलम्बते = आश्रय लेता है ।

अनुवाद - प्रार्थना करने वाले महादेव के समक्ष हिमालय अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव नहीं रख सके, क्योंकि सज्जन लोग अपनी प्रार्थना के विफल होने के भय से अभीष्ट वस्तु (को प्राप्त करने) में भी उदासीनता का आश्रय लेते हैं । (अर्थात् प्रार्थना भंग के भय से अपने मनोरथ को प्रकट नहीं करते ॥ 52 ॥

समास - न याचिता अयाचिता, तम् अयाचितारम् (नञ्. तत्पु०.) । देवानां देवः देवदेवःख्, तम् देवदेवम् (ष० तत्पु०) । अभ्यर्थनाभंगभयम्, तेन अभ्यर्थनाभंगभयेनः (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण - अयाचितारम् - न + याच् + तृच्, द्वि० एक०। ग्राहयितुम् - ग्रह् + णिच् + तुमुन् ।

शशाक - शक् + लिट्, प्र० एक० । इष्टे - इष्ट् + क्त, स० एक०व० । माध्यस्थ्यम् - मध्यस्थः ष्य', द्वि० एक० व०। अवलम्बते - अव + लम्ब्, लट्, प्र० एक० ।

अलंकार - अर्थान्तरन्यास ।

विशेष - तात्पर्य यह है कि महान् और सज्जन व्यक्तियों का अयाचना का व्रत बड़ा कठोर होता है हिमालय भी अयाचक शिव के समक्ष पार्वती के विवाह की प्रार्थना कैसे कर सकते हैं ।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर अति संक्षेप में दीजिए -

- 1- इस इकाई में मुख्य रूप से किसका वर्णन किया गया है
- 2- पार्वती के भौहों की तुलना किससे की गई है।
- 3- किसने कहा पार्वति का विवाह शिव के साथ होगा।
- 4- ओं नमः शिवाय का जाप पार्वती को जपने के लिये किसने कहा।
- 5- नारद को किसका आशीर्वाद प्राप्त था

बहुविकल्पीय प्रश्न -

- 1- पार्वति का निर्माण किया -

क- ब्रह्मा	ख-गौरी
ग- शकुन्तला	घ- मैना
- 2- ओं नमः शिवाय का जाप किया-

क- हाथी	ख-पार्वती
ग- मोर	घ- औषधियों
- 3- हिमालय के शिखर पर तपस्या की-

क- गौरी ने	ख- शिव ने
ग- मोर ने	घ- औषधियों ने
- 4- श्लोक संख्या पचपन में वर्णन है-

क- हाथी का	ख- किन्नरियों का
ग- शिव के गणों का	घ- औषधियों का
- 5- श्लोक संख्या साठ में वर्णन है-

क- समर्पियों का	ख - पार्वती ने शिव सेवा का
ग- चमरी गायों का	घ- औषधियों का

यदैव पूर्वे जनने शरीरं सा दक्षरोषात्सुदती ससर्ज ।

तदा प्रभृत्येव विमुक्तसंगः पतिः पशुनामपवरिग्रहोऽभूत् ॥ 53॥

अन्वय - सुदती सा पूर्वे जनने (पूर्व ज्वलने वा) यदा दक्षरोषात् शरीरं ससर्ज तदा प्रभृति एव पशुनां पतिः विमुक्तसंगः सन् अपरिग्रहः अभूत् ।

पदार्थ - सुदती = मनोहर दन्तपङ्क्ति से सुशोभित । सा = उस (पार्वती) ने । पूर्वे जनने = पूर्व जन्म में । यदा = जब । दक्षरोषात् = (पिता) दक्ष के प्रति क्रोध करके । शरीरम् = शरीर को । ससर्ज = छोड़ दिया । तदा प्रभृति एव = तब उस समय से ही । पशूनां पतिः = शिव । विमुक्तसंगः = विषयों के संग का त्याग कर । अपरिग्रहः = विरक्त । अभूत् = हो गये ।।

अनुवाद - मनोहर दन्तपङ्क्ति से सुशोभित पार्वती ने पूर्वजन्म में जब (पिता) दक्ष के प्रति कुपित होकर (अपने) शरीर को (यज्ञाग्नि में) छोड़ दिया तो उस समय से ही शिव विषयों से विमुख

होकर विरक्त हो गये ॥ 53 ॥

समास - शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती (बहु0) । दक्षे रोषः तस्ताम् दक्षरोषात् (स0 तत्पु0) ।

विमुक्तः संगः ये सः विमुक्तसंगः (बहु 0) । अविद्यमानः परिग्रहः यस्य सः अपिग्रहः (बहु0) ।

व्याकरण - सुदती - सु +दन्त + डीप् , प्र0 एक0 । ससर्ज - सृज् + लिट्, प्र0 पु0 एक0 ।

अभूत् - भू लुङ्, प्र0 पु0 एक0 ।

अलंकार - काव्यलिंग ।

विशेष - यहाँ पर सती के प्राण त्यागने व शिव के तपस्या में निरत रहने के पौराणिक कथा की ओर संकेत किया गया है । इसमें सती के सतीत्व के साथ शिव के उनके प्रति निष्ठा भी सूचित है

स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गंगाप्रवाहोक्षितदेदारू ।

प्रस्थं हिमोद्रेर्मृगनाभिगन्धि किंचित्क्वणत्किन्नमध्युवास ॥ 54 ॥

अन्वय - कृत्तिवासाः यताम्मा सः तपसे गंगाप्रवाहोक्षितदेदारू मृगनाभिगन्धि क्वणत्किन्नरं किंचित् हिमाद्रेः प्रस्थम् अध्युवास ।

पदार्थ - कृत्तिवासाः = चर्मवस्त्रधारी । यतात्मा = इन्द्रियों को वश में रखने वाले । सः = वह (शिव)। तपसे = तपस्या करने के लिए । गंगाप्रवाहोक्षितदेदारू = गंगा के जल प्रवाह से सिंचित देवदारू वृक्षों से युक्त । मृगनाभिगन्धि = कस्तूरी से सुगन्धित । क्वणत्किन्नरं = किन्नरों के गान से युक्त । किंचित् = किसी । हिमाद्रेः = हिमालय के । प्रस्थम् = शिखर पर । अध्युवास = निवास करने लगे ।

अनुवाद - मृग का चर्म धारण करने वाले, समाहितचित्तवाले वह (महादेव, सती के द्वारा देह परित्याग करने के अनन्तर) तपस्या करने के लिए, गंगा के जलप्रवाह से सिंचित, देवदारू वृक्षों से युक्त, कस्तूरी की गन्ध से सुवासित, किन्नरों के गान से गुंजित हिमालय के किसी शिखर पर निवास करने लगे ॥54॥

समास - कृत्तिः वासः यस्य सः कृत्तिवासाः (बहु0) । यतः आत्मा यस्य सः यतात्मा (बहु0)। गंगायाः प्रवाहः गंगाप्रवाहः (ष0 तत्पु0), गंगा प्रवाहेण उक्षिताः गंगाप्रवाहोक्षिताः (तृ0 तत्पु0) । गंगाप्रवाहेण उक्षिताः देवदारवः यस्तिमन् तत् गंगाप्रवाहोक्षितदेवदारू (बहु0) । हिमस्य अद्रेः यस्य हिमाद्रेः (ष0 तत्पु0) ।

व्याकरण - कृत्तिवासाः - कृत्ति + वासस्, प्र0 एक0 । मृगनाभिगन्धि - मृगनाभिगन्धिः + इनि, नपुं0 , प्र0 एक0। अध्युवासा - अधि + वस् + लिट्, प्र0पु0 एक0 अधि के योग में द्वितीया होती है, अतः 'प्रस्थम्' में द्वि0 का प्रयोग हुआ है ।

अलंकार - परिंकर अलंकार ।

विशेष - सती के प्राण त्यागने पर विरक्त शिव के हिमालय में तप करने का वर्णन इसमें किया गया है।

गणानमेरूप्रसवावतंसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः ।

मनः शिलाविच्छुरिता निषेदुः शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु ॥ 55॥

अन्वयः - गणाः नमेरूप्रसवावतंसाः स्पर्शवतीः भूर्जत्वचः दधानाः मनः शिला-विच्छुरिताः

शैलेयनद्धेषु शिलातलेषु निषेदुः ।

पदार्थ - गणाः = (शिव के प्रथम आदि) गण । नमेरूप्रसवावतंसाः = नमेरू (वृक्ष) के फूलों को कानों में पहने हुए । स्पर्शवतीः = मुलायम । भूर्जत्वचः = भोजपत्रों को । दधानाः (वस्त्ररूप में) धारण किये हुए । मनः शिला-विच्छुरिताः = (मनःशिला = मैनसिल = एक द्रव्य विशेष) मैनसिल से अनुलिप्त । शैलेयनद्धेषु = शिलाजीत से व्याप्त । शिलातलेषु = (पत्थर की) शिलाओं पर। निषेदुः = बैठ गये ।

अनुवाद - (तपस्या के लिए हिमालय के शिखर पर शिके आसीन हो जाने पर उनके) गण नमेरू वृक्ष के फूलों को कानों में पहनकर, मुलायम भोजपत्रों को (वस्त्ररूप में) धारण करके तथा शरीर पर मैनसिल का लेप करके शिलाजीत से पुती हुई चट्टानों पर बैठ रहते थे ॥55॥

समास - नमेरूणां प्रसवाः (ष० तत्पु०) । नमेरूप्रसवा अवतंसाश्च वेषाम् ते नमेरूप्रसवावतंसाः (बहु०)। भूर्जानां त्वचः भूर्जत्वचः (ष० तत्पु०) । मनश्शिला-लाभिः (विच्छुतर मनःशिलाविच्छुरिताः (तृ० त्पु०) । शैलेयेन नद्धानि तेषु शैलेयनद्धेषु (तृ० तत्पु०) । शिलानां तलम् शिलातलम् तेषु (ष० तत्पु०)। शिलातलेषु ।

व्याकरण - स्पर्शवतीः - स्पर्श + मतुप्, डीप्, द्वि० बहु०। दधानाः - धा + शानच्, प्र० बहु०। विच्छुरिताः - वि + छुर् + क्त। (प्र० ब० व०)। नद्धेषु - नह् + क्त, स० बहु०। निषेदुः - नि + सद् + लिट्, प्र० पु० बहु० ।

अलंकार - स्वाभावोक्ति ।

विशेष - यहाँ तात्पर्य यह है कि जब शिव हिमालय के शिखर पर तपस्या करने लगे, तब उनके गण भी निकट की पत्थरों की चट्टानों पर बैठे रहते थे।

तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलः कुकुद्धान् ।

दृष्टः कथंचिद्गवयैर्विविग्नैरसोढसिंहध्वनिरुन्नाद ॥ 56॥

अन्वय - तुषारसंघातशिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलः विविग्नैः गवयैः कथंचित् दृष्टः कुकुद्धान् असोढसिंहध्वनिः (सन्) उन्नाद ।

पदार्थ - तुषारसंघातशिलाः = घनीभूतहिमशिलाओं को । खुराग्रैः = खुर के अग्रभाग से । समुल्लिखन् = तोड़ता हुआ। दर्पकलः = मद से (मत्त होकर) रँभाने वाला । विविग्नैः = भयभीत । गवयैः = गो सदृश पशुओं से। कथंचित् = किसी प्रकार । दृष्टः = देखा गया । कुकुद्धान् = बैल । असोढसिंहध्वनिः = सिंहनाद को सहन न करता हुआ (नन्दी)। उन्नाद = गरजता (रहता) था।

अनुवाद - घनीभूत हिमशिलाओं को अपने खुर के अग्रभाग से तोड़ता हुआ, मद से मतवाला होकर रम्भाने वाला (वह), भयभीत गो सदृश पशुओं से किसी प्रकार देखा गया (शिव का) बैल (नन्दी) सिंहनाद को सहन न करता हुआ गरजता रहता था ॥ 56 ॥

समास - तुषाराणां सङ्घाताः तुषारसङ्घाताः (ष० तत्पु०) । तुषारसङ्घाता एव शिलाः ताः तुषारसुच्छातशिलाः (कर्म०) । खुराणाम् अग्राणि खुराग्राणि तैः खुराग्रैः (ष० तत्पु०) । दर्पेण कलः दर्पकलः (तृ० तत्पु०) । सिंहाना ध्वनिः सिंहध्वनिः (ष० तत्पु०) । असोढा सिंहध्वनिर्येन सः ओढसिंहध्वनिः (बहु०) । सिंहध्वनिः (ष० तत्पु०) ।

व्याकरण - समुल्लिखन् - सम् + उद् + लिख् + शृत, प्र० एक०। दृष्ट - दृश् + क्त, प्र० एक०।
 ककुद्धान् - कुकुद् + मतुप्, प्र० एक०। उन्ननाद् - उद् + नद् + लिट्, प्र० एक०।
अलंकार - स्वभावोक्ति ।

विशेष - यहाँ कहने का भाव यह है कि जैसे महान लोग दूसरों की उन्नति को सहन नहीं कर सकते हैं, तो महाबलिष्ठ नन्दी सिंह की गर्जना को कैसे सहन कर सकता है ।

तत्राऽग्निमाधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्टमूर्तिं।

स्वयं विधाता तपसः फलानां केनाऽपि कामेन तपश्चचार ॥ 57 ॥

अन्वय - तपसः फलानां स्वयं विधाता अष्टमूर्तिः तत्र स्वम् एव मूर्त्यन्तरं समित्समिद्धम् अग्निम् आधाय केन अपि कामेन तपः चचार ।

पदार्थ - तपसः = तपस्या के । फलानाम् = फलों के । स्वयं विधाता = स्वयं प्रदाता । अष्टमूर्तिः = आठ रूपों वाले शिव । स्वमेव = अपनी ही । मूर्त्यन्तरम् = (एक) विशेष मूर्ति । समित्समिद्धम् = समिधा से उद्दीप्त । अग्निम् = अग्नि को । आधाय = अस्थापित करके । केनापि कामेन = न जाने किस फल की कामना से । तपः चचार = तप करने लगे ।

अनुवाद - तपस्या के फल को स्वयं प्रदान करने वाले, अष्टमूर्ति (भगवान्) शिव समिधा से उद्दीप्त अपने ही (एक) अन्य रूप अग्नि को प्रतिष्ठापित करके किसी अज्ञात प्रयोजन (की शुद्धि) के लिए वे तप करने लगे ॥ 57 ॥

समास - अष्टौ मूर्तयो यस्य सः अष्टमूर्ति (बहु०)। अन्याः मूर्तिः तत् मूर्त्यन्तरम् (मयुरव्यंसकादि समास)। समिद्धिः समिद्धः तम् समित्समिद्धम् (तृ० तत्पु०) ।

व्याकरण - विधाता - वि + धा + तृच्, प्र० एक० । सिद्धम् - सम् + इन्ध् + क्त, द्वि० एक० ।
 आधाय - आ + धा + क्त्वा (ल्यप्) । चचार - चर् + लिट् प्र० एक० ।

अलंकार - अनुप्रास ।

विशेष - तात्पर्य यह है कि शिव तो स्वयं प्रकाम पूर्ण ईश्वर हैं। उनके लिए तपस्या का क्या अर्थ हो सकता है । साथ ही वे अवस्था विभक्त होकर सम्पूर्ण चराचर में व्याप्त हैं। फिर भी न जाने किस अज्ञात प्रयोजन की सिद्धि के लिए वे अग्नि का आधान करके तप में लीन हो गये ॥57॥

अनर्ध्यमध्यैण तमद्रिनाथः स्वर्गोकसामर्चितमर्चयित्वा ।

आराधनायाऽस्य सखीसमेतां समादिदेश प्रयतां तनूजाम् ॥58॥

अन्वयः - अद्रिनाथः अनर्ध्यं स्वर्गो कसाम् अर्चितं तम् अर्ध्यैण अर्चयित्वा अस्य आराधनाय सखीसमेतां प्रयतां तनूजां समादिदेश ।

पदार्थ - अद्रिनाथः = पर्वतराज (हिमालय) अनर्ध्यम् = अतिदुर्लभ । स्वर्गोकसाम् = देवताओं के । अर्चितम् = पूजनीय । तम् = उनकी (शिव की) । अर्ध्यैण = अर्ध्य जल से । अर्चयित्वा = पूजा करके । अस्य = इनकी । आराधनाय = आराधना के लिए । सखीसमेतां- सखियों समेत प्रयतां- निष्ठा युक्त । तनूजां समादिदेश - पुत्री को आदेश दिया ।

अनुवाद - पर्वतराज (हिमालय) ने अतिदुर्लभ, देवताओं के पूजनीय उन (शिव) की अर्ध्यजल से अर्चना करके, उनकी आराधना करने के लिए सखियों सहित, निष्ठा युक्त (अपनी) पुत्री (पार्वती)

को आदेश दिया ॥ 58॥

समास - अद्रीणां नाथः अद्रिनाथः (ष0 तत्पु0) । न अर्ध्यः अनर्ध्यः तम् अनर्ध्यम् (नञ् तत्पु0) । स्वर्गः लोकः येषाम् ते स्वर्गोकसः तेषाम् स्वर्गोकसाम् (बहु0) । सखीभ्यां समेता ताम् सखीसमेताम् (तृ0 तत्पु0) ।

व्याकरण - अनर्ध्यम् - अर्ध + य - अर्ध्य, न अर्ध्यम् - अनर्ध्यम् , द्वि0 एक0 । अर्चितम् - अर्च् + क्त, द्वि 0 एक0 । प्रयताम् - प्र + यम् + क्त + टाप्, द्वि0 एक0 । समादिदेश - सम् + आ + दिश्, लिट्, प्र 0 पु0 एक0 ।

अलंकार – अनुप्रास ।

विशेष - कहने का भाव यह है कि जब भगवान शिव हिमालय पर तपस्या करने गये तब हिमालय राज ने उनके स्वागत के लिए अपनी पुत्री को आदेश दिया ।

प्रत्यर्थिभूतामपि तां समाधेः शुश्रूषमाणां गिरिशोऽनुमेना

विकारहेतौ सति विक्रयन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥ 59॥

अन्वय - गिरिशः समाधेः प्रत्यर्थिभूताम् अति शुश्रूषमाणां ताम् अनुमेन, विकारहेतौ सति येषां चेतांसि न विक्रयन्ते ते एव धीराः (सन्ति) ।

पदार्थ - गिरिशः = शिव ने । समाधेः = समाधि की । प्रत्यर्थिभूताम् = विघ्नस्वरूप (होती हुई) । अपि = भी । शुश्रूषाम् = सेवा में संलग्न रहने वाली। ताम् = उस (पार्वती) को । अनुमेन = स्वीकार कर लिया । विकारहेतौ = चित्त के खलन का कारण। सति = होने पर भी । येषाम् = जिनके । चेतांसि = मन । न विक्रयन्ते = विकार युक्त नहीं हो पाते । त एव = वे ही । धीराः = धीरपुरुष (महापुरुष) । (सन्ति = होते हैं) ।

अनुवाद - समाधि के लिए (एक) विघ्न का कारण होती हुई भी सेवा में तत्पर उस (पार्वती) को शिव ने (शुश्रूषा करने से) नहीं रोका । विकार का कारण (साथ में) होने पर भी जिनके चित्त विकार रहित होते हैं (वास्तव में) वे ही (तो) महापुरुष होते हैं ॥ 59 ॥

समास - प्रत्यर्थिनी भूता ताम् प्रत्यर्थिभूताम् (सुप्सुपासमासः) । विकारस्य हेतुः विकारहेतुः, तस्मिन्, विकारहेतौ (ष0 तत्पु0) । गिरौ शेते गिरिशः (अलुक् समास) ।

व्याकरण - प्रत्यर्थिभूताम् - प्रति + अर्थ + इनि - प्रत्यर्थिन + डीप् - प्रत्यर्थिनी + भू + क्त + टाप्, ताम्, द्वि0 एक0 । शुश्रूषाम् - श्रु + सन् + शानच् + टाप्, द्वि0 एक0 । अनुमेने - अनु + मन् + लिट्, प्र0 एक0 । (आत्मनेपद) । विक्रयन्ते - वि + कृ + य्, लट्, प्र0 बहु0 (भावे प्रत्ययः)।

विशेष - यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि महापुरुषों के लिए कोई भी कार्य करना असम्भव नहीं होता व महायोगियों की एकाग्रता में कोई भी वस्तु व्यधान नहीं होती है । इसलिए पार्वती भी भगवान शिव की तपस्या व एकाग्रता में बाधक नहीं हो सकतीं ।

अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा

नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री ।

गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी

नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः ॥ 60॥

अन्वय - सुकेशी सा अवचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा नियमविधिजलानां बर्हिषां च उपनेत्री (सती) तच्छिरश्चन्द्रपादैः नियमितपरिखेदा (सतो) प्रत्यहं गिरिशम् उपचचार ।

पदार्थ - सुकेशी = सुन्दर केशों वाली। सा = वह (पार्वती) । अवचितबलिपुष्पा = (बलि = पूजा) पूजा के लिए फूल चुनकर । वेदि = सम्मार्गदक्षता = वेदी के सम्पार्जन (सफाई) में कुशल । नियमविधिजलानाम् = नित्यानुष्ठान के लिए जलों का । बर्हिषाम् = कुशों का । उपनेत्री = चयन करने वाली । तच्छिरश्चन्द्रपादैः = उनके सिर पर स्थित चन्द्रमा की किरणों से । नियमितपरिखेदा = (अपनी) थकान को दूर कर । प्रत्यहम् = प्रतिदिन। गिरिशम् = शिव को । उपचचार = सेवा करने लगी ।

अनुवाद - सुन्दर केशों वाली पार्वती पूजा के लिए फूल चुनकर, वेदी के सम्पार्जन में दक्ष, नित्यानुष्ठान के लिए जलों तथा कुशों का चयन करने वाली भगवान शंकर के सिर पर स्थित चन्द्रकिरणों से (अपनी) थकान मिटाकर प्रतिदिन उनकी सेवा करने लगी ॥60 ॥

समास - बलेः पुष्पाणि बलिपुष्पाणि (ष० तत्पु०)।, अवचितानि बलि-पुष्पाणि यया सा अवचितबलिपुष्पा (बहु०)। वेदेः सम्मागः वेदिसम्मार्गः (ष० तत्पु०) तस्मिन् दशा वेदिसम्मार्गदक्षा (स० तत्पु०)। नियमस्य विधिः नियमविधिः (ष० तत्पु०), नियमविधेः जलानि तेषाम् नियमविधिजलानाम् (ष० तत्पु०) तच्छिरसि चन्द्रपादाः तैः तच्छिरश्चन्द्रपादैः (स० तत्पु०)। नियमितः पारिखेदः यस्याः सा नियमित परिखेदा (बहु०)। अहनि अहनि प्रत्यहम् (अव्ययी०)।

व्याकरण - सुकेशी - सु + केश + डीप्, प्र० एक० । उपनेत्री - उप + नी + तृच् + डीप् । प्रत्यहम् - अहनि अहनि, विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव । उपचचार- उप + चर्, लिट्, प्र० पु० एक० ।

अलंकार – परिकर ।

विशेष - यहाँ का तात्पर्य यह है कि सुन्दर सुशील, संस्कारवती पार्वती विभिन्न प्रकार से भगवान शिव के सेवा में निरत हो गयीं ।

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि जब भगवान शिव हिमालय पर तपस्या करने गये तब हिमालय राज ने उनके स्वागत के लिए अपनी पुत्री को आदेश दिया । सुन्दर केशों वाली पार्वती पूजा के लिए फूल चुनकर, वेदी के सम्पार्जन में दक्ष, नित्यानुष्ठान के लिए जलों तथा कुशों का चयन करने वाली भगवान शंकर के सिर पर स्थित चन्द्रकिरणों से (अपनी) थकान मिटाकर प्रतिदिन उनकी सेवा करने लगीं । देवर्षि नारद ने पार्वती से शिव के विवाह की भविष्यवाणी की थी । ऐसी कथा शिवमहापुराण में प्राप्त होती है । समाधि के लिए (एक) विघ्न का कारण होती

हुई भी सेवा में तत्पर उस (पार्वती) को शिव ने (शुश्रुषा करने से) नहीं रोका । विकार का कारण (साथ में) होने पर भी जिनके चित्त विकार रहित होते हैं (वास्तव में) वे ही (तो) महापुरुष होते हैं महापुरुषों के लिए कोई भी कार्य करना असम्भव नहीं होता व महायोगियों की एकाग्रता में कोई भी वस्तु व्यधान नहीं होती है । इसलिए पार्वती भी भगवान शिव की तपस्या व एकाग्रता में बाधक नहीं हो सकतीं । देवर्षि नारद को ब्रह्माजी का आशीर्वाद प्राप्त था । वे अपनी इच्छा से कहीं भी आ जा सकते थे । देवर्षि नारद ने पार्वती को ॐ नमः शिवायः मन्त्र जपने की सलाह दिया था । शिवमहापुराण में यह कथा प्राप्त होती है । इस इकाईके अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके हैं कि किस प्रकार ब्रह्मा सभी उपमानभूत द्रव्यों को एक स्थान पर देखने की इच्छा से पार्वतीके अंगों का निर्माण किया तथा नारद पार्वती के पिता से उसके विवाह से सम्बन्धित तथ्य बताते हैं तथा हिमालय भी तपस्या में लीन भगवान शिव की सेवा में सखियों के साथ पार्वती को लगाकर शिव की सेवा कराये हैं ।

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
अधीर	चंचल
विप्रेक्षितम्	अवलोकन को
आयताक्ष्या	बड़े - बड़े नेत्रों वाली
तया	उस (पार्वती) के द्वारा
मृगांगनाभ्यः	हिरणियों से
गृहीतं नु	ग्रहण किया गया
मृगांगनाभिः	(अथवा) हिरणियों ने
ततः	उस (पार्वती) से ।
आयतलेखयोः	विस्तीर्ण रेखा वाले
विलास सुभग	वीक्ष्य देखकर
अनंग	काम ने ।
स्वचापसौन्दर्यमदम्	अपने धनुष के सौन्दर्य के गर्व को ।
मुमोच	छोड़ दिया ।
चेतासि	हृदय में ।
लज्जा स्याद् यदि	यदि लज्जा (निवास करती) हो ।
बालप्रियत्वम्	बालप्रियता (केशाभिमान) को ।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 - (1) पार्वती के विवाह का (2) धनुष से (3) नारद ने (4) नारद ने कहा

(5) ब्रह्मा का

अभ्यास प्रश्न 2 – (1) क (2) ख (3) ख (4) ग (5) ख

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी
2. पुस्तक का नाम - संस्कृत साहित्य का इतिहास , लेखक का नाम - कपिल दिवेदी
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी

5.8 उपयोगी पुस्तकें

- 1 - पुस्तक का नाम - कुमारसम्भव व महाकाव्य , लेखक का नाम - कालिदास
प्रकाशक का नाम - चौखम्भा सुरभारती चौक बुना नाला वाराणसी

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1- श्लोक संख्या 48 से 50 तक की सन्दर्भ सहित व्याख्या करें ।
2. इस इकाई का महत्व अपने शब्दों में लिखिए ।
3. प्रस्तुत इकाई के किन्हीं तीन श्लोकों की व्याख्या कीजिए ।

खण्ड . 3
कादम्बरी (शुकनासोपदेश मात्र)

इकाई 1. गद्य काव्य परम्परा, बाण की कादम्बरी का विहंगावलोकन, शुकनासोपदेश का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 गद्य काव्य परम्परा, बाण की कादम्बरी का विहंगावलोकन, शुकनासोपदेश का परिचय

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह पहली इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों में आपने कुमारसम्भव नामक महाकाव्य का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप गद्यकाव्य परम्परा व महाकवि बाण के बारे में जानेंगे।

वैदिक साहित्य में गद्य साहित्य का रूप उनमें वर्णित आख्यानों में दिखाई पड़ता है। इन आख्यानों में गद्य के साथ पद्य का भी भाग मिलता है जिसे “गाथा” कहते हैं। ऋग्वेद में ‘नाराशंसी’ गाथाओं का उल्लेख है। वैदिक गद्य में छोटे-छोटे सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग है। इसी क्रम में बाणभट्ट की कादम्बरी एवं उसके अंशमात्र शुकनासोपदेश का परिचय आपके अध्ययन के लिए इस इकाई में प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव किस प्रकार हुआ। इसमें मनुष्यके जीवन की प्रेरणादायीं बातों का उल्लेख हुआ है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- बाणभट्ट के व्यक्तित्व के विषय में बता सकेंगे।
- बाणभट्ट की कृतियों के विषय उल्लेख करेंगे।
- बाणभट्ट के समय से सम्बद्ध तथ्यों का परीक्षण करेंगे।
- संस्कृत गद्य परम्परा को बताएंगे।
- कादम्बरी की कथा व उसके अंश शुकनासोपदेश का परिचय बतायेंगे।

1.3 गद्य काव्य परम्परा, कादम्बरी का विहंगावलोकन, शुकनासोपदेश का परिचय

संस्कृत के श्रेष्ठ गद्यकवि - बाण

सुबन्धु की अलंकृत गद्यशैली के श्रेष्ठ कलाकार हैं बाणभट्ट। वस्तुतः बाण की शैली सुबन्धु की अलंकृत शैली की प्रौढ़ता के साथ दण्डी के पदलालित्य का भी समावेश करती है।

जीवन एवं समय

बाण ने अपनी रचनाओं में अपने विषय में पर्याप्त सूचनायें दी हैं। हर्षचरित के आरम्भ के उच्छ्वासों में उन्होंने अपने पूर्वजों तथा स्वयं अपना परिचय कथा के माध्यम से दिया है। इसी प्रकार उन्होंने कादम्बरी के आरम्भ के पद्यों में अपने वंश का वर्णन किया है। बाण के पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था। शैशवावस्था में ही बाण की माता का निधन हो गया और चौदह वर्ष की अवस्था में वे पितृविहीन हो गये। युवावस्था में बाण किसी अनुशासन

के बन्धन से मुक्त होकर इधर-उधर घूमने लगे। वे अनेक राजाओं के यहाँ भी गये और अनेक विद्वानों की संगति प्राप्त कर शास्त्रीय चर्चाएँ भी करते रहे। विविध प्रकार के कार्यों एवं जीवनवृत्तियों वाले अनेक लोग उनके मित्र थे। इन मित्रों की लम्बी सूची बाण ने अपनी हर्षचरित में दी है। इस देशाटन से उन्हें समाज के विभिन्न वर्गों का पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त हुआ। बाण सम्राट हर्षवर्धन के समकालीन थे। अतः उनका समय पर्याप्त निश्चित है। हर्षवर्धन ने 606 ई० से 648 ई० तक शासन किया था। इस प्रकार बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। अनेक बाह्य एवं आन्तरिक साहित्यिक प्रमाणों से भी बाण का यही समय सिद्ध होता है।

रचनायें

महाकवि बाण की तीन रचनायें मानी जाती हैं। मुकुटताडितक नाम का नाटक, हर्षचरित नाम की आख्यायिका तथा कादम्बरी नाम की कथा। इस नाटक का उल्लेख सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रणेता भोज ने किया है और नलचम्पू के टीकाकार चंद्रपाल और गुणविजयगणि ने इसे बाण की रचना के रूप में निर्दिष्ट किया है। यह महाभारत के कथानक के ऊपर आधारित रचना थी, जिसमें अन्त में भीम दुर्योधन के मुकुट को तोड़ा डालते हैं। यह नाटक उपलब्ध नहीं है और यह सम्भावना की जा सकती है कि बाण की इस प्रकार की एकाध और रचनायें थीं, जो अनुपलब्ध हैं। चण्डीशतक नाम की एक ऐसी रचना बाण के नाम से उल्लिखित है।

हर्षचरितम्

बाण की गद्य रचना हर्षचरितम् एक आख्यायिका है। सम्भवतः हर्षचरित ही आख्यायिका के वर्ग में सबसे प्राचीन रचना है। इसका विभाजन आठ उच्छवासों में है। प्रथम उच्छवास के आरम्भ में 21 श्लोकों में कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों और उनकी कृतियों का प्रशंसापूर्वक स्मरण किया है, यथा व्यास, वासवदत्ता, भट्टार हरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा। हर्षचरित के आरम्भिक तीन उच्छवासों में बाण ने अपनी आत्मकथा ही मनोमन शैली में प्रस्तुत की है। उनका राजा हर्षवर्धन से किस प्रकार सम्पर्क हुआ, इसका भी विवरण यहाँ प्राप्त होता है। तृतीय उच्छवास में बाण अपने गाँव लौटकर आने तथा अपने चचेरे भाइयों के आग्रह पर हर्ष के चरित का वर्णन करने का उल्लेख करते हैं। हर्षचरित में वर्णित घटनायें संक्षेप में इस प्रकार हैं - चतुर्थ उच्छवास - राजा प्रभाकरवर्धन और रानी यशोमती का वर्णन क्रमशः उनके पुत्रों राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा पुत्री राज्यश्री का जन्म होता है। राज्यश्री का मौखरिवंश के राजा ग्रहवर्मा के साथ विवाह होता है। पंचम उच्छवास - राज्यवर्धन अपने भ्राता हर्ष तथा सेना के साथ हूणों को जीतने के लिए प्रस्थान करता है, किन्तु पिता की बीमारी का समाचार सुनकर हर्ष वापस लौट आते हैं। यशोमती प्रभाकरवर्धन की मृत्यु होने के पूर्व सती हो जाती है। षष्ठ उच्छवास - राज्यवर्धन वापस लौटता है, पिता द्वारा हर्ष को राज्य का भार सौंप दिया जाता है, ग्रहवर्मा की मृत्यु हो जाती है और मालव नरेश राज्यश्री को बन्दी बना लेता है। राज्यवर्धन सेना सहित मालव नरेश पर आक्रमण के लिए प्रस्थान करता है और उस पर विजय

प्राप्त करता है। गौड देश के राजा शशांक के साथ युद्ध में राज्यवर्धन की मृत्यु हो जाती है। सप्तम उच्छवास - हर्ष दिग्विजय यात्रा के लिए निकलता है और मालवराज पर विजय प्राप्त करता है। अष्टम उच्छवास - एक शबर द्वारा हर्ष को राज्यश्री के सती होने की तैयारी करने की सूचना दी जाती है। हर्ष राज्यश्री के पास पहुँचता है, बौद्ध भिक्षु दिवाकरमित्र द्वारा राज्यश्री को समझाया जाता है। हर्ष भी दिग्विजय के बाद गेरुआ वस्त्र धारण करने का निश्चय करता है।

कादम्बरी

बाणभट्ट की प्रख्यात गद्य रचना कादम्बरी एक कथा है। कथानक कवि-कल्पित हैं और इसमें चन्द्रापीड एवं पुण्डरीक के तीन जन्मों का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। कादम्बरी दो भागों में है - पूर्वभाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग सम्पूर्ण ग्रन्थ का दो तिहाई भाग है और इसे ही बाण की कृति माना गया है। उत्तर भाग की रचना बाण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र भूषणभट्ट ने की है। कादम्बरी की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है। विदिशा नगरी के राजा थे शूद्रक, जो अत्यन्त प्रतापी और कलाविद् थे। एक दिन प्रातः वे अपनी राजसभा में बैठे थे, तभी प्रतीहारी ने आदेश प्राप्त कर एक चाण्डाल कन्या को सभा में प्रवेश कराया। चाण्डाल कन्या के हाथ में सोने का पिंजरा था, जिसमें वैशम्पायन नाम का शुक था। शुक ने अपना दाहिना चरण उठाकर श्लोक द्वारा राजा का अभिवादन किया। शुक द्वारा राजा शूद्रक के समक्ष कथा का आरम्भ - इस शुक के विषय में राजा को महान कौतूहल हुआ और चाण्डाल कन्या तथा शुक के भोजन एवं विश्राम कर लेने पर राजा ने उस शुक से अपने विषय में बताने को कहा। शुक ने अपनी कथा सुनाई और बताया कि वह विन्ध्याटवी में अपने वृद्ध पिता के साथ रहता था। एक बहेलिये ने अन्य शुकों के साथ उसके पिता का वध कर दिया और नीचे फेंक दिया। पिता के पंखों के भीतर छिपकर वह भी नीचे गिरा, किन्तु बच गया। अपने प्राण बचाने के लिए वह झाड़ियों में छिप गया और बहेलिये के चले जाने के बाद उस मार्ग से जाने वाले ऋषिकुमार हारीत उसे दयावश अपने साथ लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम आये। जाबालि ने अपने शिष्यों को शुक के पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई।

जाबालि द्वारा आश्रम के शिष्यों के समक्ष शुक के पूर्व जन्म तथा चन्द्रापीड की कथा सुनाना - उज्जयिनी में तारापीड नाम के राजा थे। उनकी महारानी का नाम विलासवती था। राजा के महामन्त्री का नाम शुकनास और महामन्त्री की पत्नी का नाम मनोरमा था। बहुत दिनों की पूजा अर्चना के बाद राजा तारापीड को पुत्र की प्राप्ति हुई और उसी दिन शुकनास के यहाँ भी एक पुत्र ने जन्म लिया। राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड तथा शुकनास के पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा गया। दोनों ने साथ-साथ गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की। चन्द्रापीड के गुरुकुल से लौटने पर पिता तारापीड ने उसका यौवराज्याभिषेक किया। इस अवसर के पूर्व चन्द्रापीड मन्त्री शुकनास से मिलने गया और शुकनास ने एक सारगर्भित उपदेश दिया, जो शुकनासोपदेश नाम से प्रसिद्ध है। अभिषेक के बाद चन्द्रापीड दिग्विजय यात्रा पर निकला। अनेक राजाओं को परास्त कर वह हिमालय के निकट विश्राम करने के लिए रुका। एक दिन शिकार खेलने के लिए निकलने पर उसने किन्नर-मिथुन को देखा और उत्सुकतावश उनका पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गया।

किन्नर-मिथुन अदृश्य हो गये, तब जल की खोज में वह अच्छोद सरोवर के पास पहुँचा। वहाँ जल पीकर अपने अश्व को बाँधकर विश्राम करने लगा, तब ही उसे वीणा की ध्वनि सुनायी पड़ी, जिसकी खोज करते हुए उसने सरोवर के तट पर स्थित शिव के मन्दिर में वीणा बजाकर स्तुति करती हुई एक युवती को देखा। उसे देखकर वह चकित हुआ। युवती उसे अपने आश्रम में ले गयी और उसने फल आदि से चन्द्रापीड का सत्कार किया। चन्द्रापीड के आदरपूर्वक प्रश्न करने पर उस युवती ने, जिसका नाम महाश्वेता था, अपनी कथा इस प्रकार सुनाई।

महाश्वेता द्वारा अपनी कथा सुनाना

महाश्वेता ने बताया कि वह गन्धर्वराज हंस तथा गौरी नाम की अप्सरा की पुत्री है। एक दिन वह अपने माता के साथ सरोवर पर आयी तो उसे पुष्प की अद्भुत गन्ध मिली तब उसने एक ऋषिकुमार को देखा, जिनके कान के ऊपर अद्भुत गन्ध वाला पुष्प था। साक्षात्कार होते ही दोनों एक दूसरे की ओर प्रेम से आकृष्ट हो गये। ऋषिकुमार का नाम पुण्डरीक था। उनके साथ उनका मित्र कपि जल था। महाश्वेता पुण्डरीक से पुष्प लेकर अपने भवन चली आयी, किन्तु पुण्डरीक उसके विरह में अतिशय सन्तप्त हो उठे। कपि जल ने महाश्वेता से मिलकर आग्रह किया कि अविलम्ब पुण्डरीक से मिलकर उसके प्राणों को बचा लीजिए। रात्रि को जब उपयुक्त समय देखकर महाश्वेता सरोवर के पास पहुँची तब तक पुण्डरीक के जीवन का अन्त हो चुका था। महाश्वेता पुण्डरीक के शरीर से लिपट कर विलाप करने लगी। उसी समय चन्द्रमण्डल से एक दिव्य पुरुष निकला और पुण्डरीक के शव को लेकर आकाश में चला गया। जाते-जाते उसने महाश्वेता से कहा कि इससे तुम्हारा अवश्य मिलन होगा। तब से महाश्वेता अपने प्रियतम से मिलन की आशा में भगवान शिव की आराधना में लगी हुई है।

कादम्बरी की कथा

रात्रि में विश्राम के समय महाश्वेता ने चन्द्रापीड से अपनी सखी कादम्बरी के विषय में बताया कि कादम्बरी गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री है और अपने माता-पिता के बार-बार कहने पर भी विवाह के लिए सहमत नहीं हो रही है। दूसरे दिन महाश्वेता चन्द्रापीड को साथ लेकर कादम्बरी से मिलने गयी। वहाँ चन्द्रापीड और कादम्बरी में बातें हुई और वे परस्पर प्रगाढ़ प्रेम बन्धन में बँध गये। कादम्बरी से मिलकर वापस महाश्वेता की कुटी में आने पर चन्द्रापीड को अपनी सेना मिली और पिता का पत्र मिला, जिसमें उसे तत्काल राजधानी बुलाया गया था। चन्द्रापीड ने अपनी पानवाली पत्रलेखा को कादम्बरी के पास भेजा और स्वयं राजधानी चला गया। कुछ दिन बाद पत्रलेखा जब लौटकर राजधानी पहुँची, तो उसने चन्द्रापीड से कादम्बरी की विरहदशा का वर्णन किया। चन्द्रापीड को इसी समय यह सूचना मिली कि उसका मित्र वैशम्पायन, जो महामन्त्री शुकनास का पुत्र था, अच्छोद सरोवर में स्नान करने के बाद वहाँ से लौटना नहीं चाहता, वह वहाँ पागल की तरह कुछ ढूँढ़ रहा है। चन्द्रापीड उसे वापस ले आने के लिए चल पड़ा। महाश्वेता ने बताया कि एक ब्राह्मण युवक उसके पास आकर प्रणय निवेदन करने लगा, जिस पर कुपित होकर उसने उसे शुक बन जाने का शाप दे दिया। वह शुक बन गया, तब ज्ञात हुआ कि

वह चन्द्रापीड का मित्र वैशम्पायन था। अपने मित्र से बिछुड़ने और कादम्बरी से मिलन की सम्भावना न होने के दुःख में चन्द्रापीड भी तत्काल निर्जीव होकर भूमि पर गिर पड़ा। उधर कादम्बरी यह सुनकर कि चन्द्रापीड महाश्वेता की कुटी में आये हैं, बड़ी आशा से मिलने के लिए आयी, किन्तु उसे उसका शव ही मिला। परम दुःख से व्यथित होकर वह सती होने के लिए उद्यत हुई, किन्तु एक आकाशवाणी ने उसे आश्चस्त किया कि उसका चन्द्रापीड से मिलन होगा। वह चन्द्रापीड के मृत शरीर की रखवाली करने लगी। उसी समय पत्रलेखा चन्द्रापीड के अश्व इन्द्रायुध को लेकर सरोवर में कूद गयी। कुछ क्षण बाद सरोवर से एक ब्राह्मण युवक निकला, जो पुण्डरीक का मित्र कपि'जल था। उसने महाश्वेता को बताया कि पुण्डरीक पृथ्वी पर वैशम्पायन शुक के नाम से उत्पन्न हुआ है और वह भी एक ऋषि के शाप से इन्द्रायुध नाम का अश्व बन गया था। उसी ने महाश्वेता से यह भी बताया कि उसने जिसे शुक बन जाने का शाप दिया था वह कोई और नहीं पुण्डरीक था, तब महाश्वेता छाती पीट-पीट कर रोने लगी। कपि'जल ने उसे आश्वासन दिया कि अब उसके दुःखों का अन्त निकट है और वह स्वयं आकाश में चला गया। अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार जानकर राजा तारापीड, महारानी विलासवती तथा महामन्त्री शुकनास और उनकी पत्नी मनोरमा भी उस स्थान पर आये। तारापीड वहीं तपस्या में लग गये। मूर्च्छित कादम्बरी होश में आयी और चन्द्रापीड के शरीर की सेवा में लग गयी।

शुक का राजा शूद्रक से अपने विषय में बताना

राजा शूद्रक के समीप चाण्डालकन्या द्वारा लाये गये शुक ने राजा से अपने विषय में आगे की कथा इस प्रकार बतायी - महर्षि जाबालि ने जब अपने शिष्यों को मुझे सम्बद्ध जो कथा सुनायी, उससे मुझे अपना पूर्वजन्म स्मरण हो आया और मुझे यह ज्ञात हो गया कि मैं ही महामन्त्री शुकनास का पुत्र वैशम्पायन हूँ। जब मेरे पंख निकल आये, तब मैं अपने मित्र चन्द्रापीड को ढूँढ़ने निकला, किन्तु चाण्डाल कन्या द्वारा पकड़ लिया गया।

चाण्डाल कन्या द्वारा कथा को पूरी करना

इसके बाद चाण्डाल कन्या ने राजा को बताया कि राजा शूद्रक ही चन्द्रापीड हैं। वह स्वयं लक्ष्मी है और वैशम्पायन उसका पुत्र है। राजा शूद्रक को अपना पूर्व जन्म याद हो आया। उधर महाश्वेता की कुटी में वसन्त छा गया और कादम्बरी ने जैसे ही चन्द्रापीड के शरीर का आलिंगन किया, वह ऐसे जीवित हो उठा जैसे नींद से जागा हो। उसी समय शूद्रक ने भी अपना शरीर त्याग दिया। महाश्वेता की कुटी में कुछ ही क्षण में पुण्डरीक अपने मुनिकुमार वाले रूप में प्रकट हुआ और उसका महाश्वेता से मिलन हो गया। सर्वत्र आनन्द छा गया।

इस प्रकार इस कथा का नायक है चन्द्रापीड और नायिका है कादम्बरी। सहनायक और सहनायिका हैं - पुण्डरीक और महाश्वेता। यह तीन जन्मों की मिली-जुली कहानी है, जिसका अधिकांश भाग शुक द्वारा महर्षि जाबालि की कथा के अनुसार शूद्रक से कहा जाता है। कादम्बरी के आरम्भ में बाण ने बीस पद्यों में मङ्गलाचरण, सज्जन की प्रशंसा और दुर्जन की निन्दा, अपने वंश के पूर्वजों का आलंकारिक एवं मनोरम वर्णन, तथा कथा के गुणों का उल्लेख

क्रिया है। चन्द्रापीड की ताम्बूलकरंकाहिनी पत्रलेखा, जो चन्द्रापीड के चले आने पर भी कादम्बरी के पास रह गयी थी, लौटकर चन्द्रापीड की राजधानी आती है, इस वर्णन के साथ ही कादम्बरी कथा का पूर्वभाग समाप्त होता है।

कादम्बरी की समीक्षा

कादम्बरी एक कथा है और कथा का कथानक कविकल्पित होता है, फिर भी बाण की कादम्बरी की कथा गुणादय की बृहत्कथा के कथानक से कई समानताएँ प्रदर्शित करती हैं, जिससे यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बाण को कादम्बरी कथा की प्रेरणा गुणादय की बृहत्कथा से मिली है। इसका संस्कृत रूपान्तर सोमदेव का कथासरित्सागर है, जो बाण के समय के बहुत बाद रचा गया। बाण में कथानक को सजाने और जीवन्त बनाने की विलक्षण प्रतिभा है जिससे कादम्बरी कथा अद्वितीय रूप प्राप्त कर लेती है। कादम्बरी की मुख्य कथा के साथ प्रसंगवश अनेक स्थलों पर बाण ने लम्बे वर्णन किये हैं और अपनी कविप्रतिभा एवं अलंकार प्रयोग का भरपूर प्रदर्शन किया है, जिससे ऐसे स्थलों पर कथा की गति मन्थर हो गयी है, किन्तु उन वर्णनों का अपना सौन्दर्य पाठक को इतना अधिक बाँध लेता है कि वह कथा के इस मन्द प्रवाह की ओर ध्यान नहीं दे पाता। यद्यपि कादम्बरी कथा की घटनायें जटिल हैं, तथापि वे मुख्य कथा के साथ दृढ़ता से जुड़ी हुई हैं। उसमें उस प्रकार की जटिलता नहीं है जैसी जटिलता दण्डी के दशकुमारचरित में मिलती है। कथा के प्रति पाठक के उत्सुकता बनाये रखने में बाण दक्ष हैं। कादम्बरी में प्रत्येक घटना का वर्णन अगली घटना के लिए जिज्ञासा उत्पन्न करता है।

चरित्र चित्रण

बाण को जीवन के हर क्षेत्र का पूरा अनुभव था। यही कारण है कि वे पुत्रों के चरित्र-चित्रण में अपने अनुभव और निरीक्षण की प्रतिभा के कारण सफल हुए हैं। हर्षचरित में तो उन्हें इसके लिए अवसर ही नहीं मिला है, किन्तु कादम्बरी में वे अनेक प्रकार के चरित्रों का सूक्ष्म वर्णन कर सके हैं। कादम्बरी के चन्द्रापीड, पुण्डरीक, कादम्बरी और महाश्वेता जैसे उच्च वर्ग के पात्र तो हैं ही, साथ ही बाण ने चाण्डालकन्या और शबर सेनापति जैसे अरण्यवासी पात्रों का भी सफलतापूर्वक चित्रण किया है। जाबालि, हारीत और कपिञ्जल जैसे ऋषियों एवं मुनि कुमारों के वर्णन भी स्वाभाविक हैं। बाण ने अतिमानवीय पात्रों को मानवीय धरातल पर लाकर स्वर्ग और पृथ्वी, गन्धर्वलोक तथा मुनियों के आश्रम को एक साथ सम्बद्ध कर दिया है। उनका प्रत्येक चरित्र अपने आप में विस्मय और रहस्य से परिपूर्ण है। उनके चरित्रों में एक असाधारण आकर्षण और औदात्य है। प्रेम के उदात्त स्वरूप का दर्शन बाण ने महाश्वेता और कादम्बरी के चरित्रों द्वारा कराया है। कादम्बरी अपने मृत प्रियतम से मिलन की आशा में सम्पूर्ण समर्पण से उसके शरीर की रक्षा और सेवा करती है और महाश्वेता अपने प्रियतम की प्राप्ति के लिए तपस्या का आदर्श प्रस्तुत करती है। इन चरित्रों के प्रति एक स्वाभाविक श्रद्धा भाव पाठक के मन में उत्पन्न होता है। भाग्य की क्रूर विडम्बना से बार-बार छली गयी महाश्वेता नारी के धैर्य एवं सहिष्णुतामय गाम्भीर्य का उदाहरण प्रस्तुत करती है। बाण ने अपने प्रमुख नारीपात्रों में एकनिष्ठ

एवं त्यागमय प्रेम और चरित्र का बल दिखाकर प्रेम के अलौकिक पक्ष को आलोकित किया है। पुण्डरीक तपस्वी का आदर्श रूप है, किन्तु युवावस्था में स्वभावतः मन को कामविकार किस प्रकार वशीभूत कर लेता है, इसका प्रबल उदाहरण भी बाण ने इस चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है। काम के वशीभूत पुण्डरीक अपना जीवन भी त्याग देता है। चन्द्रापीड एक आज्ञाकारी पुत्र, योग्य शासक, वीर सेनानी होने के साथ ही एक आदर्श मित्र और आदर्श प्रेमी है। वस्तुतः बाण ने मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की अद्भुत क्षमता कादम्बरी में प्रदर्शित की है।

वर्णन का सौन्दर्य

गद्यकवि बाण की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी वर्णन की प्रतिभा है। वे अपनी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति द्वारा प्रत्येक चित्र अथवा भावना का सजीव वर्णन करते हैं। वर्णन कौशल द्वारा वे किसी वस्तु या स्थिति का शब्दों द्वारा चित्र बनाकर उसके रूप, रस, गन्ध का इन्द्रिय-प्रत्यक्ष सा करा देते हैं। कथामुख में ही राजसभा में उन्नत सिंहासन पर बैठे हुए राजा शूद्रक का, सभाभवन की प्रत्येक वस्तु का वे उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं से इतना विस्तृत वर्णन करते हैं कि पाठक स्वयं को वहाँ उपस्थित सा अनुभव करने लगता है। विन्ध्याटवी की भयावहता तथा पम्पासरोवर की निर्मलता का वर्णन भी इसी प्रकार का है। सभाभवन में बैठे राजा शूद्रक का यह वर्णन द्रष्टव्य है -

प्रविश्य च नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनमशनिभयपुलिजतकुलशैलमध्यगतमिव
कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरण जालकान्तरिता वयमिन्द्रायुधसहस्रस'
छादिताष्टदिग्विभागमिव जलधरदिवसम्, अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य
कनकशृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य
नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तमणिपर्यङ्कनिषण्णम् ...

इसी प्रकार महाश्वेतावृत्तान्त में महाश्वेता की कुटी की एक-एक वस्तु का वर्णन बाण इस प्रकार करते हैं कि पाठक स्वयं को वहाँ उपस्थित जैसा अनुभव करता है -

हिमहारहरहासधवलैश्रोभयतः क्षरद्भिर्निर्झरैर्द्वारावलम्बितचलच्चामरकलापामिवोपलक्ष्य
माणाम् अन्तःस्थापितमणिकमण्डलुमण्डलाम्, एकान्तावलम्बितयोगपट्टिकाम्,
विशाखिकाशिचारनिबद्धनारिकेलीफलवल्कल धौतोपानद्युगोपेताम् ... इन्दुमण्डलेनेव
टङ्कोत्कीर्णैव शङ्खमयेनेव भिक्षाकपालेनाधिष्ठितां सन्निहितभस्मालाबुकां गुहाम्
अद्राक्षीत्।

सौन्दर्य चाहे प्रकृति का हो या मानव-रूप का, बाण उसके वर्णन में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। विन्ध्याटवी, पम्पासरोवर, अच्छोद सरोवर के वर्णन में, महाश्वेता की कुटी बनी हुई गुफा के वर्णन में या वसन्त ऋतु के आगमन के वर्णन में उनके प्रकृति वर्णन का सौन्दर्य देखा जा सकता है। बाण ने वर्णन के लिए विषयों का इतना व्यापक क्षेत्र चुना है कि विद्वानों का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'।

रसाभिव्यक्ति

श्रेष्ठ गद्यकार बाण रस की अभिव्यंजना में भी सफल हैं। कथा की प्रशंसा के माध्यम से अपनी ही कथा की विशेषताओं का संकेत करते हुए वे कहते हैं -

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।

रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥

वस्तुतः बाण ने अपनी वर्णन-प्रतिभा से प्रत्येक वर्णन में रस भर दिया है। उन्होंने कादम्बरी में शृङ्गार रस परिणामतः वासनात्मक नहीं है। महाश्वेता और पुण्डरीक का तथा कादम्बरी एवं महाश्वेता का प्रेम ऐसा ही आदर्श एवं उदात्त प्रेम है। संयोग-शृङ्गार की तीखी अभिव्य'जना का एक उदाहरण पुण्डरीक और महाश्वेता के प्रथम मिलन के वर्णन में देखा जा सकता है -

तदा तस्याप्यभिनवागतं मदनंप्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्गमः प्रादुरभवत् ।
मत्सकाशमभिप्रस्थितस्य मनसो मार्गमिवोपदिशद्भिः पुरः प्रवृत्तं श्वासैः। वेपथुगृहीता
व्रतभङ्गभीतेवाकम्पतकरतलगताक्षमाला । द्वितीयमेव कर्णावसक्तकुसुमम'जरी
कपोलतलासंगिनी समदृश्यत स्वेदसलिसीकरजालिका ।

विप्रलम्भ की अभिव्य'जना पुण्डरीक और कादम्बरी की वियोगावस्था के वर्णन में द्रष्टव्य है। महाश्वेता और कादम्बरी का विलाप इस कथा को करुण रस से आप्लावित कर देते हैं। बाण की रसाभिव्यक्ति पाठक को कथा में इस प्रकार विभोर कर देती है कि उत्सुकता और रोचकता आदि से अन्त तक कम नहीं होती। बाण की रसाभिव्यक्ति की दक्षता का ही यह परिचायक है कि पाठक पात्रों के साथ दुःख में दुःखी और आनन्द में आनन्दित अनुभव करता है। कादम्बरी के रस और भावपक्ष को लेकर विद्वज्जन इतने अधिक प्रभावित रहे हैं कि ये सूक्तियाँ सटीक ही हैं -

कादम्बरीरसज्ञानामाहारोपि न रोचते ।

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम् ।

अभ्यास प्रश्न 1 -

1. निम्न में से एक बाणभट्ट की रचना है

- | | |
|--------------------|---------------|
| क. कुमारसम्भव | ख. हर्षचरितम् |
| ग. किरातार्जुनीयम् | घ. शाकुन्तलम् |

2. बाण का समय है

- | |
|----------------------------------|
| क. सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध |
| ख. सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध |
| ग. छठी शताब्दी |
| घ. आठवीं शताब्दी |

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

3. हर्षचरित एक है ।

4. स्फुरत्कलालाप कोमला ।

सत्य असत्य का चयन करें

5. महाश्वेता गन्धर्वराज हंस तथा गौरी की पुत्री है ()

6. वैशम्पायन अच्छोदसरोवर से स्नान करके लौटना चाहता था

()

बाण की गद्यशैली

बाण से पूर्व सुबन्धु ने दुरूह श्लिष्ट पदावली से युक्त अलंकृत गद्यशैली का प्रयोग किया था। दण्डी की शैली में सरलता थी। बाण ने इन दोनों प्रकार की शैलियों का अपूर्व सन्तुलन प्रस्तुत किया और वर्ण्य विषय के अनुरूप पदावली का प्रयोग करते हुए गद्य के परिनिष्ठित स्वरूप को उपस्थापित किया। बाण की गद्यशैली का आदर्श वही है जिसे उन्होंने स्वयं अपने शब्दों में दुर्लभ कहा है -

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥

अर्थात् नया अर्थ, सुन्दर स्वभावोक्ति, श्लेष अलंकार, रस तथा अक्षरों की दृढबन्धता - ये सभी एक साथ दुर्लभ हैं। शब्दचयन की दृष्टि से बाण की गद्यशैली को पाऽचाली रीति माना गया है। इस रीति में अर्थ के अनुरूप शब्दों की योजना होती है। सुतरा, बाण एक कलावादी कवि हैं और कला उनके वश में है। वे शृङ्गार में कोमल एवं सरस शब्दों का और वीभत्स आदि के वर्ण में कठोर वर्णों का प्रयोग करते हैं। दीर्घ समस्त पदों का प्रयोग गद्य में ओजोगुण उत्पन्न करता है और उसे ही गद्य का जीवन कहा गया है। बाण ने अपने गद्य में समासों के अवसरानुकूल प्रयोग का असाधारण उदाहरण प्रस्तुत किया है। शुक्रनासोपदेश के निम्नलिखित उदाहरण उनकी शैली की विविधता को स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार कहीं दीर्घसमासों वाली भाषा का तो कहीं अत्यन्त सरल वाक्यों का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं।

कष्टमनऽजनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम् । अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो
दर्पदाहज्वरोष्मा । सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः।
नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः । अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च
राज्यसुखसंनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे।

बाण की समास रहित शैली का एक उदाहरण यह है -

न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपामालोकयते । न कुलक्रमानुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति, न सत्यमनुबुध्यते।

जहाँ भी इस प्रकार के उपदेश के प्रसंग हैं अथवा प्रेम या शोक आदि भावनाओं के अवसर हैं, वहाँ बाण की शैली प्रायः समासहीन या अल्प समास वाली है।

अलंकार - प्रयोग

बाण की शैली का सौन्दर्य उनके अलंकारों के प्रयोग पर आधारित है। इस शैली का आकर्षण श्लिष्ट उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में निहित है। इससे वर्णन में सजीवता आ गयी है। उपमा, दीपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, रूपक एवं परिसंख्या उनके प्रमुख अलंकार हैं। अपने अलंकार-प्रयोग की ओर उन्होंने स्वयं ही संकेत किया है।

हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैपदार्यैरुपपादिता कथाः ।

निरतन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥

इनकी उपमाएँ प्रायः श्लिष्ट हैं और विशेषण की शाब्दिक समानता पर आधारित हैं। यथा -
अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोश मण्डलमपि मुचति
भूभुजम्, लतेव विटपकानध्यारोहति । गडेगेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुद्च चला,
दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः पातालगुहेव तमोबहुला हिडिम्बेव
भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्राविडिवाचिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव
दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पस्वत्वमुन्मत्तीकरोति ।

इनके विरोधाभास का एक उदाहरण इस प्रकार है -

सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति । उन्नतिमादधानापि
नीचस्वभावतामाविष्करोति । तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति । ईश्वरतां
दधानाप्यशितप्रकृतित्वमातनोति । बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति ।

उत्प्रेक्षालंकार का एक उदाहरण इस प्रकार द्रष्टव्य है -

अभिषेकसमय एव चैतेषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्,
अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापह्रियते
क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते
परलोकदर्शनम् ।

बाण द्वारा प्रयुक्त अनुप्रासालंकार उनकी शैली में एक मनोरम नादसौन्दर्य उत्पन्न करते हैं ।
शुकनासोपदेश से कुछ उदाहरण ये हैं -

अप्रदीपप्रभापनेयम् । सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः ।
इन्द्रियहरिणहारिणी । अखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्
सुभटखड्गमण्डलोत्पलविभ्रमभ्रमरी । गजघटितघनघटा । मूलदण्डकोश मण्डलम् ।
धनलवलाभावलेप-।

अपनी विशिष्ट शैली के कारण निश्चय ही बाण सर्वश्रेष्ठ गद्यकवि हैं । उन्होंने बाद के अनेक
गद्यकवियों को प्रभावित किया है । संस्कृत के विद्वानों में बाण की शैली की प्रशंसा में अनेक
सूक्तियाँ प्रचलित हैं ।

बाण की प्रशस्ति में प्रचलित सूक्तियाँ

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।

प्रागल्भ्यमधिकमासुं वाणी बाणो बभूव ह ॥ - गोवर्धनाचार्य ।

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।

सा किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य । - धर्मदास ।

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे

ऽलंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।

आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी

सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥ चन्द्रदेव ।

केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् क्वीन् ।

किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः ॥ - धनपाल

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।

भवेत् कवि-कुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥ -त्रिलोचन भट्ट

सहर्षचरितारम्भाद्भुतकादम्बरीकथा ।

बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमति क्षितौ ।- राजशेखर

बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती । - सोड्डल

शुकनासोपदेश - संक्षेप

राजा तारापीड का पुत्र राजकुमार चन्द्रापीड गुरुकुल में निवास और अध्ययन समाप्त कर अपने माता-पिता के पास लौटा आता है। कुछ दिन बीतने पर राजा तारापीड उसका यौवराज्याभिषेक करने का निश्चय करते हैं। राजा तारापीड के सुयोग्य और विद्वान प्रधानामात्य थे शुकनास। यौवराज्याभिषेक की तिथि निर्धारित हो जाने पर एक दिन राजकुमार चन्द्रापीड शुकनास से मिलने जाता है। शुकनास चन्द्रापीड को राजलक्ष्मी की चंचलता और उसके अनेक दोषों का कारण बताते हुए एवं युवावस्था के विकारों का उल्लेख करते हुए चन्द्रापीड को सावधान रहकर आत्मनियन्त्रण एवं सतर्कता बरतने का उपदेश देते हैं, जो संक्षेप इस प्रकार है -

यौवन के अविवेक रूपी अन्धकार का प्राबल्य तथा लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति से उत्पन्न विकार - नयी युवावस्था स्वभावतः प्रबल अविवेक रूपी अज्ञान को उत्पन्न करती है, जो सूर्य की किरणों से दूर नहीं हो पाता, रत्नों के प्रकाश से कटता नहीं और प्रदीपों की ज्योति से भगाया नहीं जा सकता। लक्ष्मी की प्राप्ति से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न हो जाता है वह ऐसा नशा है जो उतरता नहीं। दर्प के दाह का ज्वर शीतल पदार्थों के उपचार से दूर होने वाला नहीं होता। विषयभोगों की लालसा विषम विष के आस्वादन के समान ऐसी बेहोशी ला देती है जो टूटती नहीं। विषयभोगों का आकर्षण ऐसी गन्दगी का लेप लगा देता है जो स्नान या धाने से जाता नहीं। जन्म से ही ऐश्वर्य पा लेना, नयी युवावस्था, अद्वितीय सुन्दर रूप और सामान्य मनुष्यों से अधिक शारीरिक बल से युक्त होना - इनमें प्रत्येक अविनय का घर है और जहाँ ये सब मिलकर विद्यमान हों, वहाँ तो कुछ कहना ही नहीं। यौवन के आरम्भ में शास्त्र ज्ञान से निर्मल हुई बुद्धि भी क्लुषित हो जाती है। दृष्टि में कामुकता बनी रहती है। विषयोपभोग की मृगतृष्णा पुरुष को उनके पीछे दौड़ाती रहती है। एक बार जब मन में विकार उत्पन्न हो जाता है तो वे ही विषयसुख और मधुर प्रतीत होने लगते हैं और परिणाम यह होता है कि पुरुष भटक कर नष्ट हो जाता है।

गुरुपदेश का महत्व

जिसके मन में विकार नहीं समाया हुआ है, उसी की बुद्धि में गुरुजनों के उपदेश प्रवेश करते हैं। इसके विपरीत जो स्वभावतः दुष्ट है उसके लिए तो गुरुजनों के वचन कानों में शूल जैसे कष्टदायी

प्रतीत होते हैं। गुरुपदेश मन के अन्धकार को दूर करता है और बुद्धि का विकास कर वृद्धावस्था जैसी समझ उत्पन्न कर देता है। कोई उच्च कुल में उत्पन्न हो इतने मात्र से ही उसमें अविनय की सम्भावना समाप्त नहीं होती। गुरुपदेश एक गम्भीरता ला देता है, एक चमक उत्पन्न कर देता है। विशेषतः राजाओं के लिए तो इसका महत्त्व और अधिक है। उनके लिए हितकारी परामर्श देने वालों का अभाव होता है। जनसमाज तो उनके आदेश का भयवश अनुगमन ही करता है। दर्प के कारण राजाओं के कान सूज कर बहरे हो जाते हैं। वे सुनते हुए भी हाथी के समान आँखें बन्द कर उपेक्षा करते हैं। अहंकार के दाहज्वर की मूर्च्छा इन राजाओं पर छाया रहती है।

लक्ष्मी का प्रवञ्चनामय स्वभाव

लक्ष्मी में वक्रता, चंचलता, नशा, मूर्च्छा उत्पन्न करने की शक्ति और कठोरता सहज रूप में विद्यमान होती है। ऐसा कोई नहीं है जिसे इसने धोखा न दिया हो। मिल जाने पर भी लक्ष्मी की रक्षा बड़े कष्ट से होती है। लक्ष्मी किसके पास पहुँच जाय, इसका ठिकाना नहीं। यह परिचय, कुलपरम्परा, शील, विदग्धता, शास्त्रज्ञान, धर्म, त्याग, विशेषज्ञता, आचार और सत्यशीलता का विचार नहीं करती। देखते-देखते गायब हो जाती है। क्रूर और साहस के कर्म करने वालों के अधीन हो जाती है। शक्तिशाली राजा को भी क्षण भर में छोड़ देती है। सरस्वती के भक्तों से तो ईर्ष्या ही रखती है। गुणवान, उदार, सज्जन, कुलीन, वीर, दानी, विनम्र और मरस्वी पुरुष के समीप नहीं जाती। यह पुरुष में तृष्णा को बढ़ाने, क्षुद्रता उत्पन्न करने का ही कार्य करती है। यह इन्द्रियों को फाँसती है, मनुष्य को कुकर्मों की ओर प्रेरित करती है और उत्तम चरित्र को कलंकित कर देती है, मनुष्य में फ़ोध उत्पन्न करती है और सदाचार एवं सद्गुणों को समाप्त कर देती है। यह धूर्तता सिखाती है और कामवासना को बढ़ाने के साथ धर्मबुद्धि का सम्पूर्ण नाश कर देती है। जो राजा किसी प्रकार इसकी कृपा पा लेते हैं, वे सभी अवगुणों, दुर्गुणों, अधर्म, अहंकार, अक्षमा और अदूरदर्शिता से ग्रस्त हो जाते हैं। कुछ दूसरे राजा पागल जैसे होकर विषयभोगों की ओर दौड़ते हैं और मानो असंख्य इन्द्रियों द्वारा अधिक से अधिक भोगों का सुख पाना चाहते हैं। वे सब कुछ स्वर्णमय देखने लगते हैं। ऐसे राज अत्याचारी होकर निरन्तर पाप करते जाते हैं, सैकड़ों व्यसनों में पड़कर अधोगति को प्राप्त होते हैं। ऐसे राजाओं की चापलूसी में लगे धूर्त उनके दोषों को गुण के रूप में बखान कर उन्हें ऐसे भ्रम में डाल देते हैं जैसे वे देवता के ही अवतार हों और वे राजा भी ऐसे भ्रम में देवताओं की तरह आचरण करने लगते हैं तथा उपहास के पात्र बनते हैं। गर्व से चूर ये राजा किसी को दर्शन देना भी कृपा करना दृष्टिपात करना, उपकार, वार्तालाप कर लेना, धन का दान देना तथा किसी को आज्ञा देना वरदान देना समझते हैं। वे अहंकार से देवों और गुरुजनों का सम्मान नहीं करते, किसी की बात नहीं सुनते। वे धूर्तों और चापलूसों को ही अपने समीप रखते हैं, उन्हीं को लाभ पहुँचाते हैं और उन्हीं को प्रमाण मान लेते हैं, जो सभी कार्यों को छोड़कर उनकी स्तुति में लगा रहता है।

चन्द्रापीड को कर्त्तव्य हेतु उद्बोधन

अपने उपदेश को समाप्त करते हुए शुकनास ने चन्द्रापीड को इस प्रकार आचरण एवं व्यवहार

करने को कहा जिससे मित्र, सज्जन, गुरुजन, विद्वानों को असन्तोष या शोक न हो, जिससे धूर्त, विट, लम्पट, भ्रष्ट स्त्रियाँ और धोखेबाज लोग अपयश फैलाने, धन की लूट - खसोट करने, वचना और फँसाने के कार्यों में सफल न हों। सबसे पहले दिग्विजय यात्राओं से पहले पिता द्वारा जीते गये भी राजाओं को परास्त कर अपने प्रताप को सुदृढ़ कीजिए, जिससे आपकी आज्ञा का कोई उल्लंघन न कर सके।

शुकनास के उपदेश को सुनकर चन्द्रापीड ने अपूर्व निर्मलता और प्रसन्नता का अनुभव किया और कुछ समय शुकनास के पास रुकने के बाद अपने भवन को लौट आया।

शुकनासोपदेश के अन्तर्गत सूक्तियाँ

(यद्यपि शुकनासोपदेश अधिकांशतः सूक्ति के समान है, तथापि निम्नलिखित सूक्तियाँ विशेषतः उल्लेखनीय हैं)

- 1- निसर्गत एवं अतिगहनं तमो यौवनप्रभवम् ।
- 2- अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः ।
- 3- अनजनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम् ।
- 4- अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा ।
- 5- यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः ।
- 6- अनुज्झातधवलतापि सरागैव भवित यूनां दृष्टिः ।
- 7- अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः ।
- 8- गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वा ।
- 9- इन्द्रियहरिणहारिणी सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका ।
- 10- नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु ।
- 11- अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः ।
- 12- गुरुवचनममलमपि सलिलमिवमहदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य ।
- 13- कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिवगलत्युपदिष्टम् ।
- 14- अकारणं च भवित दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य ।
- 15- गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षमजलं स्नानम् ।
- 16- प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात् ।
- 17- अहंकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वलाहि राजप्रकृतिः ।
- 18- अलीकाभिमानोन्मादकारिणी धनानि ।
- 19- राज्यविषविकारतन्दाप्रदा राजलक्ष्मीः ।
- 20- (लक्ष्मीः) सरस्वतीपरिगृहीतमीर्षयेव नालिङ्गति ।
- 21- (लक्ष्मीः) जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति ।
- 22- नहि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः यो वा न विप्रलब्धः ।
- 23- तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि ।
- 24- विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता

खलीकरोति लक्ष्मीः।

25 - आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति ।

अभ्यास प्रश्न 2

1. बाण किस रीति के कवि हैं

क. वैदर्भी ख. पांचाली ग. गौड़ी घ. कुछ नहीं

2. वाणी बाणो बभूव किसने कहा है

क. बाणभट्ट ख. दण्डी ग. चन्द्रदेव घ. गोवर्धनाचार्य

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. न रक्षति ।

4. बाण चक्रवर्ती ।

सत्य और असत्य का ज्ञान करें

5. लक्ष्मी के प्रवंचनामय स्वभाव का वर्णन कादम्बरी में किया गया है ()

6. ' बाणस्तु पंचानन !' धनपाल ने कहा है ()

अति लघु- उत्तरीय प्रश्न

- 1- सुबन्धु की अलंकृत गद्यशैली के श्रेष्ठ कलाकार कौन है ?
- 2- बाणभट्ट ने अपने पूर्वजों तथा स्वयं अपना परिचय किसके माध्यम से दिया है ?
- 3- बाणभट्ट ने कादम्बरी के आरम्भ के पद्यों में किसका वर्णन किया है ?
- 4- महाकवि बाण की कितनी कृतियाँ प्रसिद्ध हैं ?
- 5- महाकवि बाणभट्ट की कौन सी तीन कृतियाँ हैं ?
- 6- बाणभट्ट के पिता का नाम क्या था ?
- 7- बाणभट्ट की माता का नाम क्या था ?
- 8- किस अवस्था में बाण की माता का निधन हो गया ?
- 9 - बाणभट्ट कितने वर्ष की अवस्था में पितृविहीन हो गये ?
- 10 - युवावस्था में बाण किसके बन्धन से मुक्त होकर इधर-उधर घूमने लगे ?
- 11 - बाणभट्ट ने अपने मित्रों की लम्बी सूची किसमें दी है ?
- 12 - बाणभट्ट किसके समकालीन थे ?
- 13 - हर्षवर्धन ने कबसे कब तक शासन किया था ?
- 14 - बाण की गद्य रचना हर्षचरितम् क्या है ?
- 15 - बाणभट्ट की प्रख्यात गद्य रचना कादम्बरी क्या है ?

1.4 सारांश

इस इकाई इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि लौकिक संस्कृत गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें बाण की रचनाओं में मिलता है। निश्चय ही ये गद्य-काव्य के चरमोत्कर्ष के प्रतीक हैं। शुकनास ने चन्द्रापीड को इस प्रकार आचरण एवं व्यवहार करने को कहा जिससे मित्र, सज्जन, गुरुजन,

विद्वानों को असन्तोष या शोक न हो, जिससे धूर्त, विट, लम्पट, भ्रष्ट स्त्रियाँ और धोखेबाज लोग अपयश फैलाने, धन की लूट- खसोट करने, वंचना और फँसाने के कार्यों में सफल न हों। सबसे पहले दिग्विजय यात्राओं से पहले पिता द्वारा जीते गये भी राजाओं को परास्त कर अपने प्रताप को सुदृढ़ कीजिए, जिससे आपकी आज्ञा का कोई उल्लंघन न कर सके। यौवन के अविवेक रूपी अन्धकार का प्राबल्य तथा लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति से उत्पन्न विकार - नयी युवावस्था स्वभावतः प्रबल अविवेक रूपी अज्ञान को उत्पन्न करती है, जो सूर्य की किरणों से दूर नहीं हो पाता, रत्नों के प्रकाश से कटता नहीं और प्रदीपों की ज्योति से भगाया नहीं जा सकता। लक्ष्मी की प्राप्ति से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न हो जाता है वह ऐसा नशा है जो उतरता नहीं। दर्प के दाह का ज्वर शीतल पदार्थों के उपचार से दूर होने वाला नहीं होता। विषयभोगों की लालसा विषम विष के आस्वादन के समान ऐसी बेहोशी ला देती है जो टूटती नहीं। विषयभोगों का आकर्षण ऐसी गन्दगी का लेप लगा देता है जो स्नान या धाने से जाता नहीं। जन्म से ही ऐश्वर्य पा लेना, नयी युवावस्था, अद्वितीय सुन्दर रूप और सामान्य मनुष्यों से अधिक शारीरिक बल से युक्त होना - इनमें प्रत्येक अविनय का घर है और जहाँ ये सब मिलकर विद्यमान हों, वहाँ तो कुछ कहना ही नहीं। यौवन के आरम्भ में शास्त्र ज्ञान से निर्मल हुई बुद्धि भी कलुषित हो जाती है। बाण की शैली का सौन्दर्य उनके अलंकारों के प्रयोग पर आधारित है। इस शैली का आकर्षण श्लिष्ट उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में निहित है। इससे वर्णन में सजीवता आ गयी है। उपमा, दीपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, रूपक एवं परिसंख्या उनके प्रमुख अलंकार हैं।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. ख 2. क 3. आख्यायिका 4. विलास 5. सही 6. गलत

अभ्यास प्रश्न 2.

1. ख 2. घ 3. परिचय 4. कविनामिह 5. सही
6. गलत

अतिलघुत्तरीय के उत्तर

- (1) बाणभट्ट (2) कथा के माध्यम से दिया है (3) अपने वंश का वर्णन किया है
- (4) तीन कृतियाँ।
- (5) हर्षचरित, कादम्बरी, और मुकुटताडितक
- (6) चित्रभानु (7) राजदेवी था (8) शैशवावस्था में
- (9) चौदह वर्ष की अवस्था में (10) अनुशासन के बन्धन से
- (11) हर्षचरित में दी है (12) हर्षवर्धन के समकालीन थे
- (13) 606 ई0 से 648 ई0 तक (14) आख्यायिका (15) एक कथा है

1.6 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
3- संस्कृत साहित्य का इतिहास .	बलदेव उपाध्याय	प्रकाशक,
	शारदा निकेतन वी,	कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

1.7 उपयोगी पुस्तकें

1.ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बाणभट्ट का विस्तृत परिचय दीजिये ।
2. बाण की गद्य शैली की विवेचना कीजिए ।
3. शुकनासोपदेश का परिचय दीजिए ।

इकाई . 2 गद्य भाग - एवं समतिक्रामत्सु मेदादोषं गुरुकरणम् तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 गद्य भाग- एवं समतिक्रामत्सु मेदादोषं गुरुकरणम् तक व्याख्या

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 उपयोगी पुस्तकें

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह दूसरी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने बाणभट्ट की कादम्बरी आदि का परिचय प्राप्त किया। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि चन्द्रापीड कौन था ? राजा ने चन्द्रापीड को युवराज के पद पर अभिषेक करने की इच्छा से द्वारपालों को सामग्रियों का समूह एकत्र करने के लिए आदेश दिया। उस चन्द्रापीड को , जिसका युवराज पद पर अभिषेक का समय निकट था, कभी मिलने के लिए आने पर विनय से परिपूर्ण होने पर भी उसे और अधिक विनम्र बनाने की इच्छा से शुकनास ने विस्तार से उपदेश दिया।

अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, जो सूर्य द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, रत्नों के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता, दीपक की ज्योति से हटाया नहीं जा सकता। मदपान का नशा तो परिणाम अर्थात् पचकर उतर जाता है किन्तु धनसम्पत्ति से उत्पन्न नशा परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था होने पर भी नहीं उतरता आदि - आदि।

अतः इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप इसमें से प्राप्त शिक्षाओं को बता सकेंगे तथा शुकनास द्वारा दिये गये उपदेशों का महत्व समझा सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इनके महत्त्व पूर्ण बातों का अध्ययन करेंगे।

- शुकनास ने चन्द्रापीड को उपदेश दिया ,इसके विषय में समझा सकेंगे।
- शुकनासका परिचय विस्तार पूर्वक दे सकेंगे।
- अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।
- चन्द्रपीड आदि का परिचय दे सकेंगे।
- बाण की गद्यशैली की विशेषताओं को बता सकेंगे।

2.3 गद्यभाग - एवं समतिक्रामत्सु से मेदोदोषं गुरुकरणम्

एवं समतिक्रामत्सु केषुचिद् दिवसेषु, राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरण - सम्भारसंग्रहार्थमादिदेश। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तं कदाचिद् दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छुकनासः सविस्तरमुवाचतात चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्याधीतसर्व-शास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलं च निसर्गतएवाभानु - भेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीप-प्रभापनेयमति-गहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः।

शब्दार्थ - एवम् = इस प्रकार से, जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है उस प्रकार से। समतिक्रामत्सु केषुचिद् दिवसेषु = कुछ दिनों के बीतते रहने पर। सम्, अति, क्रम्, शतृ।

समतिक्रामत् से सप्तमी बहुवचन । ' यस्य च भावेन भावलक्षणम् ' नियम से सप्तमी विभक्ति हुई है । राजा = राजा तारापीड ने । यहाँ राजा से कादम्बरी कथा के नायक चन्द्रापीड के पिता तारापीड से तात्पर्य है । राजकनिन् प्रत्यय । चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः = अपने पुत्र चन्द्रापीड का युवराज पद पर अभिषेक करने की इच्छा से युक्त । राजा या युवराज पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए पवित्र नदियों और तीर्थों के जल से स्नान कराने की क्रिया को अभिषेक कहा गया है । चिकीर्षुः = करने की इच्छा से युक्त, कृ + सन् + उ प्रत्यय । प्रतीहारान् = द्वारपालों को । द्वार पर रहने वाले सेवक या चौकीदार को प्रतीहार कहा गया है ' द्वारि द्वास्थे प्रतीहारः ' - अमरकोश । उपकरण - सम्भार - संग्रहार्थम् = सामग्रियों का समूह एकत्र करने के लिए, उपक्रियते अनेन इति उपकरणम्, तेषां सम्भारः उपकरणसम्भारः, तस्मै इति उपकरण - सम्भारसंग्रहार्थम् । अर्थ पद के साथ चतुर्थी के अर्थ में नित्यसमास । उपकरण - उप + कृ + ल्युट् करण अर्थ में । सम्भार- सम् + भृ + घञ् भाव में । आदिदेश = आदेश दिया । आ + दिश् + लिट् लकार प्रथम पु० एक व० । समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तम् = जिसके युवराज पद पर अभिषेक का समय निकट आ गया था ऐसे उसको । उसको से यहाँ चन्द्रापीड से अर्थ है । उस चन्द्रापीड को, समुपस्थितिः यौवराज्याभिषेकः यस्य तम् । सम् + उप + स्था + क्त । कदाचित् दर्शनार्थम् आगतम् = कभी दर्शन के लिए आये हुए उसको । दर्शनार्थम् में अर्थ पद के साथ चतुर्थी में नित्यसमास हुआ । दृश् + ल्युट् । आरूढविनयमपि = विनय से युक्त होने पर भी, आरूढःविनयः यम् इति आरूढविनयः तम् । आ + रूह् + क्त = आरूढ । विनीततरम् इच्छन् = और अधिक विनम्र बनाने की इच्छा करते हुए । शुकनासः सविस्तरम् उवाच = शुकनास ने विस्तार से कहा । विस्तरेण सह वर्तमानः इति यथा स्यात् तथा । विनीततर - वि + नी + तरप् । इच्छन् - इष् + शतृ । विस्तरः - वि + सतृ + अप् । उवाच - ब्रू-वच् लिट् लकार प्रथम पु० एकवचन । तात = हे प्रिय । स्नेहसूचक अव्यय । = विदितवेदितव्यस्य = सभी जानने योग्य विषयों को जान लेने वाले विदितं वेदितव्यं येन सः, तस्य । विद् + क्त कर्म अर्थ में । वेदितव्यं विद् + तव्य । अधीतसर्वशास्त्रस्य = सभी शास्त्रों का अध्ययन कर लेने वाले, अधीतानि सर्वाणि शास्त्राणि येन सः अधीतसर्वशास्त्रः तस्य । अधि + इ + क्त । ते = तुम्हारे लिए, आपके लिए । न अल्पम् अपि उपदेष्टव्यम् अस्ति = कुछ भी उपदेश देने योग्य विषय नहीं है । केवलं च = केवल यही है । इतना ही कहना है । निसर्गतः एव = स्वभाव से ही । नि + सृज् + घञ् । अभानुभेद्यम् = सूर्य द्वारा दूर न किया जा सकने वाला । भेत्तुं योग्यम् इति भेद्यम् । भानुना भेद्यम्, भानुभेद्यम् । न भानुभेद्यम् इति अभानुभेद्यम् - नञ् तत्पुरुष । भिद् + ण्यत् । यहाँ अज्ञानरूपी अन्धकार के विषय में कहा गया है । सूर्य उस अन्धकार को दूर नहीं कर सकता । अरत्नालोकोच्छेद्यम् = रत्नों के प्रकाश से भी जो हटाया नहीं जा सकता । रत्नानाम् आलोकः रत्नालोकः । उच्छेत्तुं योग्यम् उच्छेद्यम् । रत्नालोकेन उच्छेद्यम् रत्नालोकोच्छेद्यम् न रत्नालोकोच्छेद्यम् इति अरत्नालोकोच्छेद्यम् । उत् + छिद् + ण्यत् । अप्रदीपप्रभापनेयम् = दीपक की ज्योति से दूर न करने योग्य । प्रदीपयन्ति इति प्रदीपाः तेषां प्रभा प्रदीपप्रभा । अपनेतु योग्यम् अपनेयम् । प्रदीपप्रभया अपनेयम् इति प्रदीपप्रभापनेयम् न प्रदीपप्रभापनेयम् इति अप्रदीपप्रभापनेयम् ।

तत्पुरुष । प्रज्वलित दीपक की प्रभा से रात्रि का अन्धकार दूर हो सकता है, किन्तु युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार नहीं ।

अप + नी + यत् = अपनेयम् । अतिगहन तमः यौवनप्रभवम् = युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार अत्यन्त गहन होता है । अतिशयेन गहनम् अतिगहनम् । यहाँ अन्धकार दूर करने के कारणों के होते हुए भी अन्धकार दूर न होने का वर्णन है, अतः विशेषोक्ति अलंकार है। यहाँ तमः से अज्ञान, दर्प, मोह, गर्व और तमोगुण अभिप्रेत है। अपरिणामोपशमः = परिणामेण यः उपशमः तथाभूतः - पच जाने पर समाप्त हो जाने वाला। आगे आये हुए शब्द लक्ष्मीमदः के विशेषण हैं। लक्ष्मीमदः = लक्ष्मी अर्थात् धन-सम्पत्ति से उत्पन्न मद = नशा या अभिमान । मदपान करने पर उसका नशा पचने के साथ समाप्त हो जाता है, किन्तु धन-सम्पत्ति या राजसत्ता का मद या अभिमान परिणाम में अर्थात् वृद्धावस्था में भी समाप्त नहीं होता । मदपान का नशा उसके पचने पर उतर जाता है, किन्तु धन का नशा नहीं परिणाम का दूसरा अर्थ होगा - वृद्धावस्था । यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है । दारुणः = भीषण । दारयति इति दारुणः। भयावह । दृ+ णिच्+ उन् ।

हिन्दी भावार्थ - इस प्रकार कुछ दिनों के बीतने पर राजा ने चन्द्रापीड का युवराज के पद पर अभिषेक करने की इच्छा से द्वारपालों को सामग्रियों का समूह एकत्र करने के लिए आदेश दिया। उस चन्द्रापीड को, जिसका युवराज पद पर अभिषेक का समय निकट था, कभी मिलने के लिए आने पर विनय से परिपूर्ण होने पर भी उसे और अधिक विनम्र बनानेकी इच्छा से शुकनास ने विस्तार से कहा-

प्रिय चन्द्रापीड ! जानने योग्य सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले और सभी शास्त्रों का अध्ययन कर चुके आपके लिए उपदेश देने योग्य कुछ भी नहीं है । केवल यही कहना है कि स्वभाव से यौवन में उत्पन्न (अज्ञानरूपी) अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, जो सूर्य द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, रत्नों के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता, दीपक की ज्योति से हटाया नहीं जा सकता । (मदपान का नशा तो परिणाम अर्थात् पचकर उतर जाता है किन्तु) धनसम्पत्ति से उत्पन्न नशा परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था होने पर भी नहीं उतरता ।

कष्टमनञ्जन-वर्ति-साध्यमपरमैश्वर्य-तिमिरान्धत्वम् ।

अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्प-दाह-ज्वरोष्मा ।

सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषय-विषास्वादमोहः ।

शब्दार्थ - कष्टम् = कष्टदायी है, दुःख देने वाला है । अनंजनवर्तिसाध्यम् = अंजन की वर्ति से दूर न किया जाने योग्य। अंजनस्य वर्तिः अंजनवर्तिः, तथा साध्यम् अंजनवर्तिसाध्यम्, न अंजनवर्तिसाध्यम् अनंजनवर्तिसाध्यम् । अंजन - अंज् + ल्युट् । अपरम् = कोई दूसरा ही विलक्षण । ऐश्वर्यमितिमिरान्धत्वम् = ऐश्वर्य से उत्पन्न नेत्ररोग का अन्धापन है । ईश्वरस्य भावः ऐश्वर्यम्, ऐश्वर्यम् एव तिमिरमैश्वर्यमितिमिरम्, तेन अन्धत्वम्, ऐश्वर्यमितिमिरान्धत्वम् । अन्धस्य भावः अन्धत्वम् । ऐश्वर्य- ई श्वर + ष्यञ् । तिमिर आँखों का एक रोग है । यहाँ ऐश्वर्य से उत्पन्न अन्धकार पर मितिर रोग का आरोप होने से रूपकालंकार है । अशिशिरोपचारहार्यः = चन्दन

आदि शीतलता उत्पन्न करने वाले पदार्थों से दूर न किये जाने योग्य । शिशिरःचासौ उपचारश्च शिशिरोपचारः, हर्तुयोग्यःहार्यः, शिशिरोपचारेण हार्यः शिशिरोपचारहार्यः न अशिशिरोपचारहार्यः शिशिरोपचारहार्यः । उपचारः - उप+ च् +घञ् । हार्यः - ह + ण्यत् अतितीव्र = अत्यधिक तीव्र । अतिशयेन तीव्रः। दर्पदाहज्वरोष्मा = अभिमान रूपी दाहक ज्वर की गर्मी । दाहकारकः ज्वरः दाहज्वरः। तस्य ऊष्मा दर्पदाहज्वरोष्मा । कर्मधारयगर्भित तत्पुरुष । दर्प = दृप्+घञ् । दाह = दह्+घञ् । भाव यह है कि अन्य प्रकार के ज्वरचन्दन आदि शीतल पदार्थों के उपचार से दूर हो सकते हैं, किन्तु धनसम्पत्ति के अभिमानसे उत्पन्न ज्वर या तीव्र गर्मी शान्त नहीं होती । दर्प पर दाहज्वरः का आरोप होने से रूपकालंकार है । सततम् = निरन्तर । अमूलमन्त्रगम्यः = मूल अर्थात् जड़ी- बूटियाँ औश्र मन्त्रों के लिए अगम्या इनसे दूर न किये जाने योग्य । शम्यः पाठ भी है तब अर्थ होगा शान्त न किये जाने योग्य । मूलानि च मन्त्राश्च मूलमन्त्राः, तैः गम्यः। मूलमन्त्रगम्यः, न मूलमन्त्रगम्यः अमूलमन्त्रगम्यः। विषमः = विकट, कठिन, कुटिल । विषयविषास्वादमोहः = विषयभोग रूपी विष का आस्वादन करने से उत्पन्न मोह या मूर्च्छा । विषयाः एव विषम् विषयविषम्, तस्य आस्वादः विषयविषास्वादः, तस्मात् मोहः विषयविषास्वादमोहः। विषयों पर विष का आरोप होनेसे रूपक अलंकार है । सामान्य विष को खाने से उत्पन्न मूर्च्छा जड़ी - बूटियों और मन्त्रों से झाड़ - फूँक से दू की जा सकती है, किन्तु विषयभोग के सेवन से उत्पन्न मोह या मूर्च्छा इतनी कठिन होती है कि इनसे परे होती है ।

हिन्दी भावार्थ - कष्ट है कि ऐश्वर्य से उत्पन्न कुछ दूसरे ही प्रकार का तिमिर नामक नेत्ररोग का अन्धापन होता है, जो अंजन की वर्तिका से दूर नहीं किया जा सकता । दर्प रूपी दाहकारी ज्वर की गर्मी अति तीव्र होती है, जो शीतल पदार्थों द्वारा उपचार से दूर नहीं होती । विषयभोग रूपी विष के आस्वादन से उत्पन्न मूर्च्छा विषम तथा जड़ी - बूटियों और मन्त्रों की पहुँच से परे होती है ।

नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुख-संनिपात-निद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे ।

गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वा। अविनयानामेकैकमप्येषामायतनम्, किमुत समवायः।

शब्दार्थ - नित्यम् अस्नानशौचवध्यः = सदा ही स्नान और शुद्धि की विधियों से नष्ट करने योग्य नहीं होती । स्नानं च शौचं च स्नानशौचे। ताभ्यां वध्यः स्नानशौचवध्यः, न स्नानशौचवध्यः अस्नानशौचवध्यः। द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुष समास । वध्यः वध्यत् । बलवान् - बल+ मतुप । रागमलावलेपः = राग अर्थात् विषयभोग की अभिलाषा रूपी मल - गन्दगी, कीचड़ या मैल का अवलेप । रागः एव मलः रागमलः, तस्य अवलेपः रागमलावलेपः। कर्मधारयगर्भित तत्पुरुष समास । गम्यः - गम् + यत् । आस्वाद - आ+ स्वद् + घञ् । स्नान - स्ना/ल्युट् । अवलेपः - अव + लिप् + घ! । राग के ऊपर मल का आरोप होने से रूपक अलंकार है । सामान्य गन्दगी या कीचड़ लग जाने पर स्नान या सफाई की अन्य विधि से समाप्त हो जाती है, किन्तु राग रूपी मल इतना गाढ़ा होता है कि नष्ट नहीं होता । अजस्रम् निरन्तर । अक्षपावसानप्रबोधा रात्रि

समाप्त हो जाने पर भी जागने न देने वाली। क्षपयाः अवसानम् क्षपावसानम्, तस्मिन् प्रबोधः क्षपावसानप्रबोधः, न क्षपावसानप्रबोधः यस्यां तथाभूता । घोरा = गहरी । राज्यसुख-सन्निपातनिद्रा = राज्य के सुखों के समूह से उत्पन्न सन्निपात रोग की नींदा राज्यस्य सुखानि राज्यसुखानि तेषां सन्निपातः एव सन्निपातः राज्यसुखसन्निपातः तेन निद्रा, सम्+नि+पत्+घञ् । राज्यसुखसन्निपातनिद्रा । गर्भेश्वरत्वम् = जन्म से ही राजा या धनसम्पन्न होना । ईश्वरस्य भावः ईश्वरत्वम् गर्भात् ईश्वरत्वम् गर्भेश्वरत्वम् । अभिनवयौवनत्वम् = नयी युवावस्था होना । यूनः भावः यौवनम्, अभिनवं यौवनं यस्य सः, अभिनवं च तत् यौवनम् अभिनवयौवनं, तस्य भावः। अप्रतिमरूपत्वम् = अद्वितीय रूप से सम्पन्न होना। न प्रतिमा यस्य तथाभूतम् अप्रतिमम्, अप्रतिमं रूपं यस्य सः अप्रतिमरूपः, तस्य भावः अप्रतिमरूपत्वम् । अमानुषशक्तित्वम् = मनुष्य से बढ़कर शक्ति से सम्पन्न होना । मनुष्यस्य इयम् मानुषी । न मानुषी इति अमानुषी । अमानुषी शक्तिः यस्य सः तथाभूतः अमानुषशक्तिः तस्य भावः। अनर्थपरम्परा = अनर्थों की कड़ी या शंखला है । अनर्थानां परम्परा अनर्थराम्परा । एषाम् =इन चारों में । एकैकम् - प्रत्येक । अवनयानाम् - अवनय के कार्यों के, उद्वण्डता के आयतनम् = घर हैं कारण है । किमुत समवाय = फिर इनका समवाय होने पर, इन सबके एक व्यक्ति में एकत्र होने पर कहना ही क्या ? यहाँ हेतु अलंकार है ।

हिन्दी भावार्थ- सुख भोग की अभिलाषा रूपी मल का लेप इतना तगड़ा होता है कि स्नान और शुद्धि के उपायों से समाप्त नहीं होता । राज्यसुख रूपी सन्निपात ज्वर की निद्रा निरन्तर रात्रि के समाप्त होने पर भी न टूटने वाली और घोर होती है । इस कारण आपसे विस्तार से कहा जा रहा है। जन्म से ही राजा या धनसम्पन्न होना, नयी युवावस्था, अद्वितीय रूपवान् होना और मनुष्य से बढ़कर शक्ति से युक्त होना - यह अनर्थ की बड़ी शृङ्खला है । इनमें एक-एक उद्वण्डता के घर हैं, इनके समूह की तो बात ही क्या ।

यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः।

शब्दार्थ - मित्रलाभ में कहा गया है - यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता । एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥ यौवनारम्भे = यौवन के आरम्भ में, नयी युवावस्था में । यौवनस्य आरम्भःयौवनारम्भः तस्मिन् । आरम्भः - आ + रम्भ घञ् । प्रायः = बहुधा, अधिकांशतः। शास्त्रजल - प्रक्षालननिर्मला अपि = शास्त्र रूपी जल से धुलकर अज्ञानरूपी मल से मु होने पर भी । शास्त्रम् एव जलम् शास्त्रजलम् । तेन प्रक्षालनम् शास्त्रजलप्रक्षालनम् । प्रक्षालन - प्र + क्षाल् ल्युट् । निर्गतः मलः यस्याः सा निर्मला, शास्त्रजलेन प्रक्षालनेन निर्मला तथाभूता (बुद्धि का विशेषण) बुध् + क्तिन् । बुद्धिः कालुष्यम् उपयाति = बुद्धि कलुषता को प्राप्त होती है । मलिन हो जाती है, विवेकहीन हो जाती है । कलुषायाः भावः कालुष्यम् । कालुष्य शब्दपर श्लेष है । इसका बुद्धि के पक्ष में अर्थ हे अववेकरूपी कलुषता । शास्त्र पर जल का आरोप होने से

रूपकालंकार है। कलुष् + तल् + टाप् = कलुषता। शास्त्र पर जल का आरोप होने से रूपकालंकार है। कलुष + ष्यञ्। अनुज्झितधवलता अपि = धवलता या सफेदी को न छोड़ने पर भी। न उज्झिता अनुज्झिता। धवलायाः भावः धवलता, अनुज्झिता धवलता यया सा। बहुब्रीहि। (दृष्टिः का विशेषण)। यूनां दृष्टिः = युवकों की दृष्टि। सरागा एव भवति = राग से युक्त ही होती है। राग शब्द पर श्लेष होने से इसके दो अर्थ हैं - लालिमा से युक्त। कामासक्ति से युक्त। लालिमा का अर्थ लेने पर विरोध की प्रतीति होती है, किन्तु दूसरा अर्थ लेने पर उसका परिहार हो जाता है, अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है। तात्पर्य यह है कि बाहर से धवल या पवित्र दिखायी देने पर भी कामासक्ति से युक्त ही होती है। उज्झित - उज्झ् + क्त। धवलता- धवल + तल् + टाप्। शुष्कपत्रं वात्या इव = सूखे पत्ते को जैसे बवण्डर वाली आँधी। आत्मेच्छया अतिदूरं अपहरति = इच्छानुसार दूर उड़ा कर ले जाती हैं शुष्कं च तत् पत्रम् शुष्कपत्रम्, वातानां समूहः वात्या। वात्या धूल लेकर चक्कर काटते हुए चलने वाले बवण्डर को कहते हैं। यौवन-समये = युवावस्था में। समुद्भूतरजोभ्रान्तिः प्रकृतिः = जिसमें रज (धूल या रजोगुण) चक्कर वेग से बढ़ा रहता है। इस पर श्लेष है। यह वात्या और प्रकृति दोनों का विशेषण है।

1- जिसमें धूल का चक्कर उठाने वाला बवण्डर हो ऐसी वात्या।

2- जिसमें रजोगुण का विभ्रम अतिशय रूप में बढ़ा हुआ है ऐसी प्रकृति।

समुद्भूत - सम्, उत् + भू + क्त। भ्रान्ति - भ्रम् + क्तिन्। प्रकृतिः - प्र + कृ + क्तिन्। वात+ वत् + टाप्। पुरुषम् आत्मेच्छया अतिदूरम् अपहरति = पुरुष को अपनी इच्छानुसार बहुत दूर भटका ले जाती है। सन्मार्ग से बहुत दूर हटा देती है।

हिन्दी भावार्थ - यौवन के आरम्भ में प्रायः शास्त्ररूपी जल से धुलकर निर्मल अर्थात् अज्ञान रहित होने पर भी बुद्धि कलुषता को प्राप्त करती है। नवयुवकों की दृष्टि अपनी धवलता (अर्थात् सरलता) को न छोड़ने पर भी राग या कामुकतादि आसक्ति से युक्त होती है। जैसे धूल के बवण्डर वाली आँधी सूखे पत्ते को अपनी इच्छा से बहुत दूर उड़ा ले जाती है, वैसे ही युवावस्था में रजोगुण के भ्रम वाली प्रकृति पुरुष को अपनी इच्छा के अनुसार बहुत दूर भटका देती है।

अभ्यास प्रश्न 1.

1. राजातारापीड किसके अभिषेक की बात करते हैं

क. वैशम्पायन ख. चन्द्रपीड ग. पुण्डरीक घ. शुकनाश

2. शुकनाश कौन था

क. मन्त्री ख. राजा ग. प्रतीहार घ. सैनिक

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. दर्प दाह।

4. सततमूलमन्त्रगम्यो विषयास्वादमोहः।

सत्य / असत्य का निर्धारण करें

5 युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार अति गहन होता है ()

6. रागवलेप नित्य स्नान से समाप्त होता है

()

इन्द्रियहरिणहारिणी च सतत-दुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका । नवयौवन-कषायितात्मनश्च
सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः।
नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्त्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु ।

शब्दार्थ - इन्द्रिय हरिणहारिण = इन्द्रिय रूपी हरिणों को लुभानेवाली, इन्द्रियाणि एवहरिणाः
इन्द्रियहरिणाः, तान् हरति इति इन्द्रियहरिणहारिणी । ह, णिनि, डीप् । उपभोगमृगतृष्णिका का
विशेषण है । इयम् उपभोगमृगतृष्णिका = यह कामोपभोग रूपी मृगतृष्णा । उपभोगः एव
मृगतृष्णिका उपभोग मृगतृष्णिका । कर्मधारय । उप + भृञ् + घञ् । सततम् अतिदुरन्ता =
निरन्तर अतिशय दुःख के साथ समाप्त होने वाली । विषयसुखों से कभी तृप्ति नहीं होती, अपितु
उनके भोग की प्रचण्ड इच्छा मृगतृष्णा के समान बढ़ती जाती है । मनु का कथन है - न जातु
कामः कामानमुप - भोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्धते ॥ नवयौवन-
कषायितात्मनः = नयी युवावस्था से जिसका चित्त कसैला हो गया है काम भावना के विकार से
त्रस्त है, ऐसे पुरुष को नवं च तत् यौवनम् नवयौवनम् । तेन कषायितः आत्मा यस्य तथाभूतः,
तस्य । कर्मधारयगर्भित बहुब्रीहि । मन के सन्दर्भ में कसैला का अर्थ होगा परिवर्तित, भोगेच्छा से
अभिभूत होना । कषायःइतच् प्रत्यय = कषायित । सलिलानि इव = जल के समान, जैसे
आँवला आदि कसैली वस्तु खाने पर जल मीठा न होने पर भी मीठा लगता है । तानि एव
विषयस्वरूपाणि = वे ही भोग की वस्तुएँ । विषयस्य स्वरूपाणि विषयस्वरूपाणि ।
आस्वाद्यमानानि = आस्वादन की जाने पर, भोग करते जाने पर । आ + स्वद् + णिच् +
शानच् कर्म में । मनसः मधुरतराणि आपतन्ति = मन के लिए और मधुर प्रतीत होती है । मधुर+
तरप् । दिग्मोहः इव = दिग्भ्रम के समान । दिशः मोहः दिङ्मोहः। उन्मार्गप्रवर्त्तकः = विपरीत मार्ग
पर ले जाने वाला । उत् ऊर्ध्व यावत् मार्गः उन्मार्गः। तस्मिन् प्रवर्त्तकः उन्मार्गप्रवर्त्तकः। विषयेषु
अत्यासङ्गः = विषयभोगों में अतिशय आसक्ति । अतिशयितः आसंगअत्यासंगः। आ + सञ्ज्
+ घञ् । पुरुषं नाशयति = पुरुष को भटका देती है, नष्ट कर देती है । यहाँ उपमा अलंकार है ।

हिन्दी भावार्थ - विषयभोग की यह मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी हरिणों को दौड़ाने वाली और सतत
अन्त में घोर दुःख देने वाली होती है । नयी युवावस्था के कारण जिस पुरुष का चित्त भोगासक्ति
से कसैला हो जाता है, उसके मन को वे ही विषयभोग और अधिक मीठे प्रतीत होने लगते हैं
जैसे (मुख कसैला होने पर) जल और मीठा लगने लगता है । विषयभोगों में अतिशय आसक्ति
दिग्भ्रम के समान पुरुष को विपरीत मार्ग पर ले जाकर उसका नाश कर देती है उसे भटका देती है।

**भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगतमले हि
मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकर-गभस्तयो विशन्ति सुखेनोप देशगुणाः।
गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु
करिण इव शङ्खाभरणमाननशोभासमुदयमधि- कतरममुपजनयति । हरति च
अतिमलिनमन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसयम निशाकर इव ।**

शब्दार्थ - भवादृशाः एव = आप जैसे ही । भवन्तः इव दृश्यन्ते ये ते । भवत् + दृश् + क' प्रत्यय । उपदेशानां भाजनानि = उपदेशों के पात्र होते हैं, योग्य होते हैं । उपदेशः - उप + दिश् + घञ् । हि = क्योंकि । अपगतमले मनसि = विकार रहित मन में । मन के पक्ष में मल का अर्थ होगा कामादि विकार । अपगतः मलः यस्मात् तादृशे । यह मन और स्फटिक मणि दोनों का विशेषण है । अपगतमले स्फटिक मणौ = धूल और मैल हटाकर स्वच्छ किये गये स्फटिक मणि में । स्फटिकश्चासौ मणिश्च स्फटिकमणिः । कर्मधारय । तस्मिन् रजनिकर - गभस्तयः इव = चन्द्रमा की किरणों के समान । रजनिकरः = चन्द्रमा । रजनीं करोति इति रजनिकरः, तस्य गभस्तयः रजनिकरगभस्तयः । उपदेशगुणाः सुखेन विशन्ति = उपदेश के गुण या वचन सुखपूर्वक सरलता से प्रवेश करते हैं, प्रभाव डालते हैं । श्लिष्ट उपमा अलंकार है । दुर्जन और भले व्यक्ति पर उपदेश के निर्मल वचनों का क्या प्रभाव पड़ता है इसका वर्णन करते हैं । अमलम् अपि सलिलम् इव = निर्मल भी जल के समान । (अमलम् अपि) गुरुवचनम् = गुरुजन के रागद्वेषरहित वचन । श्रवणस्थितम् शूलम् उपजनयति = कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है । यहाँ भी दो अर्थ होंगे - निर्मल भी जल कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है और रागद्वेष रहित निर्मल भी गुरुवचन कान में पड़ने पर शूल जैसा कष्ट या क्रोध उत्पन्न करता है । अभव्यस्य = दुष्ट के लिए । भव्य का अर्थ है भला, सज्जन । अभव्य का अर्थ होगा - दुराचारी, दुर्जन के लिए । इतरस्य तु = किन्तु दूसरे के लिए, अर्थात् भव्य के लिए, भले के लिए । करिणः = हाथी के लिए । करः अस्यास्ति इति करी, तस्या कर+इन् । शङ्खाभरणम् इव = शङ्खों के आभूषण के समान । शङ्खः एव आभरणम् शङ्खाभरणम् । अधिकतरम् आननशोभसमुदयम् उपजनयति = और अधिक मुख की शोभा के सम्भार को और बढ़ा देता है । आननस्य शोभा आननशोभा, तस्याः समुदयम् । उप + जन् + णिच् + लट् । अतिमलिनम् अन्धकारम् इव सकलं दोषजातं हरति च = गुरु या गुरुजनों का उपदेश अत्यन्त काले अन्धकार जैसे सम्पूर्ण दोषों के समूह को दूर करता है । अतिशयेन मलिनम् अतिमलिनम् । दोषाणां जातम् दोषजातम् - अवगुणों के समूह को । अतिमलिनम् में श्लेष है, अतः दोषजातम् के साथ भी इसका अर्थ किया जायेगा ।

हिन्दी भावार्थ - आप जैसे ही उपदेश के पात्र होते हैं । जैसे धूल आदि मैल हटा देने पर स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें प्रवेश करने लगती हैं, वैसे ही कामादि विकार से रहित मन में उपदेश के गुण सुख सहित प्रभाव डालते हैं । जैसे निर्मल जल भी कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है, वैसे ही दुर्जन के लिए गुरुजन का रागद्वेषादि रहित निर्मल वचन भी कान में पड़ने पर उसका क्रोध बढ़ाता है । उससे भिन्न (भले व्यक्ति) के लिए वह मुख की शोभा को और अधिक वृद्धि प्रदान करता है जैसे शङ्ख का आभूषण हाथी के मुख की शोभा बढ़ा देता है ।

गुरुपदेशः प्रशमहेतुर्वयःपरिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयाति । अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य । कुसुमशर-शरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम् ।

शब्दार्थ - अत्यन्त क्लृप्त से युक्त भी दोषसमूह को । वही गुरुपदेश प्रशम का हेतु होता है

प्रशमहेतुः = काम आदि विकारों के शमन का हेतु । प्रशमस्य हेतुः प्रशमहेतुः । प्र + शम् + घञ् । गुरुपदेशः = गुरु जन का उपदेश । गुरुपदेश की उपमा वयः परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था से दी गयी है । वयः परिणामः इव शिरसिजजालम् पलितरूपेण अमलीकुर्वन् = जैसे वृद्धत्व सिर के केशों को पलित अर्थात् सफेदी के रूप में निर्मल बनाता हुआ वयसः परिणामः वयः परिणामः । शिरसि जायन्ते इति शिरसिजाः तेषां जालम् । शिरसि + जन् + ड प्रत्यय । अमलीकुर्वन् = न मलं यस्मिन् तत् अमलम् अनमलम् अमलं सम्पद्यमानं करोति इति । अमल + कृ + च्वि + शत् । तदेव गुणरूपेण परिणमयति = उन केशों को ही गुण रूप में बदल देता है । वैसे ही गुरु का उपदेश बुद्धि में उठने वाले विचारों को दोषरहित करता हुआ उन्हें गुणरूप में बदल देता है । परि + नम् + णिच् + लट् लकार । यहाँ यह भी अर्थ लिया जा सकता है कि गुरुपदेश प्रशम अर्थात् इन्द्रियनिग्रह का हेतु बनकर दोष समूह को भी गुण रूप में बदल देता है । अयम् एव च = और यही है । अनास्वादितविषयरसस्य ते = विषयभोगों के रस का आस्वादन किये हुए तुम्हारे लिए । विषयाणां रसः विषयरसः, आस्वादितः विषयरसः येन सः आस्वादितविषयरसः, न आस्वादितविषयरसः, अनास्वा 0 तस्य । कुसुमशर - शर - प्रहार - जर्जरिते = कामदेव के बाणों के प्रहार से जर्जरित, छलनी बने हुए, तार - तार हुए, जीर्ण हुए । कुसुमशर = कामदेव, कुसुमानि एव शराः यस्य सः, कुसुमशरः, तस्य शराः कुसुमशरशराः, तेषां प्रहारः कुसुमशरशरप्रहार +, तैः जर्जरितम्, तस्मिन् । (हृदि का विशेषण) । हृदि = हृदय में । हृत् से सप्तमी एकवचन । उपदिष्टं जलम् इव गलति = उपदेश का वचन जल के समान बह जाता है । व्यर्थ हो जाता है । उपमा अलंकार है । शरशर की आवृत्ति में लाटानुप्रास है ।

हिन्दी भावार्थ - और गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही अतिशय निन्दित दोषों के समूह को दूर कर देता है । चित्त के विकारों के प्रशमन का कारणभूत गुरुपदेश बुद्धि में उत्पन्न विचारों को वैसे ही गुण के रूप में बदल देता है, जैसे बुढ़ापा सिर के केशों को निर्मल करते हुए उन्हें पलित या सफेदी में बदल देता है । विषयभोगों का आस्वादन न किये हुए आपके लिए तो यही उपदेश का समय है । कामदेव के बाणों के प्रहार से छलनी हुए हृदय में उपदेश का वचन जल के समान नीचे गिरकर व्यर्थ हो जाता है ।

अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य । चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः द्य किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वडवानलो वारिणा द्य गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमल - प्रक्षालन- क्षममजलं स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणम् ।

शब्दार्थ - दुष्प्रकृतेः = दुष्ट स्वभाव वाले का । दुष्टा प्रकृतिः यस्य सः दुष्प्रकृतिः । अन्वयः श्रुतं च = उच्च वंश और शास्त्रों की शिक्षा । अविनयस्य अकारणं भवति = उसकी उद्वण्डता (के न होने का) कारण नहीं होती । ‘अविनयस्य’ के स्थान पर ‘विनयस्य’ पाठ भी है । जब अर्थ होगा विनय का कारण नहीं होती । तात्पर्य यह है कि जिसका स्वभाव ही दूषित है, उसके अविनय के विषय में उसका उच्च वंश में जन्म लेना या गुरु से शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त किये होना कोई अन्तर

नहीं उत्पन्न करता , निष्प्रभावी होता है । विनयः - वि + नी + अच् । चन्दनप्रभवः अनलः = चन्दन की लकड़ी से उत्पन्न अग्नि । चन्दनात् प्रभवः यस्य तथाभूतः चन्दनप्रभवः । किं न दहति = क्या नहीं जलाता है ? वह भी जलाता ही है । इसी प्रकार उच्च वंश में उत्पन्न और शास्त्रों का अध्ययन किया हुआ भी यदि उसका स्वभाव दुष्टता का है तो उद्दण्ड होता ही है । किं वा = अथवा क्या ? प्रशमहेतुना अपि वारिणा = ताप को पूर्णतः शान्त करने का हेतु होने पर भी जल से। वडवानलः प्रचण्डतरी न भवति = वडवानल और अधिक प्रचण्ड नहीं होता ? तात्पर्य यह है कि जैसे अग्नि बुझाने का हेतु होने पर भी जल से वडवानल और प्रचण्ड होता है और चन्दन शीतलता प्रदान करने वाला है किन्तु उसकी लकड़ी से उत्पन्न अग्नि भी जलाती है उसी प्रकार उच्च वंश में जन्म लेने पर अथवा शास्त्रों का अध्ययन किये जाने पर भी दुष्ट स्वभाव वाला उद्दण्ड होता है । अप्रचण्डतरः प्रचण्डतरः सत्पद्यमानः भवित इति । च्वि प्रत्यय । गुरुपदेशः च = और गुरु का उपदेश है । नाम = वस्तुतः । पुरुषाणाम् = पुरुषों के लिए । अखिल-मल-प्रक्षालन-क्षमम् = मन के सभी कालुष्य रूपी मैल को स्वच्छ करने में समर्थ । अखिलश्चासौ मलः अखिलमलः, तस्य प्रक्षालनम् अखिलमलप्रक्षालनम् । तस्य क्षमम् इति । अजलं स्नानम् = बिना जल का स्नान है। अनुपजा त- पलितादि- वैरूप्यम् = केश पकना आदि विरूपता जिसमें उत्पन्न नहीं है । पलितम् आदि यस्य तथाभूतम् च तत् वैरूप्यम् । अजरं वृद्धत्वम् = जरा अर्थात् बुढ़ापा के बिना वृद्धत्व है । न जरा यस्मिन् तत् अजरम् । वृद्धस्य भावः वृद्धत्वम् । वृद्ध + त्व । अवस्था से वृद्ध न होने पर भी ज्ञान और आचरया में वृद्धवत् । अनारोपितमेदोदोषम् = चर्बी का दोष बढ़ाये बिना । मेदाः रूपः दोषः मेदोदोषः, न आरोपितः मेदोदोषः येन सः । आरोतपः-आ + रुह् + णिच + क्त । गुरुकरणम् = गुरु बनाना है । गुरु का अर्थ होगा मोटा और गौरवशाली । स्थूल होने पर चर्बी का दोष बढ़ जाता है, किन्तु गुरु के उपदेश से चर्बी बढ़े बिना व्यक्ति बुरु अर्थात् गौरवशाली हो जाता है । अगुरुं गुरुं सम्पद्यमानं करोति इति गुरुकरणम् । गरु + कृ + च्वि + ल्युट् प्रत्यय । यहाँ विरोधाभास है, चर्बी बढ़े बिना भारी पर अर्थ लेने पर ।

हिन्दी भावार्थ - उच्च वंश में जन्म और शास्त्रों की शिक्षा दुष्ट स्वभाव वाले की उद्दण्डता के ऊपर कोई प्रभाव नहीं डालती । चन्दन से भी उत्पन्न अग्नि क्या जलाता नहीं है ? (अग्नि) को बुझाने के हेतु जल से भी क्या वडवानल और प्रचण्ड नहीं होता ? गुरुजन का उपदेश तो पुरुष के लिए सभी (उसके अन्तः के) कालुष्य रूपी मैल को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है । केश पकना आदि कुरूपता से रहित वृद्धावस्था के बिना भी वृद्धत्व है । चर्बी के दोष को बिना बढ़ाये गुरु (भारी अर्थात् गौरवशाली) बनाने की प्रक्रिया है ।

अभ्यास प्रश्न. 2

1. हारिणी का क्या अर्थ है

क. चुराना ख. लुभाना ग. भगाना घ. मारना

2. कसैले मुख वाले व्यक्ति को जल कैसा लगता है

क. मीठा ख. तीता ग. स्वाद विहीन घ. बिना स्वाद

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. भवादृशा एव भाजनानि ।
 4. जलमिव उपदिष्टम् ।

सत्य / असत्य का ज्ञान करें

5. गुरुपदेश दोष समूह के शमन का कारण होता है ()
 6. चर्बी के दोष के बिना बढ़ाये गुरु बनाने की प्रक्रिया है ()

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न

- 1 - धूल या मैल हटा देने पर स्फटिक मणि में क्या प्रवेश करने लगती है ?
 2 - निर्मल जल भी किसमें पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है ?
 3 - शंख का आभूषण किसके मुख की शोभा बढ़ा देता है ?
 4 - चन्द्रमा किसको दूर कर देता है ,
 5 - गुरुजन का उपदेश किसके मैल को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है ?

2.4 सारांश

इस इकाई में गुरुपदेश का वर्णन किया गया है। गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही अतिशय निन्दित दोषों के समूह को दूर कर देता है। चित्त के विकारों के प्रशमन का कारणभूत गुरुपदेश बुद्धि में उत्पन्न विचारों को वैसे ही गुण के रूप में बदल देता है, जैसे बुढ़ापा सिर के केशों को निर्मल करते हुए उन्हें पलित या सफेदी में बदल देता है। विषय भोगों का आस्वादन न किये हुए आपके लिए तो यही उपदेश का समय है। कामदेव के बाणों के प्रहार से छलनी हुए हृदय में उपदेश का वचन जल के समान नीचे गिरकर व्यर्थ हो जाता है। जैसे धूल आदि मैल हटा देने पर स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें प्रवेश करने लगती हैं, वैसे ही कामादि विकार से रहित मन में उपदेश के गुण सुख सहित प्रभाव डालते हैं। जैसे निर्मल जल भी कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है, वैसे ही दुर्जन के लिए गुरुजन का रागद्वेषादि रहित निर्मल वचन भी कान में पड़ने पर उसका क्रोध बढ़ाता है। चन्दन से भी उत्पन्न अग्नि क्या जलाता नहीं है ? (अग्नि) को बुझाने के हेतु जल से भी क्या वडवानल और प्रचण्ड नहीं होता ? गुरुजन का उपदेश तो पुरुष के लिए सभी (उसके अन्तः के) कालुष्य रूपी मैल को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है। केश पकना आदि कुरूपता से रहित वृद्धावस्था के बिना भी वृद्धत्व है। विषयभोग की मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी हरिणों को दौड़ाने वाली और सतत अन्त में घोर दुःख देने वाली होती है। नयी युवावस्था के कारण जिस पुरुष का चित्त भोगासक्ति से कसैला हो जाता है, उसके मन को वे ही विषयभोग और अधिक मीठे प्रतीत होने लगते हैं जैसे (मुख कसैला होने पर) जल और मीठा लगने लगता है। स्वभाव से यौवन में उत्पन्न (अज्ञानरूपी) अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, जो सूर्य द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, रत्नों के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता, दीपक की ज्योति से हटाया नहीं जा सकता। (मदपान का नशा तो परिणाम अर्थात् पचकर उतर जाता है किन्तु) धनसम्पत्ति से उत्पन्न नशा

परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था होने पर भी नहीं उतरता ।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
घोरा	गहरी ।
राज्यसुख-	राज्य के सुखों के समूह से उत्पन्न
सन्निपातनिद्रा	सन्निपात रोग की नींद ।
गर्भेश्वरत्वम्	जन्म से ही राजा या
अभिनवयौवनत्वम्	नयी युवावस्था होना ।
अप्रतिमरूपत्वम्	अद्वितीय रूप से सम्पन्न होना ।
अमानुषशक्तित्वम्	मनुष्य से बढ़कर शक्ति से सम्पन्न होना ।
अनर्थपरम्परा	अनर्थों की कड़ी या शंखला है ।
एषाम्	इन चारों में ।
एकैकम्	प्रत्येक ।
आयतनम्	घर हैं कारण है ।
किमुत समवाय	फिर इनका समवाय होने पर

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 . 1 . ख 2. क 3 . ज्वरोष्मा 4. विषमो विषय 5. सही 6. गलत
 अभ्यास प्रश्न 2 . 1 . ख 2. क 3 . भवन्ति 4. गलति 5. सही 6. सही
 अति लघु - उत्तरीय प्रश्न (1) चन्द्रमा की किरणों (2) कान में पड़ने पर (3) हाथी के मुख की (4) काले अन्धकार को (5) कालुष्य रूपी मैल को धोने में समर्थ

2.7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2- संस्कृत साहित्य का इतिहास .	बलदेव उपाध्याय	शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इसका हिन्दी में अर्थ लिखिये - अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य ।

चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः द्य किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वडवानलो वारिणा
द्यगुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमल - प्रक्षालन - क्षममजलं स्नानम्, नुपजातपलितादि वैरूप्य
मजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणम् ।

2. बाण की गद्यशैली की विवेचना कीजिए ।

इकाई 3. असुवर्णविरचनमग्राम्यम् से चिन्तितापि वञ्चयति तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 असुवर्णविरचनमग्राम्यम् से चिन्तितापि वञ्चयति तक व्याख्या

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में गुरुपदेश का वर्णन किया गया है आपने यह जाना। गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही अतिशय निन्दित दोषों के समूह को दूर कर देता है।

इस इकाई में आप चन्द्रापीड को शुकनास द्वारा दिये गए उपदेशों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि चन्द्रापीड कौन था ? चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए कहते हैं कि कानों का सोने के बिना निर्मित अग्राम्य आभूषण है। ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है, ऐसा जागरण है, जो थकान नहीं उत्पन्न करता। राजाओं के लिए तो इसका विशेष महत्व है। उनको उपदेश देने वाले बिरले होते हैं। प्रजाजन भय के कारण राजा के वचन का प्रतिध्वनि के समान अनुगमन करते हैं। प्रचण्ड दर्परूपी श्वयथु रोग की सूजन के कारण उनके कानों के विवर बन्द होने से वे उपदेश दिये जाने पर भी सुनते नहीं हैं और सुनते रहने पर भी हाथी के समान नेत्रों को बन्द कर अनादर दिखाते हुए उपदेश देने वाले गुरुजनों को खिन्न कर देते हैं।

अतः इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप चन्द्रापीड को शुकनास द्वारा दिये गए उपदेशों के महत्व को भली भाँति समझा सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- राजाओं की प्रकृति व अहंकार के विषय में बताएंगे।
- ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है, इसकी व्याख्या करेंगे।
- विदग्धता या पाण्डित्य के महत्व को समझाएंगे।
- गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, इस तथ्य की समीक्षा कर सकेंगे।

3.3 असुवर्णविरचनमग्राम्यम्..... चिन्तितापि वञ्चयति तक व्याख्या

असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः। विशेषेण राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दामदर्पश्चयथुस्थगितश्रवणविवराश्रोपदिश्यमानमापि ते न शृण्वन्ति। शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरुन्।

शब्दार्थ - असुवर्णविरचनम् = सोने के बिना बनाया गया। सुवर्णस्य विरचन यस्मिन् तत् सुवर्णविरचनम्, न सुवर्णविरचनम् असुवर्णविरचनम्। अग्राम्यम् = अग्राम्य, जो गँवारू नहीं है,

भद्रा नहीं है, सुन्दर । न ग्राम्यम् अग्राम्यम् । नञ् तत्पुरुष । ग्राम, यत् । कर्णाभरणम् = कानों का आभूषण है । गुरु का उपदेश कानों में पहुँचने पर उन्हें ज्ञान से भर देता है, अतः आभरण अथवा भरी जाने वाली वस्तु है, शोभा है । अतीतज्योतिः आलोकः = बिना ज्योति का प्रकाश है। अतीत ज्योतिः यस्मात् तथाभूतः। अन्य ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है। उपदेश से उत्पन्न ज्ञान का प्रकाश । अतीत- अति + इ + क्त । ज्योतिः - द्युत् + इसुन् । आलोकः - आ + लोक + घञ् । नोद्वेगकरः प्रजागरः = जिसमें किसी प्रकार का खेद नहीं होता इस प्रकार कर निरन्तर जागरण है। यहाँगुरुपदेश को पक्ष में प्रजागर का अर्थ होगा निरन्तर जागरूकता । विशेषण राज्ञाम् = राजाओं के लिए तो इसका विशेष रूप से महत्त्व है । हि = क्योंकि । तेषाम् उपदेशारः विरलाः = उनको उपदेश देने वाले दुर्लभ होते हैं । उप+ दिश् +तृच् । प्रतिशब्दकः इव = प्रतिध्वनि के समान । प्रतिगतः शब्दः प्रतिशब्दः, प्रतिशब्दः एव प्रतिशब्दकः । जैसे कोई ध्वनि करने पर उसकी प्रतिध्वनि उसका अनुकरण करती है वैसे ही। जनः = लोग, प्रजाजन । भयात-भय के कारण । राजवचनम् अनुगच्छति = राजा के आदेश का ही अनुपालन करते हैं । राज्ञः वचनम् राजवचनम् । उद्दामदर्पश्चयथु - स्थगित- श्रवणविवराः = उत्कट दर्परूपी श्वयथु रोग से जिनके कानों के विवर सूजकर बन्द हो गये हैं । उद्दामा दर्पः एव श्वयथुः उद्दामदर्पश्चयथुः, तेन स्थगिते श्रवणविवरे येषां ते । उपदिश्यमानम् अपि = उपदेश दिये जाने पर भी । उप + दिश्+ शानच्, कर्म में । ते न शृण्वन्ति = वे नहीं सुनते हैं । शृण्वन्तः अपि च = और सुनते हुए भी । श्रु+शतृ । गजनिमीलितेन = हाथी के समान नेत्रों को बन्द कर । गजस्य निमीलितम् गजनिमीलितम्, तेन । उपमान तत्पुरुष । अवधीरयन्तः = अनादर करते हुए अव + धीर् + शतृ । हितोपदेशदायिनः गुरुन् खेदयन्ति = हितकारी उपदेश देनेवाले गुरुजनों को खिन्न कर देते हैं, कष्ट देते हैं । खिद + णिच् + लट् लकार । हितस्य उपदेशः हितोपदेशः हितोपदेशः, तं ददति इति ।

हिन्दी भावार्थ - कानों का सोने के बिना निर्मित अग्राम्य आभूषण है । ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है, ऐसा जागरण है, जो थकान नहीं उत्पन्न करता । राजाओं के लिए तो इसका विशेष महत्त्व है। उनको उपदेश देने वाले बिरले होते हैं । प्रजाजन भय के कारण राजा के वचन का प्रतिध्वनि के समान अनुगमन करते हैं । प्रचण्ड दर्परूपी श्वयथु रोग की सूजन के कारण उनके कानों के विवर बन्द होने से वे उपदेश दिये जाने पर भी सुनते नहीं हैं और सुनते रहने पर भी हाथी के समान नेत्रों को बन्द कर अनादर दिखाते हुए उपदेश देने वाले गुरुजनों को खिन्न कर देते हैं ।

अहंकार- दाहज्वरमूर्च्छान्धाकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारिणी धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः। आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशो लक्ष्मीमेव प्रथमम् । इयं हि सुभटखड्ग-मण्डलोत्पलविभ्रम - भ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागारात् उद्गता ।

शब्दार्थ - हि - सचमुच । अहंकार - दाहज्वर - मूर्च्छान्धकारिता = अहंकार रूपी दाहज्वर की मूर्च्छा से जिसके लिए अन्धकार छाया हुआ करता है । अहम् इति करणम् अहङ्कार, स एव दाहज्वर अहंकारदाहज्वरः, तेन या मूर्च्छा, तथा अन्धकारिता । विह्वलाः = व्याकुल, राजप्रकृतिः

= राजाओं की प्रकृति । राज्ञां प्रकृतिः राजप्रकृतिः। अहंकार पर दाहज्वर का आरोप होने से रूपकालंकार। तात्पर्य यह कि दाहज्वर की मूर्च्छा से जैसे अन्धकार या चेतनाशून्यता छा जाती है वैसे ही राजाओं की प्रकृति अंधकार से विवेक खो देती है और उनके लिए अज्ञान छा जाता है। अलीकाभिमानोन्मादकारीणि = मिथ्या अभिमान के उन्माद को उत्पन्न करने वाली । अलीकः अभिमानः अलीकाभिमानः (कर्मधारय), स एवं उन्मादः, अलीकाभिमानोन्मादः, तं कुर्वन्ति इति। धनानि = धन होते हैं । राजलक्ष्मीः = राज्य की प्रभुता और धन सम्पत्ति । राज्ञः लक्ष्मी राजलक्ष्मीः। राज्यविष - विकार - तन्द्राप्रदा = राज्य रूपी विष के विकार से उत्पन्न तन्द्रा देने वाली होती है। राज्यम् एव विषम् राज्यविषम् (कर्मधारय) तेन यः विकारः राज्यविषविकारः, तेन या तन्द्रा, तां प्रददाति इति। तन्द्रा = सुस्ती, प्रमाद, शिथिलता । राज्य पर विष का आरोप-रूपकालंकार। अवलोकयतु = देखें । आ + लोक + लोट् । तावत् =तो । लक्ष्मीम् एव = लक्ष्मी को ही । प्रथमम् = पहले । कल्याणाभिविनेशः = कल्याण चाहने वाले । कल्याणे अभिविनेशः अस्यास्ति इति । अभि, नि+ विश् + घञ् । पहले लक्ष्मी को ही देखिये, उस पर विचार कीजिए। यहाँ लक्ष्मी के दोषों या वैशिष्ट्यों को कहते हैं और उत्प्रेक्षा करते हैं कि उसने इनको वहाँ अपने साथ रहने वालों से लिया है । श्लेष होने से इन विशेषताओं के वाचक शब्दों के दो-दो अर्थ होंगे । हि = सचमुच । इयम् = यह राजलक्ष्मी । सुभटखड्गमण्डलोत्पलविभ्रमभ्रमरी = श्रेष्ठ वीरों की तलवार समूह रूपी कमलों के वन में विलास करने वाली भ्रमरी के रूप वाली लक्ष्मी । शोभनाश्च ते भटाः सुभटाः। खड्गानां मण्डलं खड्गमण्डलम् । सुभटानां खड्गमण्डलम्, सुभटखड्गमण्डलम् । उत्पलानां वनम् इति उत्पलवनम् । सुभटखड्गमण्डलम् एवं उत्पलवनम् सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनम्, तत्र विभ्रमः यस्याः सा । खड्गमण्डल पर उत्पलवन क् आरोप और लक्ष्मी पर भ्रमरी का आरोप है । क्षीरसागरात् = क्षीरसागर से । क्षीरस्य सागरात् । उद्गता = निकली है । उद् + गम् + क्त + टाप् । प्रसिद्ध कथा है कि देवों और असुरों के समुद्र मन्थन से लक्ष्मी प्रकट हुई थीं ।

हिन्दी भावार्थ- राजाओं की प्रकृति अहंकार रूपी दाहज्वर की मूर्च्छा से अज्ञान के अन्धकार से भरी हुई और व्याकुल होती है। उनके धन मिथ्या अभिमान का उन्माद उत्पन्न करते हैं। राजलक्ष्मी राज्य रूपी विष के विकार के रूप में तन्द्रा उत्पन्न करने वाली होती है। कल्याण की चाह करने वाले आप पहले लक्ष्मी को ही देखें। श्रेष्ठ वीरों की तलवार रूपी कमलों के वन में विहार करने वाली भ्रमरी रूपी लक्ष्मी क्षीरसागर से निकली है ।

पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिरायाः मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्टुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद् विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता । न ह्येवंविधम-पवरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणसन्दाननिस्पन्दीकृतापि नश्यति ।

शब्दार्थ - पारिजातपल्लवेभ्यः रागः = पारिजात वृक्ष के पल्लवों से राग । पारिजात के पक्ष में राग का अर्थ होगा लालिमा और लक्ष्मी के पक्ष में अर्थ होगा अनुराग । इन्दुशकलात्

एकान्तवक्रताम् = चन्द्रलेखा से अनोखा टेढ़ापन लेकर । इन्दोः शकल् इन्दुशकलम्, तस्मात् । एकान्तं यथा स्यात् तथा वक्रता एकान्तवक्रता, ताम् । लक्ष्मी के पक्ष में अर्थ होगा प्रतिकूलता, कुटिल आचरण । उच्चैःश्रवसः चंचलताम् = उच्चैःश्रवा नाम के अश्व से चंचलता । उच्चैःश्रवा इन्द्र का अश्व है । चंचलस्य भावः चंचलता । चंचल + तल् + टाप् । कालकूटात् = कालकूट विष से । मोहनशक्तिम् = मोहने की शक्ति लेकर । कालकूट के पक्ष में मूर्च्छित करने की, लक्ष्मी के पक्ष में वशीभूत करने की क्षमता । मोहनस्य शक्तिः, ताम् । मदिरायाः मदम् = मदिरा से मद अर्थात् नशा लेकर, मद = अलहडता, उद्धत स्वभाव । कौस्तुभमणेः नैष्ठुर्यम् = कौस्तुभ मणि से कठोरता लेकर । निष्ठुरस्य भावः नैष्ठुर्यम् । निष्ठुर + ष्यञ् । इति = इस प्रकार । एतानि = ये । सहवासपरिचय - वशात् = एक साथ निवास से उत्पन्न परिचय के कारण । सह वसनं सहवासः । तेन यः परिचयः, तस्य वशात् । वास = वस् + घञ् । विरहविनोदचिह्नानि = विरह में मनबहलाव के चिह्नों को लेकर । विरहे विनोदः विरहविनोदः, तस्य चिह्नानि । विरह - वि + र्ह् + अच् । विनोदः- वि + नुद् + घञ् । गृहीत्वा एव उद्धता = लेकर ही निकली है । एवंविधम् = इस प्रकार का । एवं विधा यस्य तत् । अपरिचितम् = परिचयरहित, परिचय का न रखने वाला । इह जगति = इस संसार में । किञ्चित् अपरम् अस्ति = कुछ दूसरा नहीं है । यथा इयम् अनार्या = जैसी यह अनार्या, दुष्टा लक्ष्मी । लब्धा अपि = प्राप्त होने पर भी । खलु = निश्चय ही । दुःखेन परिपाल्यते = इसकी रक्षा कठिनाई से हो पाती है । परि+ पाल् + कर्मवाच्य लट् । दृढगुण- पाश - सन्दान - निष्पन्दीकृता अपि = गुण रूपी रस्सियों के दृढ बन्धनों से गतिहीन बना दी जाने पर भी । गुणाः एव पाशः गुणपाशः, दृढश्चासौ गुणपाशः, दृढगुणपाशः, तेन यत् सन्दानम्, दृढगुणपाशसन्दानम्, तेन निष्पन्दीकृता इति दृढगुणपाशनिष्पन्दीकृता । स्पन्दन स्पन्दः, निर्गतः स्पन्दः यस्याः सा निष्पन्दाः, अनिष्पन्दा निष्पन्दा सम्पद्यमाना कृता इति । च्वि प्रत्यय । नश्यति = नष्ट हो जाती है, गायब हो जाती है । गुणों पर पाश का आरोप होने से रूपक है और विशेषोक्ति है ।

हिन्दी भावार्थ - पारिजात के पल्लवों से राग अर्थात् अनुराग, चन्द्रलेखा से अनोखी वक्रता या कुटिलता, उच्चैःश्रवा से चंचलता, कालकूट विष से मोहन की, मूर्च्छित करने अर्थात् वश में करने की शक्ति, मदिरा से मद, कौस्तुभ मणि से कठोरता - इन सबको साथ रहने के परिचय के कारण विरह में मनबहलाव के चिह्नों के रूप में लेकर ही निकली है । इस संसार में इस प्रकार का दूसरा कुछ भी ऐसा अपरिचित नहीं है, जैसी यह अनार्या लक्ष्मी । मिल जाने पर भी बड़े दुःख से इसकी रक्षा हो पाती है । गुणों रूपी रस्सी से दृढ़ता से बाँध कर जकड़ दिये जाने पर भी निकल कर चली जाती है ।

उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्ज्रविधृताप्यपक्रामति । दजल-दुर्दिनान्धकार-गज-घटित-घनघटा-परिपालितापि प्रपलायते । न परिचयं रक्षति । नाभिजनमीक्षते । न रूपमालोकयते । न कुलक्रममनुवर्तते । न शीलं पश्यति । न वैदग्ध्यं गणयति । न श्रुतमाकर्णयति । न धर्ममनुरुध्यते । न त्यागमाद्रियते । न विशेषज्ञतां विचारयति । नाचारं पालयति ।

शब्दार्थ - उद्दाम- दर्प- भट - सहस्रोल्लासितासि - लता - पंजरविधृता अपि = उत्कट अहंकार से युक्त सहस्रों वीरों द्वारा चमकायी गयी लता जैसी (लम्बी) तलवारों के पिंजरे में घेरी गयी भी। दाम्नः उद्गतः उद्दामः, उद्दामश्चासौ दर्पः उद्दामदर्पः । उद्दामदर्पः येषां तथाभूतः ये भटाः, उद्दामदर्पभटाः, तेषां सहस्राणि, तैः उल्लसिताः असयः लताः इव उद्दामदर्पभटसहस्रासिलताः। ताः एवं पंजरम्। तस्मिन् विधृता । अपक्रामति = भाग जाती है । सहस्रों वीर अपनी तलवारों के बल पर उसे अपने वश में करते हैं और उसकी रक्षा के लिए तत्पर रहते हैं, फिर भी वह उनके वश में नहीं रहती । मदजल- दुर्दिनान्धकार - गज - घटित - परिपालिता अपि = मदजल की वर्षा से अन्धकार उत्पन्न कर देने वाले हाथियों की घनी पंक्ति द्वारा सुरक्षित की गयी भी । मदजलेन दुर्दिनं मदजलदुर्दिनम्, तेन अन्धकारः येभ्यः तथाभूताः ते गजाः मदजलदुर्दिनान्धकारगजाः, तैः घटितैः घनघटाभिः परिपालिता । प्रपलायते = भाग जाती है, अन्यत्र चली जाती है । न परिचयं रक्षति = न परिचय का निर्वाह करती है । न अभिजनम् ईक्षते = न उत्तम कुल का विचार करती है । न रूपम् आलोकयते = न रूप या सौन्दर्य को देखती है । न कुलक्रमम् अनुवर्तते = न किसी एक कुल में रहने के क्रम का अनुसरण करती है । कुलस्य क्रमः कुलक्रमः, तम्। न शीलं पश्यति = उत्तम चरित्र को नहीं देखती । न वैदग्ध्यं गणयति = विदग्धता या पाण्डित्य को कुछ नहीं गिनती । न श्रुतम् आकर्णयति = शास्त्रज्ञान को नहीं सुनती, अर्थात् शास्त्रों के ज्ञान पर ध्यान नहीं देती । न धर्मम् अनुरुध्यते = धर्म का अनुरोध नहीं करती, धर्म का अनुसरण नहीं करती। न त्यागम् आद्रियते = न त्याग का आदर करती है । कोई दानी और त्यागशील है इस हेतु उसके प्रति आदर नहीं रखती । न विशेषज्ञतां विचारयति = न विशेष ज्ञान से सम्पन्न होने का विचार करती है। विशेष + ज्ञा + क । विशेषज्ञस्य भावः विशेषज्ञाता । न आचारं पालयति = न आचार की रक्षा करती है । आचारवान् के समीप ही रहने का विचार नहीं करती ।

हिन्दी भावार्थ- उत्कट अहंकार से युक्त सहस्रों वीरों द्वारा चमकायी गयी लता जैसी (लम्बी) तलवारों के पिंजरे में बन्द की गयी भी निकल कर भाग जाती है । मदजल की वृष्टि के अन्धकार में हाथियों की घनी पंक्ति द्वारा निगरानी किये जाने पर भी पलायन कर जाती है । न परिचय का निर्वाह करती है , न उच्च कुल का विचार करती है, न रूप - सौंदर्य को देखती है, न किसी एक कुल में रहने के क्रम का अनुसरण करती है, न सदाचरण को देखती है, न विदग्धता को कुछ गिनती है, न शास्त्रज्ञान को सुनती है, न धर्म का अनुरोध रखती है, न त्याग के लिए कोई आदर रखती है, विशेषज्ञता का विचार नहीं करती और न आचार का पालन करती है ।

न सत्यमनुबुध्यते । न लक्षणं प्रमाणीकरोति । गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति । अद्याप्यारूढमन्दर-परिवर्तवर्त-भ्रान्ति जनित-संस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनी-सञ्चरण-व्यतिकर- लग्ननलिननालकण्टकेव न क्वचिदपि निर्भरमाब्धनाति पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपान मत्तेव परिस्त्रलति। पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति ।

शब्दार्थ - न सत्यम् अनुबुध्यते = न सत्य को पहचानती है । सत्य का विचार नहीं करती । न लक्षणं प्रमाणीकरोति = सामुद्रिक शास्त्र के लक्षणों या शुभ चिह्नों को प्रमाणित नहीं करती ,

सत्य सिद्ध नहीं करती। अप्रमाणं प्रमाणं सम्पद्यमानं करोति इति। प्रमाण+ च्वि + लट्लकार। गन्धर्वनगर-लेखा इव = गन्धर्वनगर के दृश्य के समान। गन्धर्वाणां नगरं गन्धर्वनगरम्, तस्य लेखा। गन्धर्वनगर क्षितिज पर दिखायी पड़ने वाला एक प्राकृतिक दृश्य है। पश्यतः एव नश्यति = देखते ही देखते नष्ट हो जाती है, लुप्त हो जाती है। अद्यापि = आज भी, समुद्रमन्थन के समय से कितने ही युग बीत जाने पर भी। आरूढ - मन्दर - परिवर्तार्वर्त- भ्रान्ति - जनित- संस्कारा इव = मानो मन्द्राचल पर्वत से मथने से बने जल के आवर्त में चक्कर खाने से उत्पन्न संस्कारवाली मन्दरस्य परिवर्तः मन्दरपरिवर्तः, आरूढः यः मन्दरपरिवतः आरूढमन्दरपरिवर्तः तेन भ्रान्तिः, तथा जनितः यः संस्कारः यस्याः सा। किसी गोल घूमने वाले चर्खी आदि यन्त्र पर बैठकार घुमाये जाने पर उससे उतरने के बाद भी कुछ समय तक घूमने का संस्कार बना रहता है। वैसे ही मन्द्राचल से समुद्र मथे जाने से उत्पन्न जल के भँवर में फँसकर चक्कर खाने से उत्पन्न संस्कार से लक्ष्मी अभी भी घूमती रहती है। अति -प्रयत्नविधृता अपि = बड़े प्रयत्न से रोक कर रखी गयी भी। अतिशयितः प्रयत्नः अतिप्रयत्नः, तेन विधृता। वि + धृ + क्त + टाप्। परमेश्वरगृहेषु = बड़े राजाओं और सम्पत्तिशालियों के घरों में। परमाश्च ते ईश्वराः परमेश्वराः, तेषाम् गृहेषु। विविध- गन्धगज - गण्डमधुपानमत्ता इव = मानो अनेक प्रकार के मदगन्ध वाले हाथियों के कपोलों के मद रूपी मदिरा का पान करने से मतवाली होकर। विविधाः ये गन्धगजाः विविधगन्धगजाः, तेषां गण्डेषु यत् मधु विविधगन्धगजगण्डमधु, तस्य पानेन मत्ता। यहाँ भी उत्प्रेक्षालंकार है। गन्धगज श्रेष्ठ गज होते हैं। परिस्खलति = गिरती है, इधर-उधर चली जाती है। पारुष्यम् = कठोरता, क्रूरता को। उपशिक्षितुम् इव = मानो सीखने के लिए। उप + शिक्ष् + तुमुन्। असिधारसु = तलवारों की धार में निवास करती है। अर्थात् क्रूरतापूर्वक जो वीर अपनी तलवार से दूसरों को नष्ट करता है, उसी के अधीन हो जाती है।

हिन्दी भावार्थ - यह सत्य को नहीं समझती, किसी सामुद्रिकशास्त्र के लक्षण को भी प्रमाणित नहीं करती। गन्धर्वनगर के दृश्य के समान देखते-देखते ही लुप्त हो जाती है। आज तक मानो मन्द्राचल पर्वत से मथने से बने जल के आवर्त में चक्कर खाने से उत्पन्न संस्कार के कारण घूमती रहती है। कमलिनियों के मध्य घूमने के सम्पर्क से मानो कमलनालों के काँटे चुभने के कारण, कहीं भी पैरों को पूरी तरह नहीं रखती। बड़े राजाओं और धनियों के घर प्रयत्नपूर्वक सुरक्षित रखी गयी भी मानो विविध गन्धगजों के कपोलों से गिरने वाले मदजल रूपी मद के पान से मतवाली होकर इधर-उधर गिरती है।

विश्वरूपत्वमिवगृहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम्, अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचित-मूल-दण्ड-कोश-मण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम्, लतेव विटपकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुद्चंचला,

शब्दार्थ - विश्वरूपत्वम् गृहीतुम् इव = मानो विश्वरूप धारण करने के लिए, सभी पदार्थों के रूप में अभिव्यक्त होने के लिए। विश्वानि रूपाणि यस्य सः विश्वरूपः, तस्य भावः। नारायणमूर्तिम् आश्रिता = नारायण भगवान् विष्णु के शरीर का इसने आश्रय लिया है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। अप्रत्ययबहुला च = और विश्वास से भरी रहने वाली, किसी पर विश्वास न करने वाली। न

प्रत्ययः अप्रत्ययः, अप्रत्ययः बहुलः यस्याः तथाभूता । समुपचित- मूल- दण्ड- कोश - मण्डलम दिवसान्तकमलम् इव = जिसके मूल, दण्ड, कोश और मण्डल पूर्ण विकास को प्राप्त हैं ऐसे सायंकाल के कमल के समान । यहाँ श्लेषमूलक उपमा है । भूभुज = राजा की उपमा सायंकालीन कमल से की गयी है । अतः चार शब्दों के दो-दो अर्थ होंगे - एक कमल के पक्ष में और एक राजा के पक्ष में । समुचित- वृद्धि को प्राप्त, मूल = कमल की जड़, राजा का मूल अर्थात् राज्य । दण्ड = कमल का डण्डल, राजा की सेना । कोश = कमल का परागकोश, राजा का कोष । मण्डल = कमल का घेरा, राजा के सहायक । मूलं च, दण्डश्च, कोषश्च, मण्डलं च मूलदण्डकोशमण्डलानि, समुपचितानि मूलदण्डकोशमण्डलानि यस्य तत् । दिवसस्य अन्तः दिवसान्तः, तस्य कमलम् । समुपचित- मूल- दण्ड- मण्डलम् अपि = जिसका राज्य, सेना, कोष और मित्रगण का समूह पूर्णतः समृद्ध है, ऐसे राजा को भी । भूभुजम् मुंचति = राजा को छोड़ देती है, जैसे दिवस के अन्त में कमल की शोभा रहने वाले तथा उनके कामुकतापूर्ण व्यापारों में सहायक, धूर्त पुरुष । गंगा इव = गंगा के समान । अब लक्ष्मी की गंगा से उपमा देते हैं दो श्लिष्ट विशेषणों द्वारा । वसुजननी अपि = (1) वसु देवताओं की माता होने पर भी - गंगा के पक्ष में। (2) वसु अर्थात् धन की जननी उत्पन्न करने वाली । तरंबुद्बुद् चंचला = तरंगों और बुद्बुद् के समान चंचल । गङ्गा के पक्ष में वत् = युक्त - वतुप प्रत्यय । लक्ष्मीपक्ष में वत् = इव । कमल को छोड़ देती है, वैसे ही लक्ष्मी सभी प्रकार से समृद्धि प्राप्त करने वाले राजा को भी छोड़ देती है । भुवम् भुनक्ति इति भूभुजम् । भू + भुज् + क्विप् । लता जैसे विटपक वृक्ष की शाखाओं पर चढ़ती है, वैसे ही लक्ष्मी धूर्त विटों के स्वामी का आश्रय लेती है । इसे ही श्लिष्टोपमा द्वारा कहते हैं । लता इव = लता के समान । विटपकान् अध्यारोहति = विटों के स्वामियों का आश्रय लेती है । विटपकान् -1- छोटे वृक्षों पर चढ़ती है । 2- राजाओं के साथ ।

हिन्दी भावार्थ - मानो विश्वरूपत्व पाने के लिए उसने नारायण भगवान् विष्णु के शरीर का आश्रय लिया हो, अविश्वास से भरी हुई वह मूल, दण्ड, कोश और मण्डल की पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेने वाले सायंकालीन कमल के समान राज्य, सेना, कोष और मित्र गण से सम्पन्न भी राजा को छोड़ देती है । लता जैसे विटपकों (छोटे वृक्षों) पर चढ़ती है, वैसे ही वह धूर्त विटों के स्वामियों का आश्रय लेती है । वसु नाम के देवताओं की माता और तरंगों एवं बुद्बुदों से चञ्चल गंगा के समान वसु अर्थात् धन को उत्पन्न करने वाली होने पर भी तरंगों और बुद्बुद के समान चंचला है ।

अभ्यास प्रश्न .1

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

1. गुरु का उपदेश सौन्दर्य के बिना बनाया गया क्या है

क. दिवस ख. आभूषण ग. विद्युत घ. विनय

2. मिथ्याभिमान के उन्माद को उत्पन्न करने वाली है

क. सरस्वती ख. पार्वती ग. लक्ष्मी घ. उर्वशी

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. न प्रमाणी करोति ।

4. क्वचिदपि पदम् ।

एक शब्द में उत्तर दीजिए

5. सूर्य की गति में अनेक राशियों में क्या होती है

6. उदार मन वाले को अमंगल जैसा कौन मानता है

दिवसकरगतिरिव प्रकटित - विविध - संक्रान्तिः, पातालगुहेव तमोबहुला, हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्रावृडिवा - चिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वन्मत्तीकरोति । सरस्वतीपरिगृहीतमीष्यर्येव नालिङ्गति । जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति ।

शब्दार्थ - दिवसकरगतिः इव = सूर्य की गति के समान। दिवस करोति इति दिवसकरः तस्य गति। प्रकटित-विविध-संक्रान्तिः = अनेक प्रकार की संक्रान्ति प्रकट करने वाली। सूर्य की जैसे विविध राशियों में संक्रान्ति होती है, वैसे लक्ष्मी भी एक से दूसरे के पास चली जाती है। समास का विग्रह दो प्रकार से होगा। सूर्यगति पक्ष में - विविधाः संक्रान्तयः विविधसंक्रान्तयः, प्रकटिताः विविधसंक्रान्तयः यथा तथाभूता। लक्ष्मी पक्ष में - प्रकटिताः विविधेषु जनेषु संक्रान्तिः यथा सा। पातालगुहा इव = पाताल की गुफा के समान। पातालस्य गुहा। तमोबहुला = तम से भरी हुई। 1-गुहा पक्ष में-अन्धकार से भरी हुई - तमः बहुलं यत्र तथाभूता। 2- लक्ष्मी पक्ष में-तमोगुण के व्यापारों से भरी हुई। तमः बहुलं यस्यां सा। यहाँ भी श्लेषमूलक उपमा है। हिडिम्बा इव = हिडिम्बा नाम की राक्षसी के समान। भीमसाहसैकहार्यहृदया = भीम साहस से ही आकृष्ट होने योग्य हृदयवाली। भीम साहस के दो अर्थ होंगे - 1- भीम के साहस से (हिडिम्बा) 2- भीषण साहस से (लक्ष्मी)। प्रावृड् इव = वर्षा के समान। अचिर-द्युति-कारिणी = क्षण भर चमक दिखानेवाली। अचिरद्युतिः अचिरद्युतिः, तां करोति इति। दुष्ट - पिशाची इव = दुष्ट पिशाची के समान। दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया = अनेक पुरुषों का उच्छ्राय दिखाने वाली। उच्छ्राय का दो अर्थ होगा - अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखाने वाली। न एके अनेके। अनेके च ते पुरुषाः अनेकपुरुषाः, तेषाम् उच्छ्रायः अनेकपुरुषोच्छ्रायः, दर्शितः अनेकपुरुषोच्छ्रायः यथा तथाभूता। लक्ष्मी के पक्ष में - उच्छ्रायः का अर्थ होगा उन्नति, समृद्धि। उच्छ्रायः - उत् + श्रि + घञ्। स्वल्पसत्त्वम् = दुर्बल चित्त वाले को। स्वल्पं सत्त्वं यस्य तथाभूतम्। उन्मत्तीकरोति = उन्मत्त, पागल बना देती है। पिशाची आतंकित कर पागल बना देती है और लक्ष्मी अनेक पुरुषों को ऊँचे पहुँचाकर उन्हें उन्मत्त कर देती है। सरस्वतीपरिगृहीतम् = सरस्वती द्वारा अपनाये गये पुरुष को सरस्वत्यापरिगृहीतः सरस्वतीपरिगृहीतः, तम्। ईर्ष्या इव = मानो ईर्ष्या से। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार आरम्भ करते हैं। न आलिङ्गति = आलिङ्गन नहीं करती, नहीं अपनाती। गुणवन्तं जनम् = गुणवान् व्यक्ति को। अपवित्रम् इव = अपवित्र व्यक्ति के समान। न स्पृशति = स्पर्श नहीं करती। गुणी व्यक्ति को अपवित्र जैसे मानते हुए उसका स्पर्श नहीं करती।

हिन्दी भावार्थ - सूर्य की गति में जैसे अनेक राशियों में संक्रान्ति होती है, वैसे ही यह अनेक पुरुषों के पास जाती रहती है। पाताल की गुफा जैसे तम अर्थात् अन्धकार से भरी होती है, वैसे तमोगुण के व्यापारों से भरी होती है। जैसे हिडिम्बा का हृदय भीमसेन के साहस के कार्य से आकृष्ट था, वैसे भीषण साहस के कार्यों से आकृष्ट होने योग्य हृदयवाली है। वर्षा के समान क्षण भर चमकने वाली है। दुष्टा पिशाची जैसे अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखाकर दुर्बल मनुष्य को उन्मत्त बना देती है, वैसे अनेक पुरुषों को समृद्धि की दशा में पहुँचाकर उन्हें उन्मत्त बना देती है। सरस्वती द्वारा अपनाये गये पुरुष को मानो ईर्ष्या के कारण गले नहीं लगाती। गुणवान् पुरुष का अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती।

उदारसत्त्वममंगलमिव न बहु मन्यते । सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति । अभिजातमहिमिव लंघयति । शूरं कण्टकमिव परिहरति । दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति । विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति । मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति । परस्परविरुद्धं चेन्द्रजालमिव प्रकटयति जगति निजं चरितम् । तथा हि । सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति । उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति ।

शब्दार्थ - उदारसत्त्वम् = उदार मन वाले को, उदारं सत्त्वं यस्य तथाभूतम् । अमंगलम् = अमंगल, अशुभ के समान, न बहु मन्यते = आदर नहीं देती। सुजनम् = सज्जन को, शोभनः जनः सुजनः तम् । अनिमित्तम् इव = अपशकुन के समान, मानो वह अपशकुन हो । न निमित्तम् अनिमित्तम् । न पश्यति = नहीं देखती। अभिजातम् = उत्तम कुल के पुरुष को अहिम् इव = वह साँप हो ऐसा मानती हुई। लंघयति = लाँघ जाती है। शीघ्रता से दूर हट जाती है। शूरम् = वीर पुरुष को। कण्टकम् इव = मानो वह काँटा हो इस तरह से। परिहरति = बचाकर चलती है। दातारम् = दानशील पुरुष को। दुःस्वप्नम् इव = बुरे स्वप्न के समान। मानो वह कोई दुःस्वप्न हो। न स्मरति = याद नहीं रखती। विनीतम् = विनम्र पुरुष को, पातकिनम् इव = पातकी जैसा मानती हुई, घोर पापी समझती हुई। न उपसर्पति = समीप नहीं जाती। मनस्विनम् = मनस्वी पुरुष को। उन्मत्तम् इ = पागल जैसा मानकर। उपहसति = उस पर हँसती है। यहाँ उपमा या उत्प्रेक्षा अलंकार माना जा सकता है। अब विरोधाभास अलंकार का प्रयोग करते हुए लक्ष्मी के परस्पर विरोधी चरित्र का वर्णन करते हैं। विशेषण पदों पर श्लेष होने से दो - दो अर्थ होंगे। परस्परविरुद्धम् = परस्पर विरोध। परस्परं यथा स्यात् तथा विरुद्धम्। इन्द्रजालम् इव = जादू का खेल सा। दर्शयन्ती = दिखाती हुई दृश् + णिच् + शत् + डीप्। जगति = संसार में। निज (परस्पर विरुद्धम्) चरितम् = अपने परस्पर विरोधी चरित को। प्रकटयति = प्रकट करती है। तथा हि = जैसे। सततम् = निरन्तर। ऊष्माणम् उपजनयन्ती अपि = ऊष्मा उत्पन्न करती हुई भी। ऊष्मा के दो अर्थ हैं गर्मी, उत्साह या धन के कारण अहंकार की गर्मी। जाड्यम् उपजनयति = जाड्य को उत्पन्न करती है। जाड्य के दो अर्थ हैं - 1- ठंडक, 2- जड़ता, मूर्खता। निरन्तर गर्मी से युक्त होने पर भी ठंडक उत्पन्न करती है, यह अर्थ देने पर विरोध की प्रतीति होती है, किन्तु निरन्तर धन के कारण अहंकार की गर्मी देने के साथ जड़ता या मूर्खता उत्पन्न करती है यह अर्थ लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है। उन्नतिम् आदधाना अपि = उन्नति प्रदान करती हुई भी

। उत् + नम् + क्तिन् । आदधाना- आ + धा + शानच् + टाप् । नीचस्वभावताम् आविष्करोति = नीचस्वभावता को प्रकट करती है । यहाँ भी विरोधाभास है । नीचस्वभावता का एक अर्थ होगा निम्न अवस्था या स्थिति, दूसरा अर्थ है नीचजनों का स्वभाव अर्थात् निकृष्ट आचरण । धन की समृद्धि होने पर व्यक्ति की उन्नति के साथ स्वभाव में नीचता भी आती है ।

हिन्दी भावार्थ - उदार मन वाले को अमंगल जैसा मानती हुई आदर नहीं देती । सज्जन को अपशकुन जैसे देखती तक नहीं । उच्च कुलीन को साँप जैसा मानती हुई लाँघ जाती है । वीर से काँटे की तरह परहेज करती है । दानशील का दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती । विनम्र पुरुष के पास उसे घोर पापी जैसा मानती हुई नहीं जाती । मनस्वी का इस प्रकार उपहास करती है मानो वह पागल हो । परस्पर विरुद्ध इन्द्रजाल जैसा दिखाती हुई जगत् में यह अपना परस्पर विरोधी चरित प्रकट करती है । निरन्तर ऊष्मा (गर्मी या उत्साह) देती हुई भी जाड्य (शीतलता या जड़ता) उत्पन्न करती है ।

तोयराशिसम्भवापि तृष्णां संवर्धयति । ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति ।

बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति । अमृतसहोदरापि कटुकविपाका,

विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना, पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया ।

शब्दार्थ - तोयराशिसंभवा अपि = जल की राशि से उत्पन्न होने पर भी । तोयस्य राशिः तोयराशिः, तस्मात् सम्भवः यस्याः सा । तृष्णां संवर्धयति = तृष्णा को बढ़ाती है । तृष्णा का अर्थ प्यस लेने पर विरोध की प्रतीति होती है कि जो जल की राशि समुद्र से उत्पन्न है व प्यास कैसे बढ़ा सकती है, किन्तु तृष्णा का अर्थ धन की चाह लेने पर परिहार हो जाता है । ईश्वरतां दधाना अपि = ईश्वरता प्रदान करती हुई भी । ईश्वर से यहाँ महादेव शिव का तात्पर्य है और प्रभुता, धन-सम्पत्ति, स्वामित्व का अर्थ भी । ईश्वरस्य भावः ईश्वरता । ईश्वर + तल् + टाप् । अशिवप्रकृतित्वम् आतनोति = अशिव प्रकृति की वृद्धि करती है । अशिव के दो अर्थ होंगे - शिव से भिन्न और अमंगलकारी, निन्दित कर्म करने का स्वभाव । एक अर्थ लेने पर विरोध की प्रतीति होती है, दूसरा अर्थ लेने पर उसका परिहार हो जाता है । बलोपचयम् आहरन्ती अपि = बल की वृद्धि लाती हुई भी । बल के दो अर्थ होंगे-सेना या धनसम्पत्ति की शक्ति और शारीरिक शक्ति । लघिमानम् आपादयति = हल्कापन ले आती है, उत्पन्न करती है । लघिमा के भी दो अर्थ होंगे 1- शरीर का हल्कापन या दुर्बलता, 2- क्षुद्रता या कृपणता । बल की वृद्धि करती हुई भी हल्कापन या दुर्बलता ले आती है अर्थ करने पर विरोध होगा, सेना की वृद्धि करने पर भी क्षुद्रता के व्यवहार या कृपणता को उत्पन्न करती है ऐसा अर्थ करने पर परिहार हो जायेगा । अमृतसहोदरा अपि = अमृत की सगी बहिन होते हुए भी । लक्ष्मी और अमृत समुद्र से उत्पन्न हैं, अतः लक्ष्मी अमृत की बहिन है। कटुकविपाक = कटु विपाक वाली है । कटु विपाक का एक अर्थ होगा कड़वे स्वाद वाली । यह अर्थ लेने पर विरोध की प्रतीति होती है । दूसरा अर्थ है 'दुःखदायी परिणाम देने वाली' यह अर्थ लेने पर परिहार हो जाता है । विग्रहवती अपि = विग्रह धारण करने वाली होने पर भी । अप्रत्यक्षदर्शना = प्रत्यक्ष न दिखायी देने वाली । विग्रह का एक अर्थ शरीर है और दूसरा अर्थ युद्ध । प्रथम अर्थ लेने पर विरोध होगा कि जो शरीर धारिणी है, वह

प्रत्यक्ष नहीं देखी जाती, किन्तु दूसरा अर्थ लेने पर विरोध नहीं रह जाता। पुरुषोत्तमरता अपि = पुरुषोत्तम में रत रहने वाली होने पर भी। पुरुषोत्तम = 1- श्रेष्ठ पुरुषों में रत होने पर भी, 2- पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु में रत। खलजनप्रिया = खलों अर्थात् दुर्जनों को अपना प्रिय माननेवाली, उनसे प्रेम करने वाली।

हिन्दी भावार्थ- जल की राशि समुद्र से उत्पन्न होने पर भी तृष्णा को बढ़ाती है। ईश्वरता प्रदान करती हुई भी हल्कापन ले आती है। अमृत की सहोदरा होने पर भी कटु विपाक वाली होती है। विग्रह (शरीर) वाली होने पर भी प्रत्यक्ष न दिखायी देने वाली होती है। पुरुषोत्तम में रत होने पर भी खल जन से प्रेम करने वाली है।

रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति । यथायथा चयं चपला दीप्यते तथातथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्रमति। तथा हि । इयं संवर्धनवारिधारातृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवास- जीर्ण- वलभी धन - मद- पिशाचिकानाम् ।

शब्दार्थ - रेणुमयी इव = धूलि की बनी हुई के समान, धूलि के समान। स्वच्छम् अपि कलुषीकरोति = निर्मल पदार्थ को भी कलुषयुक्त बनाती है। अकलुषं कलुषं सम्पद्यमानं करोति इति। कलुष + कृ + च्वि + लट् निर्मल चित्त वाले को भी दूषित विचार से कलुषित करती है। यथा यथा च इयं चपला दीप्यते = जैसे जैसे यह चंचला दीप्त होती है, बढ़ती है। तथा तथा दीपशिखा इव = वैसे वैसे दीपशिखा के समान, दीपक की लौ के समान। केवलं कज्जलमलिनम् एव कर्म उद्रमति = केवल काजल के समान कलुषित कर्म ही कराती है। जैसे दीपक की लौ उतना ही अधिक काजल के रूप में काला बनाने का काम करती है। कज्जलम् एव मलिनं कर्म-दीपशिखा के पक्ष में। कज्जलवत् मलिनं कर्म-लक्ष्मी के पक्ष में। तथाहि = क्योंकि। इयम् = यह लक्ष्मी। संवर्धन- वारि - धारा = पूर्ण रूप में बढ़ाने वाली जल की धारा है। लक्ष्मी पर वारिधारा का आरोप है। वारिणः धारा वारिधारा, संवर्धने वारिधारा संवर्धनवारिधारा। तृष्णा विषवल्लीनाम् = तृष्णा रूपी विष की लताओं के लिए। तृष्णा = विषयसुखों को भोगने की इच्छा विषय वल्ल्यः, तृष्णा एवं विषवल्ल्यः, तृष्णाविषवल्ल्यः, तासाम्। व्याधगीतिः = व्याधो की गीति है। मृगों को फँसाने के लिए बहेलियों द्वारा गाया जाने वाला संगीत है। व्याधानां गीतिः। इन्द्रियमृगाणाम् = इन्द्रिय रूपी मृगों के लिए। इन्द्रियाणि एव मृगाः इन्द्रियमृगाः, तेषाम्। तात्पर्य यह है कि लक्ष्मी इन्द्रियों को मधुर ढंग से फुसलाकर विषयों में फँसा देती है जिससे पुरुष विनाश को प्राप्त होता है। परामर्शधूमलेखा = मलिन करने वाली धुएँ की पंक्ति है। परामर्शाय धूमलेखा परामर्शधूमलेखा। परामर्श = ढँक देना, मलिन बना देना। सच्चरितचित्राणाम् = सज्जनों के चरित्र रूपी चित्रों के लिए। सन्ति चरितानि एव चित्राणि सच्चरितचित्राणि, तेषाम्। लक्ष्मी सज्जनों के चरित्र को धुँएँकी लेखा के समान ढँक देती है, मलिन कर देती है। विभ्रमशय्या = विलास की शय्या है। मोह - दीर्घ - निद्राणाम् = मोह रूपी दीर्घ निद्राओं की। मोह एवं दीर्घा निद्रा, मोहदीर्घनिद्रा, तासाम्। तात्पर्य यह है कि लक्ष्मी की

कृपा प्राप्त कर लेने वाले मोह या विवेकहीनता की लम्बी नीदों में पड़े रहते हैं। मोह पर दीर्घनिद्रा का आरोप - रूपकालंकार। निवास - जीर्ण - वलभी = रहने की टूटी अटारी है। धनमदपिशाचिकानाम् = धन के अहंकार रूपी पिशाचियों के लिए। धनस्य मदः धनमः, धनमदाः एव पिशाचिकाः धनमदपिशाचिकाः, तासाम्। धनमद पर पिशाचिका का आरोप होने से रूपकालंकार है। धन का अहंकार अनेक रूपों में प्रकट होता है और पिशाचियों के समान कार्य कराता है।

हिन्दी भावार्थ- धूलि से भरी हुई के समान निर्मल को भी कलुषित कर देती है। जैसे-जैसे यह चंचला प्रदीप्त होती है, वैसे-वैसे दीपक की लौ के समान केवल काजल की कालिमा जैसे कर्म ही प्रेरित करती है और भी। यह (धन की) तृष्णा रूपी विष की लताओं के लिए पूर्ण रूप से बढ़ाने वाली जल की धारा है। इन्द्रिय रूपी मृगों को फँसाने के लिए बहेलिए का संगीत है। सज्जनों के चरित्र रूपी चित्रों को मलिन करने वाली धूमलेखा है। मोह की लम्बी निद्रा के लिए विलास की शय्या है। धन के अहंकार रूपी पिशाचियों के लिए निवास की टूटी अटारी है।

तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताका सर्वाविनयानाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्विषयमधूनाम्, संगीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवासदरी दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्, अकालप्रावृड् गुणकलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिलोकापवादविस्फोटकानाम्।

शब्दार्थ - तिमिरोद्गतिः = तिमिर रोग की वृद्धि है। तिमिर नेत्ररोग है। तिमिरस्य उद्गतिः। शास्त्रदृष्टीनाम् = शास्त्र रूपी दृष्टियों के लिए। शास्त्राणि एव दृष्टयः शास्त्रदृष्टयः, तासाम्। तात्पर्य है कि लक्ष्मी या धन सम्पत्ति प्राप्त हो जाने पर शास्त्र ज्ञान की दृष्टि से दिखायी नहीं पड़ता। वह ज्ञान व्यर्थ हो जाता है। शास्त्र पद दृष्टि का आरोप-रूपकालंकार। पुरःपताका = आगे चलने वाली पताका है। सर्वाविनयानाम् = सभी प्रकार के अविनय या उच्छृंखलाओं की। पताका का तात्पर्य चिह्न या प्रेरणा देने वाली। सर्वे च ते अविनयाः सर्वाविनया, तेषाम्। उत्पत्तिनिम्नगा = उत्पत्ति की नदी है। निम्नगा = नदी, निम्नं यथा स्यात् तथा गच्छति इति। क्रोधावेगग्राहाणाम् = क्रोधावेश रूपी ग्राहों के लिए। क्रोधस्य आवेगाः क्रोधावेगाः, ते एव ग्राहाः, तेषाम्। लक्ष्मी या धन- सम्पत्ति के कारण ही क्रोध के आवेग उठते हैं। क्रोधावेग पर ग्राह का आरोप होने से रूपकालंकार। आपानभूमिः = पीने का स्थान, मधुशाला। आपानस्य भूमिः आपानभूमिः। विषयमधूनाम् = विषय रूपी मदिरा की। विषयाः एव मधूनि, तेषाम्। भोग के पदार्थों पर मधु का आरोप होने से रूपकालंकार है। संगीतशाला = संगीतशाला है। भ्रूविकारनाट्यानाम् = भौहों के विकार रूपी अभिनय का। भ्रुवोः विकाराः भ्रूविकाराः, ते एव नाट्ययानि, तेषाम्। लक्ष्मी से सम्पन्न लोगों की भौहें अनेक भंगिमायें दिखाती हैं, प्रायः चढ़ी रहती हैं। आवासदरी = आवास की कन्दरा है। आवासस्य दरी। दोषाशीविषाणाम् = दोषों रूपी सर्पों की। दोषाः एव आशीविषाः, तेषाम्। दोषों पर सर्पों का आरोप होने से - रूपक अलंकार। उत्सारणवेत्रलता = हटाने के लिए बेंत की छड़ी है। वेत्रस्य लता वेत्रलता, उत्सारणाय वेत्रलता। सत्पुरुषव्यवहाराणाम् = सज्जनों के व्यवहारों के लिए। सन्त् पुरुषाः सत्पुरुषाः, तेषां व्यवहाराः

सत्पुरुषव्यवहाराः तेषाम्। अकालप्रावृट् = असमय की वर्षा ऋतु है। अकाले प्रावृट्। गुणकलहंसानाम् = गुण रूपी कलहंसों के लिए। श्रेष्ठ हंसों को कलहंस कहते हैं। वर्षा में वे मानसरोवर चले जाते हैं। असमय की वर्षा में उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। गुणाः एव कलहंसाः गुणकलहंसाः, तेषाम्। गुण पर कलहंस का आरोप - रूपकालंकार। विसर्पणभूमिः = फैलने का स्थान है। विसर्पणस्य भूमिः। वि + सृप् + ल्युट्। लोकापवादविस्फोटकानाम् = लोकनिन्दा रूपी विस्फोटक रोग का। लोके अपवादाः, ते एव विस्फोटकाः लोकापवादविस्फोटकाः। विस्फोटक रोग फोड़ेवाली खुजल का एक रूप है। लोकापवाद पर विस्फोटक का आरोप - रूपक।

हिन्दी भावार्थ - शास्त्र रूपी दृष्टि के लिए तिमिर रोग की वृद्धि है। सभी प्रकार के अविनयों के आगे चलने वाली पताका है। क्रोधावेग रूपी ग्राहों की उत्पत्ति की नदी है। भोगपदार्थ रूपी मदिरा की मधुशाला है। भ्रूविकार रूपी अभिनय को सिखाने के लिए संगीतशाला है। (कामादि) दोष रूपी सर्पों के निवास की कन्दरा है। सत्पुरुषों के आचार को दूर करने के लिए बेंत की छड़ी है। गुणरूपी कलहंसों के लिए असमय की वर्षा ऋतु है। लोकापवाद रूपी विस्फोटक रोग के फैलने का स्थान है।

प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य। न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसन्धत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति।

शब्दार्थ - प्रस्तावना = प्रस्तावना है। नाटक के आरम्भ में प्रस्तावना नाम का अंश होता है, जिसमें कवि का परिचय और नाटक की घटनाओं की सूचना होती है। कपटनाटकस्य = कपट रूपी नाटक की। कपटम् एव नाटकम् कपटनाटकम्, तस्य। कपट पर नाटक का आरोप - रूपकालंकार है। कदलिका = केलों की पंक्ति है। कामकरिणः = काम रूपी हाथी की। कामः एव करी कामकरी। करः अस्य अस्ति इति करी। काम पर हाथी का आरोप है - रूपकालंकार। हाथी जैसे केलों की पंक्ति में इच्छानुसार उन्हें खाते हुए विहार करता है, वैसे धन - सम्पत्ति से सम्पन्न पुरुष के कामोपभोग के विलास बढ़ जाते हैं। वध्यशाला = वध करने के लिए पशुओं को रखने का स्थान है। वध्यानां प्राणिनां शाला। साधुभावस्य = सौजन्य का। साधोः भावः साधुभावः तस्य। लक्ष्मी की प्राप्ति सौजन्य को समाप्त कर देती है। राहुजिह्वा = राहु की जिह्वा है। राहोः जिह्वा राहुजिह्वा। धर्मेन्दुमण्डलस्य = धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए इन्दोः मण्डलम् इन्दुमण्डलम्। धर्मः एव इन्दुमण्डलम् धर्मेन्दुमण्डलम्, तस्य धर्म पर चन्द्रमण्डल का आरोप होने से रूपकालंकार। जिस प्रकार राहु की जिह्वा चन्द्रमण्डल को ग्रस लेती है, उसी प्रकार लक्ष्मी धर्म को समाप्त कर देती है। तं न पश्यामि = ऐसे व्यक्ति को मैं नहीं देखता। यः = जो। अपरिचितया अनया = इस अपरिचिता के द्वारा। न परिचिता अपरिचिता, तथा। न निर्भरम् उपगूढः = जिसका इसके द्वारा गाढ़ आलिंगन नहीं किया गया। उप + गुह् + क्त। निर्भर यथा स्यात् तथा। यः वा न विप्रलब्धः = और जिसे धोखा नहीं दिया गया। विप्र + लभ् + क्त।

नियतम् = निश्चय ही । इयम् = यह लक्ष्मी । आलेख्यगता अपि चलति = चित्र में अंकित होने पर भी चलती है अर्थात् चली जाती है । पुस्तमयी अपि = मिट्टी की मूर्ति के रूप में भी । इन्द्रजालम् आचरति = इन्द्रजाल या जादू कर देती है । उत्कीर्णा अपि = खोद कर बनायी गयी भी । पत्थर या लकड़ी पर तराशी गयी भी । विप्रलभते = धोखा देती है । श्रुता अपि = उसके विषय में सुनने पर भी । अभिसन्धते = ठगती है । चिन्तिता अपि = सोचने पर भी । वंचयति = विश्वासघात करती है ।

हिन्दी भावार्थ- कपट रूपी नाटक की प्रस्तावना है । काम रूपी हाथी के लिए केलों की पंक्ति है । सौजन्य की वध्यशाला है । धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जिह्वा है । मैं ऐसा किसी को नहीं देखता जिसका इसने कसकर आलिंगन किया हो और जिसे फिर धोखा न दिया हो । निश्चय ही, यह चित्र में अंकित होने पर भी चल देती है, मिट्टी की मूर्ति के रूप में होने पर भी इन्द्रजाल सी माया फैलाती है, तराश कर उकेरी गयी भी धोखा देती है, सुनने पर भी ठगती है, सोचने पर भी वंचना करती है ।

अभ्यास प्रश्न 2

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

- काँटे के समान लक्ष्मी किससे बच कर चलती है
क. वीर ख. सपेरा ग. जादूगर घ. कायर
- शास्त्र रूपी दृष्टि के लिए लक्ष्मी क्या है
क. श्वयथु ख. तिमिर क्षेत्र ग. हल्का घ. गुरु

रिक्तस्थान की पूर्ति करें

- पुरुषोत्तम रतापि..... ।
- लक्ष्मी सभी अविनयों के आगे चलने वाली है ।

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न

- सूर्य की गति में अनेक राशियों में क्या होता है ?
- लक्ष्मी किस मन वाले को अमंगल जैसा मानती हुई आदर नहीं देती है ?
- लक्ष्मी किससे काँटे की तरह परहेज करती है ?
- लक्ष्मी किसका दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती हैं ?
- किससे सम्पन्न पुरुष के कामोपभोग के विलास बढ़ जाते हैं ?

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि सूर्य की गति में जैसे अनेक राशियों में संक्रान्ति होती है, वैसे ही यह लक्ष्मी अनेक पुरुषों के पास जाती रहती है । पाताल की गुफा जैसे तम अर्थात् अन्धकार से भरी होती है, वैसे तमोगुण के व्यापारों से भरी होती है । जैसे हिडिम्बा का हृदय भीमसेन के साहस के कार्य से आकृष्ट था, वैसे भीषण साहस के कार्यों से आकृष्ट होने योग्य

हृदयवाली है। वर्षा के समान क्षण भर चमकने वाली है। दुष्टा पिशाची जैसे अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखाकर दुर्बल मनुष्य को उन्मत्त बना देती है, वैसे अनेक पुरुषों को समृद्धि की दशा में पहुँचाकर उन्हें उन्मत्त बना देती है। सरस्वती द्वारा अपनाये गये पुरुष को मानो ईर्ष्या के कारण गले नहीं लगाती। गुणवान् पुरुष का अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती। सज्जन को अपशकुन जैसे देखती तक नहीं। उच्च कुलीन को साँप जैसा मानती हुई लाँघ जाती है। वीर से काँटे की तरह परहेज करती है। दानशील का दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती। विनम्र पुरुष के पास उसे घोर पापी जैसा मानती हुई नहीं जाती। वह मनस्वी का इस प्रकार उपहास करती है मानो वह पागल हो। परस्पर विरुद्ध इन्द्रजाल जैसा दिखाती हुई जगत् में यह अपना परस्पर विरोधी चरित प्रकट करती है। पनः निरन्तर ऊष्मा (गर्मी या उत्साह) देती हुई भी जाड़्य (शीतलता या जड़ता) उत्पन्न करती है। यह (धन की) तृष्णा रूपी विष की लताओं के लिए पूर्ण रूप से बढ़ाने वाली जल की धारा है। इन्द्रिय रूपी मृगों को फँसाने के लिए बहेलिए का संगीत है। सज्जनों के चरित्र रूपी चित्रों को मलिन करने वाली धूमलेखा है। इतना ही नहीं मोह की लम्बी निद्रा के लिए विलास की शय्या है। धन के अहंकार रूपी पिशाचियों के लिए निवास की टूटी अटारी है। सभी प्रकार के अविनयों के आगे चलने वाली पताका है। क्रोधावेग रूपी ग्राहों की उत्पत्ति की नदी है। भोगपदार्थ रूपी मदिरा की मधुशाला है। भ्रूविकार रूपी अभिनय को सिखाने के लिए संगीतशाला है। (कामादि) दोष रूपी सर्पों के निवास की कन्दरा है। सत्पुरुषों के आचार को दूर करने के लिए बेंत की छड़ी है। गुणरूपी कलहंसों के लिए असमय की वर्षा ऋतु है। धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जिह्वा है। मैं ऐसा किसी को नहीं देखता जिसका इसने कसकर आलिंगन किया हो और जिसे फिर धोखा न दिया हो। निश्चय ही, यह चित्र में अंकित होने पर भी चल देती है, मिट्टी की मूर्ति के रूप में होने पर भी इन्द्रजाल सी माया फैलाती है, तराश कर उकेरी गयी भी धोखा देती है, सुनने पर भी ठगती है, आदि। अतः इस आधार पर आप लक्ष्मी की अन्य गतिविधियों को भी व्याख्यायित कर सकेंगे।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
वध्यशाला	वध करने के लिए पशुओं को रखने का स्थान है।
साधुभावस्य	सौजन्य का।
राहुजिह्वा	राहु की जिह्वा है।
धर्मेन्दुमण्डलस्य	धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए।
तं न पश्यामि	ऐसे व्यक्ति को मैं नहीं देखता।
न निर्भरम् उपगूढः	जिसका इसके द्वारा गाढ़ आलिंगन नहीं किया गया
यः वा न विप्रलब्धः	और जिसे धोखा नहीं दिया गया।
नियतम्	निश्चय ही।
इयम्	यह लक्ष्मी।

आलेख्यगता अपि चलति	चित्र में अंकित होने पर भी चलती है
पुस्तमयी अपि	मिट्टी की मूर्ति के रूप में भी ।
इन्द्रजालम् आचरति	इन्द्रजाल या जादू कर देती है ।
उत्कीर्णा अपि	खोद कर बनायी गयी भी ।
विप्रलभते	धोखा देती है ।
श्रुता अपि	उसके विषय में सुनने पर भी ।
अभिसन्धते	ठगती है ।
चिन्तिता अपि	सोचने पर भी ।
वञ्चयति	विश्वासघात करती है ।

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. ख 2. ग 3. लक्षणं 4. निर्भरमाबध्नाति

अभ्यास प्रश्न 2.

1. क 2. ख 3. खलजनप्रियः 4. पताका

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न -

- (1) संक्रान्ति (2) उदार मन वाले को
(3) वीर से (4) दानशील का (5) धन- सम्पत्ति से सम्पन्न

3. 6 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1 - ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
3 - संस्कृत साहित्य का इतिहास .	बलदेव उपाध्याय	प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

3. 7 उपयोगी पुस्तकें

1- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

3. 8 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1- इसका हिन्दी में अर्थ लिखिये अथवा व्याख्या कीजिए ?
प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य । न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्झरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः।
नियतमियमालेख्यगतापि चलति,पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति,उत्कीर्णापि विप्रलभते,
श्रुताप्यभिसन्धते, चिन्तितापि वञ्चयति ।

इकाई 4. एवंविधयापि.....सर्वजनस्योपहास्यता मुपयान्ति तक व्याख्या

इकाई की रूप रेखा

- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 उद्देश्य
- 4.3 एवंविधयापि से सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति तक व्याख्या
- 4.4 सारांश
- 4.5 शब्दावली
- 4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 4.8 उपयोगी पुस्तकें
- 4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह चौथी इकाई है। इसके माध्यम से आप जानेंगे कि चँवरों की वायु से सत्यवादिता उड़ा दी जाती है। मानो बेंत के डण्डों से गुणों को भगा दिया जाता है, मानो जय- जयकार के शब्दों के कोलाहल से हितकारी वचनों को तिरस्कृत कर दिया जाता है, ध्वज के वस्त्र की छोरों से यश को मानो पोंछ दिया जाता है, और भी।

कुछ राजापरिश्रम से थके पक्षी की ग्रीवाविवर के समान चंचल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर को मनोहर लगने वाली और मनस्वियों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित होते हैं, धन के अल्प अंश को पाने से उत्पन्न अहंकार के कारण जन्म को भूल जाते हैं, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, काम आदि अनेक दोषों की वृद्धि के कारण भोगेच्छा की अभिलाषा के आवेश से पीडित रहते हैं।

अतः इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि शुकनास ने चन्द्रापीड को महत्त्वपूर्ण बातों का उपदेश दिया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- दुराचारिणी द्वारा भाग्यवश अपनाये गये राजा व्याकुल हो जाते हैं। इस तथ्य की व्याख्या कर सकेंगे।
- अभिषेक के समय ही मानो मंगलकलशों के जल से उदारता धो दी जाती है, इसे समझायेंगे।
- छत्र के मण्डल से परलोक की दृष्टि दूर कर दी जाती है इसके विषय बतायेंगे।
- मन्त्रों द्वारा मानो उनमें प्रेतात्माओं का प्रवेश करा दिया जाता है, इसकी पुष्टि करेंगे।
- इस इकाई से प्राप्त शिक्षाओं का उल्लेख करेंगे।

4.3 एवंविधयापि - सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति तक व्याख्या

एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवाः भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति तथा हि। अभिषेकसमय एव चैतेषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोक - दर्शनम्।

शब्दार्थ - एवंविधया अपि = इस प्रकार की (वंचनापरायणा) होने पर भी, एवं विधा यस्याः सा, तथा। अनया दुराचारया = इस दुराचारिणी के द्वारा। कथमपि = जिस किसी प्रकार। दैववशेन = भाग्य से, संयोग से। दैवस्य वशेन। परिगृहीता = ग्रहण किये गये, कृपा पात्र बनाये गये। राजानः

= राजागण । विक्लवाः भवन्ति = व्याकुल हो जाते हैं । सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति = और सभी प्रकार के अविनय के अधिष्ठान या घर बन जाते हैं । अधिष्ठीयते यत् अधिष्ठानम्- अधिष्ठानस्य भावः अधिष्ठानता । सर्वे च ते अविनयाः सर्वाविनयाः, तेषाम् अधिष्ठानता, ताम् । अभिषेकसमये एव = राज्याभिषेक के समय ही । अभिषेकस्य समयः अभिषेकसमयः, तस्मिन् । एतेषाम् = इन राजाओं के । दाक्षिण्यम् = उदारता, शालीनता। दक्षिणस्य भावः दाक्षिण्यम्। दक्षिण+प्यञ्। मङ्गलकलशजलैः इव = मानो मंगल कलशों के जल से । मंगलाश्च ते कलशाश्च मंगलकलशाः। तेषां जलैः । यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है । प्रक्षाल्यते = धो दी जाती है । अग्निकार्यधूमेन इव = मानो अग्नि कार्य होम आदि के धुएँ से । हृदयं मलिनीक्रियते = हृदय मलिन कर दिया जाता है, विकारयुक्त बना दिया जाता है । पुरोहित - कुशाग्र - सम्मार्जनीभिः = पुरोहित के कुशाग्र रूपी झाड़ू से । राज्याभिषेक के समय पुरोहित राजा में पवित्रता का आधान करने के लिए उसे कुश के गुच्छों से झाड़ता है । कुशानाम् अग्राणि कुशाग्राणि, पुरोहितस्य कुशाग्राणि पुरोहित-कुशाग्राणि, तानि एव सम्मार्जनयः, ताभिः। कुशाग्रों पर सम्मार्जनी का आरोप है। क्षान्तिः अपह्रियते = क्षमाशीलता निकालकर दूर कर दी जाती है । रूपक और उत्प्रेक्षा । उष्णीषपट्टबन्धेन इव = मानो रेशमी पगड़ी को बाँधने से उष्णीषम् एव पट्टम् उष्णीषपट्टम्, तस्य बन्धनेन । जरागमनस्मरणम् = वृद्धावस्था के आगमन की स्मृति । आच्छाद्यते = ढँक दी जाती है। वे भूल जाते हैं कि वे भी कभी वृद्ध होंगे। उष्णीष से वृद्धावस्था के आगमन का संकेत देने वाले केश ढँक दिये जाते हैं । आतपत्र - मण्डलेन इव = मानो छत्र के मण्डल से। परलोकदर्शनम् अपसार्यते = परलोक की दृष्टि हटा दी जाती है, दूर कर दी जाती है । आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्, तस्य मण्डलेन । परश्च लोकश्च परलोकः, तस्य दर्शनम् । वह परलोक नहीं देखता ।

हिन्दी भावार्थ- इस प्रकार की इस दुराचारिणी द्वारा जिस किसी प्रकार भाग्यवश अपनाये गये राजा व्याकुल हो जाते हैं और सभी प्रकार की उच्छृंखलताओं के घर बना जाते हैं। और भी। अभिषेक के समय ही मानो मंगलकलशों के जल से उनकी उदारता धो दी जाती है, होमादि अग्निकार्य से हृदय मलिन बना दिये जाते हैं, पुरोहित के कुश के अग्रभाग रूपी सम्मार्जनी से क्षमाशीलता झाड़कर दूर फेंक दी जाती है, रेशमी पगड़ी के बाँधने से वृद्धावस्था आने की स्मृति ढँक दी जाती है, छत्र के मण्डल से परलोक की दृष्टि दूर कर दी जाती है।

चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः, जयशब्द कलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः। तथा हि । केचिच्छ्रमवशाशितिल-शकुनिगलपुट चटुलाभिः खद्योतोन्मेषमुहूर्त्तमनोहराभिः मनस्विजनगर्हिताभिः संपद्भिः प्रलोभ्यमाना धनलवलाभावलेप विस्मृत जन्मानोऽनेकदोषेपचितेन दोषासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः,

शब्दार्थ - चामरपवनैः इव = मानो चामरों की वायु से । चामराणां पवनैः, चामरपवनैः। सत्यवादिता अपह्रियते = सत्यवादिता दूर उड़ा दी जाती है । सत्यं वदति इति सत्यावादी, तस्य भावः सत्यवादिता । वेत्रदण्डैः इव = मानो बेंत के डण्डों से । वेत्रस्य दण्डाः, तैः। गुणाः उत्सार्यन्ते = गुण भगा दिये जाते हैं । जयशब्दकलकलैः इव = मानो जयकार शब्द के कोलाहलों से । जय

इति शब्दः जयशब्दः, तस्य कलकलैः। साधुवादाः = हितकारी वचन तिरस्कृत हो जाते हैं। इन सभी वाक्यों में उत्प्रेक्षासंकार है। ध्वज - पट- पल्लवैः इव = मानो ध्वज के वस्त्रों के आँचल से। यशः परामृश्यते = यश पोंछ दिया जाता है। दुष्कर्मों के कारण यश समाप्त हो जाता है। केचित् = कुछ राजा। श्रम-वश-शिथिल-शकुनि-गल-पुट-चटुलाभिः = परिश्रम के कारण थके पक्षी के गले के समान चंचल (सम्पद्भिः का विशेषण)। श्रमस्य वशेन शिथिलाः श्रमवशशिथिलाः। श्रमवशशिथिलाः ये शकुनयः तेषां यः गलःतस्य यत् पुटम्, श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटम्, तद्वत् चटुलाभिः। यहाँ लुप्तोपमा है। खद्योतोन्मेषमुहूर्त्त-मनोहराभिः = खद्योतों की चमक के समान क्षण भर को सुन्दर लगने वाली (सम्पद्भिः का विशेषण)। खे द्योतन्ते इति खद्योताः, तेषाम् उन्मेषः, खद्योतोन्मेषः, तद्वत् मुहूर्त्त मनोहराभिः। लुप्तोपमा है। मनस्विजनगर्हिताभिः = मनस्वी जनों द्वारा निन्दिता यह भी समपद्भिः का विशेषण है। प्रशस्तं मनः यस्य सः मनस्वी, मनस्विनश्च ते जनाः मनस्विजनाः, तैः गर्हिताभिः। गर्ह+क्त। सम्पद्भिः प्रलोभ्यमाना = सम्पत्तियों द्वारा लुभाये जाते हुए। उनके लोभ में पड़े हुए। धनलव - लाभावलेप- विस्मृत-जन्मानः = धन के अल्प अंश का लाभ पाकर अहंकार में जन्म को भूले हुए, स्वयं को अमर समझते हुए। धनस्य लवः धनलवः, तस्य यः लाभाः धनलवलाभः, तेन विस्मृतं जन्म यैः तथाभूताः। अनेक-दोषोपचितेन = अनेक दोषों के कारण बढ़े हुए। न एके इति अनेके, अनेके च ते दोषाः अनेकदोषाः, दुष्टासृजा इव = दूषित रक्त के समान। दुष्ट यत् असृक् दुष्टासृक्, तेन वात, पित्त, कफ दोषों के बढ़ने से रक्त दूषित हो जाता है। रागावेशेन बाध्यमाना = राग के आवेश से पीड़ित रहने वाला। विषयभोगों की उत्कट इच्छा से सन्तप्त रहने वाले। रागस्य आवेशः रागावेशः, तेन बाध्यमानाः = बाध+शानच् कर्म में। उन राजाओं में अनेक दोष बढ़ने से वे विषयभोग की उत्कट लालसा से बेचैन रहते हैं। रागावेश की उपमा दूषित रक्त से दी गयी है। उपमालंकार है। दोष के दो अर्थ होंगे - 1- राजाओं के पक्ष में-कामक्रोधादि दोष, 2- रक्त के पक्ष में - वात, पित्त कफ के दोष।

हिन्दी भावार्थ - चँवरों की वायु से मानो सत्यवादिता उड़ा दी जाती है। मानो बेंत के डण्डों से गुणों को भगा दिया जाता है, मानो जय-जयकार के शब्दों के कोलाहल से हितकारी वचनों को तिरस्कृत कर दिया जाता है, ध्वज के वस्त्र की छोरों से यश को मानो पोंछ दिया जाता है। और भी। कुछ राजापरिश्रम से थके पक्षी की ग्रीवाविवर के समान चंचल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर को मनोहर लगने वाली और मनस्वियों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित होते हैं, धन के अल्प अंश को पाने से उत्पन्न अहंकार के कारण जन्म को भूल जाते हैं, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, काम आदि अनेक दोषों की वृद्धि के कारण भोगेच्छा की अभिलाषा के आवेश से पीड़ित रहते हैं।

विविध-विषय-ग्रास-लालसैःपंचभिरप्यनेक-सहस्रसंख्यै-रिवेन्द्रियैरायास्यमानाः,प्रकृति चंचलतयालब्धप्रसरेणैकेनापिशतसहस्रतामिवोपगतेनमनसाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति । ग्रहैरिवगृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते ।

शब्दार्थ - विविध-विषय-ग्रास-लालसैः विविध विषयों के भाग की लालसा से युक्तविविधाश्च ते विषयाः विविधविषयाः, तेषां ग्रासे लालसा येषां तानि, तौ (इन्द्रियैः का विशेषण)। ग्रासः-ग्रस्+घञ्। लालसः = लस्+यङ् लुक+अच् प्रत्यया पंचभिः अपि अनेकसहस्रसंख्यैः इव इन्द्रियैः = पाँच होने पर भी मानो अनेक सहस्र संख्या वाली इन्द्रियों द्वारा । अनेकानि सहस्राणि संख्या येषां तानि, तैः। मानो पाँच ही इन्द्रियाँ कई हजार बन गयी हों । उत्प्रेक्षालंकार है । आयास्यमानाः = उद्योग के लिए प्रेरित किये जाते हुए आ+यस्+णिच्+शानच् । उनकी भोग की इच्छा इतनी बढ़ जाती है कि वे पाँच ही इन्द्रियों को कई हजार जैसे समझते हुए निरन्तर भोगों के लिए बेचैन रहते हैं, सन्तोष का अनुभव नहीं करते । प्रकृतचंचलतया = स्वभाव से चंचल होने के कारण मन के विषय में कहते हैं कि मन स्वभाव से चंचल होता है । प्रकृत्या चंचलम् प्रकृतचंचलम्, तस्य भावः, प्रकृतचंचलता, तया। लब्धप्रसरेण = अवसर पाकर । लब्धः प्रसरः येन तथाभूतेन । प्र+सृ+अप् । एकेन अपि = एक होकर भी । शतसहस्रताम् उपगतेन इव = मानो सौ हजार बने हुए । उत्प्रेक्षा अलंकार, शतानि सहस्राणि शतसहस्राणि, तेषां भावः शतसहस्रता, ताम् । मनसा = मन से। आकुलीक्रियमाणा = आकुल बनाये जाते हुए । अनाकुलाः आकुलाः सम्पद्यमानाः क्रियमाणाः । आकुल + कृ+ च्वि + शानच् । विह्वलताम् उपयान्ति = छटपटाने लगते हैं । विह्वलस्य भावः विह्वलता, ताम् । ग्रहैः इव गृह्यन्ते = मानो ग्रहों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं । उनकी स्थिति कैसी हो जाती है, इसी का वर्णन कवि ने यहाँ उत्प्रेक्षालंकारों द्वारा किया है । भूतैः इव अभिभूयन्ते = मानो भूतों द्वारा अभिभूत कर लिये जाते हैं । मन्त्रैः इव आवेश्यन्ते = मानो मन्त्रों द्वारा आवेश में पहुँचा दिये जाते हैं । आभिचारिक मन्त्रों से मानो उनमें प्रेतात्माओं का प्रवेश करा दिया जाता है । सत्त्वैः इव = दुष्टात्माओं के द्वारा । अवष्टभ्यन्ते = निश्चेष्ट कर दिये जाते हैं ।

हिन्दी भावार्थ- वे अनेक विषयों के भोग की उत्कट चाह वाली, पाँच होने पर भी कई हजार बनी हुई सी इन्द्रियों द्वारा उद्योग के लिए प्रेरित किये जाकर, स्वभाव से चंचल होने के कारण और अवसर पाकर एक होने पर भी सैकड़ों, हजारों जैसे बने हुए मन से व्याकुल किये जाकर छटपटाने लगते हैं। वे मानो ग्रहों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं, भूतों द्वारा अभिभूत कर लिये जाते हैं, मन्त्रों द्वारा मानो उनमें प्रेतात्माओं का प्रवेश करा दिया जाता है, दुष्टात्माओं द्वारा मानो निश्चेष्ट बना दिये जाते हैं ।

वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभङ्गसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढाप्रहारतहता इवाङ्गानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक्परिभ्रमन्ति, अधर्मभग्नगतयः पङ्गव इव परेण संचार्यन्ते मृषावाद-विपाक-संजात-मुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारैः पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलमुत्पादयन्ति ।

शब्दार्थ - वायुना इव विडम्ब्यन्ते = मानो वायु के द्वारा हास्यास्पद बना दिये जाते हैं, अस्तव्यस्त बना दिये जाते हैं । पिशाचैः इव ग्रस्यन्ते = मानो पिशाचों से ग्रास लिये जाते हैं। मदनशरैः मर्माहताः इव = कामदेव के बाणों से मर्म पर आहत के समान। मदनस्य शराः मदनशराः, तैः। मर्मसु हताः मर्महताः। मृखभङ्ग-सहस्राणि = सहस्रों प्रकार की मुख की भंगिमा प्रदर्शित करते हैं ।

मुखस्य भंगाः मुखभंगाः, तेषां सहस्राणि । मुख की भंगिमाएँ इस प्रकार दिखाते हैं जैसे कामदेव के बाणों से मर्माहत । धनोष्मणा पच्यमाना इव = धन की गर्मी से भुने जाते हुए के समान। धनस्य ऊष्मा धनोष्मा, तेन । विचेष्टन्ते = छटपटाते रहते हैं । गाढप्रहारहताः इव = गहरी चोट से पीटे गये के समान। गाढाश्च ते प्रहाराः गाढप्रहाराः तैः हताः। अङ्गानि न धारयन्ति = अंगों को सम्भाल नहीं पाते, होश में नहीं रहते । कुलीराः इव = केकड़े के समान। तिर्यक् परिभ्रमन्ति = तिरछे चलते हैं। अधर्मभग्नगतयः = अधर्म के कारण (सत्कर्म की ओर) गति भग्न हो जाने से, पडूगव इव = लंगडों के समान । परेण संचार्यन्ते = दूसरे के द्वारा चलाये जाते हैं । मन्त्री आदि सिक्की अन्य के कहे अनुसार कार्य करते हैं । उपमा अलंकार है । मृषावाद-विपाक-संजात-मुखरोगा इव = मिथ्या या असत्य बोलने के फल के रूप में, जिनके मुख में रोग हो गया है, उनके समान । मृषावादस्य विपाकेन संजातः मुखस्य रोगः येषां तथाभूताः । अतिकृच्छ्रेण जल्पन्ति = बहुत कष्ट से बोलते हैं। यहाँ कवि ने इस प्रचलित विश्वास को संकेत किया है कि पूर्व जन्म के असत्य भाषण के कारण मुख के रोग होते हैं। राजा अहंकार के कारण किसी से बातें करना पसन्द नहीं करतो। सप्तच्छदतरवः इव = जिस प्रकार सप्तच्छद के वृक्ष । कुसुम- रजो- विकारैः = अपने पुष्पों के पराग के विकास से, उग्र गन्ध से । उसी प्रकार राजागण अपने कुसुम = नेत्र के, रजोविकार = रजोगुण के विकार से । कुसुमानां रजः कुसुमरजः, तस्य विकारैः। कुसुम का दूसरा अर्थ नेत्र भी है। यहाँ श्लेष है । पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलम् उत्पादयन्ति = समीप में रहने वालों के लिए सिर में शूल उत्पन्न कर देते हैं, उद्विग्न कर देते हैं ।

हिन्दी भावार्थ- मानो वायु के द्वारा उपहासास्पद बना दिये जाते हैं, मानो पिशाचों से ग्रस लिये जाते हैं। वे कामदेव के बाणों से मर्माहत हुए के समान सहस्रों प्रकार की मुख की भंगिमाएँ दिखाते हैं, धन की गर्मी से भुने जाते हुए के समान छटपटाते हैं, गहरी मार से पीटे गये के समान अपने होश में नहीं रहते, केकड़ों के समान तिरछे चलते हैं, अधर्म के कारण (सत्कर्म में) गति भग्न हो जाने से दूसरे द्वारा चलाये जाते हैं, मिथ्या भाषण के फल के रूप में उत्पन्न मुख के रोग वाले के समान बड़ी कठिनाई से बोलते हैं, जैसे ये राजा सप्तपर्ण वृक्ष के पुष्प-पराग की उग्र गन्ध से वैसे ही अपने नेत्रों के रजोगुणविकार से समीप रहने वालों के सिर में शूल उत्पन्न कर देते हैं ।

आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कुपितलोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते, तुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्, तृष्णाविषमूर्च्छिता कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति ।

शब्दार्थ - आसन्नमृत्यवः इव = मरणासन्न लोगों के समान । आसन्नः मृत्युः येषां तथाभूताः। बन्धुजनम् अपि न अभिजानन्ति = अपने बन्धुजनों को भी नहीं पहचानते । बन्धुश्चासौ जनश्च बन्धुजनः, तम् । राजागण अहंकार के कारण अपने बन्ध-बान्धवों को नहीं पहचानते । उत्कुपितलोचनाः इव = जिनकी आँख आई हुई है, ऐसे लोगों के समान । उत्कुपिते लोचने येषां ते । तेजस्विनः न ईक्षन्ते = तेजस्वी या प्रतापी व्यक्तियों को नहीं देखते । जैसे जिसकी आँख आई

होती है, वह तेज युक्त सूर्य या दीपक के प्रकाश को नहीं देखता, वैसे ही तेजस्वी पुरुषों को नहीं देखना चाहते, उस पर दृष्टि नहीं डालते। कालद्रष्टा: इव = विषैले सर्प से डँसे गये व्यक्तियों के समान, कालेन दष्टा: कालदष्टा:। महामन्त्रैः अपि = विष उतारने के बड़े मन्त्रों से होश में नहीं आते। राजाओं के पक्ष में अर्थ होगा - श्रेष्ठ मन्त्रणाओं से जागरूक होकर विवेक से कार्य नहीं करते। महान्तश्च मन्त्राश्च ते महामन्त्राः तैः। श्लेषमूला उपमालंकार। जातुषाभरणानि इव = लाख के आभूषणों के समान, जातुषः इमानि इति जातुषाणि। सोष्माणम् = ऊष्मा, गर्मी से युक्त अग्नि आदि पदार्थ को- लाख के आभूषण के पक्ष में। उत्साह सम्पन्न व्यक्तियों को-राजाओं के पक्ष पक्ष में। न सहन्ते = सहन नहीं करते। जैसे लाख के आभूषण तापयुक्त अग्नि आदि को सहन नहीं करते वैसे ही वे उत्साही व्यक्ति को सहन नहीं करते। दुष्टवारणाः इव = बिगड़ैल हाथियों के समान, दुष्टाश्चते वारणाः दुष्टवारणाः। महामानस्तम्भनिश्चलीकृता = 1- बड़े भारी खम्भों में बाँधकर जकड़े गये भी-हाथी के पक्ष में। महत् मानं यस्य तथाभूतः यः स्तम्भः महामानस्तम्भः। अनिश्वलाः निश्चलाः सम्पद्यमानाः कृताः निश्चलीकृता। महामानस्तम्भे निश्चलीकृता महामानस्तम्भनिश्चलीकृता। 2 - घोर अहंकार के कारण अकड़े हुए, -राजा के पक्ष में। महान् यः मानः महामानः, स एव स्तम्भः, तेन निश्चलीकृताः। उपदेशं न गृह्णन्ति = उपदेश को ग्रहण नहीं करते। 1- हाथी के पक्ष में- महावत के सिखाने को ग्रहण नहीं करते, 2- राजाओं के पक्ष में- हितोपदेशा गुरुजन के उपदेश को ग्रहण नहीं करते। श्लेषमूला उपमालंकार है। तृष्णाविषमूर्च्छिता = तृष्णा रूपी विष से मूर्च्छित बेहोश। तृष्णा = धन की न बुझने वाली प्यास, लालसा। तृष्णा पर विष का आरोप किया गया है, रूपकालंकार। तृष्णा एव विषं तृष्णाविषम्, तेन मूर्च्छिता। सर्वं कनकमयम् इव पश्यन्ति = सब कुछ कनकमय सा देखते हैं। कनकमय = सोने का, धनरूप में। जैसे विष से बेहोश व्यक्ति को सभी वस्तुएँ पीली दिखायी देती हैं।

हिन्दी भावार्थ - मरणासन्न व्यक्तियों के समान वे अपने बन्धु - बान्धवों को नहीं पहचानते, जैसे जिनकी आँख आई हुई है, वे सूर्य आदि के तेज को नहीं देख पाते, वैसे ही वे तेजस्वी लोगों को नहीं देखते, विषैले सर्प से डँसे गये व्यक्ति जैसे बड़े प्रभावशाली मन्त्रों से भी होश में नहीं आते, वैसे ही वे बड़ों के हितकारी उपदेश से भी जागरूक नहीं होते, जैसे लाख के आभूषण ताप से युक्त (अग्नि आदि) को नहीं सहते, वैसे ही वे उत्साह सम्पन्न व्यक्ति को सहन नहीं करते हैं, जैसे बिगड़ैल हाथी बड़े भारी खम्भे में जकड़े गये भी (महावत के) सिखाने को नहीं ग्रहण करते, वैसे ही वे घोर अहंकार से जिद पर अड़े रहकर गुरुजनों के उपदेश को ग्रहण नहीं करते, तृष्णा रूपी विष से मूर्च्छित हुए वे सब कुछ स्वर्णमय सा देखते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1.

बहुविकल्पीय -

1. शुकनासोपदेश में दुराचारिणी किसे कहा है

क. पार्वती ख. लक्ष्मी ग. गंगा घ. उर्वशी

2. क्षान्ति का क्या अर्थ है -

क. क्षमाशील ख. शान्ति ग. क्रोध घ. उत्साह

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. भूतैरिव ।

4. मानो वायु के द्वारा बना दिये जाते है ।

इषव इव पानवर्धिततैक्षण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैः महत्कुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः तैमिरिका इवादूरदर्शिनः।

शब्दार्थ - इषवः इव = बाणों के समान । पानवर्धिततैक्षण्याः = 1- शान चढ़ाने से जिनका पैनापन बढ़ा हुआ है - बाणों के पक्ष में । 2- पान अर्थात् मदपान से जिनकी तीक्ष्णता अर्थात् निर्दयता, क्रूरता बढ़ी हुई है - राजाओं के पक्ष में । तीक्ष्णस्य भावः तैक्ष्ण्यम्, पानेन वर्धितं तैक्ष्ण्यं येषो ते । परप्रेरिताः विनाशयन्ति = 1- शत्रुओं के द्वारा चलाये गये प्राण ले लेते हैं- बाणों के पक्ष में । 2- दूसरे-मन्त्री या निकट रहने वाले सलाहकार द्वारा प्रेरित किये जाकर प्राण ले लेते हैं, नाश कर डालते हैं । श्लेषमूला उपमालंकार । दूरस्थितानि अपि फलानि = जैसे वृक्ष पर ऊँचे लगे हुए फलों को लोग दण्डविक्षेप = डण्डा फेंककर गिरा देते हैं, वैसे ही राजा लोग दूर पर रहने वाले उच्च कुलों का नाश कर देते हैं। दण्डविक्षेपैः = 1- डण्डा फेंककर, 2- दण्ड देकर या सेना को भेजकर । दण्डस्य विक्षेपैः। शातयन्ति = पीड़ित करते हैं, नष्ट कर देते हैं । अकाल - कुसुम - प्रसवाः इव = असमय में बिना ऋतु के निकलने वाले पुष्पों के समान । न कालः अकालः तस्मिन् कुसुमप्रसवाः इव । मनोहराकृतयः अपि = मनोहर आकृति की होने पर भी । मनसः हराः मनोहराः, मनोहराः आकृतयः येषां ते । लोकविनाश-हेतवः = संसार के नाश के द्योतक हैं, हेतु हैं। जैसे असमय में निकले हुए पुष्प सुन्दर होने पर भी लोक के नाश की सूचना देते हैं, वैसे ही वे सुन्दर आकृति के होने पर भी लोगों को पीड़ित करते हैं । श्लेषमूला उपमालंकार है । श्मशानाग्नयः इव = श्मशान की अग्नियों के समान । श्मशानस्य अग्नयः श्मशानाग्नयः। अतिरौद्रभूतयः = अति भयानक भूति वाले होते हैं । भूति पर श्लेष है, अतः दो अर्थ होंगे - 1- भस्म-श्मशान के अग्नि की भस्म, 2- राजाओं के पक्ष में समृद्धि, ऐश्वर्य । जिस प्रकार श्मशान के अग्नि की भस्म बहुत भयानक होती है, वैसे ही इन राजाओं के समृद्धि अतिशय भय देने वाली होती है । अतिशयेन रौद्रा भूतिः येषां ते । तैमिरिकाः इव = तिमिर नेत्ररोग से ग्रस्त व्यक्तियों के समान। तिमिरं संजातं येषां ते। तिमिर+ठक् प्रत्यय । अदूरदर्शिनः = अदूरदर्शी होते हैं । अदूरदर्शी के दो अर्थ होंगे- 1- दूर तक न देख सकने वाले-नेत्ररोगी के पक्ष में । 2- कार्य के परिणाम पर विचार न करने वाले-राजाओं के पक्ष में । श्लेषमूला उपमालंकार है । जिस प्रकार तिमिर रोग से ग्रस्त व्यक्ति दूर तक नहीं देख पाते, वैसे ही ये राजा किसी कार्य के परिणाम पर विचार नहीं करते। न दूरं यथा स्यात् तथा पश्यन्ति इति ।

हिन्दी भावार्थ- जैसे शान चढ़ाने से बढ़े हुए पैनापन वाले बाण शत्रुओं द्वारा चलाये जाने पर प्राण ले लेते हैं, वैसे ही ये मदपान से और अधिक क्रूर होकर मन्त्री आदि दूसरों द्वारा उकसाये जाने पर प्राण ले लेते हैं । जैसे (वृक्ष पर) दूर पर लगे फलों को डण्डे मारकर गिरा दिया जाता है, वैसे ही ये दूर पर रहने वाले सम्भ्रान्त कुलों को भी दण्ड लगाकर या सेना भेजकर नष्ट कर देते हैं।

जैसे असमय में उत्पन्न पुष्प मनोहर आकृति के होने पर भी संसार के विनाश के हेतु होते हैं, वैसे ही ये सुन्दर रूप वाले होने पर भी प्रजा के विनाश के कारण होते हैं। जैसे श्मशान के अग्नि की भूति (= भस्म) अति भयावह होती है, वैसे ही इनकी भूति (= समृद्धि) भयावह होती है। ये

तिमिर नेत्ररोग को रोगी के समान अदूरदर्शी होते हैं।

उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः, श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्त्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसन-शत-शरव्यतामुपगता।

शब्दार्थ - उपसृष्टा इव = वेश्यागामी कामुक लोगों के समान। क्षुद्राधिष्ठित - भवना = 1- क्षुद्राओं अर्थात् वेश्याओं या क्षुद्र विट, चेट आदि द्वारा उनके घर अधिष्ठित रहते हैं। जिस प्रकार कामी पुरुषों के घर वेश्याएँ भरी रहती हैं, वैसे इन राजाओं के भवनों में वेश्याएँ और विट आदि क्षुद्र लोग भरे रहते हैं। क्षुद्रा का एक अर्थ वेश्या भी है। कुछ लोगों ने उपसृष्टा अर्थ किया है भूत-प्रेत से ग्रस्ता। इसका समासविग्रह होगा 1- उपसृष्टाः के पक्ष में-क्षुद्राभिः अधिष्ठितं भवनं येषां ते। श्रूयमाणाः अपि = सुने जाते हुए भी, उनके विषय में या उनके आगमन के विषय में सुनायी पड़ने पर भी प्रेतपटहाः इव उद्वेजयन्ति = शवयात्रा में बजाये जाने वाले नगाड़े के समान उद्वेग उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार शवयात्रा के समय बजाये जाते हुए नगाड़े सुनने में उद्वेग उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार इन राजाओं के विषय में सुनायी पड़ने पर भी आतंक छा जाता है। श्लेषमूला उपमा। चिन्त्यमाना अपि = सोचे जाते हुए भी अर्थात् उनके विषय में सोचने पर भी। महापातकाध्यवसायाः इव = महापातक कर्म का निश्चय करने के समान। महत् च तत् पातकम्, तस्य अध्यवसायाः। उपद्रवम् उपजनयन्ति = अशान्ति या बेचैनी उत्पन्न कर देते हैं। जैसे ब्राह्मणवध आदि महापातक करने का उपक्रम करने पर विचार मात्र से ही मन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही इन राजाओं के विषय में चिन्तन करने पर भी मन अशान्त हो जाता है। अनुदिवसापूर्यमाणाः पापेन इव = मानो प्रतिदिन पाप से भरे जाते हुए, दिवसे दिवसे इति अनुदिवसम्, अव्ययीभावा यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है। आध्मातमूर्त्तयः भवन्ति = फैली या फूली हुई मूर्ति वाले हो जाते हैं। आध्माताः मूर्त्तिः येषां तथाभूताः। मानो प्रतिदिन उनके भीतर जो पाप भरता जाता है, उससे उनका आकार फैल या फूल जाता है, जैसे किसी रबर के गुब्बारे या खिलौने में हवा भरी जाती है, वैसे-वैसे फूलता जाता है। तदवस्थाः च = इस प्रकार की दशा वाले ये। सा अवस्था येषां तथाभूताः। व्यसन-शत-शरव्यताम् उपगता = सैकड़ों दुर्व्यसनो के शिकार बनकर। व्यसनानां शतानि व्यसनशतानि, तेषां शरव्यता, ताम्। शरस्य लक्ष्यं शरव्यम्, तस्य भावः शरव्यता।

हिन्दी भावार्थ- जैसे कामी पुरुषों के घर वेश्याएँ बैठी होती हैं, वैसे ही इन राजाओं के भवन में क्षुद्र जन विद्यमान रहते हैं। जैसे शवयात्रा के नगाड़े सुने जाने पर उद्वेग उत्पन्न करते हैं, वैसे इनके विषय में सुनायी पड़ने पर आतंक फैल जाता है। जैसे महापातक कर्मों के प्रयास का चिन्तन करने पर भी मन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, वैसे इनके विषय में सोचने पर भी मन

बेचैन हो उठता है । प्रतिदिन इनके भीतर भरते जा रहे पापों के कारण इनके शरीर रूपी मूर्ति फूलती जाती है । ऐसी दशा वाले वे सैकड़ों दुर्व्यसनों के शिकार बनकर ।

वल्मीकतृणाग्रावस्थिति जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति । अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशित-ग्रास-गृध्रास्थान-नलिनी-बकैर्द्युतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्ततां शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणम्

शब्दार्थ - वल्मीक - तृणाग्रावस्थिता = चींटी या दीमक की बाँमी की घास के अग्रभाग पर अटकी जल की बूँदों के समान, वल्मीकस्य तृणानि वल्मीकतृणानि तेषाम् अग्राणि, तेषु अवस्थिताः इति पतित् अपि आत्मानं न अवगच्छन्ति = अपने को गिरा हुआ होने पर भी नहीं जान पाते। जिस प्रकार चींटी या दीमक की बाँमी की घास के अग्रभाग पर अटकी जल की बूँदों का गिरने पर पता ही नहीं चलता, वैसे ही ये राजा अनेक पाप कर्मों से पतित होने पर भी स्वयं को पतित नहीं मानते। अपरे तु = कुछ दूसरे राजा । इसका सम्बन्ध वाक्य के अन्त में आये हुए 'सर्वजनस्य उपहास्यताम् उपयान्ति' की क्रिया से है। स्वार्थनिष्पादनपरेः = अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगे हुए । स्वस्य अर्थ स्वार्थः, तस्य निष्पादनम् स्वार्थनिष्पादनम् । स्वार्थनिष्पादनम् एवं परं येषां ते। धन-पिशित-ग्रास-गृध्रैः = धन रूपी मांस का ग्रास पाने के लिए गृध्रों के समान, धन पर पिशित = मांस का आरोप और धूर्तों पर गृध्रों का आरोप होने से रूपकालंकार है। धनम् एव पिशितं धनपिशितम् तस्य ग्रासे गृध्रैः, तैः। आस्थान-नलिनी-बकैः = राजा की बैठक रूपी कमलिनी का आश्रय लेकर जमे हुए धूर्त बगुले। यहाँ आस्थान पर कमलिनी का और धूर्तों पर बकों का आरोप है, रूपकालंकार है। बगुले कमलिनी के पत्तों के पीछे छिपकर बैठे रहते हैं और वे जिस प्रकार मछलियों का शिकार करते हैं, वैसे धूर्त राजा की सभा में आश्रय लेकर अवसर पाकर धन लूटते रहते हैं। आस्थीयते अत्र इति आस्थानम्, आस्थानम् एवं नलिनी आस्थाननलिनी, तस्यां बकैः। द्यूतं विनोदः इति = जुए के व्यसन को विनोद बताते हुए, वि+नुद्+घञ्। परदाराभिगमनम् वैदग्ध्यम् इति = परस्त्रीगमन को चतुराई बताते हुए। परेषां दाराः परदाराः, तेषाम् अभिगमनम् परदारभिगमनम् । अभि + गम् + ल्युट्। मृगया श्रमः इति = शिकार को परिश्रम का कार्य या व्यायाम बताते हुए श्रमः = श्रम् + घञ् । पानं विलासः इति = मदपान को विलास या मनोरंजन बताते हुए, पा + ल्युट् । प्रमत्ततां शौर्यम् इति = असावधानी को बहादुरी बताते हुए प्रमत्तस्य भावः प्रमत्तता । प्र+ मद् + क्त = प्रमत्त । प्रमत्तस्य भावः प्रमत्तता । शूरस्य भावः शौर्यम् । शूर+ ष्यञ् । स्वदारपरित्यागम् अव्यसनिता इति = अपनी पत्नी के परित्याग को व्यसन का अभाव या दोष का अभाव बताते हुए, स्वस्य दाराणां परित्यागः स्वदारपरित्यागः तम् । परि + त्यञ् + घञ् । व्यसन या दोष का अभाव है, वैराग्य का गुण है। गुरुवचनावधीरणम् = गुरुजनों के वचनों का तिरस्कार । गुरुणां वचनानि, गुरुवचनानि, तेषाम् अवधीरणम् ।

हिन्दी भावार्थ - बाँमी की घास के अग्र भाग पर गिरी जल की बूँदों के समान अपना पतित

होना नहीं जान पाते। कुछ दूसरे राजाओं को केवल अपने स्वार्थ साधने में तत्पर, धन रूपी मांस के टुकड़े को झपटने में गृध्र जैसे तथा राजसभा रूपी कमलिनी के पीछे (शिकार के लिए) छिपे बगुलों के समान धूर्त लोग यह समझाते हैं कि जुआ तो विनोद है, परस्त्रीगमन चतुराई है, शिकार खेलना व्यायाम है, मदपान करना मनोरंजन है, असावधानी वीरता है, अपनी पत्नी का परित्याग व्यसनहीनता है, गुरुजनों के वचन का तिरस्कार करना है।

अपरप्रणयत्वमिति, अजितभृत्यतां सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्य-गीतवाद्यवेश्याभिसक्तिं रसिकतेति, महापराधानावकर्णनं महानुभावतेति, पराभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दतां प्रभुत्वमिति, देवावमानं महासत्त्वतेति, बन्दिजनख्यातिं यश इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति, दोषानपि।

शब्दार्थ - अपरप्रणयत्वम् इति = दूसरों के कहने पर न चलना। दूसरों के कहने पर चलना अपनी बुद्धि की कमी या अक्षमता को द्योतित करता है और मूर्खों का लक्षण माना गया है। प्रणेतुं योग्यः प्रणयः, परैः प्रणयः परप्रणयः, तस्य भावः परप्रणयत्वम्। प्रणयः प्र + नी + यत्। अपरप्रणयत्व का अर्थ होता है अपने विवेक से बिना किसी दूसरे प्रभावित हुए स्वतन्त्र कार्य करना। अजितभृत्यताम् = सेवकों को अपने वश में न रख पाने को। भर्तुं योग्याः भृत्याः, न जिताः भृत्याः येन सः अजितभृत्यः, तस्य भावः। सुखोपसेव्यत्वम् इति = सुखपूर्वक सेवा करने योग्य होना उपसेवितुं योग्यः उपसेव्यः, सुखेन उपसेव्यः सुखेपसेव्यः, तस्य भावः। उपसेव्य-उप+सेव्+ण्यत्। नृत्य-गीत-वाद्य-वेश्याभिसक्तिम् = नृत्य, गीत, वाद्य और वेश्या में आसक्ति को, नृत्यं च गीतं च वाद्यं च वेश्याश्च नृत्यगीतवाद्यवेश्याः तासु अभिसक्तिम्। अभि + संज् + क्तिन्। रसिकता इति = रसिकता या कलाप्रियता बताकर, महापराधानावकर्णनम् = बड़े अपराधों को न सुनना महानुभावता है। महापराधावकर्णनम् पाठ भी है जिसका अर्थ होगा बड़े अपराधों को सुनने में रुचि लेना। महान्तश्च ते अपराधाः महापराधाः, तेषाम् अनाकर्णनम्। पराभवसहत्वम् = अपमान को सह लेना। सहते इति सह (सह्+अच्), पराभवस्य सहः पराभवसहः, तस्य भावः पराभवसहत्वम्। क्षमा इति = क्षमा के रूप में। स्वच्छन्तां प्रभुत्वम् इति = स्वच्छन्द आचरण को प्रभुत्व के रूप में। स्वः छन्दः यस्य सः स्वच्छन्दः, तस्य भावः स्वच्छन्दता, ताम्। प्रभोः भावः प्रभुत्वम्। देवावमानम् = देवों का सम्मान न करना, देवस्य अवमानं देवावमानम्। महासत्त्वता = महाशक्तिशालित्व है। महत् सत्त्वं यस्य सः महासत्त्वः तस्य भावः। बन्दि-जन-ख्यातिम् = बन्दिजनों, चारणों द्वारा किये गये स्तुतिगान को। बन्दिनश्च ते जनाः बन्दिजनाः, तेषां ख्यातिः, ताम्। ख्या+क्तिन्। यशः इति = यश है इस रूप में। तरलताम् उत्साहः इति = चंचलता को उत्साह के रूप में। तरलस्य भावः तरलता, ताम्। तरल + लत् + टाप्। अविशेषज्ञताम् अपक्षपातित्वम् इति = किसी के विषय में सही ज्ञान न होने को पक्षपातरहित होने के रूप में। किसी के गुण या अवगुण आदि विशेषताओं का ज्ञान न हो तो उसे पक्षपातरहित होना बताते हैं। विशेषं जानाति इति विशेषज्ञः, तस्य भावः विशेषज्ञता। पक्षे पतति इति पक्षपाती, न पक्षपाती इति अपक्षपाती, तस्य भावः अपक्षपातित्वम्। दोषान् अपि = इस प्रकार राजा के दोषों को भी धूर्त गुण के रूप में बखनते हैं, और राजा को मूर्ख बनाते हैं।

हिन्दी भावार्थ: - किसी के सिखाने-पढ़ाने पर न चलना है, सेवकों को वश में न रख पाना सुख से सेवा करने योग्य होना है, नृत्य, गीत, वाद्य और वेश्या में आसक्ति होना कलाप्रियता या रसिकता है, बड़े अपराधों के विषय में न सुनना महानुभावता है, अपमान को सह लेना क्षमा है, मनमानी करना प्रभुता है, देवता का अपमान करना महान् शक्तिशालित्व है, बन्दिजनों की स्तुति ही यश है, चंचलता उत्साह है, किसी के विषय में विशेष न जानना निष्पक्षता है, इस प्रकार दोषों को भी।

गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः
प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषलोकोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ताः
निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्या-रोपितालीकाभिमानाः मर्त्यधर्माणोऽपि
दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचित-
चेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति।

शब्दार्थ - गुणपक्षमध्यारोपयद्भिः = गुणों के वर्ग में आरोपित करने वाले, गुणों में गिनाने वाले (धूर्तैः का विशेषण) अन्तः = मन ही मन। स्वयम् अपि विहसद्भिः = स्वयं भी उन राजाओं के ऊपर हँसते रहने वाले। वि+हस्+शतृ। प्रतारणकुशलैः धूर्तैः = ठगने में कुशल धूर्तों द्वारा। प्रतारणे कुशलाः, तैः। प्रतारण = प्र+ तृ+ णिच् + ल्युट्। अमानुष - लोकोचिताभिः = मनुष्यों के विषय में घटित न हो सकने वाली स्तुतियों से छले जाते हुए, ठगे जाते हुए। मानुषाणाम् लोकानाम् उचिताः मानुषलोकोचिताः, न मानुषलोकोचिताः, अमानुषलोकोचिताः, ताभिः। प्र+तृ+णिच्+ शानच् कर्म में। वित्तमदमत्तचित्ताः = धन के मद से मतवाले चित्त वाले वित्तस्य मदः वित्तमदः, तेन मत्तं चित्तं येषां ते। निश्चेतनतया = चेतना खो देने के कारण, अज्ञान से ग्रस्त होकर, विवेकरहित होकर। निर्गता चेतना येभ्यः निश्चेतनाः, तेषां भावः। तथा एव इति = ऐसा ही है, धूर्तों के वचन को सत्य मानते हुए। आत्मनि आरोपितालीकाभिमाना = अपने भीतर अभिमान का आरोप किये हुए। अलीकः अभिमानः अलीकाभिमानं, आरोपितः अलीकाभिमानः यैः तथाभूताः। मर्त्यधर्माणः अपि = मरणशील मनुष्यों के धर्म वाले होने पर भी, जन्म-मृत्यु वाले मनुष्य होने पर भी। मर्त्यानां धर्मः मर्त्यधर्मः, मर्त्यधर्मः येषां तथाभूताः। दिव्यांशावतीर्णम् इव = स्वर्गीय अंशों के साथ अवतार लिये हुए के समान, मानो उन्होंने देवता के अंशों के साथ जन्म लिया हो। दिवि भवाः दिव्याः। दिव्याः ये अंशाः दिव्यांशाः, तैः अवतीर्णः, तम्। अव+तृ+क्त। उत्प्रेक्षालंकार। सदैवतम् इव = दैवी भाव से युक्त सा। यहाँ पर उत्प्रेक्षालंकार है। देवता एव दैवतानि, तैः सह वर्तमानम् सदैवतम्। आत्मानम् अतिमानुषम् उत्प्रेक्षमाणाः = अपने को मनुष्य से ऊपर समझते हुए। अतिक्रान्तः मानुषान् अति अमानुषम्। उत्प्रेक्षमाणः = उत्, प्र+ईक्ष+शानच्। प्रारब्ध-दिव्योचित-चेष्टानुभावाः = देवों के समान चेष्टायें और महात्म्य प्रदर्शित करते हुए। दिव्यानाम् उचिताः चेष्टाः अनुभावाश्च दिव्योचितचेष्टानुभावाः प्रारब्धाः दिव्योचितचेष्टानुभावाः यैः ते। सर्वजनस्य उपहास्यताम् उपयान्ति = सभी लोगों के लिए उपहास के पात्र बन जाते हैं। उपहसितुं योग्यः उपहास्यः, तस्य भावः, उपहास्यता, ताम्। जनस्य

एकवचन है किन्तु उसका अर्थ बहुवचन का लिया जायेगा ।

हिन्दी भावार्थ- गुणों के बीच आरोपित करने वाले और मन ही मन स्वयं उनके ऊपर हँसने वाले, ठगने में कुशल धूर्तों द्वारा मनुष्य लोक में घटित न होने योग्य स्तुतियों से वे ठगे जाते हैं और धन के मद से बौराये मन वाले वे राजा अविवेकहीन होने के कारण उन धूर्तों के कथनों को वैसा ही मानते हुए अपने में मिथ्या अभिमान भर लेते हैं, मरणशील मनुष्यों के धर्म से युक्त होने पर भी अपने को दिव्य अंश के साथ अवतार लिया हुआ सा और दैवी स्वरूप से सम्पन्न सा समझकर वे देवों के समान चेष्टाएँ और महत्त्व प्रदर्शित करने लगते हैं, जिससे वे सभी लोगों के उपहास के पात्र बन जाते हैं ।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. इषवः का क्या अर्थ है -

क. शत्रु ख. धनुष ग. बाध घ. तलवार

2. असमय में खिला हुआ पुष्प किसका सूचक है -

क. विनाश ख. उत्साह ग. कृपणता घ. वीरता

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

3. बन्दीजन ख्यातिं इति ।

4. तरलताम् इति ।

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न

1- किसके द्वारा उपहासास्पद बना दिये जाते हैं ?

2- किसके समान वे अपने बन्धु-बान्धवों को नहीं पहचानते हैं ?

3- असमय में उत्पन्न पुष्प मनोहर आकृति के होने पर किसके विनाश के हेतु होते हैं ?

4- किस कुलों को दण्ड लगाकर या सेना भेजकर नष्ट कर देते हैं ?

5- किस रोगी के समान अदूरदर्शी होते हैं ?

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि दुराचारिणी द्वारा जिस किसी प्रकार भाग्यवश अपनाये गये राजा व्याकुल हो जाते हैं और सभी प्रकार की उच्छृंखलताओं के घर बना जाते हैं। और भी। अभिषेक के समय ही मानो मंगलकलशों के जल से उनकी उदारता धो दी जाती है, होमादि अग्निकार्य से हृदय मलिन बना दिये जाते हैं, पुरोहित के कुश के अग्रभाग रूपी सम्मार्जनी से क्षमाशीलता झाड़कर दूर फेंक दी जाती है, रेशमी पगड़ी के बाँधने से वृद्धावस्था आने की स्मृति ढँक दी जाती है, छत्र के मण्डल से परलोक की दृष्टि दूर कर दी जाती है। चँवरों की वायु से मानो सत्यवादिता उड़ा दी जाती है। मानो बेंत के डण्डों से गुणों को भगा दिया जाता है, मानो जय-जयकार के शब्दों के कोलाहल से हितकारी वचनों को तिरस्कृत कर दिया जाता है, ध्वज के

वस्त्र की छोरों से यश को मानो पोंछ दिया जाता है। और भी। कुछ राजापरिश्रम से थके पक्षी की ग्रीवाविवर के समान चंचल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर को मनोहर लगने वाली और मनस्वियों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित होते हैं, धन के अल्प अंश को पाने से उत्पन्न अहंकार के कारण जन्म को भूल जाते हैं, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, काम आदि अनेक दोषों की वृद्धि के कारण भोगेच्छा की अभिलाषा के आवेश से पीडित रहते हैं। अतः इस इकाई के अध्ययन कर लेने के बाद आप प्रस्तुत इकाई के वर्ण्य विषयों के माध्यम से इस इकाई में प्राप्त शिक्षाओं को बताते हुये सारांश भी अपने शब्दों में लिख सकते है।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
लब्धप्रसरेण	अवसर पाकर।
एकेन अपि	एक होकर भी।
शतसहस्रताम् उपगतेन इव	मानो सौ हजार बने हुए।
मनसा	मन से।
आकुलीक्रियमाणा	आकुल बनाये जाते हुए।
विह्वलताम् उपयान्ति	छटपटाने लगते हैं।
ग्रहैः इव गृहन्ते	मानो ग्रहों द्वारा पकड़ लिये जाते
भूतैः इव अभिभूयन्ते	मानो भूतों द्वारा अभिभूत कर लिये जाते हैं।
मन्त्रैः इव आवेश्यन्ते	मानो मन्त्रों द्वारा आवेश में पहुँचा दिये जाते हैं।
सत्त्वैः इव	दुष्टात्माओं
अवष्टभ्यन्ते	निश्चिष्ट कर दिये जाते हैं।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1-

1. ख 2. क 3. अभिभूयन्ते 4. हास्यास्पद

अभ्यास प्रश्न 2

1. ग 2. क 3. यशः 4. उत्साह

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न –

(1) वायु के द्वारा (2) मरणासन्न व्यक्तियों के समान (3) संसार के विनाश के हेतु (4) सम्भ्रान्त कुलों को (5) तिमिर नेत्ररोग के रोगी के समान

4.7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

4.8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिये -
 इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैः महत्कुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः तैमिरिका इवादूरदर्शिनः।
2. प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई : 5 आत्मविडम्बनाम् स्वभवनम् आजगाम तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 आत्मविडम्बनाम् से स्वभवनम् आजगाम तक व्याख्या
- 5.4 सारांश
- 5.5 शब्दावली
- 5.6 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर
- 5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.8 उपयोगी पुस्तकें
- 5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य से सम्बन्धित खण्ड तीन की पाचवीं इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने लक्ष्मी के विभिन्न प्रभावों व स्वरूपों का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेश के अगले भाग के वर्ण्य विषयों का अध्ययन करेंगे।

शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए कहते हैं कि युवराज पद पर अभिषेक के मंगल का आनन्द प्राप्त कीजिए। कुल परम्परा से चली आयी हुई और अपने पूर्वजों द्वारा ढोयी गयी (राज्य शासन के भार की) धुर को वहन कीजिए। शत्रुओं के सिरों को झुका दीजिए, अपने बन्धुओं के समूह का उत्थान कीजिए और अभिषेक के बाद दिग्विजय प्रारम्भ कर चारों ओर भ्रमण करते हुए अपने पिता द्वारा जीती गयी भी सात द्वीपों के अलंकार वाली इस धनधान्य सम्पन्ना पृथ्वी को फिर से अपने अधीन कीजिए।

अतः प्रस्तुत इकाई में बताये गये तथ्यों का सम्यक् अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप ब्राह्मण, गुरु, राजा, आदि के कर्तव्यों और विभिन्न सम्बन्धों में किये जाने वाले विश्वासों की भली-भाँति व्याख्या कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिए गये उपदेश से सम्बद्ध इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- सेवकों द्वारा अपनी नकल किये जाने पर प्रसन्न होते हैं, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।
- अपने ललाट में त्वचा के नीचे तीसरे नेत्र के छिपे होने की आशंका करने लगते हैं। इस तथ्य को समझा सकेंगे।
- वार्तालाप कर देना धन का भाग देने जैसा समझते हैं, इसके बारे में विस्तृत उत्तर दे सकेंगे।
- विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाये, इस वाक्य की पुष्टि उदाहरणों से कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में प्राप्त शिक्षाओं का उल्लेख कर सकेंगे।
- इस इकाई के विभिन्न गद्यखण्डों को व्याख्यायित करेंगे।

5.3 आत्मविडम्बनाम् स्वभवनम् आजगाम् तक व्याख्या

आत्मविडम्बनां चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति । मनसा देवताधारोपण-विप्रतारणादसद्भूत- संभावनोप -हताश्रान्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं संभावयन्ति । त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कते । दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गुणयन्ति। दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति । संभाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति।
शब्दार्थ - अनुजीविना जनेन = सेवकों द्वारा, अनुजीवति इति अनुजीवी, तेन। अनु + जीव् + इन्। क्रियमाणाम् = की जाती हुई, कृ+शानच् कर्म अर्थ में। आत्म-विडम्बनाम् = अपनी नकल

को, अभिनन्दन्ति = पसन्द करते हैं, उससे उस सेवक पर प्रसन्न होते हैं। मनसा = मन ही मन। देवताध्यारोपण-विप्रतारणात् = देवता के अध्यारोपण के धोखे में पड़ने के कारण। देवतायाः अध्यारोपणम् देवताध्यारोपणम्, तदेव विप्रतारणम्, देवताध्यारोपणविप्रतारणम्, तस्मात्। असद्भूत-संभावनोपहताः च = अविद्यमान की सम्भावना करने से मूर्खता में पड़े हुए। जो देवत्व उनमें नहीं है उसे अपने में समझ लेने के कारण जिनकी मति मारी गयी है। सती भूता इति सद्भूता, न सद्भूता असद्भूता, असद्भूता च संभावना असद्भूतसंभावना, तथा उपहताः। अन्तःप्रविष्टापरभुजद्वयम् इव = मानो उनके भीतर दो दूसरी भुजाएँ प्रविष्ट हों। अपनी बाहुओं के भीतर प्रविष्ट दो और भुजाओं की सम्भावना करते हुए। भुजयोः द्वयम् भुजद्वयम्, अन्तःप्रविष्टं अपरं भुजद्वयम् यस्मिन् तथाभूतम्। बाहुयुगलम् का विशेषण है। आत्मबाहुयुगलं संभावयन्ति = अपनी दोनों भुजाओं के विषय में संभावना कर लेते हैं कि उनके भीतर और दो भुजाएँ प्रविष्ट हैं और वे विष्णु के ही रूप हैं। त्वगन्तरित-तृतीयलोचनम् = त्वचा के पीछे तीसरा नेत्र छिपा हुआ है ऐसी आशंका कर लेते हैं। त्वचा अन्तरितम् तृतीयं लोचनम् यस्मिन् तत् (ललाटम् का विशेषण है)। स्वललाटम् = अपने ललाट के विषय में, स्वस्य ललाटम् स्वललाटम्। आशंकते = आशंका कर लेते हैं, समझ लेते हैं, संभावना करते हैं। अपने को शिव का रूप समझने लगते हैं। दर्शनप्रदानम् अपि = दर्शन देना भी दर्शनस्य प्रदानं दर्शनप्रदानम्। अनुग्रहम् गणयन्ति = कृपा करना मानते हैं। दृष्टिपातम् अपि = किसी पर दृष्टि डालना भी। दृष्टेः पातः दृष्टिपातः, तम्। पातः-पत्+घञ्। उपकारपक्षे स्थापयन्ति = उपकार के वर्ग में रखते हैं, किसी पर दृष्टि डालने को ऐसा समझते हैं जैसे उस पर उपकार कर दिये। स्थापयन्ति = स्था+णिच्+लट् लकार प्रथम पु० बहुवचन उपकारस्य पक्षे उपकारपक्षे। उप + कृ + घञ्। संभाषणाम् अपि = वार्तालाप कर लेना भी। सम् + भाष् + ल्युट्। संविभागमध्ये कुर्वन्ति = धन का भाग देने के कार्य में जोड़ते हैं। ऐसा समझते हैं जैसे धन का हिस्सा ही दे दिया हो, कोई बड़ा पुरस्कार दे दिया हो। सम्, वि+भञ्+घञ्। संविभागस्य मध्ये संविभागमध्ये।

हिन्दी भावार्थः- सेवकों द्वारा अपनी नकल किये जाने पर प्रसन्न होते हैं, मन ही मन देवता का अपने ऊपर आरोप किये जाने के धोखे के कारण अविद्यमान शक्तियों की संभावना करने से उनकी मति मारी जाती है और वे ऐसा समझने लगते हैं कि उनकी दोनों भुजाओं के भीतर दूसरी और दो भुजाएँ प्रविष्ट हैं। वे अपने ललाट में त्वचा के नीचे तीसरे नेत्र के छिपे होने की आशंका करने लगते हैं। किसी को दर्शन देना भी कृपा करना गिनते हैं, दृष्टि डाल देना भी उपकार करने में जोड़ते हैं। वार्तालाप कर देना धन का भाग देने जैसा समझते हैं।

आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते। स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान् नार्चयन्त्यर्चनीयान् नाभिवाद्यन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरुन् अनर्थकायासान्तरितोपभोग सुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम् जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम्,

शब्दार्थ - आज्ञाम् अपि = किसी को आज्ञा देना भी । वरप्रदानं मन्यन्ते = ऐसा मानते हैं जैसे उसे वरदान दे दिया । वरस्य प्रदानं वरप्रदानम् । स्पर्शम् अपि = किसी को छू लेना भी, पावनम् आकलयन्ति = पवित्र कर देना मानते हैं । ऐसा समझते हैं जैसे उसे पवित्र कर दिया। स्पृशु+घञ्-स्पर्शः । मिथ्या-माहात्म्य-गर्व-निर्भराश्च = अपनी मिथ्या महत्ता के अहंकार में चूर होकर । महान् आत्मा यस्य सः महात्मा । तस्य भावः माहात्म्यम् । महात्मन्+ष्यञ् प्रत्यय । मिथ्या माहात्म्यं मिथ्यामाहात्म्यम्, तस्य गर्वः मिथ्यामाहात्म्यगर्वः, तेन निर्भराः। न प्रणमन्ति देवताभ्यः = देवों को प्रणाम नहीं करते हैं । न पूजयन्ति द्विजातीन् = ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते। द्वे जाती येषां ते द्विजातयः, तान् । यहाँ ब्राह्मण से ही तात्पर्य है, यद्यपि द्विजाति में तीन उच्च वर्ण माने जाते हैं। न मानयन्ति मान्यान् = आदरणीय श्रेष्ठ जनों का आदर नहीं करते। मानयितुं योग्याः मान्याः । मान्+ण्यत् प्रत्यय । न अर्चयन्ति अर्चनीयान् = पूजा-सत्कार करने योग्य लोगों का सत्कार नहीं करते । अर्चयितुं योग्याः अर्चनीयाः, तान्। अर्च्+अनीयर्। न अभिवादयन्ति अभिवादनार्हान् = अभिवादन के योग्य लोगों का अभिवादन नहीं करते । अभिवादनस्य अर्हान् अभिवादनार्हान् । न अभ्युत्तिष्ठन्ति गुरुन् = गुरुजनों के आगमन पर उनके स्वागत-सम्मान में उठते नहीं हैं । अनर्थक-आयास-अन्तरित-उपभोग-सुखम् इति = निष्प्रयोजन कार्यों पर परिश्रम में उपभोगसुख को गँवा दिया ऐसा कहकर । न अर्थः यस्य तथाभूतः आयासः अनर्थकायासः, तेन अन्तरितम् उपभोगस्य सुखम् यस्य तथाभूतम् । तात्पर्य यह कि ये भोगपरायण राजा धर्माचरण, यज्ञ, अध्ययन, अध्यापन आदि करने वाले विद्वानों की यह कहकर हँसी उड़ाते हैं कि व्यर्थ के कार्यों में इन्होंने भोग के अवसर खो दिये । उपहसन्ति = उपहास करते हैं, हँसी उड़ाते हैं । जरा-वैक्लव्यप्रलपितम् इति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम् = वृद्ध जनों के हितकारी उपदेश को वृद्धावस्था के वैक्लव्य या दुर्बलता के कारण प्रलाप के रूप में देखते हैं । विकलस्य भावः वैक्लव्यम् । जरया वैक्लव्यम् जरावैक्लव्यम् प्रलपितम् इति । वैक्लव्य-विकल+ष्यञ् ।

हिन्दी भावार्थः- आज्ञा देने को वर दे देने जैसा मानते हैं, स्पर्श कर लेने को पवित्र कर देने वाला समझते हैं, अपनी झूठी महत्ता के गर्व से भरे हुए वे देवों को प्रणाम नहीं करते, ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते, सम्माननीय जनों का सम्मान नहीं करते, सत्कार करने योग्य लोगों का सत्कार नहीं करते, प्रणाम करने योग्य जनों को प्रणाम नहीं करते, गुरुओं के आने पर उनके आदर में उठते नहीं हैं। विद्वानों पर यह कहकर हँसते हैं कि व्यर्थ के (यजन, अध्ययन, अध्यापन) कार्यों में इन्होंने उपभोग के सुख को गँवा दिया और वृद्ध जनों के उपदेश को बुढ़ापे की दुर्बलता के प्रभाव से किये जाने वाले प्रलाप के रूप में देखते हैं ।

आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्त्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यगुद्धावयति ।

शब्दार्थ - आत्मप्रज्ञा-परिभवः इति = अपनी बुद्धि का तिरस्कार है ऐसा मानकर, आत्मनः प्रज्ञा

आत्मपज्ञा, तस्याः परिभवः। परि+भू+अप् । सचिवोपदेशाय असूयन्ति = सचिवों के समझाने पर उनसे चिढ़ते हैं, जलते हैं । सचिवानाम् उपदेशः सचिवोपदेशः तस्मै। असूया से नाम धातु लट् लकार। हितवादिने कुप्यन्ति = हित वचन बोलने वाले पर कुपित होते हैं। हितं वदति इति हितवादी, तस्मै । हित+वद्+इन् प्रत्यया सर्वथा = सभी प्रकार से सर्व+थाल् प्रत्यया तम् अभिनन्दन्ति = उसी का अभिवादन करते हैं या आने पर प्रसन्न होते हैं। तम् आलपन्ति = उसी से बातें करते हैं, तं पार्श्वे कुर्वन्ति = उसे ही अपने पास रखते हैं । तं संवर्धयन्ति = उसी को प्रोत्साहन देते हैं, आगे बढ़ाते हैं । तेन सह सुखम् अवतिष्ठन्ते = उसी के साथ सुखपूर्वक रहते हैं, उसी के साथ रहने में सुख का अनुभव करते हैं। तस्मै ददति = उसे ही देते हैं । तं मित्रताम् उपजनयन्ति = उसी से मित्रता बनाये रखते हैं । तस्य वचनं शृण्वन्ति = उसी की बातें सुनते हैं। तत्र वर्षन्ति = उसी पर धन की वर्षा करते हैं । तं बहु मन्यन्ते = उसी को महत्व देते हैं। तम् आप्तताम् आपादयन्ति = उसे ही विश्वासपात्र बना लेते हैं। आप्तस्य भावः आप्तता, ताम् आपादयन्ति-आःपद + णिच् + लट् लकार । विश्वसनीयता पर पहुँचाते हैं। यः = जो। अहर्निशम् = दिनरात, अहश्च निशा च अहर्निशे, तयोः समाहारः अहर्निशम्। द्वन्द्व समासा अनवरतम् = निरन्तर। न अवरतं यथा स्यात् तथा । उपरचितांजलि = अंजलि बाँधे हुए, हाथ जोड़े हुए। उपरचितःअंजलि येन सः। अधिदैवतम् इव = देवता के समान । विगतान्यकर्तव्यः = अन्य कार्यों को छोड़े हुए, विगतानि अन्यानि कर्तव्यानि यस्य सः। स्तौति = स्तुति करता रहता है, यो वा माहात्म्यम् उद्भाषयति = या जो उनकी महत्ता को बताता रहता है, अनेक प्रकार के शब्दजाल बनाकर उनकी महत्ता का बखान करता रहता है । महात्मनः भावः माहात्म्यम् । महात्मन्+ष्यञ् प्रत्यय । उद्भाषयति = उद् + भू + णिच् से लट् लकार ।

हिन्दी भावार्थः- अपनी बुद्धि का निरादर समझकर सचिवों के उपदेश पर कुढ़ते हैं, हितकारी वचन बोलने वाले पर कोप करते हैं, सभी प्रकार से उसी का अभिनन्दन करते हैं, उसी से बातें करते हैं, उसे ही अपने पास रखते हैं, उसी को आगे बढ़ाते हैं, उसी के साथ सुखपूर्वक रहते हैं, उसे ही देते हैं, उसी से मित्रता रखते हैं, उसी की बातें सुनते हैं, उस पर धन की वर्षा करते हैं, उसे महत्व देते हैं और उसे ही अपना विश्वासपात्र बना लेते हैं, जो दिन-रात निरन्तर हाथ जोड़े हुए उन्हें देवता के समान प्रदर्शित करते हुए अन्य कार्यों को छोड़कर उन्हीं की स्तुति करता है या उनकी महत्ता का बखान करता रहता है ।

किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहजप्रेमाद्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः। तदेवंप्रायातिकुटिल-कष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन्।

शब्दार्थ - किं वा तेषां साम्प्रतम् = उनके लिए भला क्या उचित है। येषाम् = जिनके लिए। अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घणम् = अधिकांश अतिशय क्रूर कर्मों के उपदेश से भरे हुए। अतिशयेन नृशंसः अतिनृशंसः, अतिनृशंसः प्रायः भागः यस्य तथाभूतः उपदेशः, तेन निर्घणम्। निर्गता घृणा

यस्मात् तथाभूता । यहाँ घृणा का अर्थ दया है । कौटिल्य अर्थात् चाणक्य के अर्थशास्त्र से तात्पर्य है जिसमें राजा के लिए प्रायः क्रूरतापूर्ण उपायों का उपदेश किया गया है । अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः = जिनका स्वभाव एकमात्र अभिचार क्रिया में लगे रहने के कारण क्रूर है। अभिचारस्य क्रियाः अभिचारक्रियाः, तथा क्रूरा एका प्रकृतिः येषां ते तथाभूताः (पुरोधसः का विशेषण) उनका स्वभाव क्रूर ही होता है, क्योंकि वे दूसरों को नष्ट करने, मारने के लिए हिंसा भावना से प्रेरित मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाएँ करते रहते हैं । पुरोधसः = पुरोहिता गुरुवः = गुरु होते हैं, उनके शिक्षक होते हैं । पराभिसन्धानपरा मन्त्रिणः = दूसरों को धोखा देने में ही लगे रहने वाले मन्त्री । परेषाम् अभिसन्धानम् पराभिसन्धानम् तदेव परं येषां ते । अभिसन्धान = वंचना, धोखा, उपदेशारः = उपदेश देने वाले होते हैं। नरपतिसहस्रभुक्तोज्जितायां = सहस्रों राजाओं द्वारा भोग करने के बाद छोड़ी गयी (लक्ष्मी के लिए) । नरपतीनां सहस्राणि नरपतिसहस्राणि, तैः भुक्ता अनन्तरम् उज्जिता इति नरपतिसहस्रभुक्तोज्जिता, तस्याम् लक्ष्म्याम् आसक्तिः = लक्ष्मी में आसक्ति होती है। मारणात्मकेषु शास्त्रेषु अभियोगः = दूसरों को मारने का ज्ञान देने वाले तन्त्र आदि शास्त्रों में ही लगाव होता है । ‘मारणात्मकेषु शास्त्रेषु’ पाठ भी है तब अर्थ होगा दूसरों का विनाश करने वाले शास्त्रों में। सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्तः = जन्मजात प्रेम के कारण जिनके हृदय आर्द्र और अनुरक्त होते हैं (भ्रातरः का विशेषण)। सह जातं यत् प्रेम सहजप्रेम, तेन आर्द्रम् हृदयं येषां तथाभूताः, सहजप्रेमार्द्रहृदयाः। सहजप्रेमार्द्रहृदयाश्च अनुरक्ताश्च सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः। भ्रातरः = भाई, अपने भ्राता। उच्छेद्याः = नष्ट किये जाने योग्य होते हैं, उन्मूलन या मार डालने योग्य होते हैं, उच्छेतुं योग्याः उच्छेद्याः । उत्+छिद्+ण्यत् । तदेवंप्रायातिकुटिल-कष्टचेष्टासहस्रदारुणे = तो इस प्रकार की अतिशय कुटिल और कष्ट देने वाले सहस्रों कार्यों के कारण क्रूर या भीषण । राजतन्त्रे = राजतन्त्र में, राज्य के शासन में । एवं प्रायेण यत्र एवंप्रायः । अतिशयेन कुटिलाः अतिकुटिलाः । एवंप्रायातिकुटिलाः कष्टाश्च चेष्टाः एवंप्रायातिकुटिलकष्टचेष्टाः, तासां सहस्राणि, तैः दारुणम् तस्मिन् ।

हिन्दी भावार्थः- उन राजाओं की कौन-सी बात उचित है जिनके लिए प्रायः अतिशय कर्मों के उपदेश से ही भरे हुए कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रमाण है, हिंसक अभिचार क्रियाओं के कारण जिनका स्वभाव एकमात्र क्रूरता का है, ऐसे पुरोहित जिनके गुरु होते हैं, जिनको उपदेश देने वाले दूसरों को धोखा देने में ही लगे रहने वाले मन्त्री होते हैं, सहस्रों राजाओं द्वारा भोग करने के बाद छोड़ी गयी लक्ष्मी में जिनकी आसक्ति होती है, जिनका लगाव दूसरों का विनाश करने वाले शास्त्रों (या शस्त्रों) में होता है और सहज प्रेम से आर्द्र हृदय वाले अनुरक्त भाई जिनके लिए उन्मूलित किये जाने योग्य होते हैं, तो इस प्रकार की अतिशय कुटिल और कष्टकारी है ।

अभ्यास प्रश्न 1 -

बहुविकल्पीय

1. अनुजीविना जनेन इस पद का क्या अर्थ है -

क. मित्र ख. राजा ग. सेवक घ. सैनिक

2. ललाट के उपर किसकी सम्भावना की जाती है -

क. चन्दन की ख. गेरू की ग. धन की घ. तृतीय नेत्र की
रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. ब्राह्मणों की नहीं करते ।
4. हितकारी वचन बोलने वाले पर करते हैं ।

राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहकारिणी च यौवने कुमार! तथा प्रयतेथाः यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रयसे गुरुभिः, नोपालम्भ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः । यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रतार्यसे कुशलैः, नास्वाद्यसे भुजङ्गैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्चयसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन,

शब्दार्थ - अस्मिन् महामोहान्धकारिणि च यौवने = और इस घोर मोह अर्थात् अविवेक रूपी अन्धकार को उत्पन्न करने वाले यौवन में । महान् चासौ मोहः महामोहः, महामोहेन अन्धं कर्तुं शीलं यस्य तत् महामोहान्धकारि, तस्मिन् । कारी = कृ + णिन् प्रत्यय । कुमार = कुमार चन्द्रापीड! तथा प्रयतेथाः = ऐसा प्रयत्न करो कि । अब यहाँ सत्रह वाक्य कर्मवाच्य में दिये गये हैं । इनका अर्थ की स्पष्टता के लिए कर्तृवाच्य में अनुवाद किया जा सकता है । यथा जनैः नोपहस्यसे = लोगों द्वारा तुम्हारी हँसी न उड़ायी जाय, तुम लोगों के उपहास के पात्र न बनो। साधुभिः न निन्द्यसे = सज्जनों द्वारा तुम्हारी निन्दा न की जाय, सज्जन तुम्हारी निन्दा न करें । गुरुभिः न धिक्क्रयसे = गुरुजन तुम्हें धिक्कारे नहीं । सुहृद्भिः न उपालम्भ्यसे = मित्रों के लिए उपालम्भ के पात्र न बनो, मित्र तुम्हें कोसें नहीं । विद्वद्भिः न शोच्यसे = विद्वानों के लिए तुम शोचनीय न बनो । यथा च = और जिस प्रकार के आचरण से । विटैः न प्रकाश्यसे = विटों या कामुक पुरुषों द्वारा तुम्हारे दोषों का प्रचान न किया जाय। कुशलैः न प्रहस्यसे = अपनी कार्यसिद्धि में चतुर व्यक्ति तुम्हारी हँसी न उड़ाये । भुजङ्गैः न आस्वाद्यसे = लम्पटों द्वारा तुम्हारे धन का भोग न किया जाय। सेवकवृकैः न अवलुप्यसे = सेवकगण तुम्हारे धन की लूट-खसोट न करें । वनिताभिः न प्रलोभ्यसे = स्त्रियों द्वारा तुम्हें लुभाया या फाँसा न जाय । लक्ष्म्या न विडम्ब्यसे = राजलक्ष्मी तुम्हारी मति को बौरा न दे । मदेन न नर्त्यसे = मद अर्थात् अहंकार से तुम नाचने न लगे । न उन्मत्तीक्रियसे मदनेन = मदन अर्थात् कामवासना तुम्हें पागल न बना दे। अनुत्मतः उन्मत्तः सम्पद्यमानः क्रियते इति उन्मत्त+कृ+च्चि+लट् लकार ।

हिन्दी भावार्थः-सहस्रों चेष्टाओं के कारण भीषण इस राज्यतन्त्र में और घोर अविवेक रूपी अन्धकार उत्पन्न करने वाले यौवन में, कुमार! इस प्रकार प्रयत्न करना कि लोगों की हँसी के पात्र न बनो, सज्जनों द्वारा तुम्हारी निन्दा न की जाय, गुरुजन तुम्हें धिक्कारे नहीं, मित्र तुम्हें उपालम्भ न दें, विद्वानों के लिए तुम शोचनीय न बनो, और (ऐसी चेष्टा करो) जिससे विट या कामुक पुरुष तुम्हारे दोषों का प्रचार न करें, अपनी कार्यसिद्धि में कुशल पुरुष तुम्हें ठगने न पावें, लम्पट लोग तुम्हारे धन का उपभोग न करें, सेवकगण तुम्हारे धन को लूटें नहीं, धूर्त तुम्हें धोखा न दें, स्त्रियाँ तुम्हें फाँसा न सकें, राजलक्ष्मी तुम्हारी मति को बौरा न दे, तुम मद अर्थात् अहंकार से

नाचने न लगे, कामवासना तुम्हें पागल न बना दे।

नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापहियसे सुखेन। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च महता यत्नेन समारोपित-संस्कारः। तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे। विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणम्।

शब्दार्थ - नाक्षिप्यसे विषयैः = विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाय। न अवकृष्यसे रागेण = विषयभोग का आकर्षण तुम्हें पतन की ओर न ले जाय। नापहियसे सुखेन = सुख तुम्हें कर्तव्य से दूर न कर दे। कामम् = निश्चय ही। भवान् प्रकृत्या एव धीरः = आप स्वभाव से ही धैर्यशाली हैं। पित्रा च = और पिता द्वारा भी। महता यत्नेन = बड़े यत्न के साथ। समारोपितसंस्कारः = आप में संस्कार डाले गये हैं। समारोपिताः संस्काराः यस्मिन् सः। तरलहृदयम् = चंचल मन वाले को, तरलं हृदयं यस्य सः तरलहृदयः तम्। अप्रतिबुद्धं च = बोधरहित व्यक्ति को ही, न प्रतिबुद्धः तम्। मदयन्ति धनानि = धन पागल बना देते हैं, उन्मत्त कर देते हैं। तथापि = फिर भी। यद्यपि आप वैसे नहीं हैं, फिर भी। भवद्गुणसन्तोषः = आपके गुणों से उपजे हुए सन्तोष ने, आपके गुणों को देखकर मुझे जो सन्तोष हुआ है, उस सन्तोष ने। भवतः गुणाः भवद्गुणाः, तैः सन्तोषः। माम् एवं मुखरीकृतवान् = मुझे इस प्रकार कहने के लिए प्रेरित किया है, मुझसे यह सब कहलवाया है। अमुखरं मुखरं सम्पद्यमानं कृतवान्। इतमेव च = और यही बात। पुनः पुनः = बार-बार। अभिधीयसे = आप से कही जा रही है। मैं आपसे यही बात बार-बार कह रहा हूँ। विद्वांसम् अपि = विद्वान् को। सचेतनम् अपि = चेतना से युक्त प्रबुद्ध व्यक्ति को भी। चेतनया सह विद्यमानः सचेतनः, तम्। महासत्त्वम् अपि = महान शक्तिशाली या मनस्वी को भी। महान् सत्त्वः यस्य सः महासत्त्वः, तम्। अभिजातम् अपि = उच्च कुल में उत्पन्न को भी। धीरम् अपि = धैर्यवान् पुरुष को भी। प्रयत्नवन्तम् अपि पुरुषम् = प्रयत्न करने वाले को भी, अपनी उन्नति हेतु उद्योगशील पुरुष को भी। इयं दुर्विनीता लक्ष्मीः इति = यह दुर्विनीता अर्थात् वश में न रहने वाली लक्ष्मी। दुर्विनीता = दुर् + वि + नी + क्त + आप्। खलीकरोति = दुष्ट बना देती हैं अखलं खलं सम्पद्यमानं करोति इति। सर्वथा = सभी प्रकार से अनुभव करें। कल्याणैः = मंगलाचारों के साथ। पित्रा क्रियमाणम् = पिता द्वारा किये जाने वाले कर्म।

हिन्दी भावार्थ:- विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाये, आसक्ति तुम्हें पतन में न डाले, सुख तुम्हें कर्तव्य से दूर न कर दे। निश्चय ही, आप स्वभाव से ही धैर्यवान् हैं और पिता ने भी बड़े यत्न से आपमें संस्कार डाले हैं। चंचल हृदय वाले और बोधरहित को ही धन अहंकार से पागल बना देते हैं, फिर भी आपके गुणों को देखकर उपजे सन्तोष ने मुझे यह सब कहने के लिए प्रेरित किया है। यही मैं आपसे बार-बार कह रहा हूँ। विद्वान् को भी, प्रबुद्ध को भी, महान् शक्तिशाली या मनस्वी को भी, उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी, धैर्यवान् को भी और (अपनी समुन्नति के) प्रयत्न में लगे रहने वाले पुरुष को भी यह दुष्टा लक्ष्मी दुष्ट बना देती है। सभी प्रकार से पिता द्वारा

मंगलाचारों के साथ किये जाने वाले ।

अनुभवतु भवान् नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरम् च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयं च ते कालः प्रतापमारोपयितुम् ।

शब्दार्थ - अनुभवतु भवान् = आप अनुभव करें। सभी प्रकार से राज्याभिषेक के सुखों को भोगिए नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम् = नये युवराज पद पर अभिषेक के मंगल को। युवा राजा इति युवराजः, युवराजस्य भावः यौवराज्यम्, नवं च तत् यौवराज्यम् नवयौवराज्यम्, तस्मै अभिषेकः नवयौवराज्याभिषेकः, सः एव मंगलम् नवयौवराज्याभिषेकमंगलम् । कुलक्रमागताम् = कुलपरम्परा से चली आने वाली, कुलस्य क्रमः कुलक्रमः तस्मात् आगताम् कुलक्रमागताम् । उद्वह = वहन कीजिये । पूर्वपुरुषैः ऊढां धुरम् = पूर्वजों द्वारा ढोयी गयी धुरा को, राज्य के भार को, गाड़ी के अग्रभाग को धुर कहते हैं, जहाँ बैल जोते जाते हैं । राज्य का भार वहन करना भी एक प्रकार से मानो गाड़ी को खींचना ही है । पूर्वे च ते पुरुषाः पूर्वपुरुषाः तैः । अवनमय = झुका दो, नीचे कर दो । अव + नी + णिच् + लोट् लकार । द्विषतां शिरांसि = शत्रुओं के सिरों को । द्विषन्ति इति द्विषन्तः तेषाम् । उन्नमय = ऊँचा करो । उत् + नी + णिच् + लोट् लकार । स्वबन्धुवर्गम् = अपने बन्धुओं के समूह को । बन्धूनां वर्गः बन्धुवर्गः, स्व चासौ बन्धुवर्गश्च स्वबन्धुवर्गः तम् । अभिषेकानन्तरम् च = और अभिषेक के बाद । अभिषेकात् अनन्तरम् अभिषेकानन्तरम् । प्रारब्धदिग्विजयः = दिग्विजय प्रारम्भ कर, दिशां विजयः दिग्विजयः, प्रारब्धः दिग्विजयः येन सः। परिभ्रमन् = पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए, पर्, भ्रम्+शतृ। विजिताम् अपि तव पित्रा = आपके पिता द्वारा जीती गयी भी (वसुन्धराम् का विशेषण है)। विजिताम् = वि + जि + क्त + टाप्-विजिता, ताम् । सप्तद्वीपभूषणाम् = सात द्वीपों के अलंकार वाली, सप्त च ते द्वीपाः सप्तद्वीपाः, ते एव भूषणं यस्याः तथाभूता सप्तद्वीपभूषणा, ताम् । पृथ्वी को सप्तद्वीपा कहा गया है। पुराणों के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी सात द्वीपों में है, जिनके नाम हैं- जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रोच, शाक और पुष्कर । पुनः विजयस्व = फिर से जीतिए, दुबारा अपने अधीन कीजिए । वसुन्धराम् = पृथ्वी को। वसु का अर्थ धन है, पृथ्वी अपने भीतर अनेक प्रकार के धनों को धारण करती है, इस कारण इसे वसुन्धरा कहते हैं । वसूनि धारयति इति वसुन्धरा । अयं च ते कालः = यही आपके लिए समय है । युवराज पद पर अभिषेक होते ही अपने प्रताप को स्थापित करने के लिए यही सर्वोत्तम समय है । प्रतापम् आरोपयितुम् = अपने प्रताप को प्रतिष्ठित करने का, जमाने का । प्रताप राजा का अपनी प्रजा पर और दूसरे राजाओं पर प्रभाव है, जो सेना की शक्ति और राज्य की आर्थिक समृद्धि से स्थापित होता है । पूर्व में अपने पिता द्वारा जीते गये राजाओं को पुनः स्वयं जीतने के लिए शुकनास का उपदेश इस प्रताप को स्थापित करने के उद्देश्य से ही प्रेरित है ।

हिन्दी भावार्थ:- नये युवराज पद पर अभिषेक के मंगल का आनन्द प्राप्त कीजिए। कुल परम्परा से चली आयी हुई और अपने पूर्वजों द्वारा ढोयी गयी (राज्य शासन के भार की) धुर को वहन

कीजिए। शत्रुओं के सिरों को झुका दीजिए, अपने बन्धुओं के समूह का उत्थान कीजिए और अभिषेक के बाद दिग्विजय प्रारम्भ कर चारों ओर भ्रमण करते हुए अपने पिता द्वारा जीती गयी भी सात द्वीपों के अलंकार वाली इस धनधान्य सम्पन्ना पृथ्वी को फिर से अपने अधीन कीजिए। यही आपके लिए (सर्वोत्तम) समय है अपने प्रताप को प्रतिष्ठित करने का।

आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति, इत्येतावदभिधायोपशशाम।
उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभि-रमलाभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव,
उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलङ्कृत
इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयों मुहूर्त् स्थित्वा स्वभवनम् आजगाम।

शब्दार्थ - आरूढ-प्रतापः राजा = जिसके प्रताप का प्रभाव स्थापित हो गया है, जम गया है, ऐसा राजा। आरूढः प्रतापः यस्य तथाभूतः। जिस राजा का प्रताप स्थापित और सुदृढ़ हो जाता है उसके आदेश का सभी पालन करते हैं यही बात आगे उपमा देते हुए कहते हैं। त्रैलोक्यदर्शी इव = तीनों लोकों को देखने वाले योगी के समान। त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्। त्रिलोकी से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय हुआ है। त्रैलोक्यम् पश्यति इति त्रैलोक्यदर्शी। त्रैलोक्य+दृश्+णिन् प्रत्यय। सिद्धादेशः भवति = आज्ञाएँ सफल होती हैं, जिस प्रकार तीनों लोकों की दृष्टि वाला सिद्ध योगी जो कह देता है वह सत्य हो जाता है उसी प्रकार अपने प्रताप को जमा लेने वाले राजा के आदेश अनुल्लंघित और अमोघ होते हैं, उसकी आज्ञा का निश्चित रूप से पालन होता है। यहाँ उपमालंकार है। सिद्धः आदेशः यस्य सः सिद्धादेशः। इति एतावत् अभिधाय = इस प्रकार इतना कहकर जिस प्रकार त्रैलोक्यदर्शी सिद्ध योगी के वचन सत्य होते हैं, उसी प्रकार अपने प्रताप को सुदृढ़ कर लेने वाले राजा का आदेश अमोघ होता है। इस प्रकार इतना कहकर (शुकनास) चुप हो गये। अभि+धा+कत्वा(ल्यप्)। उपशशाम = चुप हो गये। शुकनास ने उपदेश देना समाप्त कर दिया। उप+शम्+लिट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचना। उपशान्तवचसि शुकनासे = शुकनास के उपदेश के वचनों को समाप्त कर देने पर, वचन बोलने से विराम लेने पर। उपशान्तं वचः यस्य सः उपशान्तवचः तस्मिन्। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' से सप्तमी विभक्ति हुई है। चन्द्रापीडः = राजकुमार चन्द्रापीड। चन्द्रापीड पर शुकनास के उपदेश का किस प्रकार अद्भुत प्रभाव पड़ा और उसने कैसा अनुभव किया इसका वर्णन अनेक उत्प्रेक्षाओं द्वारा किया गया है। ताभिः अमलाभिः उपदेशवाग्भिः = उन निर्मल उपदेश के वचनों से। प्रक्षालितः इव = मानो धुले हुए समान प्र + क्षाल् + क्त। उन्मीलितः इव = खिले हुए के समान, जैसे कमल आदि खिल उठते हैं उस प्रकार से आनन्द से खिले हुए, उत् , मील्+क्त प्रत्यय। स्वच्छीकृतः इव = स्वच्छ बना दिये गये के समान। निर्मृष्टः इव = पोंछा गया-सा, माँजा गया-सा। निर् + मृञ् + क्त। अभिषिक्तः इव = नहलाया गया-सा। अभि + सिच् + क्त प्रत्यय। अभिलिप्त इव = मानो लेप कर दिया गया हो। अभि + लिप् + क्त। अलंकृत इव = मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो। अलम् + कृ + क्त प्रत्यय। पवित्रीकृत इव = मानों पवित्र कर दिया गया हो, अपवित्रः पवित्र सम्पद्यमानः कृतः, पवित्र+कृ+च्चि+क्त। उद्भासितः इव = चमकले हुए-सा, मानो चमक आ गयी हो। उत+भास्+क्त प्रत्यय। प्रीतहृदयः = प्रसन्न मन

से युक्त होकर, प्रीतं हृदयं यस्य तथाभूतः, मन में आनन्द का अनुभव करते हुए। मुहुर्त्तम् स्थित्वा = कुछ देर रुककर। स्वभवनम् आजगाम = अपने भवन को लौट आया। आ + गम् + लिट् लकार। स्वस्य भवनम् स्वभवनम्। अपने महल में आ गया।

हिन्दी भावार्थ:- शुकनास के अपना कथन समाप्त कर देने पर चन्द्रापीड ने उन उपदेश के निर्मल वचनों से ऐसा अनुभव किया मानो उसे धोया गया हो, मानो वह खिल उठा हो, मानो उसे स्वच्छ कर दिया गया हो, मानो पोंछ दिया गया हो, मानो स्नान कराया गया हो, मानो लेप किया गया हो, मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो, मानो पवित्र कर दिया गया हो, मानो चमक ला दी गयी हो। इस प्रकार मन ही मन आनन्दित वह कुछ देर रुककर अपने भवन को लौट आया।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय

1. तुम उपहास के पात्र न बनो ऐसा किसने कहा -
क. चन्द्रापीड ख. तारापीड ग. शूद्रक घ. शुकनास
2. पूर्वपुरुषैरूढां धुरा में धुरा का क्या अर्थ है -
क. भार ख. उत्साह ग. लाभ घ. हानि

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. अवनमय शिरांसि।
4. ऐसा राजा जिसका प्रताप हो गया है।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

- 1- चंचल हृदय वाले और बोधरहित को ही धन किससे पागल बना देता है ?
- 2- किसने बड़े यत्न से आपमें संस्कार डाले हैं ?
- 3- आपके गुणों को देखकर उपजे सन्तोष ने मुझे यह सब कहने के लिए प्रेरित किया है यह किसने कहा ?
- 4- शुकनास के उपदेश का किस प्रकार अद्भुत प्रभाव पड़ा ?
- 5- शुकनास के अपना कथन समाप्त कर देने पर चन्द्रापीड कहा चला गया ?

5.4-सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने से आपने यह जाना कि शुकनास के द्वारा अपना कथन समाप्त कर देने पर चन्द्रापीड ने उन उपदेशों के निर्मल वचनों से ऐसा अनुभव किया मानो उसे धोया गया हो, मानो वह खिल उठा हो, मानो उसे स्वच्छ कर दिया गया हो, मानो पोंछ दिया गया हो, मानो स्नान कराया गया हो, मानो लेप किया गया हो, मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो, मानो पवित्र कर दिया गया हो, मानो चमक ला दी गयी हो। इस प्रकार मन ही मन आनन्दित वह कुछ देर रुककर अपने भवन को लौट आया। उपदेश इस प्रकार थे - विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाये, आसक्ति तुम्हें पतन में न डाले, सुख तुम्हें कर्तव्य से दूर न कर दे। निश्चय ही, आप स्वभाव से ही धैर्यवान् हैं और पिता ने भी बड़े यत्न से आपमें संस्कार डाले हैं। चंचल हृदय

वाले और बोधरहित को ही धन अहंकार से पागल बना देते हैं, फिर भी आपके गुणों को देखकर उपजे सन्तोष ने मुझे यह सब कहने के लिए प्रेरित किया है। यही मैं आपसे बार-बार कह रहा हूँ। विद्वान् को भी, प्रबुद्ध को भी, महान् शक्तिशाली या मनस्वी को भी, उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी, धैर्यवान् को भी और (अपनी समुन्नति के) प्रयत्न में लगे रहने वाले पुरुष को भी यह दुष्टा लक्ष्मी दुष्ट बना देती है। सभी प्रकार से पिता द्वारा मंगलाचारों के साथ किये जाने वाले। अतः उपर्युक्त वर्णनों के अनुशीलन से आपको शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेशों का अपने शब्दों में उल्लेख करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त है। इसीलिए आप इस इकाई से प्राप्त सभी शिक्षाओं को समझा सकेंगे।

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
चन्द्रापीडः	राजकुमार चन्द्रापीड
ताभिः अमलाभिः उपदेशवाग्भिः	उन निर्मल उपदेश के वचनों से
प्रक्षालितः इव	मानो धुले हुए
उन्मीलितः इव	खिले हुए के समान,
स्वच्छीकृतः इव	स्वच्छ बना दिये गये के समान
निर्मृष्टः इव	पोंछा गया-सा, माँजा गया-सा
अभिषिक्तः इव	नहलाया गया-सा
अभिलिप्त इव	मानो लेप कर दिया गया हो
अलंकृत इव	मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो
पवित्रीकृत इव	मानों पवित्र कर दिया गया हो,
उद्भासितः इव	चमकले हुए
प्रीतहृदयः	प्रसन्न मन से युक्त होकर,
मुहूर्त्तम् स्थित्वा	कुछ देर रुककर।
स्वभवनम् आजगाम	अपने भवन को लौट आया।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –

1. ग 2. घ 3. पूजा 4. क्रोध

अभ्यास प्रश्न 2 -

1. घ 2. क 3. द्विषतां 4. स्थापित

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न -

(1) अहंकार से (2) पिता ने (3) शुकनास ने कहा
(4) अनेक प्रकार का (5) अपने महल

5.7 सदरुर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5.8 उपयोगी पुस्तकें

1- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

- 1 चन्द्रापीड के व्यक्तित्व का उल्लेख अपने शब्दों में कीजिये ।
2. इस इकाई पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिये ।
3. बाणभट्ट की गद्य शैली की विवेचना कीजिये ।
4. सिद्ध कीजिये कि बाणभट्ट एक सफल गद्यकार है ।

खण्ड .4

लघुसिद्धान्तकौमुदी (संज्ञा प्रकरण, अच् सन्धि)

इकाई 1 लघु सिद्धन्तकौमुदी संज्ञा प्रकरण, प्रारम्भ से मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः तक की व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 उद्देश्य
- 1.3 प्रारम्भ से मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः तक
- 1.4 सारांश
- 1.5 शब्दावली
- 1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 1.8 उपयोगी पुस्तकें
- 1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र के अध्ययन में संज्ञा प्रकरण व अच् सन्धि के वर्णन से सम्बन्धित यह पहली इकाई है। इस इकाई में आप महर्षि पाणिनि के द्वारा अष्टाध्यायी में उल्लिखित चौदह सूत्रों से प्रारम्भ कर विभिन्न प्रकार की संज्ञाओं व उनसे सम्बद्ध सूत्र तथा वृत्तियों का उदाहरणसहित अध्ययन करेंगे।

पाणिनि द्वारा प्रदत्त चौदह सूत्रों को माहेश्वर सूत्र कहते हैं। इन सूत्रों के अन्तिम वर्ण इत् संज्ञक कहलाते हैं। इन सभी सूत्रों को मिलाकर प्रत्याहारों का निर्माण किया जाता है। सूत्र, वृत्ति और उदाहरण ही इस इकाई का प्रमुख वर्ण्य विषय है। इसमें हल संज्ञा, लोप संज्ञा संयोग संज्ञा, संहिता संज्ञा, अनुनासिक आदि संज्ञाओं की सरल व्याख्या आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के आप बता सकते हैं कि चौदह सूत्रों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? इन्हीं चौदह सूत्रों से पर प्रत्याहार की उत्पत्ति हुई तथा इन्हीं प्रत्याहारों के माध्यम से व्याकरण शास्त्र में शब्दों की सिद्धियां भी की जाती हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- माहेश्वर सूत्रों के विषय में आप परिचित होंगे-
- हलन्त्यम् सूत्र के लक्षण को पहचानेंगे
- आदिरन्त्येन संहेता सूत्र के उदाहरणों को समझायेंगे
- स्वरों के भेद उदाहरण सहित बतायेंगे
- प्रत्याहारों का निर्माण करना व संज्ञाओं की परिभाषायें भी बता सकेंगे
- सम्पूर्ण संज्ञा प्रकरण में निहित शास्त्रीयता को बता सकेंगे

1.3 प्रारम्भ से मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः तक

नत्वा' सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।

पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥

पदच्छेदः- नत्वा-अव्ययपदम् । सरस्वतीम्, देवीम्, शुद्धाम् गुण्याम्,- इमानि चत्वारि पदानि द्वितीयान्तानि । 'करोति'-क्रियापदम् । अहम् - प्रथमान्तम् (कर्तृपदम्) । पाणिनीयप्रवेशाय - चतुर्थ्यन्तम् । लघुसिद्धान्तकौमुदीम्-द्वितीयान्तम् (कर्म)।

अन्वयः- अहं शुद्धां गुण्यां सरस्वतीं देवीं नत्वा पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीं करोमि । इसमें 'अहम्' कर्तृपद है और 'करोमि' क्रियापद (प्रधान) । 'नत्वा' गौण क्रिया । 'सरस्वतीम्' गौण क्रिया का कर्म है । 'शुद्धाम्' -गुण्याम्' और 'देवीम्' ये सरस्वती के विशेषण हैं। 'लघुसिद्धान्तकौमुदीम्' यह 'करोमि' इस प्रधान क्रिया का कर्म है । "पाणिनीयप्रवेशाय" से

प्रयोजन बताया गया है। शुद्धाम्-पवित्राम्। गुण्याम्-प्रशस्तगुणयुक्ताम्। पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, तस्मिन् प्रवेशाय। सिद्धः अन्तो येषां ते सिद्धान्ताः, सिद्धान्तानां कौमुदीव कौमुदी सिद्धान्तकौमुदी, चन्द्रिकावद् वैयाकरणसिद्धान्तानां प्रकाशिकेत्यर्थः। लघ्वी चासौ सिद्धान्तकौमुदी चेति लघुसिद्धान्तकौमुदी, ताम्। नत्वा इति।

हिन्दी - मैं वरदराज, शुद्ध और उत्तमगुणवाली सरस्वती देवी को प्रणाम करके पाणिनि मुनि के बनाए हुए व्याकरण शास्त्र में (व्याकरण जिज्ञासु छात्रों के) प्रवेश के लिए 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' बनाता हूँ।

- | | | | |
|-----------|-------------|----------------|---------|
| 1. अइउण् | 2. ऋलृक | 3. एओङ् | 4. ऐऔच् |
| 5. हयवरट् | 6. लण् | 7. जमडणनम् | 8. झभञ् |
| 9. घढधष् | 10. जबगडदश् | 11. खफछठथचटतव् | 12. कपय |
| 13. शषसर | 14. हल् | | |

इति माहेश्वराणि सूत्राणि अणादि संज्ञा अर्थानि। एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लण् मध्ये त्वित्संज्ञकः॥

माहेश्वर अर्थात् माहेश्वर की कृपा से प्राप्त ये चौदह सूत्र अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिये है। अइउण् आदि ये जो चौदह सूत्र हैं यह माहेश्वर की कृपा से पाणिनि जी को प्राप्त हुए हैं, इन चौदह सूत्रों से अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि की जाती है। एषामन्त्या इतः। इन चौदह सूत्रों की अन्तिम वर्ण की इत्संज्ञा होती है। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। हकार आदि में जो अकार है वह उच्चारण मात्र के लिए है। लण् मध्ये त्वित्संज्ञकः। लण् इस छठे सूत्र के मध्य में जो लकार के बाद अकार है उसकी इत्संज्ञा होती है।

विवरण - अइउण्, ऋलृक आदि जो यह चौदह सूत्र हैं उन्हें चतुर्दश सूत्र कहते हैं। इन चौदह सूत्रों से प्रत्याहार बनाया जाता है। अतः इन्हे प्रत्याहार सूत्र भी कहते हैं। कहते हैं कि महामुनि पाणिनि विद्यार्थी अवस्था में मन्द बुद्धि के थे। जब उन्हें पढ़ने के बाद भी कुछ ज्ञान नहीं हुआ, तब वे दुःखित होकर तथा गुरुकुल छोड़कर तपस्या करने के लिए हिमाचल पर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने शिव जी की तपस्या की। शिव जी ने तपस्या से प्रसन्न होकर चौदह बार डमरू बजाया। उससे पाणिनि ने अइउण् आदि चौदह सूत्र प्राप्त किये। इस लिए इन सूत्रों को माहेश्वर अर्थात् महादेव से प्राप्त हुआ कहते हैं। इस लिए इन्हे माहेश्वर सूत्र कहते हैं। जिस प्रकार बालकों को सबसे पहले हिन्दी ज्ञान के लिये क, ख आदि वर्ण की आवश्यकता है। छात्रों को चाहिये की इन माहेश्वर सूत्रों को अच्छी तरह से रट लें। ताकि प्रत्याहार बनाने में सरलता हो जाय। क्योंकि जब तक प्रत्याहार नहीं बन सकता तब तक आगे सन्धि प्रकरण का ज्ञान नहीं होगा। इन चौदह सूत्रों का प्रयोजन क्या है? मूल में कहा गया है कि इन चौदह सूत्रों का प्रयोजन अण् अच् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि है। इन चौदह सूत्रों से अण् आदि प्रत्याहार बनाये जाते हैं। प्रत्याहार बनाने की प्रक्रिया आगे बतायेंगे। प्रत्याहारों से अनेक सूत्रों द्वारा प्रयोगों की सिद्धि की जायेगी।

एषामन्त्या इतः - इन चौदह सूत्रों के अन्तिम में जो हल् वर्ण लगे हुए अइउण् आदि में ण्, क्,

ड्, च्, ट्, ण्, म्, ज्, ष्, श्, व्, य्, र्, ल्, इन वर्णों की इत्संज्ञा की जाती है। जो अन्तिम में रहें उसे अन्त्य कहते हैं। संज्ञा नाम को कहते हैं। इत नामक संज्ञा इनकी होगी अर्थात् ये इत नाम वाले कहलाते हैं। व्याकरण शास्त्र में संज्ञा और संज्ञी का व्यवहार जगह जगह पर दिया गया है। नाम को संज्ञा और नाम वाले को संज्ञी कहते हैं। जैसे किसी का नाम राम है। राम तो संज्ञा है। राम नाम वाला शरीर संज्ञी है। इसी प्रकार अन्त्य वर्ण इत्संज्ञी और इत् संज्ञा है। इन चौदह सूत्रों के इत्संज्ञा करने का फल प्रत्याहार बनाना है। जिसकी प्रक्रिया आगे दिखायी जायेगी।

हकारादिष्वकारः उच्चारणार्थः। संस्कृत भाषा के वर्ण माला में जितने अक्षर हैं। उनको दो भागों में बाँटा गया है। - स्वर एवं व्यंजन स्वर को अच् तथा व्यंजन को हल् वर्ण कहते हैं। अच् अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ ये स्वर हैं। तथा क, ख से लेकर ज्ञ तक ये वर्ण हल् वर्ण हैं। हल् वर्ण में छतीस वर्ण पढ़ें गये हैं। जिनमें तीन वर्ण संयुक्ताक्षर क्ष, त्र, ज्ञ ये वर्ण कैसे संयुक्ताक्षर हैं? क्योंकि ये तीनों वर्ण दो वर्णों की मेल से बना है। क्+ष् = क्ष, त्+र् = त्र, ज्+ञ = ज्ञ बना। अतः ये तीनों वर्ण संयुक्ताक्षर हैं।

हल् वर्ण क, ख, ग, घ, ङ ऐसे न होकर क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, ऐसे हैं। इनका ठीक तरह से उच्चारण हो, इसलिए इन वर्णों के बाद स्वर वर्ण लगाये जाते हैं। जैसे क्+अ = क, क्+आ = का, क्+इ = कि, क्+ई = की, क्+उ = कु, क्+ऊ = कू, क्+ऋ = कृ, क्+लृ = क्लृ, क्+ए = के, क्+ऐ = कै, क्+ओ = को, क्+औ = कौ, क्+अं = कं, क्+अः = कः इसी प्रकार सभी वर्णों को जाने। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि ह, य, व, र, ल आदि में ह्, य्, व्, र्, ल्, के साथ अकार जोड़कर उच्चारण किया गया है। इनमें उच्चारित अवर्ण केवल उच्चारण के लिये हैं। जहाँ कहीं भी ह आदि वर्णों का प्रत्याहार आदि के माध्यम से प्रयोग होगा तो वहाँ अकार का ग्रहण नहीं होगा किन्तु केवल हल् मात्र वर्ण ह् का ग्रहण किया जाता है।

1. 'हलन्त्यम्' 1 ।। 3।।

उपदेशोऽन्त्यं हलित्स्यात्। (उपदेशलक्षणम्) उपदेशआद्योच्चारणम् (अनुवृत्तिप्रकारप्रदर्शनम्) सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र।

अर्थः- हलन्त्यम् इति-उपदेश अवस्था में अन्त में होनेवाला व्यंजन इत् होता है। अर्थात्-उपदेश अवस्था में जो अन्त्य हल् उसकी इत्संज्ञा होती है।

उपदेश इति-(आद्योच्चारणम्) आद्य-प्रथम-उच्चारण को अर्थात् व्याकरण शास्त्र के प्रथम आचार्य पाणिनि आदि के उच्चारण को उपदेश कहते हैं।

इस सूत्र का कार्य हल् अक्षरों की इत्संज्ञा करना है। उपदेश अवस्था में विद्यमान हल् प्रत्याहार अर्थात् हल् वर्णों की इत्संज्ञा इस सूत्र से होती है। हम पहले बता चुके हैं। इत् एक नाम है। इस सूत्र के द्वारा उन हल् अक्षरों को इत् के नाम से जाना जाता है।

उपदेश आद्योच्चारणम् पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं। अर्थात् पाणिनि कात्यायन एवं पतञ्जलि ने जिसका प्रथम उच्चारण या प्रथम पाठ किया उसे उपदेश नाम से कहा जाता है। यहाँ अ, इ, उ, ण आदि चौदह सूत्रों को आचार्य पाणिनि जी

ने अपने व्याकरण के अंग के रूप में प्रथम बार उच्चारण किया। अतः ये चौदह माहेश्वर सूत्र उपदेश कहलाये। उपदेश के सम्बन्ध में एक पद्य प्रचलित है।

धातु सूत्र गणोणादि वाक्यलिङ्गानुशासनम् ।

आगम प्रत्ययादेशा उपदेशाः प्रकीर्तिताः ॥

भू आदि धातु, अ, इ, उ, ण् आदि सूत्र, उणादि सूत्र, वार्तिक, लिङ्गानुशासन, आगम, प्रत्यय और आदेश ये उपदेश कहे जाते हैं। जिस प्रकार अ, इ, उ, ण यह उपदेश है। इसके अन्तिम वर्ण है। ण उसकी इत्संज्ञा होती है। इत्संज्ञा का फल आगे बताया जायेगा। उसी प्रकार अन्य का भी समझना चाहिए। पाणिनीय सूत्रों की विशेषता को बता रहे हैं। - सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र। सूत्रों में अर्थ को पुरा करने के लिये जो पद कम हो उसे आवश्यकतानुसार अन्य सूत्रों से ग्रहण कर लेना चाहिए। जैसे हलन्त्यम् इस सूत्र में उपदेशे और इत् ये दो पद पाणिनीयाष्टाध्यायी के क्रमानुसार इससे पहले के सूत्र उपदेशेऽजनुनासिक इत् से लाये गये हैं। इस प्रकार सभी सूत्रों में पढ़ने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। किन्तु पूर्व सूत्र के आवश्यकतानुसार ले लिया जाता है।

निष्कर्ष- उपदेश अवस्था में जहाँ कहीं भी अन्तिम हल् वर्ण होगा उसको हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा होती है। जैसे सूत्र- अ, इ, उ, ण् धातु- शीङ् शयने, गण- नरट् देवट् आदि प्रत्यय- तृन्, तृच् आदि, आगम- कु, क, टु, क् आदि प्रत्यय णल् अतः ये उपदेश है। उपदेश अवस्था में अन्तिम हल् वर्ण है। सूत्र में जैसे अ, इ, उ, ण में ण् धातु शीङ् में इ, गण देवट् में ट्, प्रत्यय तृन् में न्, आगम कुक् में क् प्रत्यय -णल् में ल् ये उपदेश अवस्था में अन्तिम हल् वर्ण होने के कारण इनकी इत्संज्ञा होती है। इत्संज्ञा होने के बाद तस्य लोपः सूत्र से लोप होता है।

2. लोप संज्ञा विधायक सूत्र-

2. अदर्शनं लोपः' ॥1॥ 1॥ 60 ॥ प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् ।

लोक में लोप का एक अर्थ नाश भी होता है। किन्तु पाणिनीय व्याकरण शास्त्र में लोप का अर्थ अदर्शन होता है। अर्थात् जो न सुनाई दे या न दिखाई दे। वस्तुतः शब्द कभी दिखता नहीं है। अतः अदर्शन का अर्थ अश्रवण करना चाहिए। इसलिये जो पहले सुनाई देता था। वह सुनाई नहीं दे तो उसे लोप कहते हैं। यह सूत्र कहता है। कि लोप क्या है? इतना ही बताता है। किन्तु लोप कहाँ होगी यह अगले सूत्र में बताया गया है। अदर्शनम् इति-प्राप्त' का न सुना जाना लोप संज्ञावाला हो- अर्थात् शास्त्र द्वारा जिसका श्रवण प्राप्त है उसके श्रवण न होने को लोप कहते हैं।

लोप विधायक विधि सूत्र

3. तस्य लोपः ' ॥1॥ 3॥ 9॥ तस्येतो लोपः' स्यात् ।

तस्य इति - उस इत्संज्ञक का लोप हो-अर्थात् 'इलन्त्यम्,' 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' इत्यादि सूत्रों से जिसकी इत्संज्ञा होती है उसका इस सूत्र से लोप होता है।

(णकारादि-अनुबन्धप्रयोजनम्) णादयोऽणाद्यर्थाः।

णाद्य इति-अइउण् इत्यादि चौदह सूत्रों के अन्त्य “ण्” आदि इत्संज्ञक वर्ण, अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिए हैं-अर्थात् इनका फल अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि है। इत्संज्ञा करने के लिये अनेक सूत्र विद्यमान हैं। जिन वर्णों का हलन्त्यम आदि सूत्रों के द्वारा इत्संज्ञा की जाती है। उनका इस सूत्र से लोप होता है। अर्थात् अदर्शन हो जाता है। व्याकरण शास्त्र में इत्संज्ञा करने के बाद लोप करने वाला सूत्र एक ही है। तस्य इतः उस इत्संज्ञक वर्ण का लोपः स्यात् लोप होते। इस प्रकार से अ, इ, उ, ण, ऋ, लृ, क आदि में हलन्त्यम सूत्र से णकार ककार की इत्संज्ञा की गयी है। इन इत्संज्ञक वर्ण ण्, क्, का तस्य लोपः से लोप हो जाता है। इस प्रकार चौदह सूत्रों में अन्तिम हल् वर्ण की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर –

1. अ, इ, उ, 2. लृ, 3. ए ओ 4. ऐ औ 5. हयवर 6. ल 7. ज, म, ड, ण, न 8. झभ, 9. दढध 10. ज, व, ग, ड, द 11. ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त 12. कप, 13. श, ष, स 14. ह मात्र शेष बचते हैं। प्रत्याहार बनाते समय इन्हीं वर्णों का ग्रहण होता है। इत्संज्ञक वर्णों का ग्रहण नहीं होता है। णकारादि अन्य वर्णों का प्रयोजन क्या है?

णादयोऽणाधर्थाः। णादयः = अ, इ, उ, ण, ऋ, लृ, क, में आदि में जो णकार ककार आदि पढ़े गये हैं। वें अणाधर्थाः = अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिये है। अर्थात् प्रत्याहारों की सिद्धि करने के लिये इन इत्संज्ञक वर्णों को उपयोग किया गया है। इनका तात्पर्य यह है। कि अ, इ, उ, ण आदि चौदह सूत्रों के अन्तिम जो हल् वर्ण लगे हुये हैं। उनका प्रयोजन प्रत्याहार की सिद्धि के लिये है। निष्कर्षः- इनका प्रयोजन प्रत्याहारों की सिद्धि के लिये है।

सूत्र का निष्कर्षः- जिसकी इत्संज्ञा होती है। उनका लोप होता है।

(‘हल्’ आदिप्रत्याहारसंज्ञाविधायकसूत्रम्)

4 .आदिरन्त्येन संहेता ॥ ११ ॥ ७१॥

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वरस्य च संज्ञा स्यात्।

यथा ‘अण्’ इति ‘अ इ उ’ वर्णानां संज्ञा। एवम्-अच्, अल्, हलित्यादयः।

आदिरन्त्येन इति- अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण से युक्त आदि वर्ण बीच के वर्णों की और अपनी भी संज्ञा का बोधक होता है। यथेति - जैसे-‘अण्’ यह ‘अ इ उ’ इन वर्णों की संज्ञा-बोधक-है। इसी प्रकार अच्, अल्, हल् इत्यादि संज्ञायें भी समझनी चाहिए।

प्रत्याहार बनाने की रीति - अण् प्रत्याहार - अन्त्य इत् ‘ण्’ के सहित आदि वर्ण हुआ अइउण् का ‘अ’ इन दो के बीच में दो वर्ण ‘इ उ’ आते हैं। इन दो की और अपनी भी अर्थात् ‘अ’ की भी संज्ञा ‘अण्’ हुई। तात्पर्य यह कि ‘अण्’ से ‘अ इ उ’ इन तीनों वर्णों का बोध होता है।

अच् प्रत्याहार - इसी प्रकार अन्त्य इत् च् को साथ मिलाने पर आदि ‘अ’ से ‘अच्’ प्रत्याहार बन जायेगा। इससे ‘अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ’ इन 9 वर्णों की ‘अच्’ संज्ञा हुई, अर्थात् ‘अच्’ पद से सब स्वरों का बोध होता है। इसी प्रकार हल् से सब व्यंजनों का और अल् से सभी वर्णों-स्वर और व्यंजन दोनों का बोध होता है।

वर्णसमाम्नाय का उपदेश प्रत्याहार बनाने के लिये ही हैं। यह पहले कहा जा चुका है। वर्ण साम्नाय के इन चौदह सूत्रों से 42 “प्रत्याहार बनते हैं। जिनका उपयोग पाणिनि ने अपने

व्याकरण शास्त्र में किया हैं।

1. प्रत्याहारों का निरूपण और उदाहरण

1. अण्- अ इ उ।
2. अक्- अ इ उ ऋ लृ।
3. अच्- अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ।
4. अट्- अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
5. अण्- अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
6. अम्- अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ज म ड ण न।
7. अश्- अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ' म ड. ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
8. अल्- अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ' म ड. ण न झ म् घ ढ ध ज ब ग ड द् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
9. इक्- इ उ ऋ लृ।
10. इच्- इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
11. इण्- इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।
12. उक्- उ ऋ लृ।
13. एड्- ए ओ।
14. एच्- ए ओ ऐ औ।
15. ऐच्- ऐ औ।
16. हश्- ह य व र ल ज म ड. ण न झ भ घ ढ ध ज ग ग ड द।
17. हल्- ह य व र ल ज म ड. ण न झ भ घ ढ ध ज ग ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
18. यण्- य व र ल।
19. यम्- य व र ल ज म ड. ण न।
20. य'- य व र ल ज म ड. ण न झ भ।
21. यय्- य व र ल ज म ड. ण न झ भ घ ढ ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
22. यर्- य व र ल ज म ड. ण न झ भ घ ढ ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।
23. वश्- व र ल ज म ड. ण न झ भ घ ढ ज ब ग ड द।
24. वल्- व र ल ज म ड. ण न झ भ घ ढ ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
25. रल्- र ल ज म ड. ण न झ भ घ ढ ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
26. मय्- ज म ड. ण न झ भ घ ढ ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।
27. ड.म्- ड. ण न।
28. झष्- झ भ घ ढ ध।
29. झश्- झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।
30. झय्- झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

31. झर्- झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष सा
32. झल्- झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।
33. भष्- भ घ ढ ध ।
34. जश्- ज ब ग ड द ।
35. बश्- ब ग ड द ।
36. खय्- ख फ छ ठ थ च ट त क प ।
37. खर्- ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष सा।
38. छव्- छ ठ थ च ट ता।
39. चय्- च ट त क पा।
40. चर्- च ट त क प श ष सा।
41. शर्- श ष सा।
42. शल्- श ष स ह ।

1. 'प्रत्याहारेष्वितां न ग्रहणम्' यह इसीलिये पहले कह दिया गया है।

5 'ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः'

'उश्च उश्च वः। वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्वदीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात् ।

5. ऊकाल इति - (वाम्) एकमात्र, द्विमात्र और त्रिमात्र इन तीनों उकारों के (काल इव कालो यस्य) उच्चारण काल के समान उच्चारण काल है जिसका (सः अच्) वह अच् (क्रमात्) क्रम से (ह्रस्व-दीर्घ प्लुत-संज्ञः स्यात्) ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञावाला होता है-अर्थात् एकमात्रावाले स्वर की ह्रस्व, दो मात्रावाले की दीर्घ और तीन मात्रावाले की प्लुत संज्ञा होती है।

मात्रा कहते हैं अंश को अर्थात् हिस्से को। यहाँ समय के अंश के लिये इसका प्रयोग हुआ है। एक मात्र से काल के उतने भाग को समझा जाता है जितना चुटकी बजाने में अथवा पलक गिरने में होता है।

इस सूत्र में अच् अर्थात् स्वर वर्णों को मात्रा के आधार पर ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञा करता है। अर्चों में प्रायः एक, दो एवं तीन मात्राएं होती हैं। अ, इ, उ, ऋ, लृ ये वर्ण ह्रस्व होते हैं। जिनको हिन्दी में हम छोटी मात्राएँ कहते हैं। और आ, ई, ऊ, ऋ, ए, ओ, ऐ, औ, को दीर्घ कहते हैं। जिन्हें हिन्दी में हम बड़ी मात्रा कहते हैं। इनकी दीर्घ संज्ञा होती है। तीन मात्रा की प्लुत संज्ञा होती है। लोक में एक मात्रिक तथा द्विमात्रिक का ही प्रयोग होता है। संस्कृत में सम्बोधन प्रकृतिभाव आदि में त्रिमात्रिक वर्ण का उच्चारण होता है। तथा तीन मात्रिक को दिखाने के लिए वर्ण के बाद 3 का अंक लिखा जाता है। जैसे 3 इस तीन मात्रा वाले वर्ण को प्लुत संज्ञा होती है। इस सूत्र के द्वारा प्रत्येक अच् की ह्रस्व दीर्घ प्लुत की संज्ञा करके अर्चों के तीन भेद किये गये। इस प्रकार से अच् प्रत्याहार के प्रत्येक वर्ण ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, तीन तीन भेद हुए। मूल स्वर का उच्चारण हो जाता है। अतः समझना चाहिये कि एक मूल स्वर के उच्चारण में जितना काल अपेक्षित है उतने काल को एकमात्रा काल कहते हैं। कुक्कुट के शब्द 'कु कू कू' 3 में एक मात्रा, दो मात्रा और तीन मात्राओं का क्रमशः आरोह (चढ़ाव) स्पष्ट प्रतीत होता है और प्रायः सभी को उसका

अनुभव होता है। इसलिये उसमें स्पष्ट प्रतीत होने वाले 'उ' कार को दृष्टान्त रूप में रखा गया, अकार आदि को नहीं।

स इति- (सः) वह अच् (प्रत्येकम्) प्रत्येक (उदात्तादिभेदेन) उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से (त्रिधा) तीन प्रकार का है अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन तीन भेद होते हैं।

6 उच्चैरुदात्तः।1।2।29।। 'ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽनुदात्त संज्ञः स्यात्।
अर्थः- कण्ठ तालु आदि स्थानों के उपरी भाग से उच्चारित स्वर की उदात्त संज्ञा होती है।

अनुदात्त संज्ञा विधायक सूत्र

7- नीच्चैरनुदात्तः । 1 । 2 । 30 ॥

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषु अधोभागे निष्पन्नो अनुदात्त संज्ञा स्यात् ।

अर्थः- कण्ठ तालु आदि स्थानों के नीचले भाग से उच्चारित अच् की अनुदात्त संज्ञा होती है ।

स्वरित संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र-

8 . समाहारः स्वरितः 9/2/31//

उदात्तानुदात्तत्वे वर्ण धर्मों समाह्रियते तस्मिन् सोऽच स्वरित संज्ञः स्यात् । स नव विधोऽपि प्रत्येकम् अनुनासिकत्व- अननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ।

अर्थः- जहा पर उदात्त और अनुदात्त दोनों एकत्र बराबर हों, ऐसे अच् प्रत्याहार के वर्ण की स्वरित संज्ञा होती है। उच्चैरुदात्त (उपर वाला भाग) नीच्चैरुदात्त और नीचे वाला भाग। जो अच् प्रत्याहार का वर्ण इन दोनो भागो से बोला जाये उसे स्वरित कहते है। यथा अकार का कण्ठ स्थान होता है। यदि आकार कण्ठ के उपरि भाग और नीचले दोनों भागो से बोला जायगा तो वह स्वरित संज्ञक होगा। इसी प्रकार अपने अपने स्थानो के दोनों भागो से बोले जाने वाले इकार आदि भी स्वरित संज्ञक होंगे। इन स्वरित का ज्ञान लौकिक हिन्दी आदि शब्दो में ज्ञान करना कठिन है। किन्तु संस्कृत भाषा में इनका महत्व अधिक है। और इन स्वरो का ज्ञान खास करके वैदिक शब्दो के उच्चारण में इन स्वरो का विशेष ध्यान दिया गया है। वेद में इन स्वरो का संकेत चिन्हो के माध्यम से किया जाता है। उदात्त के लिये कोई चिन्ह नही होता। अनुदात्त के नीचे पड़ी रेखा तथा स्वरित के ऊपर खड़ी रेखा का चिन्ह होता है। यथा-

उदात्त	अ/ इ/ उ/ इसमें कोई चिन्ह नही होता इत्यादि
अनुदात्त	अ /इ/ उ/ इत्यादि इनमें नीचे चिन्ह होता है।
स्वरित	अं /इं/ उं/ इत्यादि इसमें उपर बड़ी रेखा का चिन्ह है।

साम वेद आदि में अन्य प्रकार के भी चिन्ह होते है। जो वैदिक ग्रन्थों से ज्ञान करना चाहिए। इस प्रकार स्वर को क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत माना गया है। उनकी उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित संज्ञा होती है। अर्थात् ह्रस्व को उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इसी प्रकार अनुदात्त स्वरित को भी समझना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक अच् को नौ भेद हैं।

इन नौ भेदो में भी प्रति एक का पुनः अनुनासिक तथा अननुनासिक भेद से दो दो भेद होकर

अठारह अठारह भेद हो जाते हैं। यह सब अगले सूत्र में प्रतिपादित किया गया है।

अनुनासिक संज्ञा विधायक विधि संज्ञा सूत्र -

9. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः 1/1/8//

मुख सहित नासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिक संज्ञः स्यात् । तदित्थम्- अ-इ-उ-ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकम् अष्टादश भेदाः। लृवर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात् । एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात् ।

अर्थ - मुख और नाक के द्वारा एक साथ उच्चारण किया जाने वाला वर्ण अनुनासिक संज्ञक होते हैं। भाव यह है कि सभी वर्ण मुख से ही बोले जाते हैं। पर उन मेंसे कुछ वर्ण मुख व नासिका से बोला जाय वह वर्ण अनुनासिक माने जाते हैं। जिस प्रकार व्यंजन वर्णों में ङ् ' ण् न् म् ये पा प्चो वर्ण मुख और नासिका(नाक) दोनों के द्वारा बोले जाते हैं। अतः ये अनुनासिक संज्ञक वर्ण हैं। इसी प्रकार अच् (स्वर) वर्ण मुख और नासिका की सहायता से बोला जायेगा तो अनुनासिक होगा। और यदि वे केवल मुख से बोले जायेंगे तो अनुनासिक (जो अनुनासिक नहीं है वह अनुनासिक बोले जाते हैं) होगा। इस प्रकार अनुनासिक अच् (स्वर) अ प् इ प् उ प् ऋ प् लृ प् ए प् ओ प् ऐ प् औ प् वर्ण है। निनुनासिक अच् (स्वर) अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ये वर्ण हैं। इस प्रकार पीछे कहे गये नव नव भेदों के अनुनासिक और अननुनासिक धर्म के कारण अठारह भेद हो जाते हैं। इस प्रकार स्वरो के सामान्य भेद का निरूपण किया गया। अब विशेष भेद क्या है? उनका वर्णन किया जा रहा है -

तदित्थम्- अ, इ, उ, ऋ, एषां वर्णानां प्रत्येकम् अष्टादश भेदाः। इस प्रकार से अ, इ, उ, ऋ, इन चार वर्णों के अठारह अठारह भेद अर्थात् नव प्रकार के जो स्वर वर्ण हैं। उनमें से इन चार वर्णों का अठारह अठारह भेद होता है। अब पौंचवौ वर्ण लृ का कितने भेद होते हैं। वह बताते हैं। लृ वर्णस्य द्वादश तस्य दीर्घाभावात् लृ वर्ण के बारह भेद होते हैं। अब नव स्वरो में से पा प्च वर्णों का भेद निश्चित हो गया है। अब चार और बच गये हैं। उनका वर्णन किया जा रहा है- एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाभावात् । एच् प्रत्याहार के ए,ओ,ऐ,औ ये चार जो वर्ण हैं। उनका इन चारो वर्णों के बारह भेद होते हैं। क्योंकि इसमें ह्रस्व का आभाव होता है। अर्थात् ह्रस्व न होने से छः भेद कम हो जाते हैं। इस लिये इन चारों प्रत्येक वर्णों के बारह बारह भेद माने जाते हैं। इस विषय को तालिका के माध्यम से देख सकते हैं-

ह्रस्व- अ, इ, उ, ऋ, लृ,

1. ह्रस्व उदात्त अनुनासिक
2. ह्रस्व उदात्त अननुनासिक
3. ह्रस्व अनुदात्त अनुनासिक
4. ह्रस्व अनुदात्त अननुनासिक
5. ह्रस्व स्वरित अनुनासिक
6. ह्रस्व स्वरित अननुनासिक

दीर्घ

आ, ई, ऊ, ऋ, एओ, ऐ, औ

7. दीर्घ उदात्त अनुनासिक
8. दीर्घ उदात्त अननुनासिक
9. दीर्घ अनुदात्त अनुनासिक
10. दीर्घ अनुदात्त अननुनासिक
11. दीर्घ स्वरित अनुनासिक
12. दीर्घ स्वरित अननुनासिक

प्लुत

आ ३ इ ३ ऊ ३ ऋ ३

लृ ३ ए ३ ओ ३ ऐ ३ औ ३

13. प्लुत उदात्त अनुनासिक
14. प्लुत उदात्त अननुनासिक
15. प्लुत अनुदात्त अनुनासिक
16. प्लुत अनुदात्त अननुनासिक
17. प्लुत स्वरित अनुनासिक
18. प्लुत स्वरित अननुनासिक

अभ्यासार्थ प्रश्न**अतिलघु उत्तरीय प्रश्न -**

1. माहेश्वर सूत्र किसे कहते हैं ?
2. संज्ञा किसे कहते हैं?
3. इत्संज्ञा करने वाला सूत्र है?
4. लोप संज्ञा करने वाला सूत्र है?
5. प्रत्याहार किसे कहते हैं?
6. एक मात्रिक को कहते हैं?
7. ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञा करता है
8. द्वि मात्रिक को कहते हैं ?
9. प्लुत कितने मात्रा का होता है?
10. अनुनासिक संज्ञा करने वाला सूत्र है ?
11. अनुनासिक संज्ञक वर्ण है
12. अ वर्ण के कितने भेद होते हैं

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. उपदेश अवस्था में अन्तिम हल वर्ण की इत्संज्ञा करता है-

1.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि माहेश्वर सूत्रों में प्रत्याहार कितने प्रकार के होते हैं। प्रत्याहार विधायक सूत्र क्या है। इन सबका वर्णन विशेष प्रकार से किया गया है। इस संज्ञा प्रकार में स्वर तथा व्यंजनों के विषय में मुख्य रूप से बताया गया है अच् प्रत्याहार के वर्णों के स्वर कहते हैं तथा अच् प्रत्याहार से रहित हल् वर्णों को व्यञ्जन कहते हैं। इन्हीं वर्णों को सूत्रों के माध्यम से परस्पर सवर्ण संज्ञा की गयी है। तथा इसी प्रकार सूत्रों के माध्यम से संहिता संज्ञा , पद संज्ञा इन सबका वर्णन किया गया है जो आगे सन्धि प्रकार में इनका विशेष प्रकार से प्रयोग बताया गया है। इस इकाई में इत् संज्ञा, लोप संज्ञा, आदि परिचयात्मक वर्णनों में एक आधारभूत संरचना का तथ्य प्रदर्शित है जिसके आधार पर आपने लोप संज्ञा करना और लोप करना सीखा है। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत के अतिरिक्त उदात्त अनुदात्त स्वरितादि स्वरों के विभिन्न भेद व उनके उच्चारण स्थान के साथ आपने वर्णों की उच्चारण प्रक्रिया का ज्ञान भी प्राप्त किया है। अतः इस इकाई के अध्ययन के बाद आप प्रत्याहार बनाना और स्वरों के भेद करना बता सकेंगे।

1.5 शब्दावली

इति से	यह
माहेश्वराणि	महेश्वर से
सूत्राणि	सूत्रों को
अर्थानि	अर्थों को
एषाम्	इनकी
हकारादिषु	हकार आदि वर्णों में
उच्चारणार्थः	उच्चारण के लिए
अदर्शनम्	जो न दिखायी दे
प्रसक्तस्य	विद्यमान वर्ण का
तस्य	उसका
इतः	इत्संज्ञा होती है
आदिः	पूर्ण (पहले)
मध्यमानाम्	बीच में पढ़े गये
नत्वाः	नमस्कार करके
सरस्वतीं देवीम्	सरस्वती देवी को
शुद्धां	शुद्ध एवं प्रशस्त
गुण्याम्	गुण से युक्त

पाणिनी	पाणिनि मुनि द्वारा
प्रवेशाय	प्रवेश के लिए
अहम	मै(वरद राजा चार्य)
लघुसिद्धान्तकौमुदीम्	लघु सिद्धान्त कौमुदी को
करोमि	करता है

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अतिलघुत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. चौदह सूत्रों को
2. जाति, व्यक्ति नाम को
3. हलन्त्यम्
4. अदर्शनं लोपः
5. आदिरन्त्येन सहेता
6. संक्षेप में कहा जाय
7. जो संक्षेप में कहा जाय (ह्रस्व)
8. उकालोह्रस्वदीर्घ प्लुतः
9. दीर्घ
10. त्रिमात्रिक
11. मुखनासिका वचनोऽनुनासिकः
12. ज म ड ण न म्
13. अठारह

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. (घ)
2. (क)
3. (क)
4. (क)
5. (क)
6. (ग)
7. (क)
8. (क)
9. (क)
10. (क)

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी
 2. सिद्धान्तकौमुदी
-

1.8 उपयोगी पुस्तके

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी
 2. लघुसिद्धान्तकौमुदी - अच् हल् एवं विसर्ग , डॉ० रामअवध पाण्डेय एवं डॉ० रविनाथ मिश्र
-

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चौदह सूत्रों का उल्लेख कर उनके इत् संज्ञक वर्णों को चिह्नित कीजिये ।
2. प्रस्तुत इकाई में आये हुए किन्हीं तीन सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या कीजिये ।
3. अपने अभ्यास के लिये प्रत्याहारों का निर्माण कीजिये ।

इकाई 2 . तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् से सुप्तिङन्तं पदम् तक

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् से सुप्तिङन्तं पदम् तक

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 उपयोगी पुस्तकें

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने चौदह सूत्रों से लेकर स्वरों के भेद सहित अनुनासिक संज्ञा तक का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में आपके अध्ययन के लिये वर्ण कितने प्रकार के होते हैं, तथा व्यञ्जन वर्ण कितने प्रकार के होते हैं, उन वर्णों का कौन सा स्थान है, कौन सा प्रयत्न होता है। इन सबके बारे में मुख्य रूप से बताया गया है।

व्यञ्जन वर्ण मुख्य रूप से तैंतीस प्रकार के होते हैं। उन्हीं तैंतीस व्यञ्जनों का स्थान प्रयत्न तथा प्राण के विषय में चर्चा की गयी है। अतः सन्धि के ज्ञान के लिए इन प्रयत्नों तथा प्राणों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप स्वर व्यञ्जन वर्णों के उच्चारण स्थान, प्रयत्न व वर्णों का उल्लेख कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- सवर्ण संज्ञा को परिभाषित कर सकेंगे
- वर्णों के आभ्यन्तर प्रयत्न को समझा सकेंगे
- वर्णों के बाह्य प्रयत्न को बता सकेंगे
- वर्णों के वर्ग निर्धारित कर सकेंगे
- संहिता संज्ञा का परिचय उदाहरण सहित दे सकेंगे
- संयोग संज्ञा का वर्णन कर सकेंगे

2.3 सवर्ण संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

10 तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् 1/1/ 9//

ताल्वादि स्थानम् आभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्ये तद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णं संज्ञं स्यात्।

अर्थ- तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर-प्रयत्न ये दोनों जिस वर्ण का जिस वर्ण के साथ तुल्य हो, वे वर्ण आपस में सवर्ण संज्ञक होते हैं। ये सूत्र दो या दो से अधिक वर्णों कि आपस में सवर्ण संज्ञा करता है। सवर्ण का अर्थ है समान वर्ण, समान जाति, समान स्थान वाले वर्ण, समान प्रयत्न वाले वर्ण, वर्णों की आपस में स्थान और प्रयत्न की तुल्यता। सवर्ण संज्ञा वाले वर्णों को सवर्ण कहते हैं। सवर्ण संज्ञा के लिये स्थान और प्रयत्न की समानता चाहिए। सवर्ण संज्ञा में आभ्यन्तर प्रयत्न ही लिया जाता है। वाह्य प्रयत्न का उपयोग किसी वर्ण के स्थान पर कोई आदेश करने पर किया जायेगा। जिन दो वर्णों का आपस में स्थान भी एक हो प्रयत्न भी एक हो उनकी आपस में सवर्ण संज्ञा होती है। जिस प्रकार अ का कण्ठ स्थान है और आ का भी कण्ठ स्थान है तथा

दोनों का प्रयत्न भी विस्तृत है। अतः स्थान और प्रयत्न एक होने से आपस में सवर्णों कहे जायेंगे इसी प्रकार जहाँ अ का ग्रहण होगा वहीं पर अठारह प्रकार के आ का ग्रहण किया जायेगा। यहाँ पर यह ध्यान देना होगा कि जब तक सम्पूर्ण स्थान और सम्पूर्ण प्रयत्न तुल्य न हो तब तक सवर्ण संज्ञा नहीं होती है। जिस प्रकार इ तथा ए का प्रयत्न समान है किन्तु स्थान तुल्य नहीं है। अतः इनकि आपस में सवर्ण संज्ञा नहीं होगी।

एक बात की ओर ध्यान देना है कि ए और ऐ की तथा ओ और औ की सम्पूर्ण स्थान और प्रयत्न के एक होने के बाद भी इनकी सवर्ण संज्ञा नहीं होती। क्योंकि पाणिनि ने चौदह सूत्रों में एओइ ऐऔच् दोनों का अलग अलग निर्देश किया है।

वार्तिक 9 - ऋलृवर्णयोमिथः सावर्ण्यं वाच्यम् ॥

अर्थ- ऋकार और लृकार की परस्पर सवर्ण संज्ञा कहनी चाहिए— तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् सूत्र के अनुसार ऋकार और लृकार की परस्पर सवर्ण संज्ञा नहीं हो सकती, क्योंकि ऋकार का स्थान मूर्धा और लृकार का स्थान दन्त है। परन्तु तवल्कारः आदि प्रयोगों की सिद्धि करने के लिये इनकी सवर्ण संज्ञा करना आवश्यक है इसीलिए यह वार्तिक बनाया गया।

अब व्यंजन वर्णों का वर्णन करने चल रहे हैं हल् वर्णों को व्यंजन कहते हैं। व्यंजन वर्ण 33 प्रकार के होते हैं उन तैतीस वर्णों का स्थान क्या है? प्रयत्न क्या है? प्राण क्या है? इन सबका वर्णन करने चल रहे हैं-

तैतीस वर्ण कैसे हैं-

कवर्ग	5	एक वर्ग में पाँच वर्ण होते हैं
चवर्ग	5	पाँच वर्ग मिलकर 25 तथा यण्
टवर्ग	5	प्रत्याहार में चार वर्ण तथा शल्
तवर्ग	5	प्रत्याहार में चार वर्ण मिलकर आठ
पवर्ग	5	अर्थात् सब मिलकर 33 वर्ण होते हैं

यण्- य् व् र् ल् - 4

शल्- श ष् स् ह् - 4

इसके बाद अच् (स्वर) वर्णों का भी स्थान प्रयत्न क्या इन सबका वर्णन करते हैं।

वर्णों का स्थान

अकृह विसर्जनीयानां कण्ठः। अठारह प्रकार के सभी अकार तथा कवर्ग अर्थात् क, ख, ग, घ, ङ, और विसर्ग इन सभी वर्णों का उच्चारण स्थान कण्ठः है क्योंकि इन का उच्चारण सीधे कण्ठ से होते हैं इसलिये इन वर्णों का कण्ठ स्थान है।

इचुयशानां तालु- अठारह प्रकार के इकार तथा चवर्ग- च, छ, ज, झ, ञ, यकार और शकार का तालु स्थान है इन वर्णों के उच्चारण में तालु का विशेष प्रयोग होता है। इसलिए इनका तालु स्थान है।

ऋटुरषाणां मूर्द्धा - अठारह प्रकार के सभी ऋकार टवर्ग- ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, र्, तथा ष् का उच्चारण स्थान मूर्द्धा है। जीभ पीछे ले जाकर शिर के मध्य भाग के ठीक नीचे मुख भाग में जो

कोमल भाग है वह मूर्द्धा होता है। अतः इनका मूर्द्धा स्थान है। संस्कृत में शिर को मूर्द्धा कहते हैं।
लृतुलसानां दन्ताः - बारह प्रकार के सभी लृकार तवर्ग- त्, थ्, द्, ध्, न् लकार तथा स् इन वर्णों का उच्चारण स्थान दन्त है। जीभ के उपरी दाँतो से टकराने से जो उच्चारण होता है। उनका स्थान दन्त है।

उपूध्मानीयानाम् ओष्ठौ - अठारह प्रकार के उकार पवर्ग - प्, फ्, ब्, भ्, म्, उपध्यानीय- विसर्ग इन वर्णों का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। ये वर्ण दोनों ओठों के टकराने से होता है। अतः इनका उच्चारण स्थान ओष्ठ है।

जमडणनानां नासिका च - ज्, म्, ङ्, ण्, न् इनका स्थान नासिका भी है। तात्पर्य है कि इनके पहले ज् का स्थान तालु है। म का स्थान ओष्ठ है। ङ का स्थान कण्ठ है। ण का स्थान मूर्धा है। न का स्थान दन्त है। यह पहले बताया जा चुका है। अब इनका नासिका स्थान भी होता है। ऐसा कहा जाता है। जिस प्रकार ज् का स्थान तालु है और नासिका भी स्थान है। इनका उच्चारण नाक की सहायता से होता है अतः इस लिए नासिका भी स्थान है।

एदैतोः कण्ठ तालु। ए और आ का उच्चारण कण्ठ और तालु से होता है अतः इनका स्थान कण्ठ और तालु है।

वकारस्य दन्तोष्ठम् - वकार का दन्त और ओष्ठ स्थान है वकार का उच्चारण दाँत और ओठों से होता है। अतः दन्त और ओष्ठ स्थान है।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्। जिह्वामूलीय विसर्ग का जिह्वामूल स्थान है क्योंकि इनका उच्चारण सीधे जीभ के मूल भाग से होता है।

नासिकानुस्वारस्य अनुस्वार का उच्चारण नासिका कि सहायता से होता है अतः अनुस्वार का स्थान नासिका है।

जब तक वर्णों के उच्चारण स्थान का ज्ञान अच्छी प्रकार से समझ नहीं लेंगे तब तक आगे सन्धि प्रकरण का ज्ञान अच्छी प्रकार से नहीं कर पायेंगे। इसलिए वर्णों का उच्चारण स्थान का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है। अभी तक आपने वर्णों के उच्चारण के बारे में ज्ञान किया।

अब इसके बाद किस वर्ण का कौनसा प्रयत्न होगा। उसके विषय में सम्यग् रूप से बताया जा रहा है इसको ध्यान से पढ़ें।

यत्नो द्विधा, आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः आभ्यन्तर प्रयत्न पञ्चधा-स्पृष्ट-ईषत्स्पृष्ट-ईषाद्विवृत-विवृत-संवृतभेदात्। तत्र स्पृष्ट प्रयत्नं स्पर्शानां। ईषत्स्पृष्टमन्तः स्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम्। विवृत स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णास्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रिया दशायां तु विवृतमेव।

यत्नो द्विधा यत्न दो प्रकार के होते हैं। **आभ्यन्तरो बाह्यश्च**- 1. आभ्यन्तर, प्रयत्न 2. बाह्य प्रयत्न। आद्यः पञ्चधा- पहला आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के होते हैं।

1. स्पृष्ट - 2. ईषत्स्पृष्ट - 3. ईषद्विवृत - 4. विवृत- 5. संवृत-। वर्णों की उत्पत्ति में जिह्वा के अग्र, उपाग्र, मध्य तथा मूल भागों का उपयोग हुआ करता है। जिह्वा को छूना, स्पृष्ट, थोड़ा छूना, ईषत्स्पृष्ट, थोड़ा दूर रहना ईषद्विवृत, दूर विवृत, तथा हटकर समीप रहना संवृत यत्न कहलाता है।

तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् उनमे से स्पर्श संज्ञक वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न होता है । (क से लेकर म तक वर्ण स्पृष्ट संज्ञक होता है । ईषत्स्पृष्टमन्तः स्थानाम्- । अन्तस्थ संज्ञक वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है । (यण प्रत्याहारस्थ य्, व्, र्, ल्, ये वर्ण अन्तस्थ संज्ञक होते हैं) ईषद्विवृत मूष्मणाम्- उष्म संज्ञक वर्णों का ईषद्विवृत प्रयत्न होता है। शल् अर्थात् श्, ष्, स्, ह्, ये उष्म संज्ञक होते हैं। विवृतं स्वराणाम्- स्वर संज्ञक वर्णों का विवृत प्रयत्न होता है। (अच् ही को स्वर कहते हैं ।)

ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम प्रक्रिया दशायां तु विवृतमेव - ह्रस्व अवर्ण का प्रयोग अवस्था अर्थात् उच्चारण अवस्था में संवृत-प्रयत्न होता है और प्रयोग अवस्था अर्थात् साधनिका अवस्था में विवृत ही प्रयत्न होता है। प्रयत्नों में आभ्यन्तर प्रयत्न समाप्त होता है । अब बाह्य के बारे में अध्ययन करिये-

बाह्य प्रयत्नस्त्वेकादशधा- विवारः वाहय प्रयत्न संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति। खरो विवाराः वासा अघोषाश्च। हशः संवारा नादा घोषाश्च। वर्गाणां प्रथम तृतीय पंचमा यणश्चाल्पप्राणाः। द्वितीय चतुर्थौ शलश्च महा प्राणाः।

जिस प्रकार सभी स्वर व्यंजन वर्णों का स्थान निश्चित किया गया है तथा आभ्यन्तर प्रयत्न भी निश्चित किया है। उसी प्रकार बाह्य प्रयत्न भी निश्चित किया गया है । उसके बारे में सम्यग रूप से अध्ययन करें । ध्यान दीजिये तैतीस व्यंजन और नव स्वर है । उसमें सबसे पहले तैतीस व्यंजनों का वर्णन हो रहा है । इन तैतीस व्यंजनों को जानने के लिए मात्र मुझे दो प्रत्याहार का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है । 1. खर् प्रत्याहार और दूसरा हश् प्रत्याहार ।

1. खर्- प्रत्याहार में आने वाले वर्ण हैं- ख्, फ्, छ्, ट्, थ्, च्, ट्, त्, क्, प्, श्, ष्, स्, । 13 वर्ण
2. हश्- प्रत्याहार में आने वाले वर्ण हैं- ह्, य्, व्, र्, ल्, ँ, म्, ङ्, ण्, न्, झ्, भ्, घ्, ढ्, ध्, ज्, व्, ग्, ङ्, द्, । 20 वर्ण

खर् प्रत्याहार में 13 वर्ण है तथा हश् प्रत्याहार में 20 वर्ण दानों मिलकर तैतीस व्यञ्जन वर्ण हो गये । और हमारे व्यञ्जन वर्ण तैतीस होते हैं। अब इनको कैसे ज्ञान किया जाय उसके विषय में पढ़ें ।

बाह्यप्रयत्नस्त्वेकादशधा - विवारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति ।

बाह्य प्रयत्न 11 प्रकार के होते हैं । 1. विवार, 2. संवार, 3. श्वास, 4.- नाद, 5.- घोष, 6.- अघोष, 7.- अल्प प्राण, 8.- महा प्राण, 9.- उदात्त, 10.- अनुदात्त, 11.- स्वरित ।

खरो विवाराः श्वासाः अघोषाश्च । खर् प्रत्याहार में आने वाले वर्ण है उनका विवार, श्वास और अघोष ये तीनों प्रयत्न होते हैं ।

हशः संवारा - नादा - घोषाश्च । हश् प्रत्याहार में आने वाले जो वर्ण है । उनका संवार, नाद, और अघोष ये तीनों प्रत्यय होते हैं । अब आप बाह्य प्रयत्न के बारे में ज्ञान कर लिये । अब हमारे तैतीस जो व्यञ्जन है उन व्यंजनों का कौनसा प्राण होगा ? इसके बारे में जानेंगे ।

वर्णों के प्राण मात्र दो होते हैं । 1. अल्पप्राण 2. महाप्राण । इन दोनों प्राणों में हमारे सभी व्यंजन

वर्ण समाहित है। जो वर्ण अल्प प्राण में नहीं आयेंगे वह महाप्राण में आयेंगे और जो वण महाप्राण में नहीं आयेंगे वह अल्प प्राण में आयेंगे। अब कौनसा व्यंजन वर्ण किस प्राण में आयेंगे उसको ध्यान से देखे-

वर्गाणां प्रथम तृतीय पंचमा यणश्चाल्पप्राणाः। वर्गो के प्रथम, तृतीय, पंचम, और यण् प्रत्याहार में आने वाले जो वर्ण है। उनका अल्प प्राण होता है। 11. प्रयत्नों में से जो यह तीन प्रयत्न ९ उदात्तोऽनुदात्तः 10. अनुदात्त 11. स्वरित जो पढ़ा गया है इनका वर्णन पहले किया गया है। अच् प्रत्याहारस्थ जो वर्ण है। वर्णों का उदात्त, अनुदात्त और स्वरित प्रयत्न होते हैं। जो पहले ही इनकी संज्ञाये की जा चुकी है। वर्गाणां द्वितीय चतुर्थौ शलश्च महा प्राणाः। वर्गो के द्वितीय और चतुर्थ वर्ण और शल् प्रत्याहार। श, ष, स, ह, ये वर्ण चार वर्ण महा प्राण में आते हैं। अर्थात् इन वर्णों का महा प्राण होता है। वर्ग हमारे पाँच होते हैं। 1. कवर्ग, 2. चवर्ग, 3. टवर्ग, 4. तवर्ग, 5. पवर्ग इन पाँच वर्गों के दूसरा वर्ण और चौथा वर्ण उनका महा प्राण होते हैं। जिस प्रकार कवर्ग में पाँच वर्ण हैं। 1. क, 2. ख, 3. ग, 4. घ, 5. ङ इन वर्णों में दूसरा वर्ण ख है तथा चौथा वर्ण घ है। इनका महा प्राण होगा। किन्तु एक बात का ध्यान और देना है कि यण् प्रत्याहार के वर्ण तथा शल् प्रत्याहार के वर्ण वर्ग में नहीं पढ़े गये हैं। इनका कौनसा प्राण होगा? पाणिनि ने उनको दानों प्राणों में जोड़ दिया शल् प्रत्याहार श, ष, स, ह, ये जो चार वर्ण हैं वह महा प्राण में आयेंगे। और शेष अर्थात् वर्ग के पहला वर्ण, तीसरा वर्ण और पाँचवा वर्ण तथा यण् प्रत्याहार के जो वर्ण बचे हैं वह अल्प प्राण में होंगे। जो उपर बताया गया है। अब आप सभी व्यञ्जन वर्णों का प्राण जान गये अब इसके बाद आभ्यन्तर प्रयत्न में आठ स्थान कहे गये हैं। उन आठ स्थानों का वर्णन हो रहा है। - 1. स्पर्श, 2. अन्तःस्थ, 3. उष्म्, 4. स्वर, 5. जिह्वामूलीय, 6. पाध्मानीय, 7. अनुस्वार, 8. विसर्ग, इन आठ शब्दों की व्याख्या की जा रही है-

कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्तःस्थाः। शल उष्माणः। अचः स्वराः। : क, : ख, इति कखाभ्यां प्रागर्धविसर्ग- सदृशो जिह्वामूलीयः। : प, : फ, इति पफाभ्यां प्रागर्ध विसर्ग सदृश उपध्यानीयः। अं, अः, इत्यचः परावनुस्वार विसर्गौ ॥

कादयोमावसानाः स्पर्शाः। क से लेकर म तक जो वर्ण है। वह स्पर्श संज्ञक होते हैं। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग। अर्थात् 25 वर्ण आते हैं। तैत्तििस व्यञ्जन वर्णों में से इन 25 वर्णों का आभ्यन्तर प्रयत्न में स्पृष्ट प्रयत्न है।

यणोऽन्तःस्थाः - यण् प्रत्याहार य, व, र, ल, ये वे चार वर्ण हैं वे अन्तस्थ संज्ञक होते हैं अतः इन चार वर्णों का आभ्यन्तर प्रयत्न में ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है। शल् उष्माणः। शल् प्रत्याहार श, ष, स, ह, में आने वाले जो वर्ण है उनका उष्म संज्ञक कहा जाता है। अतः इन वर्णों को आभ्यन्तर प्रयत्न में ईषदविवृत प्रयत्न होता है। इस प्रकार तैत्तििस व्यञ्जन वर्णों के विषय में ज्ञान कर लिया गया अब स्वरों के विषय में बताया जा रहा है। अचः स्वरा। अच् प्रत्याहार अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, में जाने वाले जो वर्ण है। उनको स्वर कहते हैं। उनको आभ्यन्तर प्रयत्न में विवृत प्रयत्न होता है।

“:क” “:ख” इति कखाभ्यां प्रागर्ध विसर्ग सदृशो जिह्वामूलीयः।

“:क” “:ख” ऐसे में क ख से पहले आने वाला आधा विसर्ग सदृश जो होता है। वह जिह्वामूलीय विसर्ग माना जाता है।

“:प” “:फ” इति पफाभ्यां प्रागर्ध विसर्ग सदृश उपध्मानीयः “:प” “:फ” ऐसे में प और फ से पहले आने वाला आधा विसर्ग सदृश जैसा होता है। वह उपध्मानीयः विसर्ग सदृश कहा जाता है। अं, अः इत्यचः परावनुस्वार विसर्गो। अं में जैसे अकार के उपर का एक बिन्दु अनुस्वार है। वैसे ही सभी अच् वर्णों के उपर का एक बिन्दु अनुस्वार कहा जाता है। और इसी प्रकार अः में जैसे अकार के बाद का दो बिन्दु विसर्ग है। वैसे ही सभी अच् वर्णों के बाद का दो बिन्दु विसर्ग कहलाता है। मकार तथा नकार के स्थान पर आदेश होकर अनुस्वार बनता है। और रकार के स्थान पर आदेश होकर विसर्ग बनता है। इस विषय को आगे स्पष्ट किया जायेगा।
तालिका के माध्यम से आभ्यन्तर प्रयत्न के वर्णों को देखे-

स्पृष्ट	ईषस्पृष्ट	ईषद्विवृत	विवृत	संवृत
क ख ग घ ङ	य	श	अ इ	ह्रस्व अवर्ण का
च छ ज झ ञ	व	ष	उ ऋ	उच्चारण काल में
ट ठ ड ढ ण	रस	लृ ए	केवल	संवृत प्रयत्न
त थ द ध न	ल	ह	ओ ऐ	
प फ ब भ म		औ		

तालिका के माध्यम से बाह्य प्रयत्न के वर्णों को देखे -

विवार,श्वास,अघोष	संवाद,नाद,घोष	अल्पप्राण	महाप्राण	उदात्त,अनुदात्त, स्वरित
क ख	क घ ङ	क ग ङ	ख घ	अ
च ढ	ज झ ञ	च ज ञ	छ झ	इ
ट ठ	ड ढ ण	ट ड ण	ठ ढ	उ
त थ	द ध न	त द न	थ ध	ऋ
प फ	ब भ म	प ब म	फ भ	लृ
श	य व	य	श	ए
ष	र ल	व	ष	ओ
स	ह	र	स	ऐ
	सभी स्वर ल	ह	औ	

अ आदि संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

11. अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः 1/1/69//

प्रतीयते विधीयते इति प्रत्ययः अविधीयमानोऽणुदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्। अत्रैवाण् परेण णकारेण कु-चु-टु-तु-पु एते उदितः। तदेवम् अ इत्यष्ट दशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। ऋकार स्त्रिंशत। एवं लृकारोऽपि। एचोद्वादशानाम्। अनुनासिका ननुनासिका भेदेन य व ला द्विधा तेनानुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञाः।

अर्थः- जिसका विधान किया जाय उसे प्रत्यय कहते हैं। अप्रत्यय अर्थात् न विधान किया हुआ

अण् और उदित सवर्णों की संज्ञा के बोधक अर्थात् ग्राहक होते हैं। प्रत्यय शब्द यहाँ यौगिक शब्द है। इसका अर्थ है - विधान किया हुआ। यथा - इकोयणचि इस सूत्र में यण् सनाशंस भिक्ष उः सूत्र में उकार का विधान किया गया है। अतः यण् और उ ये दोनो प्रत्यय हैं।

अत्रेवाण परेण णकारेण। अब यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि अण् तथा इण् प्रत्याहार दो प्रकार के होते हैं। एक पूर्ण णकार अर्थात्- अ, इ, उ, ण् के णकार तक तथा दूसरा पर णकार अर्थात्- लण् के णकार तक अतः दोनों णकारों में कहाँ तक माना जाय? इसका उत्तर देते हैं कि इस सूत्र में पर णकार तक माना जायेगा अर्थात् लण् के णकार तक माना जायेगा। अन्यत्र सभी जगह पूर्व णकार अर्थात् अ, इ, उ, ण, के णकार तक ही माना जायेगा।

अण् अ, इ, उ, पूर्व णकार तक अण् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, पर णकार तक कु, चु, टु, तु, पु, एते उदितः। ये शास्त्र में उदित माने जाते हैं। इनमें जो उकार है उसकी उपदेशे ऽनुनासिक इत् इस सूत्र से इत् संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप हो जाता है। यद्यपि कु, चु, टु, तु, पु, इन समुदायो का कोई सवर्ण नहीं होता है। तथापि इन समुदायो के आदि वर्ण क, च, ट, त, प, से इनके सवर्णों का ग्रहण समझना चाहिए। क के सवर्णों ख, ग, घ, ङ, ये चार वर्ण हैं। कु, कहने से इन चार वर्णों तथा पाँचवाँ वर्ण अपने रूप क, का, अर्थात् कुल मिलाकर पाँच वर्णों का ग्रहण होगा। उसी प्रकार चु से चवर्ग, टु से टवर्ग, तु से तवर्ग, पु से पवर्ग का ग्रहण होता है।

तदेवम् अ इत्यष्टादशानां संज्ञा तथेकारोकारौ। इस प्रकार से अ से अठारह प्रकार के अकार का बोध अथवा ग्रहण किया जाता है। उसी प्रकार से ईकार तथा उकार से भी अठारह अठारह प्रकार के बोधक होंगे।

ऋकारस्त्रिंशतः। एवं लृकारोऽपि। तीस प्रकार से ऋकार (अठारह प्रकार के तथा बारह प्रकार के लृकार) बोध अर्थात् ग्रहण किया जाता है। इसी प्रकार लृकार से भी तीस प्रकार से ग्रहण किया जाता है। क्योंकि ऋकार एवं लृकार की आपस में सवर्ण संज्ञा हुई है। अतः ये दोनों आपस में सवर्णी हैं। इसका फल आगे बताया जायेगा।

एचोद्वाद्शानाम्। एच् प्रत्याहार में ए, ओ, ऐ, औ, ये चार वर्ण हैं। इनमें ह्रस्व का अभाव होता है। इसलिये यह प्रत्येक बारह - बारह प्रकार के होते हैं।

अनुनासिकाननुनासिक भेदेन यवला द्विधा, तेनानुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा।

य, व, ल ये तीनों वर्ण दों दों प्रकार के होते हैं। पहले अनुनासिक यँ, वँ, लँ और दूसरा अननुनासिक अर्थात् जो अनुनासिक नहीं है। ऐसे य, व, ल, का बोध करता है। इस प्रकार से पहले अ, इ, उ, ण इत्यादि सूत्रों का पठन उसके बाद अन्त्य वर्ण की हलन्त्यम सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप का विधान करके आदिरन्त्येन सहेता से प्रत्याहार बनाने के बाद, उन अर्चों की ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञा, उसके बाद उदात्त, अनुदात्त, स्वरित संज्ञा, उसके बाद अनुनासिक और अनुनासिक संज्ञा करके वर्णों के स्थान एवं प्रयत्न को जानने के बाद जिनका आपस में स्थान और प्रयत्न मिलते हैं। उनकी सवर्ण संज्ञा करके उन सवर्णियों को अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्यय सूत्र से ग्रहण किये जाने के वर्णाश्रित प्रक्रिया को आप अच्छी प्रकार से समझ गये होंगे। अब इन्ही प्रत्याहार स्थान, प्रयत्न, सवर्ण संज्ञा का ग्रहण करके सूत्रों से अनेक

कार्य किये जाते हैं। इस लिये इनका ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है।

संहिता संज्ञा विधायक, संज्ञा सूत्र

12 परः सन्निकर्षः संहिता 1/4/109//

वर्णानामतिशयितः सन्धिः संहिता संज्ञः स्यात् ।

अर्थः- वर्णों की अत्यन्त सन्धि की संहिता संज्ञा होती है। अर्थात् वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं। आगे चलकर मुझे दो शब्दों के बीच सन्धि करनी है। सन्धि करने वाले सारे सूत्र संहिता के विषय में ही कार्य करते हैं। इस लिये सन्धि प्रकरण में प्रवेश करने के पहले संहिता संज्ञा करनी पड़ती है। संहिता संज्ञा वहीं पर होती है जहाँ सन्धि का विषय हो, जैसे- दैत्य अरिः है। यहाँ दैत्य में य में अकार तथा पर में अरि का अकार। दोनों वर्ण अत्यन्त समीप में हैं। अतः दोनों अकारों की संहिता संज्ञा हो गयी और सन्धि प्रकरण में अकः सवर्ण दीर्घः सूत्र से दोनों अकार के स्थान पर सवर्ण दीर्घ होकर दैत्य आरिः बना। अतः यकार आकार मिलकर दैत्यारिः प्रयोग सिद्ध होता है।

संयोग संज्ञा विधायक, संज्ञा सूत्र

13 - हलोऽनन्तराः संयोगः 1/1/7//

अज्भिः अव्यवहिता हलः संयोग संज्ञा स्युः।

अर्थः- अचों से रहित हल् वर्ण संयोग संज्ञक होते हैं। जिस शब्द में दो या दो से अधिक वर्णों के बीच में कोई भी अच् वर्ण न हो तो, उन सभी हलों के समुदाय अर्थात् समुह की संयोग संज्ञा होती है। जैसे- राम , दत्त, शुक्ल, शर्मा , सिद्ध आदि। यहाँ पर राम दत्त में दो तकार हैं त् , त् इस हल् समुदाय के बीच में कोई स्वर वर्ण नहीं है। अतः दोनों तकार की संयोग संज्ञा होती है। इसी प्रकार अन्य की भी संयोग संज्ञा होती है। अब संयोग संज्ञा का फल सन्धि प्रकरण में बताया जायेगा।

पद संज्ञा विधायक , संज्ञा सूत्र

14- सुप्तिङन्तं पदम् 9/4/94//

सुबन्तं तिङन्तं च पद संज्ञं स्यात् ।

अर्थः- सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है। सुबन्त का अर्थ होता है। जिस शब्द के अन्त में सुप् अर्थात् सु, औ, जस् आदि इक्कीस प्रत्यय हो उसे सुबन्त कहते हैं। अतः ये शब्द रूप कहे जाते हैं। इन इक्कीस प्रत्ययों को तालिका के माध्यम से देखें समझें-

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा विभक्ति	सु	औ	जस्
द्वितीया विभक्ति	अम्	औट्	शस्
तृतीया विभक्ति	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी विभक्ति	डे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी विभक्ति	डसि	भ्याम्	भ्यस्

षष्ठी विभक्ति	डस्	ओस्	आम्
सप्तमी विभक्ति	डि	ओस्	सुप्
इसी प्रकार तिङ् प्रत्यय हो जिसके अन्त में उसे तिङन्त कहते हैं। जैसे भवति में भू धातु है और तिङ् प्रत्यय के अन्तर्गत ति आता है। अतः ति प्रत्यय तथा शप् गुण अवादेश होकर भवति बनता है। अतः इन्हें धातु रूप कहते हैं। तिङ् प्रत्याहार के अन्तर्गत अठारह प्रत्यय आते हैं। जिसका विशेष रूप से वर्णन भ्वादि प्रकरण में किया गया है। तिङ् प्रत्याहार को तालिका के माध्यम से समझे-	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम् पुरुष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरुष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरुष	मिप्	वस्	मस्

ये अठारह प्रत्यय हो जिसके अन्त में उसकी पद संज्ञा होती है। विशेष बात यह है कि जब तक आप संज्ञा प्रकरण का सम्यग् रूप से अध्ययन नहीं करेंगे, तबतक आगे संधि प्रकरण का ज्ञान नहीं हो सकता। अतः सन्धि प्रकरण के ज्ञान के लिए संज्ञा प्रकरण का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार संज्ञा प्रकरण की समाप्ति हुई। अब आगे सन्धि प्रकरण का ज्ञान कीजिये।

अभ्यास प्रश्न

अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लृ वर्ण के कितने भेद होते हैं
2. कवर्ग में कितने वर्ण होते हैं ?
3. च छ ज झ म ये वर्ण किस वर्ग में आते हैं
4. वर्ग कितने प्रकार के होते है
5. टवर्ग में कितने वर्ण आते है ?
6. क् वर्ण का स्थान है ?
7. 'ट' वर्ण का स्थान है ?
8. दन्त स्थान में आने वाले वर्ण है
9. तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् करता है ?
10. यज् प्रत्याहार में वर्ण होते है ?
11. य वर्ण का स्थान है
12. अ वर्ण का स्थान है
13. (उ) वर्ण का स्थान है ?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1- प्रयत्न होते है -

क - पाँच ख - तीन

ग-दो ध-एक

2-आभ्यन्तर प्रयत्न कितने प्रकार के होते है

- क.पाँच ख ...तीन
ग... दो घ... एक
- 3-वाह्य प्रयत्न कितने प्रकार के होते हैं
क. दश ख. चार
ग . पाच घ . ग्यारह
4. आभ्यन्तर प्रयत्न में ' क ' का कौन प्रयत्न होता है -
क -स्पृष्ट ख-ईषत्स्पृष्ट
ग-ईषद् विवृत ध - विवृत
5. स्वर वर्णों का कौन सा प्रयत्न होता है
क-स्पृष्ट ख. विवृत
ग -संवृत घ .ईशाद्विवृत
- 6.वाहय प्रयत्न में कौन सा प्रयत्न है
क- संवार ख - नादं
ग- घोष घ- संवार नाद घोष
7. प्राण कितने प्रकार के होते हैं-
क पांच ख तीन
ग दो घ एक
8. य वर्ण का कौनसा प्रयत्न होता है -
क . अल्प प्राण ख. तीन
ग . अल्पप्राण महाप्राण घ . अल्पप्राण महाप्राण दोनों नहीं
9. हलोऽनन्तराः करता है -
क. संयोग संज्ञा ख .हि संज्ञा
ग. घि संज्ञा घ .पद संज्ञा
10. सुप्तिड.तं पदम्' करता है-
क संयोग संज्ञा ख प्रतिपदिक संज्ञा
ग ह्रस्व संज्ञा घ पद संज्ञा

2.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सवर्ण संज्ञा वाले वर्णों को सवर्णी कहते हैं। सवर्ण संज्ञा के लिये स्थान और प्रयत्न की समानता चाहिए। सवर्ण संज्ञा में आभ्यन्तर प्रयत्न ही लिया जाता है। वाह्य प्रयत्न का उपयोग किसी वर्ण के स्थान पर कोई आदेश करने पर किया जायेगा। जिन दो वर्णों का आपस में स्थान भी एक हो प्रयत्न भी एक हो उनकी आपस में सवर्ण संज्ञा होती है। जिस प्रकार अ का कण्ठ स्थान है और आ का भी कण्ठ स्थान है तथा दोनों का प्रयत्न भी विस्तृत है। अतः स्थान और प्रयत्न एक होने से आपस में सवर्णी कहे जायेंगे इसी प्रकार जहाँ अ का ग्रहण होगा वहीं पर अठारह प्रकार के आ का ग्रहण किया जायेगा। यहाँ पर

यह ध्यान देना होगा कि जब तक सम्पूर्ण स्थान और सम्पूर्ण प्रयत्न तुल्य न हो तब तक सवर्ण संज्ञा नहीं होती है। जिस प्रकार इ तथा ए का प्रयत्न समान है किन्तु स्थान तुल्य नहीं है। अतः इनके आपस में सवर्ण संज्ञा नहीं होगी। यत्नो द्विधा यत्न दो प्रकार के होते हैं। आभ्यन्तरो वाह्यश्च- 1. आभ्यन्तर, प्रयत्न 2. वाह्य प्रयत्न। आद्यः पंचधा- पहला आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के होते हैं। 1. स्पृष्ट - 2. ईषत्स्पृष्ट - 3. ईषद्विवृत - 4. विवृत- 5. संवृत-। वर्णों की उत्पत्ति में जिह्वा के अग्र, उपाग्र, मध्य तथा मूल भागों का उपयोग हुआ करता है। जिह्वा को छूना, स्पृष्ट, थोड़ा छूना, ईषत्स्पृष्ट, थोड़ा दूर रहना ईषद्विवृत, दूर विवृत, तथा हटकर समीप रहना संवृत यत्न कहलाता है। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम् उनमें से स्पर्श संज्ञक वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न होता है। (क से लेकर म तक वर्ण स्पृष्ट संज्ञक होता है। ईषत्स्पृष्टमन्तः स्थानाम्- । अन्तस्थ संज्ञक वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है। (यण् प्रत्याहारस्थ य्, व्, र्, ल्, ये वर्ण अन्तस्थ संज्ञक होते हैं।) ईषद्विवृत मूष्मणाम्- उष्म संज्ञक वर्णों का ईषद्विवृत प्रयत्न होता है। शल् अर्थात् श्, ष्, स्, ह्, ये उष्म संज्ञक होते हैं। विवृतं स्वराणाम्- स्वर संज्ञक वर्णों का विवृत प्रयत्न होता है। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप वर्णों को सवर्ण रूप में बताते हुये संयोग आदि संज्ञाओं का उल्लेख कर सुबन्त और तिङ्गन्त आदि का निर्धारण कर सकेंगे।

2.5 शब्दावली

सुबन्तम्	सुबन्तम् को
तिङ्.न्तम्	तिङ्.न्त को
अज्मिः	अचों से
अव्य वहिताः	व्यवधान से रहित
संयोगः	संयोग
वर्णानाम्	वर्णों का
सन्निधिः	सन्निकटता

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. (बारह)
2. (पांच)
3. (चवर्ग)
4. (पाँच)
5. (पांच)
6. (कण्ठ)
7. (मूर्धा)
8. (त थ द ध न)

9. (सवर्ण संज्ञा)
10. (चार य् व र् ल्)
11. (तालु)
12. (कण्ठ)
13. (ओष्ठ)

बहु विकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (क)
3. (घ)
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ग)
8. क
9. क
10. घ

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी - डॉ महेश्वर सिंह कुशवाहा चौखम्भा प्रकाशन
2. सिद्धान्तकौमुदी - डॉ रविनाथ मिश्र

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी - श्रीधर स्वामी

2.9 निबधात्मक प्रश्न

- 1-प्रयत्न कितने प्रकार के होते हैं उनकी व्याख्या करें ।
2. प्रयत्न की परिभाषा करते हुये बाह्य प्रयत्नों को उदाहरण सहित लिखें ।
3. सवर्ण संज्ञा विधायक सूत्र की व्याख्या करते हुए वर्णों के उच्चारण स्थान बतायें ।
4. अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये ।

इकाई 3: इकोयणचि अलोऽन्त्यस्य सूत्र तक

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 इकोयणचि अलोऽन्त्यस्य सूत्र तक

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में सवर्ण संज्ञा से लेकर पद संज्ञा तक का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में यण् सन्धि से लेकर अलोऽन्त्यस्य सूत्र तक की उदाहरण सहित व्याख्यायें व प्रयोगों की सिद्धियों का अध्ययन आप करेंगे।

वर्णों के मेल को सन्धि कहते हैं। इक् के स्थान में यण् होने से यण सन्धि होती है। इक् का अर्थ होता है इ, उ, ऋ, लृ और यण का अर्थ होता है य, र, व, ल। सन्धि कहाँ पर होती है और किन परिस्थितियों में सन्धि का विधान किया जाता है इत्यादि तथ्यों का वर्णन इस इकाई में प्रस्तुत है लघुसिद्धान्तकौमुदी के अच् सन्धि प्रकरण में यण् सन्धि, अयादि सन्धि, गुण सन्धि, वृद्धि सन्धि पर रूप सन्धि, सवर्णदीर्घ सन्धि, पूर्वरूप सन्धि और प्रकृति भाव इन सन्धियों की गणना की गयी हैं।

अतः इस इकाई के अध्ययन से सन्धि प्रक्रिया को समझते हुए आप उसकी महत्ता को भी बता सकेंगे, तथा इस इकाई में आये हुए प्रयोगों की सूत्रोल्लेख पूर्वक सिद्धि भी करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- यण् सन्धि की परिभाषा बता सकेंगे।
- सुद्ध्युपास्यः प्रयोग कैसे सिद्ध होगा, इसे समझा सकेंगे।
- मद्ध्वरिः प्रयोग कैसे सिद्ध होगा इसे बता सकेंगे।
- लोप विधायक विधि सूत्र की व्याख्या कर सकेंगे।
- द्वित्व विधायक विधि सूत्र को बता सकेंगे।
- यणःप्रतिषेधो वाच्यः के प्रयोजन को समझा सकेंगे।

3.3 यण् सन्धि विधायक विधि सूत्र

15. इको यणचि 6। 1। 77।

इकः स्थाने यण् स्यादचि संहितायां विषये। सुधी उपास्य इति स्थिते ॥

इक् के स्थान में यण् होता है, अच् पर, (बाद) में होने पर जहाँ सन्धि कार्य के विषय हो।

यह सूत्र यण् सन्धि अर्थात् इक् के स्थान में यण् आदेश का विधान करता है। अतः यह यण् आदेश - विधायक विधि सूत्र है। सभी सूत्र सभी स्थानों पर नहीं प्रयोग होते हैं। उनके कुछ नियम तथा शर्तें होती हैं। जो उनके नियम तथा शर्तों को पूरा करता है। जैसे- इक् के स्थान में यण् आदेश करने के लिए इको यणचि सूत्र ने, शर्त रखी है कि पूर्व में इक् प्रत्याहार का वर्ण हो, तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो, इक् प्रत्याहार वाले वर्णों के स्थान में यण् प्रत्याहार वाले वर्ण आदेश होगा। इक् प्रत्याहार में “ इ, उ, ऋ, लृ ” ये चार वर्ण आते हैं, और अच्

प्रत्याहार में “अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ औ ” ये वर्ण आते हैं, जिसके प्रयोग में अच् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो तो इक् के स्थान में यण् “य व र ल” ये वर्ण आदेश होते हैं। जैसे - सुधी + उपास्य में धी में जो ई है, वह इक् प्रत्याहार में आता है, और उपास्य का जो उकार है वह अच् प्रत्याहार में आता है और वह इक् के बाद में विद्यमान है, इसलिए इक् के स्थान में यण् प्रत्याहार का चारों वर्ण एक साथ प्राप्त हुए। जो भी आदेश होता है वह किसी वर्ण के स्थान पर आदेश होते हैं अर्थात् उसे हटाकर ही होते हैं। यहाँ ई के स्थान पर ई को हटाकर बैठना चाहते हैं। यहाँ पर संहिता का विषय भी है क्योंकि सुधी + उपास्य में परःसन्निकर्षः संहिता से संहिता संज्ञा हो चुकी है। धी का ईकार और उपास्य का उकार की अत्यन्त समीपता अर्थात् अत्यन्त सन्निधि है। अतः यह संहिता है। “शंका” अब यहाँ शंका होती है कि इक् प्रत्याहार का वर्ण यहाँ पर तीन है सु में उ, धी में ई, उपास्य में उ। अब किस इक् के स्थान में यण् हो इसको निर्णय करने के लिए अगला सूत्र उपस्थित होता है।

नियम कारक परिभाषा सूत्र

16. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य 1 | 1 | 66 ॥

सप्तमी निर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम् ॥

अर्थः- सप्तमी-विभक्ति के द्वारा निर्दिष्ट कार्य व्यवधान रहित पूर्व वर्ण के स्थान पर होता है।

व्यवधान :- दो के बीच में किसी अन्य का होना व्यवधान है।

अव्यवधान :- दो के बीच में किसी अन्य का न होना अव्यवधान है। यह सूत्र व्यवधान न हो ऐसा कहता है अर्थात् पर से पूर्व में व्यवधान न होने पर ही कार्य हो, ऐसा नियम बनाता है। जैसे- सुधी , उपास्यः (स् + उ = सु, ध् + ई = धी, उपास्य) यहाँ पर सु का उकार इक् है और उससे धी का इकार अच् पर में है, इसी तरह धी का इकार इक् है और उससे परे अच् है, उपास्यः का उकार और उपास्यः के उकार को इक् मानकर पर में अच् है पा का आकार। इस दशा में सु के उकार के स्थान पर यण् प्राप्त हो सकते हैं ऐसी परिस्थिति में एक प्रकार का अनियम हुआ, वह यह है कि धी के इकार को अच् परे मानकर सु में उकार के स्थान पर यण् किया जाय अथवा उपास्यः के उकार को अच् मानकर धी के इकार के स्थान पर यण् किया जाय अथवा पा के आकार को अच् पर मानकर उपास्य के उकार के स्थान पर यण् किया, अनियम होने पर नियम करने वाले सूत्र को परिभाषा सूत्र कहते हैं। सभी परिभाषा सूत्र अपनी-अपनी प्रवृत्ति के योग्य स्थलों को देखकर उन-उन विधि सूत्रों में उपस्थित होते हैं।

इस सूत्र ने यह विधान किया कि सप्तमी विभक्ति के द्वारा निर्दिष्ट जो शब्द या वर्ण उससे व्यवधान रहित पूर्व वर्ण के स्थान पर आदेश आदि कार्य करना चाहिए। अर्थात् पूर्व या पर के बीच में किसी अन्य वर्ण का व्यवधान नहीं होना चाहिए। यण् को विधान करने वाला सूत्र है इको यणचि। उसमें सप्तम्यन्त पद है-अचि। अच् के परे होने पर इक् के स्थान पर यण् होगा।

अच् और इक् के बीच में कोई अन्य वर्ण न हो तो, इसलिए यहाँ पर धी में ईकार और उपास्यः के उकार के बीच में किसी अन्य वर्ण का व्यवधान नहीं है। अतः यहाँ पर धी में ईकार के स्थान पर यण् प्राप्त है, सु में जो उकार है उस उकार के स्थान में यण् नहीं होगा क्योंकि पर में अच् नहीं है

और सु के इकार के बाद ध् वर्ण का व्यवधान है। इसलिए उकार के स्थान में यण् नहीं होगा। इसी प्रकार उपास्यः के उकार के स्थान में भी यण् नहीं होगा क्योंकि पर में अच् नहीं है, प् वर्ण का व्यवधान है।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सुधी + उपास्यः में इक् प्रत्याहार का वर्ण मात्र धी में ई एक है और यण् प्रत्याहार (य्, व्, र्, ल्) का वर्ण चार है। अब ई के स्थान में इन चारों वर्णों में से कौन सा वर्ण हो? इसके लिए अलग सूत्र आ रहा है।

नियम कारक परिभाषा सूत्र:-

17. स्थानेऽन्तरतमः 1 | 1 | 50 ॥

प्रसंगे सति सदृशतम् आदेशः स्यात् । सुध्य्+उपास्य इति जाते ॥

अर्थ- प्रसंग अर्थात् प्रसक्ति (प्राप्ति) होने पर अत्यन्त सदृश आदेश होता है।

एक के स्थान पर अनेक की प्राप्ति हो तो उनमें से स्थानी का अत्यन्त सदृश होगा और वही स्थानी के स्थान पर आदेश होगा। वर्णों की सदृशता (समानता) न तौल से की जाती है या न आकृति से की जा सकती है। इनकी समानता अर्थ, स्थान, प्रयत्न मात्रा की दृष्टि से देखी जा सकती हैं।

अब यहाँ सुधी में धी में जो ईकार है उसका स्थान है तालु (इचुयशानां -तालु ईकार चवर्ग- च, छ, ज, झ, ञ, य और श इन वर्णों का तालु स्थान है पहले संज्ञा प्रकरण में बताया गया है, पुनः आप को स्मरण कराया गया) और यण् में य् का तालु व का दन्त और ओष्ठ, र का मूर्धा, ल् का दन्त है, इसलिए यहाँ पर स्थानी रूपी जो इकार है उसका स्थान है तालु और यण् प्रत्याहार के चारों वर्णों में से य् का भी उच्चारण स्थान तालु है। अतः ईकार तथा यकार दोनों का उच्चारण स्थान एक है। व, र, ल, का उच्चारण स्थान भिन्न है। इसलिए इकार एवं यकार दोनों का उच्चारण स्थान एक होने से धी में ईकार के स्थान में यकार आदेश होकर सुध्य् + उपास्यः ऐसा बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त होता है।

द्वित्व विधायक विधि सूत्र

18. अनचि च 8 | 4 | 47 ॥

अचः परस्य यरो द्वे वा स्तो न त्वचि । इति धकारस्य द्वित्वम् । सुध्य् उपास्य इति जाते ॥

अर्थ :- अच् से परे जो यर् उसका विकल्प से द्वित्व होता है पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण न हो तो। यह सूत्र द्वित्व करता है एक वर्ण को दो कर देता है। यर् प्रत्याहार वाले वर्ण को द्वित्व करता है यर् के पूर्व में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो, किन्तु पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण न हो तो। हल् वर्ण पर हो या न हो। एक पक्ष में कार्य होना एक पक्ष में कार्य न होना उसी को विकल्प कहते हैं।

सुधी + उपास्यः में धी के ईकार के स्थान पर यण् होकर सुध्य् + उपास्यः जो बना है, उसके बाद अनचि च यह सूत्र लगता है। सुध्य् + उपास्यः में अच् है सु में उकार, उससे परे यर् प्रत्याहार का वर्ण है ध् उस धकार से परे अच् प्रत्याहार का कोई वर्ण नहीं है। क्योंकि यकार अच् प्रत्याहार में नहीं आता है। इसलिए यर् प्रत्याहार का जो वर्ण धकार है उसका विकल्प द्वित्व

होकर सु ध् ध् य् +उपास्यः बना और जिस पक्ष में द्वित्व नहीं होगा उस पक्ष में सु ध् य् + उपास्यः यही रहेगा। प्रत्याहार का ज्ञान करने के लिए आप को संज्ञा प्रकरण में जाना होगा। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त होता है।

जश्त्व विधान करने वाला विधि सूत्र

19. झलां जश् झशि 8 । 4 । 53 ॥

स्पष्टम् । इति पूर्वधकारस्य दकारः ॥

अर्थ- झश् प्रत्याहार के परे रहने पर झलों के स्थान में जश् प्रत्याहार का वर्ण होता है।

इस सूत्र से पूर्व धकार के स्थान पर दकार हो जाता है। इस सूत्र से झल् प्रत्याहार के स्थान पर जश् प्रत्याहार का वर्ण हो जाता है यदि पर में वर्ण के झश् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो। इसी कार्य को जश्त्व कहते हैं। सु ध् ध् य् \$ उपास्यः यहाँ पर झल् प्रत्याहार (झ, भ, घ, ढ, ध, ज, ब, ग, ड, द, ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स, ह) का वर्ण है ध् उसको जश् (ज, ब, ग, ड, द,) 'द' हुआ, क्योंकि धकार और दकार का स्थान दन्त (एक) है तथा पर में झश् प्रत्याहार का वर्ण धकार है इसलिए पूर्व धकार के स्थान में दकार होकर सुद्ध्यु \$ उपास्यः बना। इसके बाद अगला सूत्र प्रवृत्त हुआ।

लोप विधायक विधि सूत्र

20. संयोगान्तस्य लोपः 8 । 2 । 23 ॥

संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

अर्थ - संयोगान्त जो पद उसके अन्त का लोप होता है।

हलोऽनन्तराः संयोगः से जिनकी संयोग संज्ञा होती है यदि वह संयोग अन्त में हो ऐसा जो पद (पद संज्ञक शब्द) उसका लोप होता है। इस सूत्र के द्वारा सु ध् ध् य् +उपास्यः में अच् से रहित हल् वर्ण द् ध् य् या जिस पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ है सु ध् य् में ध् य् इन सबका एक साथ लोप प्राप्त होता है सु ध् य् में ध् य् इन सबका एक साथ लोप प्राप्त होता है किन्तु इन सबका एक साथ लोप होना ठीक नहीं है। इस प्रकार से जब सम्पूर्ण पद लोप हो जायेंगे तो शब्द ही कहाँ बचेंगे। इस अनियम को रोकने के लिए परिभाषा सूत्र उपस्थित होता है।

अन्त्य अल् आदेश परिभाषा सूत्र

21. अलोऽन्त्यस्य 1 । 1 । 52 ॥

षष्ठीनिर्दिष्टोऽन्त्यस्याल आदेशः स्यात् । इति यलोपे प्राप्ते - (यणः प्रतिषेधो वाच्यः।) सुद्ध्युपास्यः मद्ध्वरिः (धात्रंशः लाकृतिः)

अर्थ:- षष्ठी विभक्ति द्वारा निर्दिष्ट जिस पद के स्थान पर आदेश प्राप्त हो, वह आदेश अन्त्य अल् वर्ण के स्थान पर होता है।

सु ध् ध् य् + उपास्यः इस पद में लोप आदेश संयोगान्तस्य लोपः से प्राप्त है। इस सूत्र में षष्ठ्यन्त पद है संयोगान्तस्य उसके द्वारा निर्दिष्ट पद है सु ध् ध् य् । उसके स्थान पर प्राप्त आदेश है लोप । वह अलोऽन्त्यस्य इस सूत्र के नियम से अन्त्य अल् वर्ण सु ध् ध् य् में य का लोप प्राप्त है। अर्थात्

सु ध् य् में अन्तिम वर्ण य का लोप प्राप्त हुआ ।

इस लोप को रोकने के लिए कात्यायन मुनि का वार्तिक यणः प्रतिषेधो वाच्यः आया ।

वार्तिक - यणःप्रतिषेधो वाच्यः

अर्थ - यण् के लोप का निषेध कहना चाहिए ।

यणः प्रतिषेधो वाच्यः यह वार्तिक कहता है कि जहाँ पर यण् (य् वर् ल्) कार्य हुआ है। इसके लोप का निषेध कहना चाहिए अर्थात् अलोऽन्त्यस्य इस परिभाषा सूत्र के द्वारा जो सु ध् य् उपास्यः में अन्त्य अल् वर्ण यकार का जो लोप प्राप्त है। उसका लोप नहीं होगा । क्योंकि वह यकार सुधीः उपास्यः में धी में जो ईकार है उस ई के स्थान में जो यण् आदेश हुआ है उस यण् के यकार के लोप का निषेध होता है अर्थात् यकार का लोप नहीं होता है । (1) सु ध् य् उपास्यः, (2) सु ध् य् + उपास्यः जो रूप बना है वह ज्यों का त्यों रहता है । इसके बाद एक संस्कृत में नियम है अच् प्रत्याहार से रहित जो वर्ण है उसको एक में मिला देना चाहिए। (अज्झीनं परेण संयोज्यम्) यहाँ पर अर्चों से रहित वर्ण है। सु ध् य् + उपास्यः, सु ध् य् \$ उपास्यः, में ध् य्, ध् य् इनको क्रमशः मिला देना चाहिए। यथा द् में ध् मिल गया तो द्ध और य् में उपास्यः का उकार मिलकर यु, द्ध और यु मिलकर द्ध्युपास्यः एवं सु मिलकर सुद्ध्युपास्यः प्रयोग बनता है और जिस पक्ष में धकार को द्वित्व नहीं हुआ है। उस पक्ष में सुद्ध्युपास्यः प्रयोग सिद्ध होता है । संक्षिप्त रूप में सुद्ध्युपास्य रूप की सिद्धि करते हैं ।

सुधी + उपास्यः इस स्थिति में तस्मिन्नितिनिर्दिष्टे पूर्वस्यः स्थानेऽन्तरतमः इन दोनों सूत्रों की सहायता से इको यणचि इस सूत्र से धी में जो इकार है उस इकार के स्थान में यकार होकर सु ध् य् + उपास्य बना । इसके बाद अनचि च सूत्र से धकार को विकल्प से द्वित्व होकर सु ध् ध् य् + उपास्यः बना । जिस पक्ष में द्वित्व नहीं होगा, उस पक्ष में झलां जश् झशि, इस सूत्र के द्वारा पूर्व धकार को दकार होकर सु ध् य् + उपास्य बना । इसके बाद संयोगान्तस्य लोपः इस सूत्र से पुरे प्रयोग संयोग वर्ण द् ध् य्, ध् य् का लोप प्राप्त होता है । पुनः अलोऽन्त्यस्य इस सूत्र के द्वारा अन्त्य अल् वर्ण यकार का लोप प्राप्त होता है । उस यकार के लोप को बांधकर यणः प्रतिषेधोवाच्यः वार्तिक के द्वारा यकार का लोप का निषेध होकर सु ध् य् + उपास्यः ज्यों का त्यों रहा। उसके बाद अज्झीनं परेण संयोज्यम् इस नियम के द्वारा वर्ण सम्मेलन होकर सुद्ध्युपास्यः तथा जिस पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ है उस पक्ष में सुद्ध्युपास्यः ये दो रूप बनते हैं । इक् प्रत्याहार में चार वर्ण है (इ, उ, ऋ, लृ) इकार का उदाहरण सुद्ध्युपास्यः सुद्ध्युपास्य दिया गया । यण् सन्धि में उकार का उदाहरण देखिये:-

मधु + अरिः यहाँ पर इको यणचि सूत्र से इक् प्रत्याहार का वर्ण है । मधु में उकार पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है । अरिः में आकार । इसलिए तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की सहायता से इक् प्रत्याहार का जो वर्ण मधु में जो उकार है उसको यण् अर्थात् वकार होकर म् ध् व् + अरिः बना । क्योंकि उकार तथा वकार दोनों का स्थान एक है । इसके बाद अनचि च सूत्र से धकार को द्वित्व होकर म् ध् ध् व् + अरिः बना । झलां जश् झशि सूत्र से पूर्व धकार के स्थान में दकार होकर म् द् ध् व् + अरिः बना । संयोगान्तरस्य लोपः से संयोगान्त पद द्

ध् व् इन सबका लोप प्राप्त हुआ। इनको बांधकर अलोऽन्त्यस्य सूत्र से अन्त्य अल् वर्ण यकार का लोप प्राप्त होता है। पुनः यकार लोप को बांधकर यण्ः प्रतिषेधोवाच्यः इस वार्तिक के द्वारा यकार के लोप का निषेध होकर म द् ध् व् + अरिः ज्यौ का त्यौ बना रहा। उसके बाद अज्झीनं परेण संयोज्यम् इस नियम के द्वारा वर्ण सम्मेलन होकर मध्वारिः प्रयोग बनता है और जिस पक्ष में अनचि च सूत्र से द्वित्व होता है, उस पक्ष में मध्वारिः ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है। मध्वारिः प्रयोग संक्षेपरूप से समझाया गया है। इसका प्रयोग सुद्ध्युपास्यः के समान होता है। केवल मात्र इतना अन्तर होता है कि सुद्ध्युपास्य इकार के स्थान में यकार होता है। मध्वारिः में उकार के स्थान में वकार होता है। इसलिए सुद्ध्युपास्यः के प्रयोग को समझना अथवा याद करना अत्यन्त आवश्यक है।

इक् प्रत्याहार के चार वर्णों में से इकार उकार का उदाहरण हो गया है आगे ऋकार का उदाहरण देखिये:-

धात्रंश - धातृ + अंशः यहाँ पर स्थानेऽन्तरतमः इस सूत्र की सहायता से इको यणचि इस सूत्र से (धातृ में जो तृ में ऋकार है उस ऋकार के स्थान में र यण् होता है क्योंकि पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है अंशः का अकार) इसलिए ऋ के स्थान में र यण् होकर धा तृ र् + अंशः बना। अनचि च सूत्र से तकार को द्वित्व होकर धा तृ र् + अंशः बना। यहाँ पर झलां जश् झशि यह सूत्र नहीं लगेगा। क्योंकि झश् प्रत्याहार का वर्ण पर में नहीं है। संयोगान्तस्य लोपः इस सूत्र से तृ तृ र् इन तीनों वर्णों का लोप प्राप्त हुआ। उसको रोककर अलोऽन्त्यस्य सूत्र से धा तृ र् का लोप प्राप्त हुआ। पुनः यणः प्रतिषेधो वाच्यः इस वार्तिक के द्वारा र के लोप का निषेध हुआ। धा तृ र् + अंशः ज्यौ का त्यौ बना रहा। उसके बाद अज्झीनं परेण संयोज्यम् इस नियम के आधार पर वर्ण सम्मेलन होकर धात्रंशः सिद्ध होता है और जिस पक्ष में अनचि च से द्वित्व नहीं होगा। उस पक्ष में धात्रंशः प्रयोग बनता है। इस बात का ध्यान देना है कि जिस प्रकार सुद्ध्युपास्यः प्रयोग बनता है। इसी प्रकार धात्रंशः प्रयोग बनता है केवन अन्तर इतना होता है कि वहाँ पर इकार के स्थान में यण् यकार हुआ है। यहाँ पर ऋकार के स्थान में यण् रकार होता है।

लाकृतिः लृ + **आकृतिः** यहाँ पर तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा स्थानेऽन्तरतमः इन दोनों सूत्रों की सहायता से इको यणचि इस सूत्र से (इक प्रत्याहार का वर्ण है लृ पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है, आकृतिः का आकार इस लिए लृ के स्थान में ल् वर्ण होता है क्योंकि लृ और ल् इन दोनों वर्णों का स्थान दन्त (एक) है) लृ के स्थान में ल् होकर ल् + आकृतिः बना। अब यहाँ अनचि च, झलां जश् झशि, संयोगान्तस्य लोपः, अलोऽन्त्यस्य, यणः प्रतिषेधोवाच्यः ये सूत्र नहीं लगेगे। वर्ण सम्मेलन होकर लाकृतिः प्रयोग सिद्ध होता है।

यण् सन्धि कहाँ होती है इसकी विशेष प्रकार की व्याख्या की गयी है। किन्तु सामान्य नियम यह है कि जैसे सुधी + उपास्यः यहाँ पर केवल इतना मात्र बताना है कि इसमें कौनसी सन्धि हुई? इसका उत्तर यह है कि इसमें इको यणचि से यण् सन्धि होकर सु ध् य् + उपास्यः बना तथा वर्ण सम्मेलन होकर सुध्युपास्यः प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ किसी सूत्र की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार जैसे इत्यादि शब्द है। इसका विग्रह है इति + आदि है इक् प्रत्याहार का वर्ण है। इति में

ति में इ पर ये अच् प्रत्याहार का वर्ण है आदि का आकार इसलिए इकार के स्थान में इको यणचि से यण् यकार होकर इ त् य + आदि बनता है।

यदि + अत्र	य द् य् + अत्र	यद्यत्र
गति + इत्यादि	ग त् य् + इत्यादि	गत्यादि
पति + आदि	प त् य् + आदि	पत्यादि
नदि + आदि	न द् य् + आदि	नद्यादि

वर्ण सम्मेलन होकर इत्यादि प्रयोग सिद्ध होता है। अब यहाँ किसी अन्य सूत्र का प्रयोग नहीं करेंगे तब भी काम चल सकता है। इसी प्रकार यण् सन्धि में यकार का अन्य उदाहरण भी दिये जा रहे हैं। यण् सन्धि में यकार का उदाहरण इन शब्दों का आप विग्रह करें:-

यद्यत्र		
गत्यादि	पत्योः	हर्यो
पत्यादि	नद्याम्	इत्याचरति
नद्यादि	यद्यपि	कप्यायात
यद्यत्र	प्रत्येकम्	कप्यानय
मत्यत्र	करोम्यहम्	दध्योदन
कत्यादि	कौमुद्यायाति	अभ्युदय
नद्यत्र	दध्यानय	इत्यपि
गत्यत्र	अस्त्यनुरागः	कव्यपि
सत्यादि	ह्यम्	सत्यपि
मत्यादि	अस्त्यात्मा	नद्यपि

यण् सन्धि में यकार का उदाहरण एवं उनकी सन्धि करें।

कान्ति + आभा
 दधि + आदेन
 जननि + आह
 अभि + उदयः
 गति + उदयः
 कान्ति + अस्ति
 नादि + आवहति
 इति + आह
 यदि + अयम्
 हरि + आगतः

यण् सन्धि में उकार का उदाहरण एवं सामान्य नियम्

मधु + अरिः यहाँ पर इक् प्रत्याहार का वर्ण है पर में मधुः का उकार और अच् प्रत्याहार का वर्ण है पर में अरिः का अकार। इसलिए पर में अच् प्रत्याहार होने के कारण मधु में धु में जो उकार है

उसको इको यणचि सूत्र से उकार को यण् वकार होकर म ध् व् +अरिः बना । अब यहाँ पर तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा स्थानेऽन्तरतमः सूत्र का प्रयोग नहीं करेगे तब भी कोई हानी नहीं है। क्योंकि कहीं भी प्रश्न आता है तो यही प्रश्न आता है कि मध्वरिः में कौन सी सन्धि होगी ? हम उत्तर देते है कि यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण सन्धि हुई है । अन्य कोई सूत्र की आवश्यकता नहीं होती है । उकार का अन्य उदाहरण भी देखिये :-

मनु +आगच्छति यहाँ पर इक् प्रत्याहार का वर्ण है मनु में नु में उकार, पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है आगच्छति का आकार, इसलिए उकार के स्थान में यण् व वर्ण आदेश होता है, क्योंकि दोनों का स्थान एक है म न् व् + आगच्छति बना । वर्ण सम्मेलन होकर मन्वादि प्रयोग सिद्ध होता है। ऐसे ही अन्य उदाहरण सिद्ध किये जाते है । इसी नियम को सामान्य नियम कहते हैं।

उकार का उदाहरण एवं उसका विग्रह करें:- सामान्य नियम कहते है क्योंकि अन्य बाहर कही भी आप परीक्षा देने जाते है तो यही पूछा जाता है कि किस सूत्र से कौनसी सन्धि हुई है। इसलिए व्याख्या के साथ सामान्य ज्ञान कर ले तो भी काम चल सकता है ।

ऋकार का उदाहरण एवं उनका विग्रह करें:-

पित्रागतः	भत्रादेशः
मात्रा	मात्रादेशः
भ्रात्रागच्छति	दुहित्रादेशः
मात्राज्ञा	यात्रागतः
पित्रधीनम्	सवित्रागच्छति
पित्रनुरोधम्	धात्रनुरोधम्

यण् सन्धि में ऋकार का उदाहरण एवं उनका विग्रह करें:-

मातृ + आ	भातृ + उक्त
नृ + आत्मज	नृ + आ
पातृ + एतत्	यातृ + आगतः
भातृ + आशाः	यामातृ + आगतः
दुहितृ + ईशः	
धातृ + आदेशः	
मातृ + आदेशः	
भातृ + अनुरोधः	
पितृ + अनुरोधः	
पितृः अंशः	
मातृ + अर्चा	

यण् सन्धि में लृकार का उदाहरण बहुत कम प्राप्त होता है । लृकार का उदाहरण:-

लाकृतिः	लृ + आकृतिः
लाकरः	लृ + आकरः

लाकरोत्

लृ + आकरोत्

इस प्रकार अच् सन्धि में यण् सन्धि का सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है उसको आप समझें।

सन्धि करें

भू+आदि	भ् + व् + आदि
पु+आदि	प् + व् +आदि
गुरू +आज्ञा	गुर् + व् + आज्ञा
खलु + एहि	खल् + व +एहि
खुल +एतत्	खल् + व् + एतत्
चारू + अगडी	चार् + व् +अगडी
वधु + आनय	वध् + व् + आनय
कुरू +इदम्	कुर् + व् + इदम्
वृणु + इदम्	शृण्+ व् +इदत्
मधु + इदम्	मध् + व् + इदम्
वटु+अयम्	वट् + व् +अयम्
वधु + इयम्	वध् + व् + अयम्
विभु +अयम्	विभ् + व् + अयम्

विग्रह करें**सन्धि**

अन् व् +आदेशः
 शिश् व् + अण्डः
 मन् व् + आदेशः
 मध् व् + अक्षत
 वस्त् व् + अस्ति
 वृक्षष् व् + अभिलाषः
 मनव् + आदि
 देवेषु व् + आसीत्
 वस्त् व् + इदम्
 शत्रु व् + इत्यादि

आदेश**आदेश**

अन्वादेशः
 शिश्चण्डः
 मन्वादेशः
 मध्वक्षतः
 वस्त्वस्ति
 वृक्ष्वभिलाषः
 मन्वादि
 देवेष्वसीत्
 वस्विदम्
 शत्रवित्यादि

सन्धि करें**विग्रह**

पितृ +आगतः	पत् र् + आगतः
मातृ +आ	मात् र् + आ
भातृ + आगच्छति	भात् र् +आगच्छति
मातृ +आज्ञा	मात् र् +आज्ञा
पितृ + अधीनम्	पित् र् +अधीनम्

पितृ + अनुरोधम्	पितृ र् + अनुरोधम्
भर्तृ + आदेशः	भर्तृ र् + आदेशः
दृहितृ + आदेशः	दुहितृ र् + आदेशः
यातृ + आगतः	यातृ र् + आगतः
सवितृ + आगच्छति	सवितृ र् + आगच्छति
धातृ + अनुरोधः	धातृ र् + अनुरोधः
विग्रह करें	आदेश
त्र् + आत्मज	त्रात्मज
पातृ र् + एतत्	पात्रेतत्
भातृ र् + आशा	भात्राशा
दृहितृ र् + ईशः	दुहितृ र् + ईशः
धातृ र् + आदेशः	धात्राः
मातृ र् + आदेशः	मात्रादेशः
भ्रातृ र् + अनुरोधः	भात्रानुरोधः
पितृ र् + अंशः	पित्रंशः
मातृ र् + अर्चा	मात्रार्चा
भातृ र् + उक्तः	भात्रुक्तः
नर् + आ	त्रा
यातृ र् + आगतः	यात्रागतः
यायातृ + आगतः	यामात्रागतः
विग्रह	आदेश
यदि + अत्र	यद् य् + अत्र
गति + इत्यादि	गत् य् + इत्यादि
नदि + आदि	नद् य् + आदि
यदि + अत्र	यद् य् + अत्र
मति + अत्र	मत् य् + अत्र
कति + आदि	कत् य् + अत्र
नदि + अत्र	नद् य् + अत्र
गति + अत्र	गत् य् + अत्र
सति + अत्र	सत् य् + अत्र
मति + आदि	मत् य् + आदि
पति + ओः	पत् य् + ओः
नदी + आम्	नद् य् + आम्
यदि + अपि	यद् य् + अपि

सन्धि करें

सन्धि करें

प्रति +एकम्	प्रत् य् + एकम्	
करोमि +अहम्	करोम् य् +अहम्	
कौमुदी + आयति	कौमुद् य् + आयति	
दधि + आनय	दध् य् +आनय	
अस्ति + अनुरागः	अस्त् य् + अनुरागः	
ही +अयम्	ह् य् + अयम्	
अस्ति + आत्मा	अस्त् य् + आत्मा	
हरि + ओः	हर् य् + ओः	
इति: +आचरति	हर् य् + आचरति	
कवि + आयाति	कव् य् + आयाति	
कपि + आनय	कप् य् + आनय	
दधि +ओदन	दध् य् +आदेन	
अभि + उदय	अभ् य् + उदय	
इति + अपि	इत् य् + अपि	
सति + अपि	सत् य् + अपि	
नदी +अपि	नद् य् + अपि	
विग्रह करे	आदेश	सन्धि
कान्त्य् + आत्मा	कान्त्यात्मा	
जनन् य् + आह	जनन्याह	
गत् य् + उदय	गत्युदय	
कान्त्य् + अस्ति	कान्त्यस्ति	
नद् य् + आवहति	नद्यावहति	
इत् य् + आह	इत्याह	
पद् य् + अयम्	पद्ययम्	
हर य् + आगतः	हर्यागतः	
विग्रह	आदेश	सन्धि
अपि + एतत्	अप य् + एतत्	अप्येतत्
दधि + आशन्	दध् य् + आशन्	दध्याशन्
अपि + आसीत्	अप् य् + आसीत्	अप्यासीत्
अति + उत्तमः	अत् य् +उत्तमः	अत्युत्तमः
नदी + उत्तमा	नद् य् + उत्तमा	नद्युत्तमा
कामिनी + उदय	कामिन् य् + उदय	कामिन्युदय
जननी + आगच्छति	जनन् य् +आगच्छति	जनन्यागच्छति
पति + अयम्	पत् य् + अयम्	पत्ययम्

मति + अयम्	मत् य् + अयम्	मत्ययम्
कवि + अयम्	कव् य् + अयम्	कव्ययम्
कपि + अयम्	कप् य् + अयम्	कप्ययम्
कान्ति + आभा	कान्त् य् + आभा	कान्त्याभा
हरी + आगच्छतः	हर् य् + आगच्छतः	हर्यागच्छतः
रवि + अयम्	रव् य् + अयम्	रव्ययम्
कपिः एकः	कप् य् + एकः	कप्येकः
नदी + एका	नद् य् + एका	नद्येका
गौरी + एका	गौर् य् + एका	गौर्येका
पार्वती + अपि	पार्वत् य् + अपि	पार्वत्यपि

अभ्यास प्रश्न -

लघु उत्तरीय -

1. सन्धि किसे कहते है ।
2. मुख्य रूप से सन्धि कितने प्रकार की होती है ।
3. इस इकाई में कितने सन्धियों का वर्णन किया गया है ।
4. इक् के स्थान में यण् आदेश किस सूत्र से हुआ है ।
5. स्थान का सादृश्य किस सूत्र से देखा जाता है ।
6. अनचि च सूत्र किस प्रत्याहार को द्वित्व होता है ।
7. झलां जश झशि सूत्र से किसका जश्त्व होता है ।
8. यणः प्रतिषेधोवाच्यः इस वार्तिक के द्वारा किस वर्ण वर्ण के लोप का निषेध करता है ।

बहु विकल्पीय प्रश्न -

1. यण् प्रत्याहार में कितने वर्ण होते है ।
क. पाँच ख. चार ग. तीन घ. दो
2. इक् प्रत्याहार में कितने वर्ण है -
क. छः ख. सात ग. आठ घ. चार

3.4 सारांश

अच् सन्धि में दो शब्द है- 1- अच् 2- सन्धि । सबसे पहले अच् के बारे में बताया गया है । अच् एक प्रत्याहार है, जिसके अन्दर अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ ये वर्ण आते हैं । जो ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त स्वरित, अनुनासिक, अननुनासिक इन सभी भेदों के साथ यहा ग्रहण किये गये है । ऐसे अच् अर्थात् स्वरों की सन्धि की गयी है। सन्धि का अर्थ है-जोड़ अर्थात् वर्णों का मेल । वर्ण दो प्रकार के है एक-स्वर तथा दूसरा-व्यंजन। यहाँ स्वर सन्धि के विषय में वर्णन किया गया है । पहले और बाद में अर्थात् आदि तथा अन्त में दोनों वर्ण स्वर (अच्) हो तो वहाँ पर स्वर सन्धि होती है अर्थात् उसे अच् सन्धि कहते हैं। इसी प्रकार जहाँ दो हल वर्णों अर्थात् व्यंजन वर्णों का मेल होता है उसे हल् सन्धि कहते हैं, किन्तु कहीं-कहीं पूर्व में हल वर्ण हो और

पर बने स्वर वर्ण हो तो वहाँ पर भी सन्धियाँ होती हैं। विसर्ग को लेकर होने वाली सन्धि को विसर्ग सन्धि कहते हैं। इस प्रकार हलों को लेकर होने वाली सन्धि को हल् सन्धि कहते हैं। और अचों की सन्धि को अच् सन्धि कहते हैं। वर्णों के मेल से सन्धि हो जाने के बाद दो शब्दों को प्रायः एक में मिला दिया जाता है अर्थात् दोनों शब्द एक शब्द हो जाते हैं उसको सन्धि कहते हैं।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
सुद्ध्युपास्यः	विद्वानों
गत्यादि	गति आदि
पत्यादि	पति आदि
नद्यादि	नदी आदि
यद्यत्र	जो यहाँ
मत्यत्र	मति यहाँ
कत्यादि	कितना आदि
नद्यत्र	नदी यहाँ है
नद्याम्	नदी में
यद्यपि	जो भी
प्रत्येकम्	प्रति एक
करोम्यहम्	मैं करता हूँ
कौमुद्यायाति	कौमुदी आ रही है
दध्यानय	दधि लाओ
अस्त्यनुराग	अनुराग है
अस्त्यात्मा	आत्मा है
इत्याचरति	ऐसा आचरण करता है।
कव्यायाति	कवि आ रहा है।
दध्योदन	दही और ओदन
इत्यपि	ऐसा भी
कव्यपि	कवि भी
नद्यपि	नदी भी
हर्यागतः	हरि आया
अप्येतत्	यह भी
दध्यासन	दही, आसन
अत्युत्तमः	अत्यन्त उत्तम
नद्युन्तमा	नदी उत्तम

जनन्यागच्छति	माता आ रही है
पत्ययम्	यह पति है
मत्ययम्	यह बुद्धि है
कव्ययम्	यह कवि है
कप्ययम्	यह बन्दर है
हर्यागच्छतः	दो हरि आ रहे है
रव्ययम्	यह सूर्य है
कप्येकः	एक बन्दर है
नद्येका	एक नदी
गौर्येका	एक गौरी
पार्वत्यति	पार्वती भी
मध्वरिः	मधुनामक दैत्य के शत्रु
धात्रंशः	ब्रह्मा का भाग
लाकृतिः	श्री कृष्ण

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अति लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. दो वर्णों के मेल को
2. पांच
3. एक
4. इको यणचि
5. स्थानेऽन्तरतमः
6. यर्
7. झल्
8. यण् प्रत्याहार वाले वर्ण को
9. धात्रंश

बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)

3.7 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी - डॉ महेश्वर सिंह कुशवाहा
2. सिद्धान्तकौमुदी - डॉ रविनाथ मिश्र

3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इको यणचि सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या करें?
2. सुधीउपास्यः प्रयोग की विस्तारपूर्वक सिद्धि कीजिये ।
3. धात्रंशः शब्द की सूत्रोल्लेख पूर्वक सिद्धि कीजिये ।
4. द्वित्व विधायक विधि सूत्र को उदाहरण सहित परिभाषित कीजिये ।

इकाई 4: एचोऽयवायावः सूत्र से पूर्वत्राऽसिद्धम् सूत्र तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 एचोऽयवायावः से पूर्वत्राऽसिद्धम् तक

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 उपयोगी पुस्तकें

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आप बता सकते हैं कि सन्धि किसे कहते हैं और यण् आदि सन्धियों के विधान में किन - किन सूत्रों का प्रमुख योगदान है। प्रस्तुत इकाई में अयादि सन्धि और गुण सन्धि आदि के सूत्रों का उल्लेख करते हुए व्याख्या पूर्वक उनसे सम्बद्ध प्रयोगों को आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किया गया है।

अच् प्रत्याहार का वर्ण यदि एच् प्रत्याहार के बाद आता है तो उसके स्थान में क्रमशः अय्, अव्, आय्, और आव् हो जाते हैं ऐसा एचोऽयवायावः सूत्र का नियम है। जिससे हरये, विष्णवे, नायकः, पावकः आदि शब्दों की सिद्धियों की जाती है। इसी प्रकार इस इकाई में गुण संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र और गुण संज्ञा करने वाला तथा इत् संज्ञा में प्रयुक्त सूत्रों की परिभाषायें उदाहरण सहित इस इकाई में वर्णित हैं।

अतः इस इकाई का अध्ययन कर लेने पर आप अच् सन्धि के विभिन्न प्रयोगों की सिद्धि करने में सक्षम हो सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

- अयादि सन्धि के विषय में आप भली-भांति परिचित होंगे।
- एचोऽयवायावः सूत्र को परिभाषित करेंगे।
- वान्तोयिप्रत्यये सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या करेंगे।
- गुण आदेश सूत्र को उदाहरण सहित बतायेंगे।
- गुण संज्ञा विधायक सूत्र को परिभाषित कर सकेंगे।
- लोपः शाकल्यस्य इस सूत्र के विधान को समझा सकेंगे।

4.3 अयादेश विधायक विधि सूत्र

22 एचोऽयवायावः 6।1।78 ॥

एचः क्रमादय् अव् आय् आव् एते स्युरचि ॥

अर्थ - अच् प्रत्याहार का वर्ण एच् प्रत्याहार के बाद में हो तो एच् के स्थान में क्रमशः अय् अव्, आय्, आव् आदेश होते हैं।

एच् प्रत्याहार के अन्तर्गत ए, ओ, ऐ, औ, ये चार वर्ण आते हैं। इनके स्थान में क्रमशः अय् अव् आय् आव् अर्थात् ए = आय्, ओ = अव्, ऐ = आय्, औ = आव् आदेश होते हैं। पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो जैसे - हरये - इसका विग्रह हुआ हरे + ए। यहाँ एच् प्रत्याहार का वर्ण है हरे में र में ए और पर (बाद) में अच् प्रत्याहार का वर्ण है ए केवल ए। ऐसी स्थिति में इस सूत्र

से हरे में र में ए के स्थान पर अय्, अय् आय् और आव् ये चारों आदेश एक साथ प्राप्त हुये अतः इस प्रकार यह अनियम हुआ। इस अनियम को रोकने के लिए अगला सूत्र प्रवृत्त हुआ।

नियम विधायक परिभाषा सूत्र

23. यथासंख्यमनुदेशः समानाम् 1 | 3 | 10 ॥

समसम्बन्धी विधिर्यथासंख्यं स्यात् । हरये । विष्णवे । नायकः पावकः ॥

अर्थ - समान संख्या वाली विधि क्रम से होती है। एचोऽयवायावः सूत्र द्वारा कहा गया अय् अय् आय् आव् यह आदेश रूप जो विधि है वह समान विधि है ? क्योंकि एच् (ए ओ ऐ औ) भी चार है और अय् अय् आय् आव् ये आदेश भी चार है यथासंख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा सूत्र के द्वारा यह विधि बारी-2 अर्थात् पहले को पहला ए = अय् दूसरे को दूसरा औ = अय् , तीसरे को तीसरा ऐ = आय् चौथे को चौथा औ = आव् आदेश होगा।

इस प्रकार से हरे + ए में स्थानी रे में ए है और वह पहला है, अतः आदेश में पहला अय् आदेश होगा। र में ए के स्थान पर अय् आदेश होकर हर् + अय् + ए बना। अब यहाँ अच से रहित वर्ण अकेले नहीं बैठते किसी न किसी वर्ण के सहारे की आवश्यकता होती है वे अपने से बाद वाले वर्ण से मिलकर बैठते हैं। हर् वाला वर्ण र् अलगे वाला वर्ण अय् के अकार से मिलकर हरय् बना। हरय् वाला य् वर्ण अलगे ए से मिलकर हरये प्रयोग सिद्ध होता है।

अयादि सन्धि में ओ का उदाहरण

विष्णवे - विष्णो + ए यहाँ पर एच् प्रत्याहार का वर्ण है। विष्णो में णो में ओ और पर में अच् (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) प्रत्याहार का वर्ण है केवल ए। इस स्थिति में इस सूत्र से विष्णो में णों में ओ के स्थान पर अय् अय् आय् आव् ये चारों आदेश एक साथ प्राप्त हो गये। स्थान एक है और आदेश चार है। यह संभव नहीं है इसलिए इस नियम को रोकने के लिए यथा संख्यमनुदेशः समानाम् यह परिभाषा सूत्र नियम बनाता है कि ए= अय्, ओ = अय्, ऐ = आय् और औ के स्थान पर में आव् आदेश होता है। विष्णो + ए यहाँ पर ओ के स्थान में अय् आदेश होकर विष्णू + अय् + ए बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णवे प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार नायकः पावकः प्रयोग बनते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि पूरी प्रक्रिया हरये के समान होती है विग्रह और आदेश में भिन्नता होती है।

नायकः - नै + अकः यहाँ पर यथा संख्यमनुदेशः समानाम् इस परिभाषा सूत्र की सहायता से एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा नै में जो ऐ है उस ऐ के स्थान में अर्थात् तीसरा स्थान में तीसरा आदेश आय् होता है क्योंकि अच् प्रत्याहार का वर्ण अकः का अकार पर में है। न् + आय् + अकः बना। वर्ण सम्मेलन होकर नायकः प्रयोग सिद्ध होता है।

पावक पौ + अकः यहाँ पर यथा संख्यमनुदेशः समानाम् सूत्र की सहायता से एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा पौ में जो औ है। उस औ के स्थान में चौथा स्थानी के स्थान पर चौथा आदेश आव् होता है क्योंकि पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है अकः का अकार।

प् + आव् + अकः बना। हरये के समान वर्ण सम्मेलन होकर पावकः प्रयोग सिद्ध होता है।

अयादि सन्धि में इस सूत्र का अन्य उदाहरण विग्रह करें:-

विग्रह	आदेश	सन्धि
भौ + उकः	भ् + आव् उकः	भावुक
चै + अनम्	च् + अय् + अनम्	चयनम्
गै + अन्	ग् + आय् + अनः	गायनः
पो + अनः	प् + अय् + अनः	पवनः
भो + अति	भ् + अय् + अति	भवति
ने + अति	न् + अय् + अति	नयति
शे + अनम्	श् + अय् + अनम्	शयनम्
असौ + अयम्	अस् + आव् + अयम्	असावयम्
चोरे + अति	चोर् + अय् + अति	चोरयति
लो + अनम्	ल् + अय् + अनम्	लवनम्
बालिके + अत्र	बालिक् + अय् + अत्र	बालिकयत्र
असे + ए	अस् + अय् + ए	असये
पशो + ए	पश् + अय् + ए	पशवे
गुरो + अः	गुर् + अय् + अः	गुरवः
साधो + ए	साध् + अय् + ए	साधवे
चे + अः	च् + अय् + अः	चयः
पो + इत्रम्	प् + अय् + इत्रम्	पवित्रम्
वटा + ऋक्ष	वट् + अय् + ऋक्ष	वटवृक्षः
भो + अनम्	भ् + अय् + अनम्	भवनम्
रवौ + इव	रव् + आव् + इव	रवाविव
वागथौ + इव	वागर्थ + आव् + इव	वागर्थाविव
करौ + एतौ	कर् + आव् + एतौ	करावेतौ
कवे + ए	कव् + अय् + ए	कवये

अवादेश विधायक विधि सूत्र

24 वान्तो यि प्रत्यये 6 । 1 । 79।

यकारादौ प्रत्यये परे ओदौतोरव् आव् एतौ स्तः । गव्यम् । नाव्यम् । (अध्वपरिमाणे च) गव्यूतिः।

अर्थ - यकार हो जिसके आदि में ऐसा प्रत्यय पर (बाद) में हो तो, ओ के स्थान में अय् और औ के स्थान में आव् आदेश होता है । इस सूत्र में भी यथा संख्यनुदेशः समानाम् सूत्र की आवश्यकता पड़ती है। इससे स्थानी में प्रथम ओ के स्थान पर प्रथम अय् आदेश होता है और द्वितीय औ के स्थान पर द्वितीय आव् आदेश होता है ।

गव्यम् - गो + यम् यहाँ पर यकारादि प्रत्यय पर में यम् का यकार होने के कारण गो में जो ओ है

उस ओ के स्थान पर इस सूत्र से अच् आदेश होकर ग् + अच् + यच् बना । उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर गव्यच् प्रयोग सिद्ध होता है।

नाव्यच् - नौ + यच् यहाँ पर यकरादि प्रत्यय पर में यच् का यकार परे होने के कारण वान्तोयियत्यये इस सूत्र से औ के स्थान पर आच् आदेश होकर न् + आच् + यच् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर नाव्यच् प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्तिक - गो शब्द के बाद 'यूति' शब्द पर में हो तो गो के ओ के स्थान में अच् आदेश होता है। यदि यूति शब्द का अर्थ मार्गवाची परिभाषा (माप) अर्थ वाचक हो तो ।

गव्यूति :- गो + यूति यहाँ पर गो शब्द के बाद यूति शब्द परे होने के कारण गो में जो ओकार है उसको अच् आदेश होकर ग् + अच् + यूति बना । वर्ण सम्मेलन होकर गव्यूति: प्रयोग सिद्ध होता है ।

गो + यच्	ग् + अच् + यच्	गव्यच्
नौ + यच्	न् + आच् + यच्	नाव्यच्
गो + यूति	ग् + अच् + यूति	गव्यूति
शंको + यः	शंक् + अच् + यः	शंकव्यः

गुण संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

25. अदेङ् गुणः 1 | 1 | 2 ॥

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ॥

अर्थ - ह्रस्व अकार और एङ्. ये गुण संज्ञक होते है। अतः अ, ए, ओ, इन तीन वर्णों की गुण संज्ञा होती है ।

नियम सूत्र:-

26. तपरस्तत्कालस्य 1 | 1 | 70 ॥

तः परो यस्मात्स च तात्परश्चोच्चार्यमाणः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् ॥ त् जिसके पर (बाद में) है और त से जो परे है वह जो (अण्) अपने समकाल का ही बोधक होता है। अर्थात् ह्रस्व वर्ण के साथ त पर में हो तो वह मात्र ह्रस्व अकार का बोधक होगा । यदि दीर्घ के साथ त् पर में होगा तो दीर्घ मात्र वर्ण का बोधक होगा । ह्रस्व वर्ण का बोधक नहीं होगा क्योंकि सभी स्वर अपने सवर्णों का ग्रहण करते है जैसे अ से आ, आ3 अर्थात् दीर्घ प्लुत का भी ग्रहण कराने वाला होता है। किन्तु त पर अर्थात् जिस स्वर के बाद त् पढ़ा गया हो तो वह अपने समयकाल अर्थात् त् के पूर्व में जो अ वर्ण है उसी का ज्ञान कराता है जैसे अदेङ् गुणः में अत् और एङ्. पढ़ा गया है यहां अत् में त पर में है अ केवल एक मात्रिक अकार का बोधक होगा। उसी प्रकार एङ् पढ़ा गया है, यहां अत् में त पर में अ केवल एक मात्रिक अकार का बोधक होगा । उसी प्रकार एङ् (ए ओ) को बोधक होगा अन्य अपने सवर्णों का बोधक नहीं होगा । अब यह निश्चित हो गया कि गुणसंज्ञक वर्ण अ, ए, ओ, तीन ही मात्र होंगे । अपने सवर्णों का ग्राहक नहीं होंगे । इस

सूत्र का प्रयोजन क्या है अगले सूत्र में बताया जा रहा है।

गुण संज्ञा विधायक विधि सूत्र

27 .आद्गुणः 6 | 1 | 69 ||

अवर्णादचि परे पूर्वपरयोरेको गुण आदेशः स्यात् । उपेन्द्रः । गंडोदकम् ।

अर्थ - अवर्ण से अच् परे होने पर पूर्व और पर के स्थान में गुण रूप एक आदेश होता है।

इस सूत्र के लगने के बाद एक शंका उत्पन्न होती है कि पूर्व और पर में दो ही वर्ण होते हैं और दोनों वर्णों के स्थान पर एक वर्ण आदेश के रूप में होना चाहिए किन्तु गुण संज्ञक वर्ण जो अ ए ओ तीन हैं, इन तीनों वर्णों की प्राप्ति एक साथ हो रही है। इस अनियम को दूर करने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की आवश्यकता होती है इस सूत्र के द्वारा स्थान साम्यता अर्थात् स्थानी और आदेश को लेकर तुल्यता देखी जाती है। स्थान और आदेश दोनों वर्णों का स्थान एक हो तो उस स्थानी के स्थान पर वह आदेश होता है।

उपेन्द्रः - 'उप' + इन्द्र में आदगुणः सूत्र लगा। अवर्ण है उप में प के बाद वाला अकार और अच् प्रत्याहार का वर्ण है पर में इन्द्र का इ पूर्व में अकार और पर में इकार इन दोनों वर्णों के स्थान पर गुण संज्ञक वर्ण अ, ए, ओ, ये तीनों वर्ण उपस्थित होते हैं अ और इ इन दोनों के स्थान पर गुण संज्ञक तीनों वर्णों में से किसी एक ही वर्ण होना चाहिए। किन्तु इन तीनों वर्णों में से कौनसा वर्ण आदेश के रूप में हो? यह निश्चित नहीं हो पाया। इसलिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र की सहायता से उप में प में अ तथा इन्द्र का इ, अ और इ इन दोनों वर्णों के स्थान पर गुण संज्ञक अ, ए, औ तीनों वर्णों में से एक की प्राप्ति होगी। इन तीनों वर्णों में से सबसे सन्निकट वर्ण ए है। ए का स्थान कण्ठ और तालु है और अ का स्थान काण्ठ है तथा इ का स्थान तालु है। इसलिए अ + इ इन दोनों वर्णों का स्थान में ए होकर उप् + अ + न्द्रः, अ + इ = इन दोनों के स्थान में ए हो गया, उप् + ए + न्द्रः बना। अब वर्ण सम्मेलन होकर उपेन्द्रः प्रयोग सिद्ध होता है। जहाँ भी संसार में अ वर्ण के बाद इ वर्ण होगा वहाँ पर ए अवश्य होगा और उस सन्धि को गुण सन्धि कहते हैं। गुण सन्धि के तीन वर्ण हैं अ, ए, ओ, आपने ए का उदाहरण पढ़ लिया अब इसके बाद ओ का उदाहरण दिया जा रहा है।

गंगोदकम् - गंगा + उदकम् यहाँ पर सभी प्रक्रिया उपेन्द्रः के समान होगा अन्तर केवल इतना होगा कि वहाँ पर अ और इ मिलकर ए गुण संज्ञक वर्ण हुआ। यहाँ पर अ और उ मिलकर ओ गुण होता है। यहाँ किस प्रकार होगा इसका ज्ञान करिये।

गंगा + उदकम् यहाँ पर आद्गुणः सूत्र के द्वारा अवर्ण है। गंगा में आ पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है उदकम् का उ अब गंगा में आकार और उदकम् का उपकार इन दोनों वर्णों के स्थान पर गुण संज्ञक वर्ण तीनों एक साथ प्राप्त हो गया। अब इन तीनों वर्णों में से कौनसा वर्ण होगा। इसको निर्णय करने के लिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र के द्वारा अ + उ का सबसे सन्निकट (समीप) वर्ण होगा, वही उसके स्थान में गुण होगा। यहाँ पर अ का स्थान कण्ठ और उकार का स्थान ओष्ठ है और गुणसंज्ञक वर्ण ओ का ओष्ठ है। यह निश्चित हो गया कि अ + उ के स्थान में ओष्ठ संज्ञक वर्ण ओ होगा। इसलिए गंग् + ओ + दकम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर गंगोदकम् प्रयोग सिद्ध होता है

। अब यह निश्चित हो गया कि संसार में जहां कहीं भी अवर्ण के बाद में उवर्ण होगा तो ओ वर्ण गुण होना है। अब इन का क्रमशः उदाहरण देखें:-

गुण सन्धि में ए का उदाहरण:-

विग्रह	आदेश	सन्धि
उप् + इन्द्र	अ + इ = ए	उपेन्द्रः
गज् + इन्द्र	अ + इ = ए	गजेन्द्रः
रमा + ईशः	आ + ई = ए	रमेशः
उमा + ईशः	आ + ई = ए	उमेशः
राम + इति	आ + इ = ए	रामेति
च + इति	अ + इ = ए	चेति
परम + ईश्वर	अ + ई = ए	परमेश्वरः
देव + इन्द्र	अ + इ = ए	देवेन्द्रः
तव + इह	अ + इ = ए	तवेह
महा + ईशः	आ + ई = ए	महेशः
गण + ईशः	अ + इ = ए	गणेशः
देव + ईशः	अ + ई = ए	देवेशः
अवध + ईशः	अ + ई = ए	अवधेशः
सुर + ईशः	अ + ई = ए	सुरेशः
दिन + ईशः	अ + ई = ए	दिनेशः
भूप + ईशः	अ + इ = ए	भूपेशः
रमा + इति	अ + इ = ए	रमेति
सुर + इन्द्र	अ + इ = ए	सुरेन्द्र
सत्य + इन्द्र	अ + इ = ए	सत्येन्द्र

गुण सन्धि में ओ का उदाहरण:-

विग्रह	आदेश	सन्धि
गंगा + उदकम्	आ + उ = ओ	गंगोदकम्
महा + उत्सवः	आ + उ + ओ	महोत्सवः
हित + उपदेशः	अ + उ = ओ	हितोपदेशः
गुण + उत्तमः	अ + उ = ओ	गुणोत्तमः
सूर्य + उदयः	अ + उ = ओ	सूर्योदयः
यज्ञ + उपवीतम्	अ + उ = ओ	यज्ञोपवीतम्
राम + उदकः	अ + उ = ओ	रामोदकः
कृष्ण + उत्सवः	अ + उ = ओ	कृष्णोत्सवः
गन्ध + उदक	अ + उ = ओ	गन्धोदकम्

फल + उदक	अ + उ = ओ	फलोदकम्
मनुष्य + उत्तम	अ + उ = ओ	मनुष्योत्तम्
बालक + उत्तम्	अ + उ = ओ	बालकोत्तम्
परमः + उत्कृष्टम्	अ + उ = ओ	परमोत्कृष्टम्

इस प्रकार गुण सन्धि में एकार तथा ओकार का उदाहरण दिया गया। इसके बाद ऋकार का उदाहरण दिया जायेगा।

इत्संज्ञा विधायक ,संज्ञा सूत्र

28 उपदेशेऽजनुनासिक इत् 1 । 3 । 2 ॥ उपदेशेऽजनुनासिकोऽजित्संज्ञः स्यात् ।

प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः। लणसूत्रस्थावर्णेन सहोच्चार्यमाणों रेफो रलयोः संज्ञा॥

अर्थ - जो अच् उपदेश अवस्था में अनुनासिक हो, उसकी इत्संज्ञा होती है।

पाणिनि के वर्ण प्रतिज्ञा अर्थात् गुरु परम्परा के उपदेश से अनुनासिक धर्म वाले है। लण सूत्र स्थित लकार में स्थित अवर्ण के साथ मिला हुआ रेफ र और ल वर्णों का बोध कराता है। उपदेशेऽजनुनासिक इत् यह सूत्र अनुनासिक अच् की अपेक्षा करता है। अनुनासिक कहीं स्पष्ट रूप से प्रतीत होते है और कहीं उनको अनुनासिक मान लिया जाता है।

हल् वर्णों में ड् ण् न् म् ये हमेशा अनुनासिक है। य् व् ल् ये तीनों वर्ण एक पक्ष में अनुनासिक होते है और एक पक्ष में अननुनासिक होते है अर्थात् अनुनासिक नहीं होते हैं। और य् व् ल् इन को छोड़कर शेष व्यंजन वर्ण अनुनासिक होते ही नहीं है किन्तु स्वर सारे अनुनासिक और अननुनासिक दोनों होते हैं। यह संज्ञा प्रकरण में कहा गया है। पाणिनि जी ने कहीं अचों को अनुनासिक माना है और कहीं अनुनासिक नहीं माना है जैसे भू सत्तायाम् धातु है इन को उपदेश में पढ़ा गया है। उपदेश में भू में जो अच् है यहां उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा नहीं होती है क्योंकि उपदेश में अच् होते हुए उकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। इसलिए कि यहाँ पर जो अच् है वह अनुनासिक नहीं माना गया है। अन्य जगह उपदेश अवस्था में अच् को अनुनासिक माना गया। जैसे - एध वृद्धौ धातु है यहां पर स्पष्ट प्रतीत न होते हुए भी पाणिनि ने धकार में जो अकार है उसको अनुनासिक माना। अनुनासिक होने से उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा हुई तथा तस्य लोपः से लोप भी हुआ। इसका फल आगे स्वादि प्रकरण में बताया गया है। छात्र को पढ़ते पढ़ते पता चल जाता है कि कौन स्वर वर्ण अनुनासिक है और कौन स्वर वर्ण अनुनासिक नहीं हैं।

प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः - कहा गया है कि पाणिनि ने जिन वर्णों को अनुनासिक माना है वहीं वर्ण अनुनासिक है। जिस प्रकार आप ने भू तथा एध् में देखा।

माहेश्वर चौदह सूत्रों में छठा सूत्र लण् है और लण् के मध्य (ल् अ ण्) में जो अकार है वह अनुनासिक माना गया है। इस प्रकार की इत्संज्ञा करने के लिए उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा होती है क्योंकि गुरु परम्परा से लण् मध्ये त्वित्-संज्ञक यह संज्ञा प्रकरण में पहले कहा गया है। लण् सूत्र के मध्य में जो अकार है वह अनुनासिक है। लण् में जो अकार है उसको

अनुनासिक मानकर उपदेशोऽजनुनासिक इत् सूत्र में इत्संज्ञा की गयी है उसका मुख्य प्रयोजन र् प्रत्याहार की सिद्धि करना है।

र् प्रत्याहार की सिद्धि

हयवरट् सूत्र के र से लेकर लण् सूत्र में इत् संज्ञक जो अकार है उस अकार को मिलाने से र् अ ट् की इत्संज्ञा होकर र् अ बना। इन दोनों वर्णों को मिलाने से र प्रत्याहार की सिद्धि होती है। र प्रत्याहार के अन्तर्गत र् और ल् ये दो वर्ण आते हैं।

र् प्रत्याहार का प्रयोजन

29. उरण् रपरः 1 | 1 | 51 ॥ ऋ इति त्रिंशतः संज्ञेत्युक्तम् । तत्स्थाने योऽण् स रपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्णाद्धिः तवल्कारः ॥

अर्थ - 'ऋ' यह तीस प्रकार की संज्ञा है वह संज्ञा प्रकरण (अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः सूत्र) में कहा जा चुका है। उस तीस प्रकार वाले ऋ के स्थान पर यदि अण् आदेश करना हो तो वह र पर में वाला ही प्रवृत्त होता है अर्थात् र पर होता है।

ऋ वर्ण के स्थान पर अण् अ इ उ आदेश होगा तो वह र प्रत्याहार वाले वर्ण परे वाला होता है अर्थात् उस अण् से परे र् और ल् वर्ण होते हैं। यथा - अ प्राप्त होता है तो अर्, अल् तथा इ प्राप्त हुआ तो इर्, इल्, इसी प्रकार उ प्राप्त हुआ तो उर् उल् बनते हैं। इसी तरह सर्वत्र समझना चाहिए। गुण कार्य में यदि स्थानी ऋ है तो आदेश अर् होगा, क्योंकि ऋ तथा र् दोनों का स्थान एक है। इसी प्रकार लृ के स्थान पर अकार के प्राप्त होने पर अल् होगा। क्योंकि लृ और ल् का स्थान एक है।

र् प्रत्याहार का उदाहरण

कृष्णाद्धिः कृष्ण + ऋद्धि यहां पर कृष्ण में जो णकार में अकार है उस अकार से परे अच् प्रत्याहार का वर्ण ऋद्धि का ऋकार होने के कारण आद् गुणः सूत्र से पूर्व में अ और पर में ऋ के स्थान पर एक गुण प्राप्त होता है। ऋ का स्थान मूर्धा तथा अकार का स्थान कण्ठ है अ, ए, ओ, इन तीनों गुणों में से कण्ठ स्थान तो सबका मिलता है पर मूर्धा स्थान किसी का नहीं मिलता। अब यदि पूर्व और पर दोनों के स्थान पर अ गुण होगा तो उरण् रपरः सूत्र से अ से परे र प्रत्याहार प्राप्त होता है र प्रत्याहार में र और ल् दो वर्ण आते हैं। स्थानेऽन्तरतमः सूत्र द्वारा ऋ के स्थान पर अण् करने पर उस अण् से परे 'र्' और लृ के स्थान पर अण् करने पर उससे परे ल भी साथ में प्रवृत्त होता है। यहां पूर्व ङ पर के स्थान पर एकादेश होने से ऋ के स्थान पर अण् (अ) करना है। अतः उस अ से परे र भी हो जाता है अर्थात् अर् हो जाता है। इस प्रकार अर् का स्थान कण्ठ, मूर्धा होने से स्थानी ऋ और आदेश र् दोनों का स्थान एक हो जाते हैं। तो अब अर् एकादेश होने से कृष्ण् + अर् +द्धि बना। ण् में अ मिला तथा र् द्वि के उपर चले जाने के कारण कृष्णाद्धिः प्रयोग सिद्ध होता है।

ल् का उदाहरण

तवल्कारः - तव् + लृकारः यहाँ पर पूर्व में विद्यमान वकार में अकार तथा पर में अच् प्रत्याहार

का वर्ण लृकार का लृ के स्थान पर स्थानेऽन्तरमः और उरण् रपरः की सहायता से आदुणः से लपर सहित अल् गुण होकर तव् + अल् + कारः बना । वर्ण सम्मेलन होने पर तवल्कारः प्रयोग सिद्ध होता है ।

गुणसन्धि में गुण संज्ञक अवर्ण का उदाहरण:-

विग्रह	आदेश	सन्धि
कृष्ण + ऋद्धिः	कृष्ण् + अर् + द्वि	कृष्णर्द्धिः
महा + ऋषिः	मह् + अर् + षि	महर्षिः
उत्तम + ऋतुः	उत्तम् + अर् + णः	उत्तमर्णः
ग्रीष्म + ऋणः	ग्रीष्म + अर् + तुः	ग्रीष्मर्तुः
सप्त + ऋषिः	सप् + अर् + षिः	सप्तर्षिः
अधम + ऋणः	अधम् + अर् + णः	अधमर्णः
राजा + ऋषिः	राज् + अर् + षिः	राजर्षिः
ब्रह्म + ऋषिः	ब्रह्म + अर् + द्वि	ब्रह्मर्षिः
पुण्य + ऋद्धिः	पुण्य् + अर् + द्वि	पुण्यर्द्धिः
परम् + ऋतः	परम् + अर् + त	परमर्तः
वसन्त + ऋतुः	वसन्त् + अर् + तुः	वसन्तर्तुः
तव + लृकारः	तव् + अल् + कारः	तवल्कारः
मम + लृकारः	मम् + अल् + कारः	ममल्कारः
तव + लृदन्तः	तव् + अल् + दन्तः	तवल्दन्तः
मम् + लृवर्णः	मम् + अल् + वर्णः	ममल्वर्णः

इस प्रकार आपने गुण सन्धि में गुणसंज्ञक तीनों वर्णों के विषय में विशेष रूप से अध्ययन किया गया ।

लोप विधायक विधि सूत्र:-

30 लोपः शाकल्यस्य 8।3।19 ॥

अवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्यवयोर्लोपो वाऽशि परे ॥

अर्थ - अश् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो, अवर्ण पूर्व वाले पदान्त यकार वकार को विकल्प से लोप होता है । जिन यकार वकार का लोप करना है वह पदान्त में हो अर्थात् पद के अन्त में हो और उस यकार वकार से पूर्व में अवर्ण हो तथा यकार के बाद अश् (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ळ म ड ण न भ थ ढ ध ज ब ग ड द) का वर्ण हो तब य तथा व का लोप होता है ।

पदान्त किसे कहते हैं जिनके अन्त में सुबन्त अर्थात् सु, औ, जस, अम् औट्, शस् इत्यादि इक्कीस प्रत्यय हो उन्हें सुबन्त कहते हैं जिसको हम शब्द रूप कहते हैं ।

तिडन्त - जिसके अन्त में तिप् तस् झि इत्यादि अट्टारह प्रत्यय हो उन्हें हम तिडन्त कहते हैं अर्थात् उसको धातु रूप कहते हैं जैसे भवति गच्छति इत्यादि ।

हर इहः- हरे + इह यहां पर हरे जो शब्द है वह सम्बोधन के एक वचन का रूप है अतः उसकी पद संज्ञा होती है अर्थात् वह पदान्त है। यहां पर हरे में जो रे में ए है। वह ए एच् प्रत्याहार में आता है और पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है इह का इ इसलिए एचोऽयवायावः सूत्र से ए के स्थान में अय् आदेश होकर हर् अय् + इह बना। र् में अय् का अकार मिलकर हरय् + इह बना। अब यहाँ हरय् + इह में अश् प्रत्याहार का वर्ण है इह में इ। तथा पूर्व में पदान्त यकार है, हरय् में य्। उस य के पूर्व में अ वर्ण है र में अकार है। इसलिए लोपः शाकल्यस्य सूत्र से य् का लोप होकर हर + इह प्रयोग सिद्ध होता है यहाँ पर लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में लोप होगा उस पक्ष में हर + इह बना। और जिस पक्ष में लोप नहीं होगा, उस पक्ष में हरय् + इह बना। और वर्ण सम्मेलन होकर हरयिह प्रयोग सिद्ध होता है। हर + इह इस स्थिति में आद गुणः से अकार और इकार मिलकर एकार गुण होना चाहिए। इस गुण को निषेध करने के लिए अगला सूत्र प्रवृत्त होता है।

अधिकार सूत्र -

31 पूर्वत्राऽसिद्धम् 8।2।1॥

सपादसप्ताध्यायी प्रति त्रिपाद्यसिद्धा, त्रिपाद्यामपि पूर्व प्रति परं शास्त्रमसिद्धम्।

हर इह, हरयिह। विष्ण इह, विष्णविह।

अर्थः- सात अध्यायों के प्रति त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते हैं और त्रिपादी में भी पूर्व शास्त्र के प्रति पर शास्त्र असिद्ध होते हैं।

व्याख्याः- पाणिनि अष्टाध्यायी व्याकरण शास्त्र का अत्यन्त महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ है। पाणिनि अष्टाध्यायी में लगभग तीन हजार नव सौ पचहत्तर सूत्र है। इन्हीं सूत्रों के उपर व्याकरण शास्त्र का निर्माण किया गया। महामहोपाध्याय श्रीमद् भट्टोजिदीक्षित ने प्रयोगों के अनुसार इन्हीं सूत्रों का क्रम से निर्माण करके सिद्धान्त कौमुदी की रचना की। पाणिनि अष्टाध्यायी में आठ अध्याय है प्रतिध्याय में चार पाद है इन्हीं बत्तीस पादों में सभी सूत्र समाहित है।

इस प्रकार आठ वे अध्याय का दूसरा तीसरा चौथा पाद त्रिपादी है और सात अध्याय एक पाद सपादसप्ताध्यायी अर्थात् सवा सात अध्याय है।

त्रिपादी और सपादसप्ताध्यायी के मध्य यह निर्णय करता है कि समस्त सपादसप्ताध्यायी के प्रति समस्त त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते हैं। अर्थात् सामान जगहों पर सपादसप्ताध्यायी के सूत्र एवं त्रिपादी के सूत्र प्रवृत्त होते हैं। और त्रिपादी में पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध हो जाता है। यथा आदुणः सवासात् अध्यायों के अन्तर्गत सूत्र है। (छठे अध्याय प्रथम-पाद का चौरासिवाँ (84) सूत्र है) इसके दृष्टि में आठवें अध्याय के तीसरे पाद में वर्तमान लोपः शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध है, अतः आदुणः सूत्र लोपः शाकल्यस्य सूत्र द्वारा किये गये यकार के लाप को नहीं देखता अतः इसे तो अब भी यकार सामने पड़े हुए दिखाई दे रहा है। अवर्ण से परे यकार के दिखाई देने से अच् प्रत्याहार पर में न होने के कारण आद् गुणः सूत्र द्वारा गुण एकादेश नहीं होगा, तो हर इह ऐसा ही रहेगा और जिस पक्ष में यकार का लोप लोपः शाकल्यस्य से नहीं होगा उस पक्ष में हरयिह ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है।

लोपः शाकल्यस्य सूत्र यकार वकार दोनों को लोप करता है यकार के लोप का उदाहरण तो आपने हर इह बनाया । वकार का उदाहरण सक्षेप में:-

विष्णो इह:- विष्णो + इह यहां विष्णो शब्द सम्बोधना एक वचन का रूप है इसलिए यह पदान्त है। अब एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा ओकार के स्थान में अच् आदेश होकर विष्ण् + अच् + इह बना। विष्ण् में ण् में अच् का अकार मिलकर विष्णव् + इह बना । अब यहाँ पदान्त वकार का वर्ण है विष्णव् में व् तथा पर में अश् प्रत्याहार का वर्ण है इह का इकार इसलिए लोपः शाकल्यस्य सूत्र के द्वारा वकार का लोप होकर विष्ण + इह बना । अब यहां पर आद् गुणः सूत्र से पूर्व में ण में अकार तथा पर में इह का इकार इन दोनों वर्णों के स्थान में गुण रूप एकादेश होना चाहिए किन्तु पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र द्वारा आद् गुणः की दृष्टि में लोपः शाकल्यस्य सूत्र द्वारा वकार का लोप नहीं हुआ है । इसलिए आद्गुणः सूत्र द्वारा वकार का दिखायी देने के कारण गुण नहीं हुआ। लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में लोप होगा उस पक्ष में विष्ण इह रूप बनेगा। जिस पक्ष में लोप नहीं होगा उस पक्ष में विष्णव् + इह बना । वर्ण सम्मेलन होकर विष्णविह प्रयोग सिद्ध होता है।

इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए ।

विग्रह	आदेश	सन्धि
हरे + इह	हर् + अच् + इह	हर इह
विष्णो + इह	विष्ण् + अच् + इह	विष्ण इह
पुत्रौ + आगच्छतः	पुत्र + आव् + आगच्छत	पुत्रा आगच्छत
गुरौ + आयाते	गुर् + आव् + आयते	गुरा आयते
भानौ + अपि	भान् + आव् + अपि	भाना अपि
बने + ऋषयः	वन् + अच् + ऋषयः	वन ऋषयः
ते + इच्छन्ति	त् + अच् + इच्छन्ति	त इच्छन्ति
रवौ + उदिते	रव् + आव् + उदिते	रवा उदिते
गृहे + आसीत्	गृह + अच् + आसीत्	गृह आसीत्
करौ + एतौ	कर् + आव् + एतौ	करा एतौ

अभ्यास प्रश्न

1. गो अग्रम किस सूत्र का उदाहरण है?
2. प्लुत किसे कहते हैं?
3. हरी एतौ में कौन सा सूत्र लगा है?
4. अदस् शब्द के मकार से परे इत् ऊत् की क्या होती है?
5. चादियों का द्रव्य अर्थ न हो तो उनकी क्या होती है?
6. आङ् को छोड़कर एक मात्र की क्या होती है?
7. ओकार अन्तवाला निपात की क्या होती है?
8. चक्रि अत्र में यहाँ पर पदान्त इक् है?

9. असवर्ण अच् के परे होने पर पदान्त इक् को क्या होता है ?
10. ह्रस्व विधान सामर्थ्य से कौनसी सन्धि नहीं होती है?
11. चक्रिअत्र यह किस सूत्र का उदाहरण है?
12. गौरी +औ में यहां पर इकोऽसवर्णे से ह्रस्व क्यों नहीं हुआ?
13. अच् से परे रेफ और हकार ओर उस के रेफ और ह से परे यर को क्या होता है?
14. असवर्ण अच् परे होने पर पदान्त इक् को ह्रस्व नहीं होता है कहां पर?
15. ऋकार परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से क्या होता है ?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. गो अग्रम में सन्धि हुई है :-
(क) गुण (ख) दीर्घ (ग) प्रकृतिभाव (घ) अयादि
2. प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक अच् परे होने पर होता है:-
(क) प्रकृतिभाव (ख) पररूप (ग) पूर्वरूप (घ) गुण
3. इदन्त, उदन्त और द्विवचन की होती है:-
(क) प्रगृह्य संज्ञा (ख) प्लुत संज्ञा (ग) ह्रस्व संज्ञा (घ) दीर्घ संज्ञा
4. ब्रह्म ऋषिः किस सूत्र का उदाहरण है:-
(क) आदगुणः (ख) अकः सवर्णेदीर्घः (ग) ऋत्यकः (घ) अनचि च

4.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जान चुके हैं कि अयादि संधि किसे कहते हैं तथा अयादि संधि का विधान कहाँ और किस प्रकार किया जाता है, साथ ही गुण संधि से सम्बन्धित सूत्रों तथा उनसे बनने वाले प्रयोगों को कैसे सिद्ध किया जाता है। इस इकाई में आपने अयादेश, अवादेश, व गुण संज्ञा विधायक विधि सूत्रों का अध्ययन किया है। यदि अवर्ण से परे अच् हो तो पूर्व और पर के स्थान पर गुण एकादेश होता है। उपेन्द्रः और गंगोदकम् आदि इसके उदाहरण हैं। जो अच् उपदेश अवस्था में अनुनासिक होता है उसकी इत् संज्ञा होती है। पाणिनि ने अनुनासिक धर्म वाले वर्णों को परम्परया बताया है। लोप का अतिरिक्त विधान शाकल्य ऋषि के मत में भी प्रशस्त है। लोपः शाकल्यस्य इसका सूत्र है। अन्त में पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र की व्याख्या करके इकाई का वर्ण्य विषय समाप्त है। महामहोपाध्याय श्रीमद् भट्टोजिदीक्षित ने प्रयोगों के अनुसार इन्हीं सूत्रों का क्रम से निर्माण करके सिद्धान्त कौमुदी की रचना की। पाणिनि अष्टाध्यायी में आठ अध्याय हैं। प्रतिध्याय में चार पाद हैं इन्हीं बत्तीस पादों में सभी सूत्र समाहित हैं। इस प्रकार आठवे अध्याय का दूसरा तीसरा चौथा पाद त्रिपादी है और सात अध्याय एक पाद सपादसप्ताध्यायी अर्थात् सवा सात अध्याय है। त्रिपादी और सपादसप्ताध्यायी के मध्य यह निर्णय करता है कि समस्त सपादसप्ताध्यायी के प्रति समस्त त्रिपादी सूत्र असिद्ध होते हैं। अर्थात् सामान जगहों पर सपादसप्ताध्यायी के सूत्र एवं त्रिपादी के सूत्र प्रवृत्त होते हैं। और त्रिपादी में पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध हो जाता है। यथा आदुणः सवासात् अध्यायों के अन्तर्गत सूत्र है।

(छठे अध्याय प्रथम-पाद का चौरासिवाँ (84) सूत्र है) इसके दृष्टि में आठवें अध्याय के तीसरे पाद में वर्तमान लोपः शाकल्यस्य सूत्र असिद्ध है, अतः आद्युणः सूत्र लोपः शाकल्यस्य सूत्र द्वारा किये गये यकार के लाप को नहीं देखता अतः इसे तो अब भी यकार सामने पड़े हुए दिखाई दे रहा है। अवर्ण से परे यकार के दिखाई देने से अच् प्रत्याहार पर में न होने के कारण आद् गुणः सूत्र द्वारा गुण एकादेश नहीं होगा, तो हर इह ऐसा ही रहेगा और जिस पक्ष में यकार का लोप लोपः शाकल्यस्य से नहीं होगा उस पक्ष में हरयिह ऐसा प्रयोग सिद्ध होता है। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप इसमें सीखे हुये प्रयोगों को सूत्रोल्लेख पूर्वक सिद्ध कर सकेंगे।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
गोअग्रम्	गाय का अग्र भाग
गौः	गाय का
गवेन्द्रः	सांड , बड़ा बैल
हरी एतौ	ये दोनों हरि, घोड़े, बन्दर है
विष्णु इमौ	ये दोनों विष्णु हैं
अमी ईशाः	ये दोनों स्वामी हैं
रामकृष्णावमू आसाते	राम कृष्ण दोनों बैठे हैं।
इ इन्द्रः	यह इन्द्र है
उ उमेशः	यह शिव है
आ एवं नु मन्यसे	तुम ऐसा मानते हो
आ एवं किल तत्	हाँ यह ऐसा ही था
ओष्णम्	कुछ गरम कुछ ठण्डा
अद्ये ईशाः	अहो ये स्वामी हैं
किम्बुक्तम्	क्या कहा
चक्रि अत्र	विष्णु यहाँ है
वाप्यश्चः	बावड़ी में घोड़ा

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (सर्वत्र विभाषा गोः)
2. (त्रिमात्रिक को प्लुत कहते है)
3. (इदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्)
4. (प्रगृह्य संज्ञा)
5. संज्ञा
6. (प्रगृह्य संज्ञा)

7. (प्रगृह्य संज्ञा)
8. (क्रिमेंड्)
9. (ह्रस्व)
10. (स्वर सन्धि)
11. (इकोऽसवर्णेकल्यस्य ह्रस्वश्च)
12. (पदान्त न होने से)
13. (द्वित्व)
14. (समास में)
15. (ह्रस्व)

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. (ग)
2. (क)
3. (क)
4. (ग)

4.7 सदर्थ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी - डॉ रविनाथ मिश्र एवं डॉ देवेश कुमार मिश्र प्राच्य भारती प्रकाशन गोरखपुर

4.9. निबन्धात्मक प्रश्न

1. तपरस्तत्कालस्य सूत्र की व्याख्या कीजिये ।
2. लोपविधायक विधि सूत्र को समझाइये ।
3. र् प्रत्याहार को उदाहरण सहित बताइये ।
4. गुण संज्ञा की परिभाषा करते हुये नायकः प्रयोग की सिद्धि कीजिये ।

इकाई 5: वृद्धिरादैच् से एङःपदान्तादति तक

इकाई की रूप रेखा

- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 उद्देश्य
- 5.3 व्याकरण, वृद्धिरादैच् से एङःपदान्तादति तक
- 5.4 सारांश
- 5.5 शब्दावली
- 5.6 अभ्यास प्रश्नों उत्तर
- 5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 5.8 उपयोगी पुस्तकें
- 5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह पॉचवी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने अयादेश और अवादेश आदि का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में आप वृद्धि संधि से सम्बद्ध सूत्रों व उनसे जुड़े हुये प्रयोगों की सिद्धि सीखेंगे।

आ ऐ औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते हैं। दीर्घ आकार और ऐच् प्रत्याहार ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते हैं। अन्यत्र जहां कहीं भी अन्य सूत्र संज्ञक होते हैं। अन्यत्र जहां कहीं भी अन्य सूत्र के द्वारा भी वृद्धि करना हो तो वहां पर आ, ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि के रूप में उपस्थित होते हैं। इस इकाई में क्रियावाची भू आदि धातु में की संज्ञा वाचकता व टि संज्ञा के विधायक विधि सूत्र का वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत है।

अतः इस इकाई के अध्ययन से आप वृद्धि, पररूप, सवर्ण दीर्घ, पूर्व रूप सन्धियों को समझाते हुये उनमें आये हुए प्रयोगों को सिद्ध करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- वृद्धि सन्धि के विषय में बताये गये नियमों को समझायेंगे।
- उपसर्गों का वर्णन कर सकेंगे।
- पररूप सन्धि के विषय में अवगत करायेंगे।
- टि संज्ञा का परिचय दे सकेंगे।
- दीर्घ सन्धि के सूत्रों की व्याख्या करेंगे।
- पूर्वरूप सन्धि के नियमों को बतायेंगे।

5.3 वृद्धि सन्धि

32 वृद्धिरादैच् १ । १ । १ ॥ आदैच्च वृद्धिसंज्ञः स्यात् ॥

अर्थ - आ ऐ औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते हैं। दीर्घ आकार और ऐच् प्रत्याहार ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि संज्ञक होते हैं। अन्यत्र भी अन्य सूत्र वृद्धि संज्ञक होते हैं। अन्यत्र जहां कहीं भी अन्य सूत्र के द्वारा भी वृद्धि करना हो तो वहां पर आ, ऐ, औ ये तीन वर्ण वृद्धि के रूप में उपस्थित होते हैं। अर्थात् जहां कहीं भी वृद्धि शब्द का उच्चारण करना हो तो, उससे आ ऐ औ ही समझे जायेंगे। वृद्धिरादैच यह सूत्र पाणिनि अष्टाध्यायी का प्रथम सूत्र है अर्थात् पहले अध्याय के पहले पाद का पहला सूत्र है। जिस प्रकार गुण शब्द से अ, ए, ओ तीन वर्ण ग्रहण होते हैं उसी प्रकार वृद्धि शब्द से आ, ऐ, औ ये तीन वर्ण ग्रहण किये जायेंगे। इस वृद्धि संज्ञक वर्ण का फल अगले सूत्र में दिखाते हैं।

33 वृद्धिरेचि 6 । 1 । 88 ॥ आदेचि परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । गुणापवादः । कृष्णैकत्वम् । गंगौघः देवैश्वर्यम् । कृष्णौत्कण्ठ्यम् ॥

अर्थ - अवर्ण से एच् प्रत्याहार ए, ओ, ऐ, औ का वर्ण पर (बाद में) हो तो, पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश होता है। यह सूत्र पूर्ण और पर दो वर्णों के स्थान पर एक ही वर्ण आदेश होने का विधान करता है पूर्व में अवर्ण हो और पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो पूर्व और पर दोनों वर्णों के स्थान पर वृद्धिसंज्ञक आ, ऐ, औ ये तीनों वर्ण एक साथ प्राप्त होता है। यह सूत्र आद गुणः का बाधक है। आद्गुण सूत्र अधिक वर्ण को मानकर गुण करता है। अर्थात् अच् प्रत्याहार को मानकर गुण करता है और वृद्धि रेचि सूत्र कर्म वर्ण को मानकर गुण करता है अर्थात् एच् प्रत्याहार मानकर वृद्धि करता है। अच् प्रत्याहार का वर्ण है अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ तथा एच् प्रत्याहार का वर्ण है ए, ओ, ऐ, औ अतः अच् प्रत्याहार में एच् प्रत्याहार का वर्ण समाहित है अर्थात् अच् प्रत्याहार में एच् प्रत्याहार स्वयं पढ़ा गया है। इसलिए जहां वृद्धि होगी वहां अपने आप आद गुणः सूत्र पहले से प्राप्त है उसका बोधकर वृद्धि रेचि से वृद्धि होती है क्योंकि दोनों सूत्रों में बाध्य बाधक भाव सम्बन्ध है। अर्थात् जो अधिक में कहा गया है वह बाध्य है और जो कम में कहा गया है वह बाधक है तो बाध्य हो गया आद्गुणः और बाधक हो गया वृद्धि रेचि सूत्र ।

कृष्णैकत्वम् - कृष्ण + एकत्वम् यहां पर अवर्ण से अच् परे होने के कारण आद् गुणः से गुण की प्राप्ति हुई तो उस गुण को बाधक वृद्धि रेचि यह सूत्र लगा। यहां अवर्ण है कृष्ण में ण में अ तथा पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण है एकत्वम् का ए ! अ + ए इन दोनों वर्णों के स्थान पर वृद्धि संज्ञक आदेश वाले वर्ण आ, ऐ, औ, ये तीनों एक साथ प्राप्त हुए। इसलिए स्थानेऽन्तरतमः सूत्र द्वारा स्थान मिलाने पर कृष्ण में णकार में जो अकार है उसका स्थान कष्ठ है तथा पर में एकत्वम् का जो एकार है उसका स्थान कण्ठतालु है स्थानी ओ अ और ए है इन दोनों का स्थान कण्ठतालु है अब आदेश वाला वर्णैर तीन आ, ऐ, औ है उसमें कौन सा वर्ण कण्ठतालु वाला है? खोजा गया तो इन तीनों वर्णों में से ऐ कण्ठतालु वाला वर्ण है अत ए आदेश हुआ। कृष्ण में ण में अकार तथा एकत्वम् के एकार इन दोनों के स्थान पर ए आदेश होकर कृष्ण् + ऐ + कत्वम् बना। वर्ण सम्मेलन होने पर ण में ए जाकर मिल गया तो कृष्ण कत्वम् प्रयोग सिद्ध होता है। यह तो एच् प्रत्याहार में से केवल ए का उदाहरण दिया गया। अब औकार का उदाहरण क्या होगा? आगे देखे।

गंगौघः- गंगा+ओधः यहाँ पर पूर्व के समान प्रक्रिया होनी है। यहां अवर्ण है गंगा में आकार और पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण है ओधः का ओ। आकार का स्थान कण्ठ है तथा ओकार का स्थान ओष्ठ है अब यहां तीनों वर्णों से कण्ठ ओष्ठ वाला वर्ण औ है इसलिए आ तथा ओ इन दोनों वर्णों के स्थान पर औ आदेश होता है। गंगा+ औ + ध् अतः गङ्. में औ मिलकर गंगौघः प्रयोग सिद्ध होता है। ऐ परे होने का उदाहरण आगे देखे।

देवैश्वर्यम् - देव + ऐश्वर्यम् यहां पर पूर्व में अकार तथा पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण ऐश्वर्यम् का ऐ परे होने के कारण अ + ए दोनों के स्थान पर कण्ठ तालु वाला वर्ण वृद्धि रेचि सूत्र से वृद्धि संज्ञक

वर्ण ऐ आदेश होता है। देव् + ऐ + श्वर्यम् अब यहां पर वकार में ऐकार मिलकर देवैश्वर्यम् प्रयोग सिद्ध होता है।

कृष्णौत्कण्ठयम्:- कृष्ण + औत्कण्ठयम् में पूर्व में अकार तथा पर में एच् प्रत्याहार का वर्ण औकार है दोनों का स्थान कण्ठ-ओष्ठ है यहां पर भी आद्गुणः से गुण की प्राप्ति थी उसको बांधकर वृद्धि रेचि सूत्र द्वारा अ तथा और के स्थान पर कण्ठ औष्ठ स्थान वाला वर्ण औ आदेश होकर कृष्णौत्कण्ठयम् प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार एच् प्रत्याहार के चारों वर्णों का उदाहरण दिया गया।

34 एत्येधत्यूट्सू 6 । 1 । 89 ॥

अवर्णादेजाद्योरेत्येधत्योरूठि च परे वृद्धिकारेकादेशः स्यात् । पररूपगुणापवादः उपैति। उपैधते। प्रष्टोहः। एजाद्योः किम् ? उपेतः । मा भवान्प्रेदिधत्

अर्थ - अवर्ण से एच् प्रत्याहार का वर्ण हो जिसके आदि में ऐसे इण् धातु या एध् धातु अथवा उठ के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान वृद्धि संज्ञक एक आदेश होता है यह सूत्र एडिपररूपम् तथा आद् गुणः का बाधक है।

उपैति - उप + एति ('एति' यह पद इण् गतौः धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष एक वचन का रूप है। यहां उप में प में जो अकार है वह अवर्ण है उस अवर्ण से परे एच् प्रत्याहार का वर्ण आदि में है। इण् गतौ धातु का है। एति का एकार। पूर्व में अकार पर में एकार होने से इस सूत्र से दोनों वर्णों के स्थान वृद्धि संज्ञक तीनों वर्ण प्राप्त है। स्थानेऽन्तरमः सूत्र की सहायता से कण्ठ और तालु स्थान वाला वर्ण ऐ होता है क्योंकि प में जो अकार है उसका स्थान कण्ठ है तथा एति का जो एकार है उसका स्थान तालु है इसलिए उप में प अ तथा एति का ए इन दोनों के स्थान में ऐ वृद्धि रूप का एकादेश होकर उप् + ऐ + ति बना। प में ऐ मिलाने से उपैति प्रयोग सिद्ध होता है।

उपैधते - उप + एधते यह पद् एध् वृद्धौ धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष एक वचन का रूप है। यहां पर उप में प में अ वर्ण से परे एध् धातु का एच् प्रत्याहार का आदि में वर्ण है एध का ए इसलिए पूर्व में अकार तथा पर में एकार इन दोनों वर्णों के स्थान वृद्धि संज्ञक वर्ण ऐ होकर उप् ऐ + धते बना। प में ऐ के मिलने से उपैधते प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रष्टोहः - प्रष्ठ + ऊह (यहां पर उठ् है। यह कैसे है? यह हलन्तपुलिंग प्रकरण में वाह उठ सूत्र को देखे) यहां पर सूत्र लगा एत्येधत्यूट्सु यह सूत्र कहता है कि अ वर्ण से उठ् के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि संज्ञक वर्ण एक आदेश होता है अवर्ण है पूर्व में प्रष्ठ में ठ में अ पर में उहः यह उठ संज्ञक वर्ण है। अतः पूर्व में अ पर में उकार है। अः उ दोनों वर्णों के स्थान पर स्थानेऽन्तरमः सूत्र की सहायता से वृद्धि संज्ञक वर्ण औ आदेश होता है अ + उ = औ होकर प्रष्ठ् + औ + हः बना। ठ् में औ के मिलने से प्रष्टोहः प्रयोग सिद्ध होता है।

एजाद्योः किम् ? - अब यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस सूत्र में इण् और एध् धातु में एजादि क्यों कहा गया? अर्थात् एजादि अर्थात् एजादि नहीं कहते तो कौन सी हानि हो जाती? इसका उत्तर यह है कि एजादि नहीं कहते तो उपेतः और प्रेधित् प्रयोगों में वृद्धि हो जाती। अनिष्ट होने लगता है यथा+ उपेतः (वे दोनो पास जाते है) उप+इतः (इतः यह पद इण् गतौ धातु का क्तान्त रूप है

अथवा लट् लकार के प्रथम पुरुष द्विवचन का रूप है।) यहाँ अवर्ण से परे इण् धातु तो है, पर एच् प्रत्याहार का वर्ण आदि में नहीं है। अतः एत्येधत्सूत्रसूत्र से वृद्धि नहीं होगी, तो आद्गुणः से गुण होकर उपेतः यह प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार प्रेदिधत प्र + इदिधत (आप अधिक न बढ़ावे) इदिधत यह णिजन्त एध्धातु के लङ् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है। यहाँ पर अवर्ण से परे एध् धातु तो है, पर एच् प्रत्याहार का वर्ण पर में न होने से इस सूत्र से वृद्धि नहीं होती है। अतः आद् गुण से गुण होकर प्रेदिधत यह प्रयोग स्पष्ट रूप से सिद्ध किया जाता है। सूत्र में एति और एधति से इण् और एध धातु का ही ग्रहण समझना चाहिये। ये दोनों उदाहरण एत्येधत्सूत्रसूत्र का प्रत्युदाहरण है। विपरीत उदाहरणों को प्रत्युदाहरण कहते हैं।

वा ४- अक्षादुहिन्यामुपसंख्यानम् ॥ अक्षौहिणी सेना ॥

अर्थ -अक्ष शब्द के अन्त्य अवर्ण से 'ऊहिनी' शब्द का आदि ऊकार के परे होने से पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि रूप एकादेश होता है। ऐसा अधिक वचन बोलना चाहिये।

अक्ष+ऊहिनी यहाँ पर अवर्ण है अक्ष के अ, पर मे अच् प्रत्याहार का वर्ण है ऊहिनी का ऊकार, पूर्व और पर इन दोनों के स्थान में आद्गुणः से गुण प्राप्त है। उस गुण को बाधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर अक्ष शब्द से ऊहिनी शब्द परे होने के कारण अक्ष में अ, तथा ऊहिनी का ऊकार, इन दोनों के स्थान पर वृद्धि रूप एकादेश औ होकर अक्ष्, औ+हिनी बना। वर्ण सम्मेलन होकर अक्षौहिनी प्रयोग बना। तथा **पूर्वपदात् संज्ञायामगः** इस सूत्र से नकार को णकार करने पर अक्षौहिणी प्रयोग सिद्ध होता है।

५ - प्रादूहोढोढयेषैष्येषु ।

प्रौहः। प्रौढः। प्रौढिः। प्रैषः। पैष्यः॥

अर्थ -प्र शब्द के अकार से ऊह, ऊढ, ऊढि, एष तथा एष्य शब्दों के आदि में अच् प्रत्याहार का वर्ण परे होने पर पूर्व और पर के स्थान पर वृद्धि एकादेश रूप होता है।

प्रौहः प्र+ऊहः। यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बांधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर प्र शब्द का अकार प्र में अ तथा पर में ऊह शब्द परे होने पर अर्थात् पूर्ण में प्र में अ तथा पर ऊहः अ + ऊ दोनों के स्थान पर वृद्धि रूप एकादेश होकर प्र+औ+हः वर्ण सम्मेलन होकर प्रौहः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रौढः प्र + ऊढः। यहाँ पर भी आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बांधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर प्र शब्द का अकार से परे ऊढ परे होने के कारण पूर्व में अकार तथा पर में ऊढ का ऊकार अर्थात् अ+ऊ इन दोनों के स्थान पर इस वार्तिक द्वारा वृद्धि औ होकर प्र+औ+ढः बना। वर्ण सम्मेलन करने के बाद प्रौढः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रैषः प्र + एष + यहाँ पर एडि' पररुपम् सूत्र से पररुप प्राप्त होता है उस पररुप को बांधकर इस वार्तिक के द्वारा प्र में अ तथा पर में एषः का एकार होने के कारण अ तथा एकार दोनों के स्थान में वृद्धिरूप एकादेश होकर प्र+ऐ+षः बना। तथा वर्ण सम्मेलन होकर प्रैषः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्रैष्यः- प्र + एष्यः यहाँ पर एडि पररुपम् सूत्र से पररुप प्राप्त है। इस पररुप को बांधकर इस

वार्तिक द्वारा यहाँ पर प्र में जो अकारं है उस अकार से एष्य का एकार पर में होने के कारण पूर्व में अ पर में ए, इन दोनों वर्णों के स्थान पर वृद्धि एकादेश होकर प्र्+ऐ+ष्यः बना। वर्ण सम्मेलन होने के बाद प्रैष्यः प्रयोग सिद्ध होता है।

वार्तिक- ऋते च तृतीया समासे, सुखेन ऋतः सुखार्तः तृतीयेति किम्? परमर्तः

अर्थः - अवर्ण से ऋत शब्द के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश होता है। तृतीया समास में।

सुखार्तः सुखेन+ऋतः इस विग्रह में तृतीया तत्पुरुष समास होकर सुख+ऋतः बना। अब यहाँ आद् गुण से गुण प्राप्त है। उस गुण को बाधकर इस वार्तिक के द्वारा यहाँ पर अवर्ण है सुख में अकार में अकार तथा पर में ऋतः का त्रट होने के कारण अकार तथा ऋकार दोनों के स्थान पर उरण रपरः की सहायता से आर वृद्धि होकर सुख्+आर्+तः बना। सुख में ख में आर का आ मिल कर सुखार्+तः बना। तके उपर रकार का उर्ध्व गमन हो जाने के कारण सुखार्तः प्रयोग सिद्ध होता है।

अब विचार यहाँ यह अपस्थित होता है कि अवर्ण से ऋत परे होने पर वृद्धि विधान समास में ही करना चाहिये। क्योंकि सुखेन ऋतः यहाँ पर लौकिक विग्रह में वृद्धि न होकर गुण एकादेश होने से सुखेनर्तः प्रयोग बनना चाहिए। परन्तु तृतीया का ही समास ही अन्य विभक्तियों का समास न हो इस कथन से क्या प्रयोजन है? क्योंकि समास मात्र में ही वृद्धि का विधान न कर दिये जाये इसका उत्तर यह है कि यदि तृतीया न कहेंगे तो समास मात्र में ही वृद्धि का विधान करेंगे तो परमश्चासौ+ऋतः = परम+ऋतः यहाँ पर गुण न होकर वृद्धि हो जायेगी, क्योंकि समास तो यहाँ भी हुआ। किन्तु समास तो हुआ, पर तृतीया तत्पुरुष समास नहीं हुआ है। इस लिए अकार ऋकार दोनों के स्थान में गुण एकादेश होकर परमर्तः प्रयोग सिद्ध होता है।

वा 6 प्र-वत्सतर- कम्बल- वसनार्ण दशानाम ऋणे॥ प्रार्णम् । वत्सतरार्णम् इत्यादि ॥

अर्थ - प्र,वत्सतर,-कम्बल,-वसनार्ण ऋण तथा दश, इन शब्दों के अन्त्य अवर्ण से परे ऋण शब्दों के आदि में ऋवर्ण परे हो तो पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश होता है।

प्रार्णम् - प्र+ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था, उस गुण को बाधकर प्रवत्सरकम्बलवसनार्णदशानामृणे इस वार्तिक द्वारा पूर्व में प्र में अकार तथा पर में ऋणम् का त्रटकार अर्थात् अ+ऋ+इन दोनों वर्णों के स्थान पर आर् वृद्धि होकर प्र्+आर्+णम् बना। प्र में आर् का आकार तथा र् का ण के उपर चले जाने से प्रार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

वत्सतरार्णम् - वत्सतर+ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बांधकर प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे इस वार्तिक के द्वारा वत्सतर का अकार तथा त्रटणम् के ऋकार अर्थात् अ+ऋ इन दोनों वर्णों के स्थान पर आर् वृद्धि होकर वत्सतर्+आर् +णम् बना। वर्ण सम्मेलन होकर वत्सतरार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

कम्बलार्णम्: कम्बल+ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर प्रवत्सरकम्बलवसनार्णदशानामृणे इस वार्तिक के द्वारा यहाँ कम्बल में ल में अकार तथा पर

मे ऋणम् के ऋकार अर्थात् दोनों वर्णों के स्थान पर आर् वृद्धि होकर कम्बल आर्णम् बना । उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर कम्बलावर्णम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

वसनार्णम् - वसन+ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर प्रवत्सतर कम्बल-वसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा वसन मे न मे अकार तथा पर मे ऋणम् का ऋ अर्थात् अ+ऋ दोनों के स्थान पर वृद्धि आर् होकर वसन्+आर्+णम् बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर वसनार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

ऋणार्णम् – ऋण ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर प्रवत्सतर कम्बलवसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक के द्वारा ऋण मे ण मे जो अकार तथा पर मे ऋणम् का ऋकार होने के कारण अर्थात् अ ऋ इन दोनो के स्थान पर आर् वृद्धि होकर ऋण आर् णम् बना वर्णसम्मेलन होकर ऋणार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है।

दशार्णम् दश + ऋणम् यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानाम् ऋणे इस वार्तिक द्वारा यहाँ पर पूर्व मे दश मे शकार में जो अकार, तथा पर मे ऋणम् का ऋकार होने के कारण वृद्धि रूप एकादेश होकर दश+आर्+णम् बना । उसके बाद वर्णसम्मेलन होकर दशार्णम् प्रयोग सिद्ध होता है ।

वृद्धि सन्धि का उदाहरण-

विग्रह	आदेश	सन्धि
कृष्ण+एकत्वम्	कृष्ण् ऐकत्वम्	कृष्णौकत्वम्
गंगा+ओघः	गंग+औ+घः	गंगौघः
देव+ऐश्वर्यम्	देव्+ऐ+श्वर्यम्	देवैश्वर्यम्
कृष्ण+औत्काण्ठ्यम्	कृष्ण्+औ+त्कण्ठ्यम्	कृष्णौत्कण्ठ्यम्
दश+एते	दश्+ऐ+ते	दशैते
जन+एकता	जन्+ऐ+कता	जनैकता
यथा+एव	यथ्+ऐ+व	यथैव
तथा+एव	तथ्+ऐ+व	तथैव
तण्डुल+ओदन	तण्डुल्+औ+दनः	तण्डुलौदनः
राम+एव	राम्+ऐ+व	रामैव
कृष्ण+औत्सुक्यम्	कृष्ण्+औ+त्सुक्यम्	कृष्णौत्सुक्यम्
नृप+ऐश्वर्यम्	नृपर्+ऐ+श्वर्यम्	नृपैश्वर्यम्
महा+औषधम्	मह्+औ+षधम्	महौषधम्
राजा+एषः	राज+ऐ+षः	राजैषः
वीर+एक	वीर्+ऐ+कः	वीरैकः
एक+एव	एक्+ऐ+व	एकैव
तदा+एवम्	तद्+ऐ+वम्	तदैवम्
अत+एकमत्यम्	अत्+ऐ+कमत्यम्	अतैकमत्यम्

बाल+एषा	बाल्+ऐ+षा	बालैषा
महा+ओजसः	महा+औ+जसः	महौजसः
दीर्घ+एकारः	दीर्घ+ऐ+कारः	दीर्घैकारः
मा+एवम्	म्+ऐ+वम्	मैवम्
चित्+एकाग्रम्	चित्+ऐ+काग्रम्	चित्तैकाग्रम्
प्लुत+ओकारः	प्लत्+औ+कारः	प्लुतौकारः
एक+एकम्	एक+ऐ+कम्	एकैकम्
तव+ओकः	तव+औ+कः	तवौकः
विम्ब+ओष्ठी	विम्ब+औ+ष्ठीः	विम्बौष्ठीः
पुत्र+एकः	पुत्र+ऐ+कः	पुत्रैकः
मया+एव	मय्+ऐ+व	मयैव
अत्य+एव	अत्य् ऐ+व	अत्यैव

वृद्धि सन्धि में एत्येधत्युठसु सूत्र का उदाहरण

प्र+ऊह	प्र+औ+हः	प्रौहः
प्र ऊ ढः	प्र+औ+ढः	प्रौढः
प्र+ऊढि	प्र+औ+ढिः	प्रौढिः
प्र+एष्य	प्र+ऐ+ष्य	प्रैष्यः
उप+ति	उप्+ऐ+ति	उपैति
उप्+एधते	उप्+ऐ+धते	उपैधते
प्रष्ठ+उहः	प्रष्ठ्+औ+हः	प्रष्ठौहः
अक्ष+उहिनी	अक्ष्+औ+हिनी	अक्षौहिनी
सुख+ऋतः	सुख्+आर्+तः	सुखार्तः
दश्+ऋणः	दश्+आर्+णः	दशार्णः
तव+एति	तव्+ऐ+ति	तवैतिः
अव+एधते	अव्+ऐ+धते	अवैधते
सम+एति	सम्+ऐ+ति	समैति

उपसर्ग संज्ञा का करने वाला सूत्र

35 उपसर्गः क्रिया योगे 11/4/59॥

प्रादयः क्रिया योगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः।

प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस, निर, दुस, दुर, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उ
प्, प्र, एते, प्रादयः।

अर्थ- क्रिया के साथ योग होने पर प्र आदि जो बाईस उपसर्ग है। उनकी उपसर्ग संज्ञा होती है।
अर्थात् वे उपसर्ग कहलाते हैं। ये जो 1.प्र ॥ 2.परा॥3.अप/4.सम/5.अनु/6.अव/7.निस्/
8.निर/9.दु/10.दुर्/11.वि/12.आङ्./13.नि/14.अधि/15.अपि/16.अति/17.सु/18.उद्/19.अभि

/20.प्रति/21.परि/22.उप ये बाईस उपसर्ग हैं। इन उपसर्गों का अर्थ नहीं होता है। फिर भी धातु के साथ इनका योग कर दिया जाता है तो भिन्न भिन्न अर्थों को निकालते हैं। अर्थात् ये अर्थों के वाचक न होते हुए भी द्योतक होते हैं। स्वतन्त्र रूप से इनकी निपात संज्ञा होती है। और क्रिया के साथ योग होने पर उपसर्ग संज्ञा भी होती है। और इनको गतिश्च सूत्र से गति संज्ञा भी होती है। इस लिये इनकी उपसर्ग संज्ञा और गति संज्ञा दोनों होती है। इनका प्रयोग हमेशा धातु के पहले प्रयोग किया जाता है। जैसे- भवति धातु है उसके पहले प्र उपसर्ग का प्रयोग करके प्रभवति बनता है।

धातु संज्ञा का विधान करने वाला सूत्र -

36 भ्वाद्यो धातवः 1/3/11।

क्रिया वाचिनो भ्वाद्यो धातु संज्ञा स्युः।

अर्थ - क्रिया वाचक भू आदि की धातु संज्ञा होती है।

यह सूत्र भू आदि की धातु संज्ञा करता है। धातु किसे कहते हैं जो भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि गणों में अर्थ निर्देशन पूर्वक पढ़ें गये हैं और उनका अर्थ क्रिया अर्थात् व्यापार हो, उसे धातु कहते हैं। जैसे- पठति में पठ् धातु है यह भ्वादि गण में पठित भी है, और पढ़ना यह क्रिया वाचकता रूप अर्थ भी है, पठ् यह धातु है और पठति, गच्छति इत्यादि क्रिया रूप व्यापार है वृद्धि संज्ञा का विधान करने वाला विधि सूत्र है।

37. उपसर्गादृति धातौ 6/1/ 91//

अवर्णान्ताद्, उपसर्गाद्, ऋकारादौ, धातौ परे वृद्धि रेकादेशः स्यात्। प्राच्छति

अर्थ - अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकार हो जिसके आदि में ऐसा धातु पर में होतो पूर्व और पर के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश होता है। यह सूत्र कहता है कि पूर्व में उपसर्ग हो, उस उपसर्ग के अन्त में अ हो तथा पर में ऋकारादि धातु हो अर्थात् पूर्व में अकार तथा पर में ऋकार दोनों के स्थान में वृद्धि रूप एकादेश होता है।

प्राच्छति - प्र+ऋच्छति यहाँ पर आद् गुण से गुण प्राप्त है। उस गुण को बाधकर सूत्र लगा उपसर्गादृति धातौ इस सूत्र से यहाँ पर अवर्णान्त उपसर्ग है। प्र में अ, तथा पर में ऋकारादि धातु है। ऋच्छति का ऋ, अर्थात् पूर्व में अ, पर में ऋ, इन दोनों वर्णों के स्थान पर वृद्धि आर् होकर प्र+आर्+च्छति बना। वर्ण सम्मेलन होकर प्राच्छति प्रयोग सिद्ध होता है।

वृद्धि सन्धि में उपसर्गा दृति धातौ सूत्र का उदाहरण -

विग्रह	आदेश	सन्धि
प्र+ऋच्छति	प्र+आर्+च्छति	प्राच्छति
अप+ऋच्छति	अप्+आर्+च्छति	अपाच्छति
उप+ऋच्छति	उप्+आर्+च्छति	उपाच्छति
अव+ऋजते	अव्+आर्+जते	अवार्जते
पर+ऋध्नोति	पर्+आर्+ध्नोति	परार्ध्नोति

पररूप सन्धि

पररूप विधायक विधि सूत्र

38 .एङि पररुपम् 6/1/94//

आद् उपसर्गाद् एडादौ धातौ परे पररुपमेकादेशः स्यात्/प्रेजते/उपोषति

अर्थ- अवर्णान्त उपसर्ग से एङ् प्रत्याहार हो जिसके आदि में ऐसा धातु पर में हो तो पूर्व और पर के स्थान में पररुप एकादेश होता है। अन्त में अवर्ण हो ऐसा उपसर्ग से परे एङ् (ए, ओ,)प्रत्याहार का वर्ण हो जिसके आदि में ऐसा धातु पर में हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान में पररुप अर्थात् पर में जो रूप है वैसा ही रूप पूर्व में हो जाता है।

प्रेजते - प्र+एजते यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त है उस गुण को बाधकर सूत्र लगा। वृद्धिरेचि इस सूत्र से वृद्धि प्राप्त हुई। उस वृद्धि को बाधकर सूत्र लगा एङिपररुपम् यह कहता है कि अवर्णान्त उपसर्ग से एडादि धातु के परे रहने पर पूर्व और पर के स्थान पर पररुप एकादेश होता है। यहाँ पर अवर्णान्त उपसर्ग है, प्र में अ, तथा पूर्व में एजते(एजृ कम्पने धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है) धातु है उस धातु के पूर्व में एङ्प्रत्याहारका वर्ण है पर में एजते का ए। पूर्व में अ, तथा पर में ए होने के कारण अर्थात् अ+ए दोनों के वर्णों के स्थान पर पररुप एकादेश हो कर प्र+ए+जते बना। वर्ण सम्मेलन होकर प्रेजते प्रयोग सिद्ध होता है।

उपोषति- उप+ओषति यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर वृद्धिरेचि इस सूत्र से वृद्धि प्राप्त हुई। उसे भी बाधकर एङि पररुपम् सूत्र लगा। यहाँ पर अवर्ण उपसर्ग है उप में प में अ, तथा पर में एडादि धातु है(उष् दोहे धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है) ओषति का ओ अर्थात् अ+ओ इन दोनों के स्थान में पूर्व सवर्ण सदृश होकर वर्ण ओ होकर उप् ओ+षति बना, वर्ण सम्मेलन होकर उपोषति प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए। पररुप सन्धि में एङिपररुपम् सूत्र का उदाहरण-

विग्रह	आदेश	सन्धि
प्र+एजते	प्र+ए+जते	प्रेजते
उप+ओषति	उप्+ओ+षति	उपोषति
प्र+एषयति	प्र+ए+षयति	प्रेषयति
प्र+ओषति	प्र+ओ+षति	प्रोषति
उप+एहि	उप्+ए+हि	उपेहि

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी समझना चाहिए।

टि संज्ञा का विधान करने वाला संज्ञा सूत्र**39 अचोऽन्त्यादि टि 1/1/64//**

अचां मध्ये योऽन्त्यः स आदिर्यस्य तट्टि संज्ञः स्यात् ।

अर्थ- अचों के मध्य में जो अन्त्य अच् वह है जिसके आदि में उस शब्द समुदाय की टि संज्ञा होती है। टि संज्ञा कहा पर होती है ? इसका उत्तर दे रहे हैं। जहाँ अनेक अच् हों वहा पर अन्तिम अच् की ही टि संज्ञा होती है। और जहा एक ही अच् हो उसकी भी टि संज्ञा होती है। और जहा कही हल वर्ण के आदि में अच् वर्ण होतो उस हल् वर्ण के साथ अन्तिम अच् की भी टि संज्ञा होती है। जैसे राम शब्द में अन्तिम अच् प्रत्याहार का वर्ण है म में अकार। उस अकार की टि

संज्ञा नाम पडता है। इसी प्रकार मनस् शब्द है। अन्तिम हल वर्ण है स् उसके आदि मे अच् प्रत्याहार का वर्ण है। न् में अ। उस अस की टि संज्ञा नाम पडता है। जहाँ एक ही अच् प्रत्याहार का वर्ण हो उसी को आदि, मध्य अन्त्य माना जाता है। टि संज्ञा का फल क्या है उसको अगले सूत्र मे बताया

जायेगा।

वार्तिक:- शकन्ध्वादिषु पररुपं वाच्यम् ॥

तच्च टेः/शकन्धुः/कर्कन्धुः/कुलटा/मनीषा/आकृतिगणोऽयम/मार्तण्ड।

अर्थ:- शकन्ध्वादि गण मे पढे गये जो शब्द है। उनके टि को पररुप कहना चाहिये।

शकन्धुः - शक + अन्धु यहाँ पर अचोऽन्त्यादि टि सूत्र से टि संज्ञा होती है। जैसे- शक मे अच् प्रत्याहार का वर्ण है श मे अ, तथा क मे अ यहाँ अन्तिम अच् है। क का अकार वह अन्तिम अकार न किसी के आदि मे है न किसी के अन्त मे, क वह स्वय अपने आदि मे है। उनकी टि संज्ञा हो गयी। इसके बाद आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर अकः स वर्णे दीर्घः से सवर्ण दीर्घ प्राप्त था। उसे भी बाधकर शकन्ध्वादिषु पररुपम् वाच्यम् इस वार्तिक के द्वारा पररुप होता है टि संज्ञा जहाँ पर होती है वहा पर पररुप होता है। शकन्धु शब्द शकन्धु आदि गण में पढे गये है। यहाँ पर टि है शक में क में अ, और पर में है अन्धु का अकार। इन दोनों वर्णों के स्थान पर पररुप होगा। पररुप का तात्पर्य है पूर्व और पर के स्थान पर का जैसा वर्ण पूर्व में हो जाना। यहाँ पर पूर्व में भी अकार तथा पर में भी अकार तथा दोनों अकारों के स्थान पर एक ही अकार होकर शक् अ+न्धुः बना। वर्ण सम्मेलन होकर शकन्धुः प्रयोग सिद्ध होता है।

कर्कन्धुः- कर्क+अन्धुः यहाँ पर पहले अचोऽन्त्यादि टि से टि संज्ञा करते है। जैसे कर्क मे अच् है क का अकार और अन्त्य अच् है। द्वितीय क का अकार वह अन्य किसी के आदि मे नही है। इसलिये द्वितीय अकार की टि संज्ञा हो गयी। इसके बाद आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ प्राप्त था। उसे भी बाधकर शकन्ध्वादिषु पररुपं वाच्यम् इस वार्तिक से पररुप होता है। कर्कन्धु शकन्धु आदि गण मे होता है। और टि है क मे अकार और परे मे है। अन्धु का अकार। इन दोनो वर्णों के स्थान पर पररुप होता है। इस पररुप का तात्पर्य है पूर्व मे जो अकार है। वह पर जैसा हो जाना। यहाँ दोनो के स्थान पर अकार होकर कर्क+अ+न्धुः बना। वर्ण सम्मेलन होकर कर्कन्धुः प्रयोग सिद्ध होता है।

मनीषा - मनस् + ईषा यहाँ पर अचोऽन्त्यादि टि इस सूत्र से मनस मे जो अस है उसकी टि संज्ञा हुई। क्योकि अच् प्रत्याहार का वर्ण है। म का अकार, न का अकार, इसमे अन्तिम अच् है न का अकार वह अस् इस समुदाय के आदि मे है। अतः सकार सहित अकार अर्थात् अस की टि संज्ञा हुई। यहाँ पर टि संज्ञा का फल शकन्ध्वादिषु पररुपं वाच्यम् इस वार्तिक से पररुप करना है। अतः टि को लेकर पररुप करना है। पूर्व में टि संज्ञक वर्ण है मनस् में अस्, और पर में ईषा का ईकार है अर्थात् अस+ई इन दोनों के स्थान पर पर जैसा वर्ण ई हो गया। मन्+ई+षा बना। वर्ण सम्मेलन होकर मनीषा प्रयोग सिद्ध होता है।

आकृतिगणोऽयम्। यह जो वाक्य है न तो वार्तिक है न सूत्र ही। यह तो वरदराजाचार्य जी का

वाक्य है। यह समझा रहे हैं कि यह शकन्धु आदि गण है इसमें इतने ही शब्द आते हैं, ऐसा कोई निश्चित नहीं है। अतः जहाँ जहाँ भी पररूप विधायक सूत्रों की प्राप्ति नहीं हो, किन्तु यदि पररूप हो गया हो तो वहाँ शकन्धु आदि गण मान लेना चाहिये। यथा- मार्तण्डः शब्द लोक में प्रसिद्ध है इसमें पररूप हुआ मिलता है। अतः इसे भी शकन्धवादि गण के अन्तर्गत मान लेना चाहिये। मृत+अण्डः यहाँ पर मृत में त में अ तथा पर में अण्डः का अकार होने से अ अ इन दोनों के स्थान पर पररूप एकादेश होकर मृत् अ+ण्डः बना। वर्ण सम्मेलन होकर मृतण्डः प्रयोग सिद्ध होता है मृतण्डः बन जाने के बाद तद्विप्रत्यय से मृतण्डे भवः मार्तण्डः यहाँ पर मृतण्ड शब्द से तत्र भवः सूत्र के द्वारा अण् प्रत्यय होकर मृतण्ड अण् बना। अण् में ण का अनुबन्ध लोप हो जाने पर मृतण्ड+अ बना। उसके बाद तद्विप्रत्ययचामादेः सूत्र से आदि शब्द मृतण्ड में जो ऋकार है उस ऋकार के स्थान पर आर् वृद्धि होकर म्+आर्+तण्ड+अ् बना। म में आर् का आ तथा र् का त के उपर चले जाने पर मार्तण्ड अ बना। उसके बाद यस्येति च सूत्र से ङ में अकार का लोप होकर मार्तण्ड+अ बना। वर्ण सम्मेलन होकर मार्तण्डः प्रयोग सिद्ध होता है।

40 - ओमाडोश्च 6/1/ 95// पररूप विधायक विधि सूत्र-

ओमि आडि चात्परे पररूपम् एकादेशः स्यात्।

शिवायों नमः । शिव एहि ।

अर्थ- अवर्ण से ओम अथवा आड् के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है।

शिवायों नमः - शिवाय+ओम् नमः यहाँ पर आद् गुणः से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर वृद्धिरेचि से वृद्धि प्राप्त हुई। उसे बाधकर ओमाडोश्च सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि अ वर्ण से ओम् अथवा आड् पर में हों तो पररूप एकादेश होता है। यहाँ पर अवर्ण है। शिवाय मे य मे अ उस अकार के पर मे ओम् शब्द का ओकार है। इस लिये अ+ओ इन दोनो वर्णों के स्थान पर पररूप अर्थात् पर जैसा वर्ण पूर्व में ओ होकर शिवाय+ओ+म् बना। वर्ण सम्मेलन होकर शिवायोम् नमः बना। मकार को अनुस्वार होकर शिवायों नमः प्रयोग सिद्ध होता है।

41- अतिदेश सूत्र

अन्तादिवच्च 6/1/ 85//

योऽयमेकादेशः स पूर्व स्यान्तवत् परस्यादिवत्। शिवेहि।

अर्थ- पूर्व और पर के स्थान में जो यह एकादेश होता है वह पूर्ववर्ती वर्ण समुदाय उसके अन्त्य के समान होता है। और परवर्ती वर्णसमुदाय के लिये उसी के आदि के समान होता है।

जैसे- एकादेश पूर्व और पर के स्थान में होता है। उस एकादेश को अन्त या आदि के समान मानना पड़े तो कैसे माना जाय क्योंकि एकादेश होकर न पूर्व के समान रहा, न पर के समान, अर्थात् अखण्ड है। बलवान होने से आद् गुणः से गुण होकर शिव+एहि बना। एहि का जो एकार है, वह आ और इ के स्थान पर गुण एकादेश होकर बना हुआ है। उस एकार को अन्तादिवच्च सूत्र से पूर्वान्तवद् भाव हुआ है। अर्थात् एकादेश होने से पहले पूर्व का आ और पर का आदि वर्ण इ था। अब हम उस ए को आ मानकर ओमाडोश्च सूत्र से पररूप करना हो तो ए को आ भी

माना जा सकता है ? और ए को इ भी माना जा सकता है? पूर्वाश्रित कार्य करने में अन्त के समान हो गया है। आ+इ में अन्त में आ था। आ यह आड है। उसे मानकर होने वाला पररूप हो गया है। पूर्व रूप पूर्व और पर के स्थान में होता है। शिव+एहि यहाँ पूर्व में अकार तथा पर में एहि का एकार है। अतः दोनों के स्थान में पूर्वरूप एकादेश ए होकर शिव् + ए + हि बना। वर्ण सम्मेलन होकर शिवेहि सिद्ध होता है। यदि अन्तादिवच्च सूत्र न होता तो शिव+एहि में वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि होकर शिवेहि ऐसा अनिष्ट प्रयोग बनने लगता। पररूप सन्धि का अन्य उदाहरण-

विग्रह	आदेश	सन्धि
शक्+अन्धुः	शक्+अ+न्धुः	शकन्धुः
कर्क+अन्धुः	कर्क+अ+न्धुः	कर्कन्धुः
कुल+अटा	कुल्+अ+टा	कुलटा
मनस्+ईषा	मन्+ई+षा	मनीषा

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखना चाहिये।

पररूप सन्धि समाप्त होता है। अब इसके बाद दीर्घ सन्धि प्रारम्भ होगा।

दीर्घ सन्धि के सूत्र एवं उदाहरण

सवर्णदीर्घ विधायक विधि सूत्रम्

42अकः सवर्णे दीर्घः 6/1/101//

अकः सवर्णेऽचि परे पूर्वपरयोदीर्घ एकादेशः स्यात्। दैत्यारिः /श्रीशः/विष्णुदयः/ होतृकारः।

अर्थ- अक् से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व और पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होता है। अक् प्रत्याहार में अ,ई,उ,ऋ,लृ,ये पाँच वर्ण आते हैं। इनसे परे यदि इनका कोई सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो इन दोनों के स्थान पर दीर्घ एकादेश होता है। जिस प्रकार अ+अ = आ,इ+इ = इ,उ+उ = ऊ,ऋ+ऋ =ऋ आदि। दीर्घ अच् तो यहाँ पर बहुत है, तथापि स्थानेऽन्तरतम्: सूत्र की सहायता से वही दीर्घ लिया जाता है जो इन स्थानियों के तुल्य होता है। क्योंकि दीर्घ अच आ,ई,ऊ,ऋ,ए,ऐ,ओ,औ, ये सभि दीर्घ प्राप्त होते हैं। स्थान से साम्य सवर्ण दीर्घ ही होता है।

दैत्यारिः- दैत्य + अरिः यहाँ पर दैत्य में जो यकार है उस यकार में जो अकार है वह अक् प्रत्याहार का वर्ण है। उस अक् प्रत्याहार से पर में अच् प्रत्याहार (अ, इ, उ,ऋ,लृ,ए,ओ,ऐ,औ) का वर्ण है। अरिः का अकार, अर्थात् अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है, अरिः का अकार। इन दोनों अकार के स्थान पर सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर दैत्य् आ रिः बना। वर्ण सम्मेलन होकर दैत्यारिः प्रयोग सिद्ध होता है। ध्यान रहे की यहाँ पर दैत्य्+अरिः में आद् गुणः से गुण प्राप्त था उस गुण को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ हुआ है।

श्रीशः- श्री+ईशः यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण प्राप्त था। उस यण् को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घ सूत्र लगा। सूत्र कहता है कि अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान में सवर्णी दीर्घ एकादेश होता है। यहाँ पर अक् प्रत्याहार का वर्ण है। श्री में ई तथा पर में सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है ईशः का ईकार। अतः ई+ई दोनों वर्णों के

स्थार पर सवर्णी दीर्घ ई एकादेश होता है होकर श्रु ई+शः बना। वर्ण सम्मेलन होकर श्रीशः प्रयोग सिद्ध होता है।

विष्णुदयः- विष्णु + उदयः यहाँ पर भी इको यणचि सूत्र से इक् प्रत्याहार का वर्ण है, विष्णु में ण् में उ तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है उदय का उकार अतः इस सूत्र से यण् प्राप्त था उस यण् को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व और पर दोनों के स्थान में पूर्व सवर्ण दीर्घ एकादेश होता है। यहाँ पर अक् प्रत्याहार का वर्ण है। विष्णु में उकार तथा पर में सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है उदय का उकार। अतः ऊ इन दोनों वर्णों के स्थान पर सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर विष्णु+ऊ+दयः बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णु उदयः प्रयोग सिद्ध होता है।

होतृकार - होतृ + ऋकारः यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण् प्राप्त था उस यण् को बाधकर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र लगा। सूत्र कहता है कि अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पूर्व पर के स्थान में सवर्ण दीर्घः एकादेश होता है। यहाँ पर अक् प्रत्याहार का वर्ण है होतृ में ऋकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है, ऋकारः का ऋकार, अतः ऋ तथा ऋ इन दोनों वर्णों के स्थान पर सवर्ण दीर्घ एकादेश होकर होतृ+ऋ+कारः बना। वर्ण सम्मेलन होकर होतृकारः प्रयोग सिद्ध होता है। अक् प्रत्याहार में अ,इ,उ,ऋ,लृ,इन में पाँच वर्ण आते हैं इन पाँचों वर्णों में से अ,इ,उ,ऋ,चारों वर्णों का क्रमशः उदाहरण दिया गया किन्तु पाँचवा वर्ण लृ है उसका उदाहरण नहीं दिया गया क्योंकि लृ वर्ण का दीर्घ नहीं होता है। सिद्धान्त कौमुदी में विशेष प्रकार की व्याख्या की गयी है।

दीर्घ सन्धि का उदाहरण

विग्रह	आदेश	सन्धि
दैत्य+अरिः	दैत्य्+आ+रिः	दैत्यारिः
विद्या+आलयः	विद्य्+आ+लयः	विद्यालयः
अत्र+आगच्छति	अत्र्+आ+गच्छति	अत्रागच्छति
महा+अवकाश	मह्+आ+वकाशः	महावकाशः
कदा+आगतः	कद्+आ+गतः	कदागतः
तुल्य+आस्य	तुल्य्+आस्य	तुल्यास्य
न अस्ति	न अस्ति	नास्ति
दधि+इन्द्रः	दध्+ई+न्द्रः	दधीन्द्रः
कवि+इन्द्रः	कव्+ई+न्द्रः	कवीन्द्रः
महती+इच्छा	महतृ+ई+च्छा	महतीच्छा
सती+ईशः	सत्+ई+शः	सतीशः
विष्णु+उदयः	विष्णु+ऊ+दयः	विष्णूदयः
भानु+उदयः	भान्+ऊ+दयः	भानुदयः
पशु+उत्सवः	पश्+ऊ+त्सवः	पशूत्सवः

विधु+उदयः	विध्+ऊ+दयः	विधूदयः
कारु+उत्तम	कार्+ऊ+त्तम	कारुत्तम
होतृ+ऋकार	होत्+ऋ+कार	होतृकारः
कर्तृ+ऋद्धि	कर्त्+ऋ+द्धि	कर्तृद्धि
कर्तृ+ऋणि	कर्त्+ऋ+णि	कर्तृणि

इस प्रकार दीर्घ सन्धि का सूत्र व्याख्या विशेष प्रकार से किया गया है। उसे ध्यान पूर्वक अध्ययन करें, तथा उदाहरण को भी ध्यान पूर्वक स्मरण करें। इस प्रकार दीर्घ सन्धि समाप्त हुआ।

अब यहाँ पर से पूर्व रूप एकादेश सन्धि प्रारम्भ की जा रही है ।

पूर्व रूप सन्धि का विधान करने वाला सूत्र

43 - एङ् पदान्तादति 6/1/109//

पदान्तादेङोऽति परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् / हरेऽव/विष्णोऽवः/

अर्थ- पदान्त एङ् से अकार के परे होने पर पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है । जैसे - एङि पररूपम् यह सूत्र पीछे पढ़ा गया है । यह सूत्र पररूप करता है । दोनो का अर्थ एक ही है । किन्तु पररूप करता है । और एक पूर्वरूप करता है । पररूप का अर्थ होता है । पर जैसा सदृश वर्ण पूर्व में होता है। और पूर्व रूप का अर्थ होता है । पूर्व जैसा वर्ण पर मे हो जाता है। यह सूत्र कहता है। कि पदान्त एङ् प्रत्याहार से ऐ,ओ,से ह्रस्व अकार के परे होने से पूर्व और पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है। जैसे ए + अ यहाँ पर एङ् प्रत्याहार का वर्ण पूर्व में है ए, तथा ह्रस्व अकार पर में है अ, अतः ए,ओ, के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है । अर्थात् ए + अ = ए हो जाता है। इसी विधि को पूर्वरूप विधि कहते है । इसके द्वारा पूर्वरूप होने पर अकार के स्थान पर 'ऽ' इस चिन्ह को लगाने की परम्परा रही है । जिसको हम अवग्रह या खण्डाकार कहते है। यद्यपि इस चिन्ह का विधान किसी सूत्र के द्वारा नहीं होता है । फिर भी इस चिन्ह को लगाकर अकार का संकेत संस्कृत भाषा मे प्रचलित है । इस चिन्ह को प्रयोग करे या न करे इसकी कोई अनिवार्यता नहीं है । इस सूत्र को पढ़ने के पहले एङि पररूप सूत्र का ज्ञान करना अत्यन्त आवश्यक है । अब सूत्र का उदाहरण देखे ।

हरेऽव -हरे + अव् (हरे जो शब्द है । वह सम्बोधन एक वचन का रूप है। सम्बोधन होने के कारण यह पदान्त है।) यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र के द्वारा एच् प्रत्याहार का वर्ण ए के स्थान पर अच् आदेश होना चाहिये क्योकि ए के बाद पर मे अच् प्रत्याहार का वर्ण अव का अकार है। अतः एचोऽयवायावः सूत्र को बांधकर सूत्र लगा एङ् पदान्तादति यह सूत्र कहता हैं कि पदान्त एङ् से ह्रस्व अकार के परे रहने पर पूर्व-पर दोनो के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है। यहाँ पदान्त एङ् है हरे एकार, पर में है अव का अकार, अर्थात् ए+अ इन दोनों वर्णों के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होता है। पूर्व जैसा वर्ण पर में होना यहाँ पर पूर्व में जो वर्ण ए है। वही वर्ण पर में हो होकर हर्+ए+व बना। वर्ण सम्मेलन होकर हरेव प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर ध्यान देना है कि परम्परा के अनुसार अकार के स्थान पर ऽ होकर हरेऽव प्रयोग सिद्ध होता है।

विष्णोऽव - यहाँ पर सभी प्रक्रिया हरेऽव के समान होनी हैं केवल अन्तर इतना होता है। कि

वहा पर हरेऽव में एकार अकार होने से पूर्व रूप दोनों वर्णों के स्थानों में एकार हुआ। यहाँ पर पूर्वरूप ओकार होता है। किस प्रकार होता है उसको जाने। विष्णो + अव यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अच् आदेश प्राप्त है। इस सूत्र को बांधकर एङ् पदान्तादति सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है। कि पदान्त एङ् से हस्व अकार के परे रहने पर पूर्व पर दोनो के स्थान पर प पर्वरूप एकादेश होता है। यहाँ पर पदान्त एङ् है विष्णो का ओ तथा पर में हस्व अकार है अव का अकार। अतः ओऽअ इन दोनो वर्णों के स्थान पर पूर्वरूप एकादेश होकर विष्ण् ओ+व बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णोऽव प्रयोग सिद्ध होता है। तथा अ के स्थान पर परम्परानुसार ऽहोकर विष्णोऽव प्रयोग सिद्ध होता है। हरे!विष्णो!ये दोनो सम्बोधन एकवचन का रूप है। और अच् क्रिया पद है। सुबन्त होने के कारण हरे और विष्णो दोनो पद है। और एकार ओकार दोनो पद के अन्त में है।

पूर्वरूप सन्धि के उदाहरण सहित विग्रह एवं सन्धि।

विग्रह	आदेश	सन्धि
हरे+अव	हर+ए+व	हरेऽव
ते+अत्र	त+ए+त्र	तेऽत्र
वने+अस्मिन्	वन्+ए+स्मिन्	वनेऽस्मिन्
गृह+अस्ति	गृह+ए+स्ति	गृहेऽस्मिन्
स्थाने+अन्तरमः	स्थान्+ए+न्तरतमः	स्थानेऽन्तरतमः
उद्याने+अस्तु	उद्यान्+ए+स्तु	उद्यानेऽस्तु
विष्णो+अव	विष्ण्+ओ+व	विष्णोऽव
नमो+अस्तु	नम्+ओ+स्तु	नमोऽस्तु

इसी प्रकार पूर्व रूप सन्धि का अन्य उदाहरण समझिये। इस प्रकार पूर्वरूप सन्धि सम्पूर्ण हुआ।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1. वृद्धि संज्ञा किस सूत्र से होती है?
2. वृद्धि संज्ञक कितने वर्ण होते हैं?
3. कृष्णौकत्वम् में कौन सा विग्रह है?
4. अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम् इस वार्तिक का उदाहरण क्या है?
5. सुखेन ऋतः में कौन सा समास है?
6. प्रार्णम् में कौन सा विग्रह है?
7. क्रिया के योग में प्र आदि संज्ञक होते हैं?
8. अवर्णान्त उपसर्ग से ऋकारादि धातुं परे हो तो पूर्व पर केस्थान में क्या होता है?
9. टि संज्ञा किस सूत्र से होती है ?
10. मनीषा का विग्रह क्या है ?
11. अवर्ण से ओम् अथवा आङ् पर में हो तो पूर्व पर दोनों को स्थान में क्या आदेश होगा?

12. अक् प्रत्याहार से सवर्णी अच् पर में हो तो पूर्व पर दोनों केस्थान में क्या आदेश होता है?
13. दैत्यारिः किस सूत्र का उदाहरण है?
14. दैत्यारिः का विग्रह क्या होगा ?
15. पूर्वरूप एकादेश किस सूत्र से होता है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. उपैधते में कौन सी सन्धि है:-
(क) वृद्धि (ख) गुण (ग) दीर्घ (घ) पररूप
2. सुखार्तः में कौनसी सन्धि है -
(क) गुण (ख) दीर्घ (ग) वृद्धि (घ) पूर्वरूप
3. उपसर्ग कितने है -
(क) दश (ख) तीन (ग) बाइस (घ) चार
4. भूवादयोधातवः सूत्र से होती है:-
(क) उपसर्ग संज्ञा (ख) धातु संज्ञा (ग) पररूप संज्ञा (घ) पूर्वरूप संज्ञा
5. एडिपररूपम् सूत्र से होता है:-
(क) दीर्घ (ख) गुण (ग) पररूप (घ) वृद्धि
6. एडिपररूपम् सूत्र का उदाहरण है:-
(क) रमेश (ख) उपैधते (ग) उपैति (घ) प्रेजते
7. शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम् इस वार्तिक का उदाहरण है:-
(क) शकन्धुः (ख) उपोषति (ग) उपेन्द्रः (घ) उपैति
8. दैत्यारिः में सन्धि हुई है -
(क) गुण (ख) वृद्धि (ग) दीर्घ (घ) पररूप
9. अकः सवर्णेदीर्घः सूत्र का उदाहरण है -
(क) शिवेहिः (ख) कृष्णैकत्वम् (ग) लाकृतिः (घ) श्रीशः
10. एडःपदान्तादति सूत्र का उदाहरण है:-
(क) गंगोदकम् (ख) दैत्यारिः (ग) विष्णुदयः (घ) हरेऽव

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप वृद्धि सन्धि, पररूप सन्धि, दीर्घ सन्धि, पूर्व रूप सन्धि के विषय में भली भांति परिचित हो गये हैं। इसके बाद उपसर्ग बाइस प्रकार के होते हैं इसके विषय में भली भांति परिचित हुये। इसके साथ भूवादयोधातवः इस सूत्र से धातु संज्ञा होती है। पूर्व और पर के स्थान में जो यह एकादेश होता है वह पूर्ववर्ती वर्ण समुदाय उसके अन्त्य के समान होता है। और परवर्ती वर्णसमुदाय के लिये उसी के आदि के समान होता है। जैसे- एकादेश पूर्व और पर के स्थान में होता है। उस एकादेश को अन्त या आदि के समान मानना पड़े तो कैसे माना जाय क्योंकि एकादेश होकर न पूर्व के समान रहा, न पर के समान, अर्थात् अखण्ड है। बलवान होने से आद् गुणः से गुण होकर शिव+एहि बना। एहि का जो एकार है, वह आ और इ के स्थान

पर गुण एकादेश होकर बना हुआ है। उस एकार को अन्तादिवच्च सूत्र से पूर्वान्तवद् भाव हुआ है। अर्थात् एकादेश होने से पहले पूर्व का आ और पर का आदि वर्ण इ था। अब हम उस ए को आ मानकर ओमाडोश्च सूत्र से पररूप करना हो तो ए को आ भी माना जा सकता है ? और ए को इ भी माना जा सकता है? पूर्वाश्रित कार्य करने में अन्त के समान हो गया है। आ+इ में अन्त में आ था। आ यह आड है। उसे मानकर होने वाला पररूप हो गया है। पूर्व रूप पूर्व और पर के स्थान में होता है। ऐसा करने पर शिवेहि रूप बन जाता है। अतः इस इकाई में सिखे हुये सूत्रोंके आधार पर विभिन्न प्रयोगों की सिद्धियाँ बता सकेंगे।

शब्दावली

शब्द	अर्थ
उपैति	पास जाता है
उपैधते	पास बढ़ता है
प्रष्ठौहः	प्रष्ठवाह का
प्रौहः	उत्तम तर्क या उत्तम तर्क करने वाला
प्रौढः	बढ़ा हुआ या अधेड़
प्रौढिः	प्रौढता या शेरवीं
प्रैषः	अच्छा भेजने वाला
प्रैष्यः	भेजने योग्य सेवक
प्रार्णम्	अधिक व उत्तम ऋण
वत्सतरार्णम्	वछड़े के लिए ऋण
कम्बलार्णम्	कम्बल के लिए ऋण
वसनार्णम्	कपड़े का ऋण
ऋणार्णम्	ऋण चुकाने के लिए ऋण
दशार्णः	दश प्रकार के जल वाला देश
सुखार्तः	सुख से प्राप्त
कृष्णैकत्वम्	कृष्ण की एकता
गंगौघः	गंगा का प्रवाह
देवैश्वर्यम्	देवों का ऐश्वर्य
कृष्णौत्कठयम्	कृष्ण के विषय में उत्कृष्ट
प्राच्छति	अच्छी तरह से जाता है।
प्रेजते	अत्यन्त चमकता है।
उपोषति	जलता है।
शकन्धुः	शनायक देश कूप
कर्कन्धु	कर्क नामक कोई राजा, उसका कूप
मनीषा	वृद्धि

मार्तण्डः	सूर्य
परमर्तः	मुक्त
शिवायों नमः	शिव जी को नमस्कार है
शिवेहि	हे शिव आइये
दैत्यारिः	दैत्यों का शत्रु भगवान विष्णु
श्रीशः	लक्ष्मी का स्वामी = भगवान विष्णु
विष्णूदयः	विष्णु का उदय
होतृकार	होता का ऋकार
हरदेव	हे हरे रक्षा करो
विष्णोऽव	हे विष्णों रक्षा करो

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अतिलघुउत्तरीय प्रश्न

1. (वृद्धि रादैच्)
2. तीन (आ, ऐ, औ)
3. कृष्ण + एकत्वम्)
4. (अक्षौहिणी सेना)
5. तृतीया तत्पुरुष)
6. प्र + ऋणम्)
7. (उपसर्ग संज्ञक)
8. (वृद्धि संज्ञा)
9. (अचोऽन्त्यादिटि)
10. (मनस् + ईषा)
11. (पररूप)
12. (सवर्णदीर्घ)
13. अकः सवर्णे दीर्घः)
14. दैत्य + अरिः)
15. (एडः पदान्तादति)

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. क)
2. (ग)
3. (ग)
4. (ग)
5. (घ)
6. (घ)

7. (क)

8. (ग)

9. (घ)

10. (ष)

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी

2. सिद्धान्तकौमुदी

5.8 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी.- श्रीधरानन्द शास्त्री

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दीर्घ सन्धि कहाँ पर होती है ? सूत्र उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये ।
2. उपसर्ग कितने प्रकार के हैं । किन्हीं पाँच उपसर्गों का उल्लेख कर उदाहरणों की सिद्धिकरें ।
3. तृतीया विभक्ति के वार्तिक की व्याख्या कीजिये ।
4. पूर्वरूप संधि को उदाहरण सहित समझाइये ।

इकाई - 6: सर्वत्र विभाषा गोः से ऋत्यकः सूत्र तक

इकाई की रूपरेखा

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 उद्देश्य
- 6.3 व्याकरण, सर्वत्र विभाषा गोः से ऋत्यकः तक
- 6.4 सारांश
- 6.5 शब्दावली
- 6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 6.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
- 6.8 उपयोगी पुस्तकें
- 6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

व्याकरण शास्त्र के अध्ययन से सम्बन्धित यह छोटी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने दीर्घ, पूर्वरूप आदि संधियों के सूत्र व उनके उदाहरणों की सिद्धि का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में लौकिक और वैदिक प्रयोगों में प्रकृतिभाव करने के नियम के साथ - साथ सर्वादेश विधान सहित दूर से बुलाने व प्रगृह्य, निपात आदि संज्ञाओं से संबद्ध सूत्रों व उनके उदाहरणों का वर्णन किया गया है।

अनेक अल् वाला आदेश शित् होकर सम्पूर्ण के स्थान पर होता है। स्फोटायन के मत में अवङ् आदेश होता है। अच् प्रत्याहार के परे होने पर प्लुत और प्रगृह्य को प्रकृतिभाव हो जाता है। अ सवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण यदि बाद में आता हो तो पदान्त में इक् रहने पर उसी को ह्रस्व हो जाता है। समास में यदि अ सवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण बाद में हो तो पदान्त इक् को ह्रस्व नहीं होता।

अतः इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रकृतिभाव सन्धि को समझते हुए उसकी महत्ता को भी बता सकेंगे और इस इकाई में आये हुये सूत्रों व उदाहरणों की सिद्धि कर सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- प्रकृतिभाव संधि की परिभाषा बतायेंगे।
- सर्वत्र विभाषा गोः इस सूत्र का प्रयोग कहाँ पर होता है, इसे समझायेंगे।
- अवङ् स्फोटायनस्य सूत्र का प्रयोग कहाँ पर होता है, इसे भी बतायेंगे
- ईदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम् सूत्र का उपयोग समझायेंगे ?
- निपात संज्ञा कहाँ पर होती है उसका प्रयोजन क्या है, इसे सिद्ध करेंगे
- ऋत्यकः सूत्र का प्रयोग कहाँ पर होता है इसका उदाहरण क्या है, उल्लेख करेंगे

6.3 प्रकृतिभाव -सन्धि

44 सर्वत्र विभाषा गोः 6/1/122//

लोके वेद चैडन्तस्य गोरतिवा प्रकृति भावः पदान्ते । गो अग्रम!गोऽग्रम!एडन्तस्य किम्!चित्रग्वग्रम! पदान्ते किम् । गोः।

अर्थः- लौकिक एवं वैदिक प्रयोगों में एडन्त गो शब्द को अत् ह्रस्व अकार परे रहने पर विकल्प से प्रकृति भाव होता है। पदान्त में।

गो अग्रम् गो+अग्रम् (गवाम्, अग्रम्, ऐसा यहाँ पर षष्ठी तत्पुरुष समास होता है। अतः समास होने के बाद पदत्व विद्यमान रहता है।) यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अच् आदेश प्राप्त था। उसे बांधकर एङ्ः पदान्तादति इस सूत्र से पूर्वरूप प्राप्त था। उस पूर्वरूप को भी बांधकर सूत्र लगा।

सर्वत्र विभाषा गोः। गो शब्द गो यह पद है। और पदान्त एङ् (ए + ओ) है गो में ओकार । उस ओकार से परे ह्रस्व अकार है अग्रम का अकार। अतः प्रकृति भाव हुआ। प्रकृति भाव का अर्थ है जिस स्थिति में था वैसा ही रहना । इसी को प्रकृति भाव कहते हैं। गो अग्रम ज्यो का त्यो रहा। प्रकृति भाव विकल्प से होता है । अतः प्रकृति भाव जिस पक्ष में नहीं होगा उस पक्ष में एङ् पदान्तादति सूत्र से पूर्वरूप होकर गोअग्रम् रूप सिद्ध होता है।

एङन्तस्य किम् चित्रग्वग्रम्:-यहाँ पर प्रश्न करते हैं कि सर्वत्र विभाषागोः इस सूत्र के वृद्धि में एङन्त क्यो पढ़ा गया न पढ़ते तो क्या हानि होती? यदि सूत्र में एङन्त नहीं पढ़ते तो सूत्र का अर्थ होता-लोक अथवा वेद में गो शब्द को विकल्प से प्रकृतिभाव होता है। पदान्त में ऐसा अर्थ होने पर चित्रगु अग्रम् यहाँ पर भी प्रकृतिभाव होने लगता क्योंकि चित्रगु में एङन्त अर्थात् ए ओ नहीं पढ़ा गया है। इसलिये एङन्त गो शब्द को ही प्रकृति भाव होगा। जहाँ पर एङन्त गो शब्द नहीं है उनका प्रकृति भाव नहीं होगा। चित्रगुअग्रम् यहाँ पर समास करते हैं चित्रा गावो यस्य, चित्रा जस् गो जस बहुब्रीहि समास होकर चित्रगो बना। तथा गो को ह्रस्व करके चित्रगु बना। अतः यहाँ पर गो शब्द तो है। पर एङन्त गो शब्द नहीं है। यदि सूत्र में एङन्त गो शब्द यही पढ़ा गया होता तो चित्रगु अग्रम ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता इसलिये सूत्र में एङन्त गो शब्द पढ़ना आवश्यक है । चित्रगु+ अग्रम यहाँ पर इकोयणचि सूत्र से यण् होकर चित्रगव्+अग्रम बना। वर्ण सम्मेलन होकर चित्रग्वग्रम प्रयोग सिद्ध होता है ।

पदान्ते किम् गोः यहाँ पर दूसरा शंका उत्पन्न होता है कि सर्वत्र विभाषा गोः सूत्र में पदान्त क्यो पढ़ा गया । इसकी आवश्यकता क्या थी? यदि सूत्र में पदान्त शब्द को नहीं पढ़ा गया होता तो इसका अर्थ होता-लोक अथवा वेद में एङन्त गो शब्द को विकल्प से प्रकृति भाव हो ऐसा अर्थ होने पर गो शब्द में भी प्रकृति भाव होने लगेगा जिससे अनिष्ट रूप बनने लगता है। गो शब्द के षष्ठी विभक्ति एकवचन की विवक्षा में इस प्रत्यय होकर गो+ङ्स् बना। डकार की लशक्वतद्धिते सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर गो+अस् बना। जिस शब्द के अन्त में सुप् प्रत्यय हो उसे सुवन्त कहते हैं । अर्थात् प्रकृति प्रत्यय जब दोनो एक साथ मिलते हैं । तो पदान्त बनते हैं। यहाँ पर गो शब्द प्रकृति है तथा ङ्स् के स्थान पर जो अस् आया है । वह प्रत्यय है । अतः प्रकृति प्रत्यय जब तक दोनो एक साथ नहीं मिलते तब तक पदान्त नहीं बन सकता । अतः यहाँ पर गो शब्द पदान्त नहीं है । यदि सूत्र में पदान्त नहीं पढ़ा गया होता तो गो शब्द को प्रकृति भाव होकर गो अस् ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता । उस अनिष्ट को रोकने के लिए सूत्र में पदान्त शब्द पढ़ा गया। गो + अस् यहाँ पर प्रकृति भाव नहीं हुआ । अतः यहाँ पर । ङ्सिङ्सोश्च सूत्र से पूर्वरूप होकर गोस् बना । तथा स्कार को रुत्व विसर्ग होकर गोः शब्द की सिद्धि होती है ।

सर्वादेश विधान करने वाला परिभाषा सूत्र।

45- अनेकाल् शित् सर्वस्य 1/1/55// इति प्राप्ते

अर्थ- अनेक अल् वाला आदेश और शित् सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश होते हैं ।

अनेक+अल्=अनेकाल । जिस आदेश में अनेक अल् अर्थात् एक से अधिक अल् हों उसे अनेकाल कहा जाता है। अल् अर्थात् वर्ण होता है जिस में स्वर तथा व्यंजन सभी वर्ण आते हैं ।

शित् किसे कहते हैं? जिस आदेश में शकार की इत्संज्ञा हुई हो उसे शित् कहते हैं। जब किसी अंग आदि के स्थान पर किसी सूत्र से आदेश का विधान किया जाता है और उसमें स्पष्ट रूप से यह निर्देश नहीं दिया गया है कि आदेश सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर हो या स्थानी के अन्तिम-वर्ण या आदि वर्ण, के स्थान पर हो। इस नियम को निश्चित करने के लिये यह परिभाषा सूत्र बनाया गया। कि जिस आदेश में अनेक अल् अर्थात् वर्ण हो तो सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। इसी प्रकार जिस आदेश में शकार कि इत्संज्ञा हुई हो तो वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर आदेश होता है।

अनेकाल आदेश का उदाहरण -

रामैः - राम शब्द से तृतीया विभक्ति बहुवचन विवक्षा में भिस् प्रत्यय होकर रामभिस् बना। अतो भिस् 'ऐस्' सूत्र से भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है। अब यहाँ पर शंका होती है कि ऐस् जो आदेश करना है वह भिस् के किसी एक वर्ण के स्थान पर हो कि सम्पूर्ण भिस् के स्थान पर ऐस् हो। इस शंका के निवारण के लिये यह सूत्र बनाया गया है कि जिस आदेश में अनेक अल् हो वह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर होता है। यहाँ पर ऐस् आदेश है वह अनेक अल्(वर्ण) है। इस लिये यह आदेश सम्पूर्ण भिस् के स्थान पर इस परिभाषा सूत्र के द्वारा आदेश होकर राम+ऐस् बना वृद्धिरेचि सूत्र से वृद्धि होकर रामैस् बना। तथा संकार को रुत्व विसर्ग होकर रामैः प्रयोग सिद्ध होता है। उसी प्रकार शित् का उदाहरण भी समझना चाहिए।

अन्य आदेश का विधान करने वाला परिभाषा सूत्र-

46 डिच्च 1/1/ 53// डिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात्।

अर्थ- डिच् आदेश अनेकाल होने पर भी अन्त्य के ही स्थान पर होता है।

यह सूत्र अनेकाल शित् सर्व का बाधक है आदेश अनेकाल भी हो और डिच् भी होतो अर्थात् आदेश में डकार की इत्संज्ञा हुई हो तो भी वह आदेश सभी के स्थान पर न होकर केवल अन्त्य अल् वर्ण के ही स्थान पर होता है। अर्थात् स्थानी के जो अन्त्य वर्ण उसी वर्ण के स्थान पर होता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि आदेश अनेकाल हो या न हो यदि डिच् है तो अन्त्य वर्ण के ही स्थान पर होगा इसका अवङ् आदेश विधायक विधि सूत्र

47 अवङ् स्फोटायनस्य 6/1/123//

पदान्ते एडन्तस्य गोरवड वाऽचि । गवाग्रम्, गोऽग्रम् पदान्ते किम्? गवि ।,

अर्थ- पदान्त में एडन्त तदन्त गो शब्द इसको अच् परे रहने पर विकल्प से अवङ् आदेश होता है। 'स्फोटायन' पाणिनि के पूर्ववर्ती व्याकरण के आचार्य होचुके हैं। कहते हैं कि ये वैयाकरणों में प्रसिद्ध स्फोटतत्व के उपज्ञाता थे। इस सूत्र में पाणिनी ने उन के मंत्रो का उल्लेख किया है। यह अवङ् आदेश स्फोटायन आचार्य के मत में होता है अन्य आचार्य के मत में नहीं होता है। अतः अवङ् आदेश विकल्प से होता है। अवङ् से डकार की हलन्त्यम् 'सूत्र से इत्संज्ञा होती है तथा तस्य लोपः से लोप होता है। केवल अव ही बचता है। डकार ही उत्संज्ञा होने के कारण यह आदेश डिच् है। डिच् होने से अवङ् आदेश अन्त्य वर्ण गो के ओकार के स्थान पर आदेश होता है।

गवाग्रम- गो ऽग्रम् । गवाम् अग्रम् लौकिक विग्रह तथा गो+आम् अग्रम् समास होकर तथा विभक्ति का लोप होकर के गो+अग्रम् ऐसा प्रयोग बना। यहाँ पर एचोऽयवायावः से अवादेश प्राप्त है। उसको बाधकर एङ पदान्तादति सूत्र से पूर्वरूप प्राप्त है। उसको भी बाधकर सर्वत्र विभाषा गोः सूत्र से प्रकृति भाव प्राप्त है। उसको भी बाधकर सूत्र लगा- अवङ स्फोटायनस्या आय विभक्ति का लुप्त होने पर गो का ओकार पदान्त है। अतः गो का ओकार पदान्त होने से गों के ओकार के स्थान में अवङ् आदेश विकल्प से होगा। ग् अवङ्+अग्रम् बना। डकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोप से लोप होकर ग्+अव+अग्रम् बना। ग में अकार मिलकर गव+अग्रम् बना। अकःसवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ होकर गवाग्रम् प्रयोग सिद्ध होता है। जिस पक्ष में अवङ आदेश नहीं होगा। उस पक्ष में एङ पदान्तादति सूत्र में पूर्वरूप होकर गोऽग्रम् प्रयोग सिद्ध होता है। अतः अवङ आदेश पक्ष में गवाग्रम् तथा अवङ अभाव पक्ष में गोऽग्रम् प्रयोग सिद्ध होता है।

पदान्ते किम् ? अब यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होता है। कि अवङ स्फोटायनस्य सूत्र में पदन्त क्यो पढ़ा गया ? उतर देते हैं कि पदन्त नहीं पढ़ा गया होता तो पदान्त अपदान्त दोनों जगह अवङ आदेश होता। पदान्त में अवङ् आदेश करना तो अनिवार्य है। अपदान्त में अवङ् आदेश करना अनिवार्य नहीं है यथा गवि यह सप्तमी विभक्ति एङ वचन का रूप है सप्तमी विभक्ति एक वचन का रूप है सप्तमी में गो शब्द से ङि प्रत्यय होकर तथा ड.कार की इत्संज्ञा होकर गो+ इ बना। गवि यह पुरा पद है। किन्तु गो+इ में यह पुरा पद नहीं है। क्योंकि प्रकृति प्रत्यय जब दोनों एक साथ मिलता है। तो पदान्त बनता है। यहाँ पर गो प्रकृति है। इ प्रत्यय है। अतः गो + इ यह अपदान्त है। अपदान्त होने से अवङ् आदेश नहीं होगा। जब अवङ् आदेश नहीं होगा। एचोऽयवायाव सूत्र से गो के स्थान में अच् आदेश होकर ग् + अच् + इ बना। वर्ण सम्मेलन होकर गवि यह प्रयोग सिद्ध होता है। इस लिए पदान्त ग्रहण किया गया।

अवङ् आदेश विधायक विधि सूत्र

4.8 इन्द्रे च 6/91/120//

गोरवङ् स्यात् इन्द्रे । गवेन्द्र

अर्थ- इन्द्र शब्द परे होने पर एङन्त गो शब्द को अवङ आदेश होता है। अवङ में डकार की हलन्त्यम् से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होता है डित होने के कारण डिच्च सूत्र की सहायता से अन्तिम् वर्ण पर गो के ओकार के स्थान पर होता है।

गवेन्द्र - गो + इन्द्रः यहाँ पर अवङ् स्फोटायनस्य सूत्र से अवङ आदेश प्राप्त था उसे बाधकर सूत्र लगा। इन्द्रे च । यह सूत्र कहता है कि इन्द्र शब्द पर में हो तो एङन्त गो शब्द को अवङ आदेश होता है। यहाँ पर एङन्त है गो का ओकार पर में इन्द्र शब्द है। इसलिये गो के ओकार, के स्थान में अवङ् आदेश होकर ग् अवङ् इन्द्र बना। डकार की हलन्त्यम् सूत्र में से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर ग् अव+इन्द्रः बना। ग् में अच् का अकार को मिलने से गव +इन्द्रः बना। गव का अकार तथा इन्द्रः का इकार दोनों के स्थान में आद गुणः से गुण होकर गवेन्द्रः प्रयोग सिद्ध होता है।

प्लुत आदेश विधायक सूत्र**49. दूराद्धूते च 8/2/ 84//**

दूरात्सम्बोधने वाक्यस्य टेः प्लुतो वा स्यात् ॥

अर्थ- दूर से सम्बोधन करने में प्रयुक्त जो वाक्य है। उसके टि को विकल्प से प्लुत होता है सभी प्लुतों को विकल्प से माना जाता है। इस सूत्र में एक मात्रिक ह्रस्व को, द्विमात्रिक को दीर्घ तथा त्रिमात्रिक को प्लुत आदेश होता है। जब लोक में किसी का नाम लेकर पुकारते हैं तो स्वाभाविक रूप से प्लुत का ही उच्चारण करते हैं। जैसे- भो देवदत्त। प्लुत का एक प्रयोजन प्रकृति भाव भी होता है। जहाँ पर प्रकृति भाव प्राप्त नहीं है। वहाँ पर केवल उच्चारण काल में भेद होगा। प्लुत हो जाने के बाद उसको समझने के लिये प्रायः तीन का अंक लिखा जाता है। जैसे- हे राम 3। प्लुत करने का फल क्या है। इसका प्रयोजन अगले सूत्र में बताया जा रहा है।

प्रकृति भाव विधायक सूत्र**50. प्लुत् प्रगृहया अचि नित्यम् 6/1/125//**

एते ऽचि प्रकृत्या स्युः। आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्वरति।

अर्थ- अच् प्रत्याहार के परे होने पर प्लुत और प्रगृह्य को प्रकृति भाव होता है। आगच्छ कृष्ण 3 अत्र गौश्वरति हे कृष्ण यहाँ पर आओ गाये चर रही है। आगच्छ कृष्ण + अत्र गौश्वरति यहाँ पर कृष्ण को सम्बोधन किया जा रहा है अतः कृष्ण में णकार में जो अकार है वह टि संज्ञक भी है। उसकी दूराद्धूते च सूत्र से टि को प्लुत् हो गया। उसके बाद सूत्र लगा-प्लुत प्रगृह्याचिनित्यम्। यह सूत्र कहता है कि प्लुत और प्रगृह्य से अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो प्रकृति भाव होता है। यहाँ पर प्लुत् है कृष्ण में ण में अ तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। अत्र का अकार उसको प्रकृति भाव होता है। प्रकृति भाव का तात्पर्य है जिस स्थिति में था उसी स्थिति में रहना आगच्छ कृष्ण अत्र गौश्वरति जैसा था वैसा ही रहेगा।

प्रगृह्य संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र**51 इद् देद्विवचनं प्रगृह्यम् 1/1/11//**

इद्देदन्तं द्विवचनं प्रगृह्य संज्ञं स्यात्। हरी एतौ। विष्णु इमौ। गंडे अमू।

इकारान्त द्विवचनं उकारान्त द्विवचनं और एकारान्त द्विवचनं की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

इकारान्त पुलिङ्ग शब्द के द्विवचन में हरी रूप बनता है। तथा उकारान्त द्विवचन विष्णु शब्द के रूप में विष्णु रूप बनता है और एकारान्त स्त्रीलिङ्ग गंगा शब्द के द्विवचन में गंडे बनता है अर्थात् एकारान्त हो जाता है। इनकी प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद आगे अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो प्रकृति भाव होता है स्मरण कि प्लुत संज्ञा वैकल्पिक है। किन्तु प्रगृह्य संज्ञा नित्य है। अतः प्रकृति भाव वाला रूप एक ही बनता है।

हरी एतौ - यहाँ पर हरी शब्द इकारान्त द्विवचन का रूप है इकारान्त द्विवचन होने के कारण हरी शब्द कि इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो गयी। प्रगृह्य संज्ञा होने का फल यह है कि प्लुत् प्रगृहया अचि नित्यम् से प्रकृति भाव होकर हरी+एतौ यहाँ पर प्रगृह्य संज्ञक वर्ण है हरी में ईकार प्रकृतिभाव सन्धि में इस सूत्र का उदाहरण विग्रह एवं सन्धि करें।

विग्रह	आदेश	सन्धि
हरी+एतौ	हरी+एतौ	हरी एतौ
विष्णू +इमौ	विष्णू +इमौ	विष्णू इमौ
धने+इमे	धने+इमे	धने इमे
रमे+अत्र	रमे+अत्र	रमे अत्र
कुले+इमे	कुले+इमे	कुले इमे
नेत्रे+अमृशति	नेत्रे+अमृशति	नेत्रे अमृशति
बालिके+अधीयाते	बालिके+अधीयाते	बालिके
अधीयाते		

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे ।

प्रकृति भाव होकर ज्यौ का त्यौ स्थिति रहा अर्थात् हरी एतौ ऐसा ही रहा। यदि प्रगृह्य संज्ञा प्रकृति भाव नहीं होता तो इकोयणचि से यण होकर हर्येतौ ऐसा अनिष्ट प्रयोग बन जाता।

विष्णू इमौ विष्णू +इमौ यहाँ पर इको यणचि से यण प्राप्त है। उसको बाधकर सूत्र लगा- इदुदेदं द्विवचनम् प्रगृहयम्। इस सूत्र में उकारान्त द्विवचन है। विष्णू में ऊ उसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई। उसके बाद सूत्र लगा प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्। यह सूत्र कहता है जिसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई हो उस प्रगृह्य से पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो प्रकृति भाव होता है। विष्णू इमौ यहाँ पर प्रगृह्य संज्ञक वर्ण है। णू में ऊकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। इमौ का इकार। इस लिये यहाँ पर प्रकृति भाव हुआ अर्थात् ज्यौ का त्यौ रहा कोई सन्धि नहीं हुई। विष्णु इमौ ऐसा ही रहा ।

गड़े अमू - गड़े+ अमू यहाँ पर एकारान्त द्विवचन है गंगे का ए इसलिये द्विवचन् प्रगृह्यम् से प्रगृह्य संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद सूत्र लगा प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् यह सूत्र कहता है कि प्रगृह्य संज्ञक वर्ण से पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण हो तो प्रकृति भाव होता है। यहाँ पर प्रगृह्य संज्ञक वर्ण है गड़े में एकार तथा पर में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। अम का उकार। अतः इसलिये प्रकृति भाव होकर गड़े अम ज्यौ का त्यौ रहा। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखे।

प्रगृह संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र -

52 - अदसोमात् 1/1/12//

अस्मात् परावीदू तौ प्रगृह्यौ स्तः। अमीईशाः। राम कृष्णा वमूआशते ।

मात् किम् ? अमू केऽत्र ।

अर्थ- अदस् शब्द के मकार से परे ईकारान्त उकारान्त प्रगृहय संज्ञक होते हैं । अदस् शब्द सर्वनाम है इसका तीनों लिंगों में रूप चलता है ।

पुलिंग रूप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा: विभाक्ति	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	-अमूम	अमू	अमूः
तृतीया।।	अमु	अमू भ्याम्	अमीभिः

चतुर्थी	अमुमै स्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पंचमी॥	अमुस्मात्	अमीभ्यः	
षष्ठीः॥	अमुस्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमि	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

स्त्रीलिंग

प्रथमाः॥	असौ	अमू	अमू
द्वितीया	अमूम्	अमू	अमूः
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
चतुर्थी॥	अमुष्यौ	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पंचमी	अमुष्याः	अमू पभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठीः	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमि॥	अमुष्याम्	अमुयोः	अम पषु

नपुंसकलिंग में

प्रथमाः	अदः	अमू	अमू वनि
द्वितीया	अदः	अमू	अमू पनि

शेष पुलिङ्ग के समान चलता है ।

अदस् शब्द के मकार से परे ईकारान्त ऊकारान्त पुलिङ्ग में प्रथमा विभक्ति के बहुवचन तथा द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में और स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग में प्रथमा द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में ही प्राप्त होते हैं। इन में से स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग वाले इस सूत्र के उदाहरण नहीं मिलते हैं। क्योंकि वहा पर इदूदेद्विवचन प्रगृह्यम् सूत्र से ही प्रगृह्य संज्ञा सिद्ध हो जाती है। केवल पुलिङ्ग के अम प, अमी इन दो रूपों के लिये ही यह सूत्र बनाया गया है। उदाहरण यथा- अमी + ईशाः यहाँ पर पुलिङ्ग में अदस् शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन विवक्षा में जस् प्रत्यय करने पर त्यदाघत्व पररूप जस् को शी‘आदेश तथा गुण करने के बाद अ बदे। तथा एत् इद् बहुवचने सूत्र से ए को इकार तथा उकार का मकार होकर अमी प्रयोग सिद्ध होता है। इसके आगे ईशाः प्रयोग करने के पर अमी ईशाः बना। यहाँ पर अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घ प्राप्त था। उसको बाधकर अदसो मात् सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुतप्रगृह्याचिनित्यम् से प्रकृति भाव होकर ज्यौ का त्यौ रहा कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

रामकृष्णावमूआसात् यहाँ पर इको यणचि सूत्र से यण् प्राप्त था। उस यण् को बाधकर अदसो मात् सूत्र लगा। यहाँ पर अदस् सम्बन्धी मकार से अकार इसकी प्रगृह्य संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होता है। प्रकृति भाव अर्थात् ज्यौ का त्यौ रहना उसमें कोई परिवर्तन न होना। रामकृष्णावमू आसात् में कोई परिवर्तन नहीं हुई।

मात् किम् ? अमुकेऽत्र - यहाँ पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि सूत्र में मात् अर्थात् म से परे ऐसा क्यों कहा गया है? क्योंकि मकार से अतिरिक्त अन्य किसी वर्ण से परे इकारान्त ऊकारान्त अदस् से तीनों लिंगों में कहीं नहीं पाये जाते। अतः मात् ग्रहण न करने से भी ‘अमू’, ‘अमी’ शब्दों की

प्रगृह्य संज्ञा होगी । इसका उत्तर यह है कि अमु केऽत्र । अर्थात् मात का ग्रहण न करने से अमु केऽत्र प्रयोग में दोष आयेगा । तथाहि अदस् शब्द से परे अकच् प्रत्यय होकर अदकस् बना। तथा अदसोऽसेर्दा दुदोमः सूत्र से मुत्व होकर अम पकस बना। अब प्रथमा के बहुवचन विवक्षा में जस प्रत्यय तथा जस् के स्थान में जसः शी सूत्र द्वारा शी आदेश होकर अदकस्+शी बना। झकार की इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर तथा त्यदाद्यत्व पररूप एवं आद् गुणः णे गुण होकर अम पके प्रयोग सिद्ध होता है। अब इसके आगे अत्र पर लाने से एङः पदान्तादति सूत्र द्वारा पूर्व रूप करने पर अमुकेऽत्र प्रयोग सिद्ध होता है । यदि सूत्र में मात ग्रहण न करते तो यहाँ ककार से परे भी प्रगृह्य संज्ञा होकर प्रकृति भाव हो जाता । इससे एङ पदान्तादति की प्रवृत्ति नहीं होती । इसलिये मात ग्रहण किया गया है ।

इस सूत्र का उदाहरण तथा विग्रह एवं सन्धि करे -

विग्रह-	आदेश	सन्धि
अमी ईशाः	अमा ईशाः	अमी+ईशाः
अमी+अश्रन्ति	अमी+अश्रन्ति	अमी+अश्रन्ति

इन सूत्रों का उदाहरण प्रायः कम प्राप्त होता है । निपात की भी प्रगृह्य संज्ञा होती है निपात विधायक सूत्र लिखते हैं-

निपात संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

53 चादयो ऽसत्वे 1/4/57//

अद्र व्यर्थाश्चादयो निपाताः स्यु

अर्थ- द्रव्य अर्थ न होने पर च आदि की निपात संज्ञा होती है । यैः लिङ् संख्यान्वयित्वं द्रव्यत्वं जिस शब्द में लिंग और संख्या का अन्वय अर्थात् संबन्ध हो अथवा जिस शब्द में लिंग संख्या हो उसे द्रव्य कहते हैं । और उससे भिन्न अद्रव्य है जैसे- च, वा, हि, आ, ये शब्द लिंग संख्या से रहित हैं । अतः ये अद्रव्य हैं और पशु, मनुष्य, वन आदि द्रव्य हैं । यह सूत्र से चादि गण में पठित शब्द की निपात संज्ञा होती है । यदि उसमें द्रव्य वाचकता न होतो । निपात संज्ञा के अनेक फल होते हैं। उन में से एक फल प्रगृह्य संज्ञा भी है।

निपात संज्ञा विधायक सूत्र

54 . प्रादयः 1/4/58// एतेऽपि तथा

अर्थ- द्रव्य अर्थ न होने पर प्र आदि की निपात संज्ञा होती है। द्रव्य अर्थ में प्रादियों की निपात संज्ञा नहीं होती जिस प्रकार प्रादि गण में वि शब्द पढ़ा गया है यदि उसका अर्थ पक्षी होगा तो वह द्रव्य वाचक होगा। द्रव्य वाचक होने से उसकी निपात संज्ञा नहीं। होगी निपात न होने से यह अव्यय भी नहीं होगा और अव्यय न होने से सुप् का लुक् भी नहीं होगा। विः, पक्षी, विं, पश्य, इत्यादि। जिसकी निपात संज्ञा होती है। उनकी प्रगृह्य संज्ञा और प्रकृति भाव होता है।

प्रगृह्य संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

55 . निपात एकाजनाड् 1/1/14// एकोऽज निपात आङ् वर्जः प्रगृह्य स्यात्।

इ इन्द्रः । उमेशः । वाक्यस्मरणयोरिडित् । आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । अन्यत्र डित्

आ इषदुष्णम् ओष्णम्।

अर्थ- आङ् शब्द को छोड़कर मात्र एक अच् वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है। जिसकी पहले निपात् संज्ञा हो चुकी है, और उसमें मात्र केवल एक ही अच् हो, और वह एक अच् भी आङ् वाला न होतो उसकी इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हे जाती है। अनाङ् अर्थात् आङ् को छोड़कर। ऐसा इस लिये कहा गया है कि आङ् में ड.कार की इत्संज्ञा तथा तस्यः लोपः से लोप हो जाने के बाद आ मात्र वचता है। उसकी निपात संज्ञा न हो सके। क्योंकि आङ् को छोड़कर सभी एकाच निपात प्रगृह्य संज्ञक होते है।

उदाहरण- इ इन्द्रः यहाँ पर अद्रव्यार्थ वाचक चादि गण में इ पढ़ा गया है। अतः उसकी चादयोऽसत्वे सूत्र से निपात संज्ञा हो गयी। और निपात एकाजनाङ् सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हो गयी। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत प्रगृह्याचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होकर इ + इन्द्रः ज्यौ का त्यौ रहा अर्थात् उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि निपात संज्ञा नहीं होता तो अकःसवर्णे दीर्घः से सवर्णे दीर्घः होकर ईन्द्रः ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। इसी प्रकार अगला उदाहरण भी देखें-

उ उमेशः - यहाँ पर अद्रव्यार्थ वाचक चादि गण में पठित शब्द है उ का उकार उस उकार की चादयोऽसत्वे इस सूत्र से निपात संज्ञा हो गयी। निपात संज्ञा होने के बाद निपात एकाजनाङ् इस सूत्र से उकार की प्रगृह्य संज्ञा हो गयी। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत् प्रगृह्य अचि नित्यम् इस सूत्र से प्रकृति भाव होकर उ उमेशः ज्यौ का त्यौ बना रहा। अतः इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि इसकी निपात संज्ञा नहीं होती तो अकः सवर्णे दीर्घः सूत्र से सवर्ण दीर्घः होकर ऊमेशः ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता।

वाक्यस्मरणयोरडित। अन्यत्र डित्। वाक्य और स्मरण अर्थ में आ अडित होता है। चादि गण में आ पढ़ा गया तथा प्रादि गण में आङ् पढ़ा गया है। इन दोनों को चादयोऽसत्वे तथा प्रादयः से निपात संज्ञा होती है इस प्रकार से दो निपात माने गये है। इनमें प्रथम् आ की निपात एकाजनाङ् से प्रगृह्य संज्ञा होती है। किन्तु सूत्र में अनाङ् कहा गया है अर्थात् आङ् की प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती है। अब यहाँ पर समस्या यह उत्पन्न होती है कि आङ् में डकार की हलन्त्यम् सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर आ ही बचता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उत्पन्न होता है यह आ चादि गण वाला है। कि प्रादि गण वाला आ। किस जगह अडित आ को माने और किस जगह डित आ को। इस समस्या के समाधान के लिये सूत्र में लिखा है कि वाक्य स्मरणयोरडित्। अन्यत्र डित् वाक्य और स्मरण अर्थ में आ को डित् माना जाय अर्थात् चादि गण वाला आ माना जाय और अन्यत्र अडित् माना जाय अर्थात् प्रादि गण वाला आङ् माना जाय। इसके उत्तर में भाग्यकार ने स्वयं व्यवस्था दी है।

इषदर्थे क्रिया योगे मर्यादाऽभिविधौ चयः।

एतमातं डित विद्याद् वाक्यस्मरणयोरडित्

अर्थात् इषद्= अल्प अर्थ में, क्रिया योगे = क्रिया के साथ योग होने पर, मर्यादा भिविधौ च मर्यादा और अभिविधि अर्थ में अडित् = अर्थात् आ मानना चाहिये और अडित् आ कि प्रगृह्य

संज्ञा होती है। और डित् की नहीं होती है। आ एवं नु मन्यसे। (अब तुम ऐसा मानते हो)। यह वाक्य अर्थ में है तथा आ एवं किल तत् हा पर ऐसा ही है। स्मरण अर्थ में आ अडित माना जाये अर्थात् चादि गण वाला आ माना जाये। अ डित अर्थात् चादि आ की प्रगृह्य संज्ञा होती है। डित् की प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती है। इसलिये आ यहाँ पर अडित माना गया है। इसलिये आ की निपात एकाजनाड इस सूत्र में प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुत प्रगृहया अचि नित्यम् से प्रकृति भाव होकर आ एवं यहाँ पर वृद्धि रेचि से सूत्र से वृद्धि प्राप्त थी। उसको बाधकर प्रकृति भाव हो गया अर्थात् उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आ एवं नु मन्यसे तथा आ एवं किल तत् ज्यौ का त्यौ बना रहा। इन दोनों अर्थों से जहा पर भिन्न अर्थ होगा वहा पर प्रकृति भाव नहीं होगा। इषद् आदि अर्थों में डित होने के कारण प्रगृह्य संज्ञा नहीं हुई। तो प्रकृति भाव भी नहीं हुआ। अतः आ का उषाम के उकार के साथ है। अर्थात् आ+ उष्णम्। इस अवस्था में आद गुणः सूत्र से गुण होकर आ उ = ओ बना। वर्ण सम्मेलन होकर ओष्णम् प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार इसका अन्य उदाहरण भी देखें-

प्रगृह्य संज्ञा विधायक संज्ञा सूत्र

56 ओत् 1/1/15//

ओदन्तो निपात् प्रगृह्यः स्यात्। अहो ईशाः।

विग्रह	आदेश	सन्धि
अहो+आश्चर्यम्	अहो+आश्चर्यम्	अहो आश्चर्यम्
अथो+इति	अथो+इति	अथो इति
उताहो+असत्यम्	उताहो+असत्यम्	उताहो असत्यम्

अर्थ- ओकार अन्त वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है।

अहो ईशाः अहो + ईशाः यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अवादेश प्राप्त है। उस अवादेश को बाधकर सूत्र लगा इस चादयोऽसत्वे सूत्र से अहो की निपात संज्ञा हुई। निपात संज्ञा होने के बाद सूत्र लगा- ओत् सूत्र लगा यह सूत्र कहता है कि ओकर अन्त वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है, वह निपात है। यहाँ पर अहो में जो ओकार है। वह नियात है। ओकारान्त निपात होने से प्रगृह्य संज्ञा हुई। प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्लुत प्रगृहया अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होता है। अर्थात् अहो+ईशाः में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अहो ईशाः ज्यो का त्यो रहा।

इसी प्रकार अथो, नो, आहो, उताहो आदि अन्य उदाहरण भी समझ लेना चाहिये।

ध्यान रहे कि यहाँ पर एक अच् रूप निपात न होने से पूर्व सूत्र द्वारा प्रगृह्य संज्ञा नहीं हो सकती है। अतः इस लिये अगला सूत्र अनाया गया।

57. सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्थे 1/1/16//

सम्बुद्धि-निमित्तक ओकारो वा प्रगृह्यो ऽवैदिके इतौ परे विष्णो इति। विष्ण- इति। विष्ण विति।

अर्थ- सम्बुद्धि निमित्तक ओकार से अवैदिक अर्थात् वेद में न पाये जाने वाले इति शब्द के परे होने पर विकल्प करके प्रगृह्य संज्ञा होती है। उदाहरण यथा -

विष्णो इति- विष्णो + इति (यहाँ पर विष्णो शब्द सम्बोधन एक वचन का रूप है।) यहाँ पर

एचोऽयवायावः सूत्र से विष्णो में ओ के स्थान पर अच् आदेश प्राप्त है उस अवादेश को बाधकर सूत्र लगा । सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे । यह सूत्र कहता है कि सम्बुद्धि निमित्तक ओकर से अवैदिक इति शब्द पर होने पर ओकार की प्रगृह्य संज्ञा होती है । विकल्प से ।

यहाँ पर सम्बुद्धि का ओकार है विष्णो में ओ तथा पर में अवैदिक इति शब्द पर है इति। इसलिये ओकार की प्रगृह्य संज्ञा होकर प्लुत् प्रगृह्या अचि नित्यम् सूत्र से प्रकृति भाव होकर विष्णो इति ज्यौ का त्वा रहा । अर्थात् इसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । किन्तु प्रगृह्य संज्ञा विकल्प से होता है। जिस पक्ष में प्रगृह्य संज्ञा नहीं होगी उस पक्ष में प्रकृति भाव भी नहीं होगा । अब यहाँ पर एचोऽयवायावः सूत्र से अच् आदेश होकर विष्ण्+अच्+इति बना। णकार में अकार मिलकर विष्णव इति बना । अच् यहाँ पर पदान्त वकार मानकर लोपः शाकल्यस्य सूत्र से विकल्प से व का लोप होकर विष्ण इति सिद्ध होता है (यहाँ पर आद् गुणः सूत्र से गुण नहीं होता पूर्वत्रासिद्धम् सूत्र में निर्णय किया गया है ।) किन्तु वकार का लोप विकल्प से होता है जिस पक्ष में वकार का लोप नहीं होगा उस पक्ष में विष्णव् इति बना। वर्ण सम्मेलन होकर विष्णव विति रूप सिद्ध होता है। इस प्रकार तीन रूप बना - प्रकृति भाव पक्ष में विष्णो इति। अवादेश तथा व का लोप पक्ष में विष्ण इति। व का लोप नहीं होगा उस पक्ष में विष्ण विति। इस प्रकार अन्य उदाहरण भी देखिये।

विग्रह	आदेश	सन्धि
विष्णो इति	विष्णो इति	विष्णो इति
शम्भो इति	शम्भो इति	शम्भो इति
यानो इति	यानो इति	यानो इति

वकारादेश विधायक विधि सूत्रम्

58. मय उमो वो वा 8/3/33//

मयः परस्य उमो जो वो वा स्यादचि ।

किम्बुक्तम् । किमु उक्तम् ॥

अर्थ- मय् प्रत्याहार से परे उ' निपात को विकल्प करके व आदेश हो जाता है। अच् परे हो तो । यह सूत्र प्रकृतिभाव को बाधकर वकारादेश करने के लिये प्रवृत्त हुआ है । आदेश न होने के पक्ष में प्रकृतिभाव ही होगा । उ' में उ 'कार की इत्संज्ञा हो जाने के बाद मात्र ही बचता है ।

किम्बुक्तम् किमु उक्तम् किम् + उ' बना । 'मकार की हलन्त्य सूत्र से इत्संज्ञा तथा तस्य लोपः से लोप होकर किम् + उ बना । वर्ण सम्मेलन होकर किमु + उक्तम् बना । यहाँ पर उ' का जो उकार है । वह निपात गण में पढ़ा गया है। निपात गण में पढ़े जाने के कारण निपात एकाजनाड सूत्र से उ की प्रगृह्य संज्ञा होता है । प्रगृह्य संज्ञा होने के बाद प्रकृति भाव प्राप्त था। उस प्रकृति भाव को बाधकर के मय उ वो वा सूत्र लगा । यह सूत्र कहता है कि मय् प्रत्याहार से परे उकार के स्थान पर 'व' आदेश होता है । विकल्प से। यहाँ पर मय् प्रत्याहार का वर्ण है । किम् का मकार उस मकार से परे उ' का उकार उस उकार के स्थान पर विकल्प से व आदेश होकर किम् + व् + उक्तम् बना । वर्ण सम्मेलन होकर किम्बुक्तम् प्रयोग सिद्ध होता है । वकार आदेश विकल्प से होता है जिस पक्ष में वकार आदेश नहीं होगा, उस पक्ष प्रकृति भाव होकर किमु उक्तम् ज्यौ का

त्यौ रहा। ह्रस्व समुच्चित प्रकृति भाव विधायक विधि सूत्र

59 इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च 6/01/127//

पदान्ता इको ह्रस्वा वा स्युरसवर्णेऽचि। ह्रस्वविधान सामर्थ्यान्न स्वर सन्धि। चकि अत्र। चक्रयत्र पदान्ता किं गौर्यौ।

अर्थ- असवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो पदान्त इक् को ह्रस्व होता है। विकल्प से चक्रि अत्र, चक्रयत्र चक्री+अत्र यहाँ पर इकोयणचि सूत्र से यण् प्राप्त था उस यण् को बाधकर सूत्र लगा। इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च सूत्र लगा। यह सूत्र कहता है कि पदान्त इक् को ह्रस्व होता है असवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण पर में हो तो (सवर्णी असवर्णी स्वर के बारे में दीर्घ सन्धि में विशेष प्रकार से बताया गया है।) यहाँ पर पदान्त इक् प्रत्याहार का वर्ण है चक्री में ई तथा पर में असवर्णी अच् प्रत्याहार का वर्ण है अत्र का अकार। इस लिये चक्री में जो दीर्घ ईकार है। उसको ह्रस्व होकर चक्रि+अत्र प्रयोग सिद्ध होता है। यहाँ पर ह्रस्व होने के बाद भी इकोयणचि सूत्र से यण् होना चाहिये किन्तु सूत्र में कहा गया है कि ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वर सन्धिः अर्थात् ह्रस्व विधान करने के सामर्थ्य से स्वर सन्धि नहीं होती है। यहाँ पर एक बार ह्रस्व विधान कर दिया गया है इसलिये इको यणचि सूत्र से यण् नहीं होगा। चक्रि अत्र ऐसा ही रहेगा। किन्तु ह्रस्व विकल्प से होता है। जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में यण् होकर चक्रय्+अत्र बना। वर्ण सम्मेलन न होकर चक्रयत्र प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रूप बना। ह्रस्व पक्ष में चक्रि अत्र ह्रस्व नहीं होगा तो चक्रयत्र प्रयोग सिद्ध होता है।

पदान्ताः इति किम् गौर्यौ। सूत्र में कहा गया है कि पदान्त इक् को ही ह्रस्व हो। पदान्त इक् नहीं होगा तो ह्रस्व नहीं होगा, ऐसा क्यों कहा गया? पदान्त इक् इसलिये कहा गया कि गौरी+औ यहाँ पर प्रकृति है गौरी और प्रत्यय है औ। जब तक प्रकृति प्रत्यय नहीं मिलता तब तक पदान्त नहीं बनता यदि पदान्त नहीं कहा गया तो गौरि+औ में ह्रस्व होकर गौरी औ ऐसा अनिष्ठ प्रयोग न बन जाये इसलिये यहाँ पर पदान्त ग्रहण किया गया। इसके बाद इ को यणचि सूत्र से यण् होकर गौर्यौ प्रथमा विभक्ति में बनता है।

इस सूत्र का अन्य उदाहरण -

विग्रह	आदेश	सन्धि
चक्री+अत्र	चक्रि+अत्र	चक्रि अत्र
योगी+आगच्छति	योगि+आगच्छति	योगि आगच्छति
कुमारी+अत्र	कुमारि+अत्र	कुमारि अत्र
वारि+अत्र	वारि+अत्र	वारि अत्र

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी देखना चाहिये।

वैकल्पिक द्वित्व विधायक विधि सूत्र

60 . अचोरहाभ्यां द्वे 8/4/46//अच्: पराम्यां रेफ हकाराभ्यां परस्य यरो द्वे वास्तः गौर्यौ।

अर्थ- अच् प्रत्याहार से परे जो रेफ और हकार उस रेफ और हकार से परे जो यकार है उसको विकल्प से द्वित्व होता है।

गौर्योः - पूर्व सूत्र में गौर्यो बताया गया है। उसमें आगे की विधि को बता रहे हैं। गौरी+औ इस स्थिति में इको यणचि सूत्र से यण् होने के बाद गौर् य्+औ बना। उसके बाद सूत्र लगा-अचोरहाभ्यां द्वे। यह सूत्र कहता है कि अच् प्रत्याहार से परे रेफ और हकार, और उस रेफ और हकार से परे यर् प्रत्याहार के वर्ण को द्वित्व होता है। यहाँ पर गौर् य्+औ में अच् प्रत्याहार का वर्ण है। ग् में औ इससे परे रेफ है र् इस रकार से परे यर् प्रत्याहार का वर्ण है यकार, उसको विकल्प से द्वित्व होता है। यहाँ पर य् को द्वित्व होकर गौर् य्+ औ बना। र् को उर्ध्व गमन तथा यकार में और मिलकर गौर्यो प्रयोग सिद्ध होता है। द्वित्व विकल्प से होता है जिस पक्ष में द्वित्व नहीं होगा उस पक्ष में गौर्यो प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रूप बना गौर्यो, गौर्यो।

इस सूत्र के कुछ अन्य उदाहरण-

दित्वाभाव

विग्रह	आदेश	सन्धि
अर्+कः	अर्कः	अक्कः अक्कः
कार्+यम्	कार्यम्	कार्+य्+य् कार् य्यम्

वार्तिक ९ न समासे वाप्यश्चः

समास में असवर्ण अच् प्रत्याहार का वर्ण परे होने पर पदान्त इक को ह्रस्व नहीं होता है।

वापी\$अश्वः (तालाब में घोड़ा)

वाप्यामश्वः लौकिक विग्रह हुआ। वापी +डि+अश्व सु, अलौकिक विग्रह हुआ। सप्तमी तत्पुरुष समास होकर विभक्ति का लुक् करके वापी+अश्व बना। अब यहाँ पर इको 'उसवर्ण शाकल्यस्य ह्रस्वश्च' इस सूत्र से वापी में पी में जो इकार है उसको ह्रस्व होना चाहिए। किन्तु न समासे वाप्यश्चः इस वार्तिक के द्वारा ह्रस्व विधान को निषेध होकर वापी+अश्वः ऐसा ही रहा। अब इको यणचि सूत्र से यण् आदेश होकर वाप्य्+अश्वः बनता है। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर वाप्यस्वः प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण समझना चाहिए।

ह्रस्व समुचित प्रकृति भाव विधायक विधि सूत्र

61 .ऋत्यकः 6/1/128//

ऋति परे पदान्ता अकः प्राग्वद् वा । ब्रह्म+ऋषिः। ब्रह्मर्षि पदान्ताः किम्? आर्च्छत्।

अर्थः- ह्रस्व ऋकार के परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है। ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। ब्रह्म, ऋषिः यहाँ पर आद् गुणः सूत्र से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर सूत्र लगा ऋत्यकः। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्व ऋकार परे होने पर अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है। यहाँ पर ह्रस्व ऋकार पदान्त पर में है। ऋषि का ऋकार, उससे पूर्व में पदान्त अक् प्रत्याहार का वर्ण है। ब्रह्मा का आकार उस आकार को विकल्प से ह्रस्व होकर ब्रह्मर्षिः प्रयोग सिद्ध होता है। ह्रस्व विकल्प से होता है जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में आद् गुणः से गुण होकर ब्रह्म+ अर् +षिः बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर ब्रह्मर्षिः प्रयोग सिद्ध होता है। इस प्रकार दो रूप बनते हैं। 1 - ब्रह्म ऋषिः तथा 2- ब्रह्मर्षिः

पदान्ता किम् किम् आर्च्छत्। यहाँ पर प्रश्न करते हैं कि ऋत्यकः सूत्र में पदान्ताः नहीं पढ़ा गया

होता तो क्या हानी होती ? उत्तर दिया आच्छतः प्रयोग की सिद्धि नहीं हो पाती । यथा-आ-ऋच्छत् यहाँ पर ऋच्छ धातु लङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन का रूप है । 'आ' यह यहाँ पर आट् का आगम हुआ है । इसलिए यह जो आ है। वह अपदान्त है। अपरान्त होने से ऋकार पर में होने के बाद भी ह्रस्व नहीं होगा । आटश्च सूत्र से में पूर्व में 'आ' तथा पर में ऋ दोनों के स्थान पर वृद्धि होकर आच्छत प्रयोग सिद्ध होता है। अतः इस सूत्र में पदान्त का ग्रहण नहीं किया गया होता तो अ ऋच्छत् ऐसा अनिष्ट रूप बनने लगता। इसलिए पदान्त का ग्रहण किया गया। इसी प्रकार अन्य उदाहरण देखिये -

विग्रह	आदेश	सन्धि	ह्रस्वाभाव
कुमारी + ऋतुमती	कुमार् + इ+ ऋतुमती	कुमारि ऋतुमती	कुमार्यु तुमती
कन्या + ऋज्वी	कन्य् + अ+ ऋज्वी		कन्य ऋज्वी कन्यर्ज्वी
महा + ऋषि	मह् + अ + ऋषि		मह ऋषि महर्षि

इस प्रकार सन्धि प्रकरण सम्पूर्ण हुआ ।

अभ्यास प्रश्न

1. गो अग्रम किस सूत्र का उदाहरण है?
2. प्लुत किसे कहते हैं?
3. हरी एतौ में कौन सा सूत्र लगा है?
4. अदस् शब्द के मकार से परे इत् ऊत् की क्या होती है?
5. चादियों का द्रव्य अर्थ न हो तो उनकी क्या होती है?
6. आङ् को छोड़कर एक मात्र की क्या होती है?
7. ओकार अन्तवाला निपात की क्या होती है?
8. चक्रि अत्र में यहाँ पर पदान्त इक् है?
9. असवर्ण अच् के परे होने पर पदान्त इक् को क्या होता है ?
10. ह्रस्वं विधान सामर्थ्य से कौनसी सन्धि नहीं होती है?
11. चक्रिअत्र यह किस सूत्र का उदाहरण है?
12. गौरी + औ में यहां पर इकोऽसवर्णे से ह्रस्वं क्यों नहीं हुआ?
13. अच से परे रेफ और हकार ओर उस के रेफ और ह से परे यर को क्या होता है?
14. असवर्ण अच् परे होने पर पदान्त इक् को ह्रस्वं नहीं होता है कहां पर?
15. ऋकार परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से क्या होता है ?

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. गो + अग्रम में सन्धि हुई:-
(क) गुण (ख) दीर्घ (ग) प्रकृतिभाव (घ) अयादि
2. प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक अच् परे होने पर होता है:-
(क) प्रकृतिभाव (ख) पररूप (ग) पूर्वरूप (घ) गुण
3. इदन्त उदन्त द्विवचन की होती है:-

- (क) प्रगृह्य संज्ञा (ख) प्लुत संज्ञा (ग) ह्रस्व संज्ञा (घ) दीर्घ संज्ञा
 4. ब्रह्म ऋषिः किस सूत्र का उदाहरण है:-
 (क) आदगुणः (ख) अकः सवर्णेदीर्घः (ग) ऋत्यकः (घ) अनचि च

6.4 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप प्रकृतिभाव सन्धि के विषय में जान गये होंगे। प्रकृतिभाव सन्धि के मुख्य सूत्र है - सर्वत्रविभाषा गोः, प्लुत-प्रगृह्याचिनित्यम्, इदूदेद्विवचनं प्रगृह्यम्, निपात एकाजनाड, ओत्-आदि। इस इकाई में अनेक सूत्रों का सम्यग् रूप से वर्णन किया गया है। प्रकृतिभाव सन्धि अच् सन्धि के अन्तर्गत है। इसमें जहाँ प्लुत और प्रगृह्य संज्ञक शब्द होंगे वहाँ पर प्रकृतिभाव सन्धि होती है। आड् शब्द को छोड़कर मात्र एक अच् वाला निपात प्रगृह्य संज्ञक होता है। जिसकी पहले निपात् संज्ञा हो चुकी है, और उसमें मात्र केवल एक ही अच् हो, और वह एक अच् भी आड् वाला न होतो उसकी इस सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा हे जाती है। अनाड् अर्थात् आड् को छोड़कर। ऐसा इस लिये कहा गया है कि आड् में ड.कार की इत्संज्ञा तथा तस्यः लोपः से लोप हो जाने के बाद आ मात्र वचता है। उसकी निपात संज्ञा न हो सके। क्योंकि आड् को छोड़कर सभी एकाच निपात प्रगृह्य संज्ञक होते हैं। ह्रस्व ऋकार के परे होने पर पदान्त अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है। ब्रह्म ऋषिः, ब्रह्मर्षिः। ब्रह्म , ऋषिः यहाँ पर आद् गुणः सूत्र से गुण प्राप्त था। उस गुण को बाधकर सूत्र लगा ऋत्यकः। यह सूत्र कहता है कि ह्रस्व ऋकार परे होने पर अक् को विकल्प से ह्रस्व होता है। यहाँ पर ह्रस्व ऋकार पदान्त पर में है। ऋषि का ऋकार, उससे पूर्व में पदान्त अक् प्रत्याहार का वर्ण है। ब्रह्मा का आकार उस आकार को विकल्प से ह्रस्व होकर ब्रह्मर्षिः प्रयोग सिद्ध होता है। ह्रस्व विकल्प से होता है जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होगा उस पक्ष में आद् गुणः से गुण होकर ब्रह्म+अर्+षिः बना। उसके बाद वर्ण सम्मेलन होकर ब्रह्मर्षिः प्रयोग सिद्ध होता है।

6.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
गो अग्रम्	गाय का अग्र भाग
गौः	गाय का
गवेन्द्रः	सांड बड़ा बैल
हरी एतौ	ये दोनों हरि, घोड़े बन्दर है
विष्णु इमौ	ये दोनों विष्णु हैं
अमी ईशाः	ये दोनों स्वामी हैं
रामकृष्णावमू आसाते	राम कृष्ण दोनों बैठे हैं
इ इन्द्रः	यह इन्द्र है
उ उमेशः	यह शिव है
आ एवं नु मन्यसे	तुम ऐसा मानते हो

आ एवं किल तत्	हाँ यह ऐसा ही था
ओष्णम्	कुछ गरम, कुछ ठण्डा
अहो ईशा:	अहो ये स्वामी है
किम्बुक्तम्	क्या कहा
चक्रि अत्र	विष्णु यहाँ है
वाप्यश्वः	बावड़ी में घोड़ा

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सर्वत्र विभाषा गोः
2. त्रिमात्रिक को प्लुत कहते हैं
3. (इदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्)
4. प्रगृह्य संज्ञा
5. (निपात संज्ञा)
6. (प्रगृह्य संज्ञा)
7. (प्रगृह्य संज्ञा)
8. (क्रि मे इ)
9. (ह्रस्व)
10. (स्वर सन्धि)
11. (इकोऽसवर्णेकल्यस्य ह्रस्वश्च)
12. (पदान्त न होने से)
13. (द्वित्व)
14. (समास में)
15. (ह्रस्व)

बहु विकल्पीय प्रश्न

1. (ग)
2. (क)
3. (क)
4. (ग)

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी
2. सिद्धान्तकौमुदी

6.8 उपयोगी पुस्तकें

1. लघुसिद्धान्तकौमुदी.- श्रीधरानन्दशास्त्री

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एतन्मुरारिः प्रयोग को सूत्र सहित सिद्ध कीजिए ।
2. सर्वत्र विभाषा गोः सूत्र की व्याख्या कीजिए ।
3. निपात संज्ञा को उदाहरण सहित समझाएं ।
4. प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के आधार पर तीन प्रयोगों की सिद्धि का अभ्यास कीजिए ।